संस्कृत- 42298

व्याकरण-मञ्जरी ।

हिन्दीभाषामयी

गीर्वाणवाणीगहनसरणिं प्रविविक्षूणामुपकाराय

श्रीराम-स्वामिना

सङ्कलिता ।

पदशाखद्रुमोद्भिन्नां प्रत्यग्रां मञ्जरीमिमाम् ।
निषेव्य युवभिर्लभ्या नचिरात् "सुरभारती" ॥

प्रकाशकः

पण्डित गोपीनाथ बोहरा

डिस्ट्रिक्ट ऑफ़िसर,

अलवर स्टेट ।

१९८७

संवत्.

फोन नं. ६२८
जयपुर (राज.
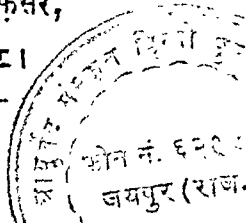
Printed by Jaya Krishṇa Dās Gupta
at the Vidyā Vilās Press, Gopāl Mandir Lane,
Benares City

1930.

विशेष द्रष्टव्य ।

अनुस्वार और चन्द्रबिन्दुके उच्चारणभेदानुसार (यथा—कांचन, काँच ; दंत, दाँत इत्यादि) 'हैं', 'नहीं', 'यहाँ', 'करें', 'क्यों', 'कवियोंका' इत्यादि-स्थलोंमें भ्रान्त प्रचलनके अनुरूप अनुस्वार न होकर चन्द्रबिन्दु होना चाहिये । और 'मे', 'दोनो', 'गुणोका', 'परिणामोमे' इत्यादि पञ्चमवर्णोके ऊपर ('ऊपर' नहीं) अनुस्वारका प्रयोग युक्त नहीं (क्योंकि 'मे'-मे अनुस्वार देनेसे Meng होता है); और चन्द्रबिन्दुभी नहीं लगाना चाहिये, कारण पञ्चमवर्णोका उच्चारण स्वतः नासिकामेही होता है ।

नासिकासे उच्चारित ध्वनि जहाँ बाहर निकल जाती है, वहाँ 'अनुस्वार', और जहाँ नाकके भीतरही रह जाती है, वहाँ 'चन्द्रबिन्दु' होगा ।

* * * *

हिन्दीमे प्रयुक्त अविकृत संस्कृतशब्दका लिङ्ग संस्कृतव्याकरणके नियमानुसार ही होना चाहिये ।

पृष्ठ १९८ पङ्क्ति ११ मे—'अजस्रम्' शब्दके पश्चात् 'सततम्' शब्द पढ़ना ।

पृष्ठ २०८ पङ्क्ति ८ मे—'इमं चतुर्द्धा विभज्य' के स्थानमे 'इदं चतुर्द्धा विभज्य' पढ़ना ।

पृष्ठ २३४ पङ्क्ति ४ मे—'अध्यापय' के स्थानमे 'अध्यापयतु' पढ़ना ।

मुखबन्ध ।

"अज्ञानतिमिराच्छन्नं तदाऽस्थाल्यच्चराचरम् ।
नाभविष्यद्यदि ज्योतिः संस्कृताह्वं सुमङ्गलम् ॥"

यह संसार अज्ञानान्धकारसे आवृत हो रहता, यदि संस्कृतभाषारूप परममङ्गलमय ज्योति प्रकाशित न होती । इसीके द्वारा मनुष्य धर्म और मोक्षके दुर्विज्ञेय तत्त्वोंको अवगत होकर सम्यक् कृतार्थ हो सकते । इस भारतवर्षमे यह संस्कृतभाषाही हितोपदेष्ट्री जननीके तुल्य सबके परम आश्रयणीय है । अधिक क्या, वैदेशिक विद्वान्भी इसे 'सर्वभाषाओंकी जननी' कहते हैं । किन्तु कालके विपर्य्ययसे हमारी वही मातृभूता सेवनीया संस्कृतभाषा भाषान्तरव्यासक्तचित्त भोगप्रवण आधुनिक मानवोंसे कुछभी आदर और सम्मान प्राप्त न होकर उन्हींकी दुर्दशाकी परा काष्ठा सूचित करती है । साधारणलोगोंकी ऐसी शोचनीय अवस्था होनेपरभी कई सुकृती मनुष्योंके हृदयमे संस्कृतसेवाका अभिलाष उत्पन्न होता है । पर उनमेसे अधिकांशलोग संस्कृतभाषाके साक्षात्कार-(व्युत्पत्ति-)के द्वारभूत पाणिनि-प्रभृतिकी संस्कृतसूत्रादिनिबद्ध भीषण मूर्ति सन्दर्शन करतेही भय-व्याकुल हो उस सङ्कल्पको छोड़ बैठते हैं । यह विषय सभीका

मुखबन्ध ।

नियम और प्रकरणके अन्तमे प्रश्न सन्निवेशित किये गये । प्रचलित प्रायः समस्त धातुओंके उदाहरण-समेत अर्थ और उपसर्गोंके योगसे उनके अर्थभेदभी दिखलाये गये ।

बचोंको प्रथम वर्णज्ञानके अनन्तर शब्दरूप और धातुरूप समग्र अच्छे प्रकारसे कण्ठस्थ कराकर पीछे सन्धि, कारक, समास, और तत्पश्चात् अन्यान्य विषय समझाना चाहिये ।

यह ग्रन्थ केवल अल्पवयस्क बालक अथवा अन्यभाषामे प्रविष्ट-संस्कृतशिक्षार्थियोंकेही उपयोगी नहीं ; किन्तु इससे दुरूहसंस्कृतसूत्रग्रन्थ-पाठी संस्कृतपरीक्षार्थियोंकाभी महोपकार साधित होगा । इत्यलमति-पल्लवितेनेति शम् ।

श्रीरामस्वामी ।

विषय-सूची ।

विषय-सूची ।

अव्यय-सूची ।

अव्यय-सूची।

अव्यय-सूची ।

अव्यय सूची ।

अव्यय-सूची ।

धातु-सूची ।

धातु-सूची ।

धातु-सूची ।

धातु-सूची ।

धातु-सूची।

धातु-सूची।

धातु-सूची।

धातु-सूची।

धातु-सूची।

धातु-सूची ।

ॐ तत् सत् ।

संस्कृत-

व्याकरण-मञ्जरी ।

१ । जिस शास्त्रसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति (अर्थात् वाक्यके अन्तर्गत एक एक पद किस प्रकारसे निष्पन्न होता है, उसका विवरण) जानी जाती है, और तदनुसार विशुद्ध भाषामे लिखनेकी बोलनेकी तथा वाक्यके अर्थ समझनेकी शक्ति होती है, उसको 'व्याकरण'* कहते हैं ।

वर्ण-प्रकरण ।

२ । अ आ प्रभृति एक एकको 'वर्ण वा अक्षर' (Letter) कहते हैं; यथा--अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ऐ ओ औ । क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व । श ष स ह† ।

---

* व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दा अस्मिन् अनेन वा इति व्याकरणम् ।

† न् और म् के स्थानमे अनुस्वार, तथा र् और स् के स्थानमे विसर्ग होता है; इसलिये अनुस्वार और विसर्ग अलग वर्णोंमे गिने नहीं गये ।

(क) वर्ण दो-प्रकार—(१) स्वर या अच् (Vowel) और (२) व्यञ्जन, हल् या हस् (Consonant)।

स्वरवर्ण।

३। जिन वर्णोंका आपसे आप उच्चारण होता है, अर्थात् जिनके उच्चारणमें और किसी वर्णकी अपेक्षा नहीं, उनको 'स्वरवर्ण' कहते हैं, यथा—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ*।

४। स्वरवर्ण दो-प्रकार—(१) ह्रस्व (Short) और (२) दीर्घ (Long)। अ इ उ ऋ ऌ—ये पाँच ह्रस्व स्वर; आ ई ऊ ॠ ए ऐ ओ औ ये आठ दीर्घ स्वर†।

(क) अवर्ण इत्यादि—अवर्ण कहनेसे अ आ, इवर्ण कहनेसे इ ई, उवर्ण कहनेसे उ ऊ, ऋवर्ण कहनेसे ऋ ॠ, और ऌवर्ण कहनेसे ऌ समझना चाहिये।

(ख) ह्रस्व—आगामी ह्रस्व अकार‡, इकार, उकार और

---

* ॡ भी एक वर्ण है, किन्तु उसका प्रयोग नहीं है। अकारसे दीर्घ ऋकारतक दस वर्णोंको 'समान-वर्ण' कहते हैं—दश समानाः। इनमें दो दो वर्ण परस्पर 'सवर्ण' होते हैं—देखो ह्रस्वदीर्घभेदात् सवर्णौ।

† उच्चारणके नियमानुसार ह्रस्वको एकमात्र, दीर्घको द्विमात्र, और व्यञ्जनको अर्द्धमात्र कहते हैं।

‡ वर्णके बाद स्वरके 'कार' प्रत्यय होता है, यथा-अकार, इकार, ककार, खकार इत्यादि। रकारके बाद विकल्पसे 'इफ' प्रत्यय होता है, यथा-रेफ, रकार, इत्यादि।

ऐकारका ह्रस्व—इकार; ऊकार, ओकार और औकारका ह्रस्व—उकार; ॠकारका ह्रस्व—ऋकार।

(ग) लघु, गुरु—ह्रस्वस्वरको 'लघुवर्ण', और दीर्घस्वरको 'गुरुवर्ण' कहते हैं।

संयुक्त वर्ण,* विसर्ग अथवा अनुस्वार परे रहनेसे, ह्रस्वस्वर-भी गुरुवर्णमे गिना जाता है, यथा—(संयुक्तवर्ण परे) इक्ष्वाकु—यहाँ 'इ' गुरुस्वर; (विसर्ग परे) पतिः; (अनुस्वार परे) पतिं।†

व्यञ्जनवर्ण।

५। जो वर्ण स्वरके साहाय्य विना स्वयं उच्चारित नहीं होते, उनको 'व्यञ्जनवर्ण' कहते हैं; यथा—क् ख् ग् घ् ङ्, च् छ् ज् झ् ञ्, ट् ठ् ड् ढ् ण्, त् थ् द् ध् न्, प् फ् ब् भ् म्, य् र् ल् व्, श् ष् स् ह्।‡

---

* व्यञ्जनवर्ण व्यञ्जनवर्णके साथ युक्त होनेसे, समुदायको 'युक्ताक्षर' वा 'संयुक्तवर्ण' कहते हैं, यथा—क्त, ग्य, र्च्च, र्द्ध इत्यादि।

† पद्यको चारभाग करनेसे, उनके एक एक भागको 'पाद' वा 'चरण' कहते हैं। पादके अन्तस्थित वर्ण विकल्पसे गुरु होता है। प्र और ह्र परे रहने-सेभी लघुवर्ण विकल्पसे गुरु होता है।

"सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥"

‡ स्वरवर्णका योग न होनेसे व्यञ्जनवर्ण उच्चारण नहीं किये जा सकते, इसलिये उनके अन्तमे अकार-योग करके क ख ग घ इत्यादिरूप-

६ । व्यञ्जनवर्ण तीन भागोंमें विभक्त; यथा—

(१) क् से म् तक पचीस स्पर्शवर्ण* या वर्गीयवर्ण ।

(२) य् र् ल् व्—ये चार अन्तःस्थवर्ण† (Semi-vowel) ।

(३) श् ष् स् ह्—ये चार ऊष्मवर्ण‡ (Sibilant) ।

७ । स्पर्शवर्ण पुनः पाँच भागोंमें विभक्त, इनके एक एक भागको 'वर्ग' (Class) कहते हैं; यथा—

(१) क ख ग घ ङ—कवर्ग ।

(२) च छ ज झ ञ—चवर्ग ।

(३) ट ठ ड ढ ण—टवर्ग ।

(४) त थ द ध न—तवर्ग ।

(५) प फ ब भ म—पवर्ग ।

के नीचे जो ऐसा चिह्न है । इन वर्णोंमें स्वर न रहनेसे वर्णके नीचे (्) ऐसा चिह्न दिया जाता है, इसको 'हसन्त चिह्न' कहते हैं ।

* कण्ठ, तालु, मूर्द्धा (मसूड़ोंके ऊपरका प्रदेश), दन्त और ओष्ठ द्वारा [illegible] स्पर्श करके इन वर्णोंका उच्चारण करना होता है, इसलिये इनका नाम 'स्पर्शवर्ण' ।

† स्पर्शवर्ण और ऊष्मवर्ण—इन दोनोंके मध्यमें स्थित होनेके कारण इनको 'अन्तःस्थ' (मध्यवर्ती) नाम कहते हैं ।

‡ ऊष्मन् (पु०) शब्दका अर्थ—उत्ताप । ऊष्मवर्ण—[illegible] वर्ण, अर्थात् इनके उच्चारणमें [illegible] है, इसलिये इनका नाम 'ऊष्मवर्ण' ।

८ । अघोषवर्ण—वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श ष स—इन तेरह व्यञ्जनोको 'अघोषवर्ण' कहते हैं; यथा—क ख च छ ट ठ त थ प फ श ष स ।*

९ । घोषवद्वर्ण—वर्गके तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण तथा य र ल व ह—इन बीस व्यञ्जनोको 'घोषवद्वर्ण' कहते हैं; यथा-ग घ ङ ज झ ञ ड ढ ण द ध न ब भ म य र ल व ह।†

वर्णोंका उच्चारणस्थान ।

१० । (१) अ आ ह—इनका उच्चारणस्थान कण्ठ; इसलिये इनको 'कण्ठ्य वर्ण' (Guttural or throat-letter) कहते हैं ।

(२) क ख ग घ ङ—इनका उच्चारणस्थान जिह्वामूल; इस लिये इनको 'जिह्वामूलीय वर्ण' (Linguae radical) कहते हैं ।‡

(३) इ ई च छ ज झ ञ य श—इनका उच्चारणस्थान तालु; इस-

---

* वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः ।

† घोषवन्तोऽन्ये ।

‡ वैयाकरणलोग अ आ ह क ख ग घ ङ—इन सभीका उच्चारण-स्थान 'कण्ठ' कहते हैं । किन्तु शिक्षाग्रन्थमे अ आ ह—इन तीनोका उच्चारणस्थान 'कण्ठ', और कवर्गका उच्चारणस्थान 'जिह्वामूल'—ऐसा स्पष्ट निर्देश है, यथा—"कण्ठ्यावहौ", "जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः" इति । वास्तवमे अ आ ह-इन तीनोंके और कवर्गके उच्चारणमे बहुत भेद है । उस भेदके अनुसार विचार करनेसे शिक्षाग्रन्थका निर्देशही संलग्न प्रतीत होता है । इसलिये यहाँ शिक्षाग्रन्थकी व्यवस्थानुसारही कवर्गका उच्चारण-स्थान जिह्वामूल निर्दिष्ट हुआ ।

लिये इनको 'तालव्य वर्ण' (Palatal or palate-letter) कहते हैं।

(४) ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण र ष—इनका उच्चारणस्थान मूर्द्धा; इस-लिये इनको 'मूर्द्धन्य वर्ण' (Cerebral or brain-letter) कहते हैं।

(५) ऌ त थ द ध न ल स—इनका उच्चारणस्थान दन्त; इसलिये इनको 'दन्त्य वर्ण' (Dental or tooth letter) कहते हैं।

(६) उ ऊ प फ ब भ म—इनका उच्चारणस्थान ओष्ठ, इसलिये इनको 'ओष्ठ्य वर्ण' (Labial or lip-letter) कहते हैं।

(७) ए ऐ—इनके उच्चारणस्थान कण्ठ और तालु, इसलिये इनको 'कण्ठ-तालव्य वर्ण' (Palato-guttural) कहते हैं।

(८) ओ औ—इनके उच्चारणस्थान कण्ठ और ओष्ठ, इसलिये इनको 'कण्ठोष्ठ्य वर्ण' (Labio-guttural) कहते हैं।

(९) अन्तःस्थ वकारके उच्चारणस्थान दन्त और ओष्ठ; इसलिये इसको 'दन्त्योष्ठ्य वर्ण' (Dento-labial) कहते हैं।*

(१०) ङ ञ ण न म—ये जिह्वामूल-तालु-प्रभृतिके साथ नासिकासे-भी उच्चारित होते हैं; इसलिये इनको 'अनुनासिक वर्ण' भी (Nasal or nose-letter) कहते हैं।

(११) अनुस्वार (ं), चन्द्रबिन्दु (ँ)—येभी 'अनुनासिक वर्ण' हैं।†

---

* [illegible] उच्चारण अङ्गरेजी [illegible], और [illegible] वकार-का उच्चारण अङ्गरेजी [illegible]।

† [illegible] अनुस्वार [illegible]। चन्द्रबिन्दुयुक्तवर्णोंको 'अनु-नासिक' कहते हैं।

(१२) विसर्ग (:) आश्रयस्थानभागी, अर्थात् जिस स्वरवर्णको आश्रय करके उच्चारित होता है, उस स्वरवर्णका उच्चारणस्थानही विसर्गका उच्चारणस्थान ।

प्रश्नमाला ।

(१) व्याकरण किसको कहते हैं ? (२) वर्णका द्वितीय नाम क्या है ? (३) अ उ ऋ ओ आ ऊ—इन स्वरोंमेंसे कौन ह्रस्व, कौन दीर्घ,—कहो । (४) व्यञ्जनवर्ण किसे कहते हैं ? (५) स्वर और व्यञ्जनमे प्रभेद क्या है ? (६) व्यञ्जनवर्ण कितने भागोंमें विभक्त ? (७) स्पर्शवर्णके वीचमे कितने वर्ण हैं ? (८) जिह्वामूलीय वर्ण किनको कहते हैं ? (९) उनका नाम 'जिह्वामूलीय' क्यों हुआ ? (१०) दन्त्यौष्ठ्य वर्ण क्या है ? (११) ज झ ड ढ द ध व भ ऐ ओ—इन वर्णोंमे किसका उच्चारणस्थान क्या है,—बतलाओ । (१२) विसर्गको 'आश्रयस्थानभागी' क्यों कहा गया ?

सन्धि-प्रकरण ।

सन्धि (Conjunction of letters or Euphonic Combination) ।

११ । दो वर्ण परस्पर अत्यन्त निकटवर्त्ती होनेसे जो मिल जाते हैं, उस मिलनको 'सन्धि' कहते हैं ।*

---

* जिन दो वर्णोंमे सन्धि होगी, उनके प्रथम वर्णको 'पूर्ववर्ण', और

(क) सन्धिमें कभी दो वर्णोंका मिलन होता है; कभी पूर्ववर्ण विकृत (रूपान्तरित) होता है; कभी परवर्ण विकृत होता है; कभी दोनों वर्ण ही विकृत होते हैं; कभी पूर्ववर्णका लोप होता है; कभी परवर्णका लोप होता है; यथा—(मिलन) महान् + आशयः = महानाशयः; (पूर्ववर्ण विकृत) तत् + अयः = तदयः; (परवर्ण विकृत) यज् + नः = यज्ञः; (दोनों वर्ण विकृत) तत् + शान्तिः = तच्छान्तिः; (पूर्ववर्णलोप) कपयः + ऊचुः = कपय ऊचुः; (परवर्णलोप) सो + अवेहि = सोऽवेहि।

१२। सन्धि तीन-प्रकार—(१) स्वरसन्धि, (२) व्यञ्जनसन्धि और (३) विसर्गसन्धि।

(१) स्वरवर्ण और स्वरवर्णमें जो सन्धि होती है, उसे 'स्वरसन्धि' कहते हैं; यथा—सुर + अरिः = सुरारिः।

(२) व्यञ्जनसन्धि दो-प्रकार—(१) व्यञ्जनवर्ण और व्यञ्जनवर्णमें; यथा—तत् + हितम् = तद्धितम्; (२) व्यञ्जनवर्ण और स्वरवर्णमें; यथा—सत् + आशयः = सदाशयः।

(३) विसर्गसन्धि दो-प्रकार—(१) विसर्ग और स्वरवर्णमें; यथा—नरः + अयम् = नरोऽयम्; (२) विसर्ग और व्यञ्जनवर्णमें; यथा—मयूरः + नृत्यति = मयूरो नृत्यति।

(ख) एकपदमें, धातु और उपसर्गमें, तथा समासमें नित्य सन्धि होती है, अर्थात् इनमें सन्धि अवश्य करनी चाहिये, किन्तु वाक्यमें सन्धि इच्छाधीन, अर्थात् वाक्यमें सन्धिकी आवश्यकता रहनेसे, इच्छा

---

*सन्धि करनेको 'आसत्ति' कहते हैं। दूसरे पूर्वपदके अन्त्य वर्णको 'पूर्ववर्ण', और परपदके आदि वर्णको 'परवर्ण' समझना चाहिये।

हो, सन्धि करना, न हो, न करना; यथा—(एकपदमे) ने + अयनम् = नयनम्; (धातु और उपसर्गमे) अनु + एति = अन्वेति; (समासमे) नित्य + आनन्दः = नित्यानन्दः । (वाक्यमे) "कस्मिश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति । असौ नित्यमेव अनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयति"—यहां 'कस्मिश्चित् + वने', 'भासुरकः + नाम' इन दोनो स्थलोंमे सन्धि की हुई है, न करनेसे भी चल सकता; 'नित्यमेव + अनेकान्'—यहां सन्धि नहीं की है, कीभी जा सकती; किन्तु 'कस्मिश्चित्'—इस एकपदमे, और 'मृगशशकादीन्'—इस समासमे सन्धि करनीही होगी; 'कस्मिन्-चित्' 'मृगशशक-आदीन्'—ऐसा लिखनेसे भूल होगी । *

पद्य (श्लोक)मे भी सन्धि न करनेसे दोष होता है । विसर्गसन्धि-की सम्भावना रहनेसे, सन्धि करनीही अच्छी, न करनेसे श्रुतिकटु होता है; यथा—'सः हि दाशरथिः रामः'—यहां 'स हि दाशरथी रामः' कहनेसे सुननेमे अच्छा लगता है ।

स्वर-सन्धि (Conjunction of vowels) ।

[अ आ + अ आ]

१३ । अकार वा आकारसे परे अकार वा आकार रहनेसे, दोनो मिलके आकार होता है; आकार पूर्ववर्णमे युक्त होता

---

* सन्धिरेकपदे नित्यो, नित्यो धातूपसर्गयोः ।
नित्यः समासे, वाक्ये तु स विवक्षामपेक्षते ॥

† अ आ के स्थानमे आ, इ ई के स्थानमे ई, उ ऊ के स्थानमे ऊ, ऋ ॠ के स्थानमे ॠ होनेको 'दीर्घ होना' कहते हैं ।

सन्धि करो—पूर्ण + इन्दुः, गण + ईशः, लता + इव, उमा + ईशः, धन + ईहा ।

विश्लेष करो—नरेन्द्रः, भवेन्द्रः, अवेक्षणम्, दुर्गेशः, रमेशः, शुष्केन्धनम् ।

[अ आ + उ ऊ]

१५ । अकार वा आकारसे परे ह्रस्व उ वा दीर्घ ऊ रहनेसे, दोनो मिलके ओकार होता है; ओकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है; *यथा--

अ + उ = ओ-ज्ञान + उदयः = ज्ञानोदयः ।

अ + ऊ = ओ-एक + ऊनविंशतिः = एकोनविंशतिः ।

आ + उ = ओ-गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् ।

आ + ऊ = ओ-महा + ऊर्मिः = महोर्मिः ।

सन्धि करो—व्याघ्र + उत्पातः, यमुना + उत्तरणम्, गृह + ऊर्द्धम्, विद्या + ऊनः ।

विश्लेष करो—कार्य्योत्पत्तिः, प्रोचुः, कथोपकथनम्, सहोदरः, लम्बोदरः।

[अ आ + ऋ]

१६। अकार वा आकारसे परे ऋकार रहनेसे, दोनो मिलके 'अर्' होताहै; अकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और र् परवर्णके मस्तकमे जाता है;† यथा--

अ + ऋ = अर्-देव + ऋषिः = देवर्षिः ।

---

* उवर्णे-ओ । (अवर्ण उवर्णे परे ओर्भवति, परश्च लोपमापद्यते ।)

† ऋवर्णे—अर् । (अवर्ण ऋवर्णे परे अर् भवति, परश्च लोपमापद्यते ।)

यथा—

अ + ओ = औ—जल + ओघः = जलौघः ।

अ + औ = औ—चित्त + औदास्यम् = चित्तौदास्यम् ।

आ + ओ = औ—महा + ओषधिः = महौषधिः ।

आ + औ = औ—सदा + औत्सुक्यम् = सदौत्सुक्यम् ।

सन्धि करो—दिव + ओकसः, हृदय + औदार्यम् ।

विश्लेष करो—महौजसः, जलौकाः, रुचिरौपम्यम् ।

[इ ई + इ ई]

१९ । ह्रस्व इकार वा दीर्घ ईकारसे परे ह्रस्व इ वा दीर्घ ई रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ईकार होता है; ईकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है;* यथा—

इ + इ = ई—अभि + इष्टम् = अभीष्टम् ।

इ + ई = ई—प्रति + ईक्षणम् = प्रतीक्षणम् ।

ई + इ = ई—महती + इच्छा + महतीच्छा ।

ई + ई = ई—पृथ्वी + ईशः = पृथ्वीशः ।

सन्धि करो—अति + इव, कवि + ईश्वरः, मही + इन्द्रः, लक्ष्मी + ईशः।

विश्लेष करो—गिरीन्द्रः, गौरीक्षणम्, क्षितीहा, धात्रीक्षणम् ।

[इ ई + असमान स्वरवर्ण]

२० । ह्रस्व इकार वा दीर्घ ईकारसे परे इ ई भिन्नस्वरवर्ण रहनेसे, ह्रस्व इ और दीर्घ ई के स्थानमे 'य्' होता है; 'य्' पूर्व-

---

* समानः सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम् ।

ऊ के स्थानमे 'व्' होता है; 'व्' पूर्ववर्णमे युक्त होता है;*यथा—

उ+ए=व्+ए—अनु+एषणम्=अन्वेषणम् ।

ऊ+आ=व्+आ—वधू+आगमनम्=वध्वागमनम् ।

सन्धि करो—साधु+इदम्, ऋजु+अर्थः, सु+आगतम्, अनु+अयः ।

विश्लेष करो—चञ्च्वाघातः, गुर्वासनम्, तन्वङ्गी, वध्वौदार्य्यम् ।

[ऋ+ऋ]

२३ । ऋकारसे परे ऋकार रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ॠ होता है; दीर्घ ॠ पूर्ववर्णमे युक्त होता है;† यथा—

ऋ+ऋ=ॠ—पितृ+ऋणम्=पितॄणम् ।

सन्धि करो—भ्रातृ+ऋत्विजौ ।

विश्लेष करो—मातॄद्धिः ।

[ऋ+असमान स्वरवर्ण]

२४ । ऋ भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, ऋ के स्थानमे 'र' होता है; 'र्' पूर्ववर्णमे युक्त होता है;‡ यथा—

ऋ+आ=र्+आ—पितृ+आसनम्=पित्रासनम् ।

सन्धि करो—मातृ+अनुमतिः, सवितृ+उदयः, मातृ+इच्छा ।

विश्लेष करो—जामात्रर्थम्, दुहित्रौहितम्, पित्रैश्वर्य्यम् ।

---

* वमुवर्णः । (उवर्णो वम् आपद्यते, असवर्णे परे–न च परो लोप्यः ।)

† समानः सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम् ।

‡ रमृवर्णः । (ऋवर्णो रम् आपद्यतेऽसवर्णे–न च परो लोप्यः ।)

[ए + स्वरवर्ण]

२५। स्वरवर्ण परे रहनेसे, एकारके स्थानमें 'अय्' होता है; अकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और 'य्' परस्वरमे युक्त होता है; * यथा–

ए+अ=अय्+अ ने+अनम्=नयनम्।

सन्धि करो—शे + इतम्, ने + अपि, शे + ए, अने + आताम्।

विश्लेष करो—जयति, अतयिट, सञ्चयः, दायनम्, लयः।

[ऐ+स्वरवर्ण]

२६। स्वरवर्ण परे रहनेसे, ऐकारके स्थानमे 'आय्' होता है; आकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और 'य्' परस्वरमे युक्त होता है; † यथा—

ऐ+अ=आय्+अ—नै+अकः=नायकः।

सन्धि करो—निनै + अ, परिचै + अकः।

विश्लेष करो—सञ्चायकः, रायः।

[ओ+स्वरवर्ण]

२७। स्वरवर्ण परे रहनेसे, ओकारके स्थानमे 'अव्' होता है; अकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और 'व्' परस्वरमें युक्त होता है; ‡ यथा—

ओ+अ=अव्+अ–भो+अनम्=भवनम्।

---

* ए-अय्। (एकारः अय् भवति–न च परो लोप्यः।)

† ऐ-आय्। (ऐकारः आय् भवति–न च परो लोप्यः।)

‡ ओ-अव्। (ओकारः अव् भवति–न च परो लोप्यः।)

सन्धि करो—भो + इष्यति, स्तो + अनम्, गो + ए ।

विश्लेष करो—पवनः, पवित्रम्, प्रभवितुम्, श्रवणम् ।

[औ + स्वरवर्ण]

२८। स्वरवर्ण परे रहनेसे, औकारके स्थानमें 'आव्' होता है; आकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है, और 'व्' परस्वरमें युक्त होता है;* यथा–

औ+अ = आव् + अ—पौ + अकः = पावकः ।

सन्धि करो—नौ + आ, गौ + अः, स्तौ + अकः ।

विश्लेष करो—भाविनी, भावुकः, गावौ, श्रावकः ।

[पदान्त ए ओ + अ]

२९। पदके† अन्तमें स्थित एकार वा ओकारसे परे अकार रहनेसे, अकारका लोप होता है; लोप होनेसे, लुप्त अकारका चिह्न(ऽ)‡ रहता है; §यथा—

सखे + अर्पय = सखेऽर्पय । प्रभो + अत्र = प्रभोऽत्र ।

---

* औ–आव् । (औकार आव् भवति–न च परो लोप्यः ।)

† प्रकृति और विभक्तिके मिलनेसे जो होता है, उसे 'पद' कहते हैं; यथा–तद् + जस्=ते–यह पद है (तद्–प्रकृति, जस्–विभक्ति) ।

समासमें विभक्तिका लोप होनेसे, पूर्ववर्त्ती शब्दभी पदमें गिना जाता है; यथा–जगताम् ईशः–जगत् + ईशः, इस स्थानमें 'जगत्'–यह पद है ।

‡ लुप्त अकारके (ऽ) चिह्नको संस्कृतमें 'अवग्रह चिह्न' कहते हैं ।

§ एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः । (एदोद्भ्यां परोऽकारः पदान्ते वर्त्तमानो लोपमापद्यते ।)

सन्धि करो—विपन्ने + अन्यस्मिन्, विभो + अनुजानीहि ।

विश्लेष करो—तेऽत्र, करोऽहि, गुरोऽनुमन्यस्व ।

[पदान्त ए + 'अ'-भिन्न स्वरवर्ण]

३० । अकार-भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित एकारके स्थानमे 'अ' या 'अय्' होता है; 'अ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है; 'अ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती; यथा—

ए+इ = अ + इ—ते + इव = त इव ।

ए+इ = अय् + इ—ते + इव—तयिव ।

सन्धि करो—विपते + एत्र, सखे + उच्यताम्, सखे + एहि ।

विश्लेष करो—गृहयागच्छ, नरपतयेहि ।

[पदान्त ओ + 'अ'-भिन्नस्वरवर्ण]

३१ । अकार-भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित ओकारके स्थानमे 'अ' या 'अव्' होता है; 'अ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'व्' परस्वरमे युक्त होता है; 'अ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती; यथा—

ओ+इ = अ + इ—विभो + इह = विभ इह ।

ओ+इ = अव् + इ—विभो + इह = विभविह ।

सन्धि करो—साधो + एहि, गुरो + उच्यताम्, प्रभो + इच्छसि ।

विश्लेष करो—प्रभ इह, प्रभवेहि, प्रभ ईहसे ।

[पदान्त ऐ + स्वरवर्ण]

३२ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित ऐकारके

स्थानमे 'आ' वा 'आय्' होता है;'आ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है; 'आ' होनेसे फिर सन्धि नहीं होती; यथा--

ऐ + अ = आ + अ--काल्यै + अर्पय = काल्या अर्पय।

ऐ + अ = आय् + अ--काल्यै + अर्पय = काल्यायर्पय।

सन्धि करो—देव्यै + इदम्, भक्त्यै + उत्कण्ठा।

विश्लेप करो—विद्याया आग्रहः, स्त्रियायुन्नतिः, मायायायिह।

[पदान्त औ + स्वरवर्ण]

३३। स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित औकारके स्थानमे 'आ' वा 'आव्' होता है, 'आ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'व्' परस्वरमे युक्त होता है; 'आ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती; *यथा--

औ + अ = आ + अ-रवौ + अस्तङ्गते = रवा अस्तङ्गते।

औ + अ = आव् + अ-रवौ + अस्तङ्गते = रवावस्तङ्गते।

सन्धि करो—विधौ + उदिते, तौ + ईश्वरौ, गुरौ + अर्पणम्, गुरौ + आगते।

विश्लेप करो—गताविमौ, रवावूर्द्धगे, मता ऐक्यम्।

* * * *

३४। तृतीयातत्पुरुप समासमे अकार वा आकारके परस्थित 'ऋत'-

---

* अयादीनां य-व-लोपः पदान्ते, न वा—लोपे तु प्रकृतिः। (अय् इत्येवमादीनां पदान्ते वर्त्तमानानां य-वयोर्लोपो भवति,- न वा। लोपे तु प्रकृतिः स्वभावो भवति।)-३० से ३३ सूत्र।

शब्दके 'ऋ'के स्थानमे 'आर्' होता है; यथा—शीत + ऋतः = शीतार्तः; दुःख + ऋतः = दुःखार्तः; क्षुधा + ऋतः = क्षुधार्तः ।

३५ । 'स्व' शब्दके परस्थित 'ईर' और 'ईरिन्' शब्दके ईकारके स्थानमे ऐकार होता है; यथा—स्व + ईरम् = स्वैरम् ; स्व + ईरिन् = स्वैरी; स्व + ईरिणी = स्वैरिणी ।

३६ । 'प्र'-शब्दके परवर्त्ती 'ऊढ' और 'ऊढि' शब्दके ऊकारके स्थानमे औकार होता है; यथा—प्र + ऊढः = प्रौढः; प्र + ऊढिः = प्रौढिः।

३७ । 'अक्ष'-शब्दके परवर्त्ती 'ऊहिनी'-शब्दके ऊकारके स्थानमे औकार होता है; यथा—अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी ।

३८ । धातुका एकार वा ओकार परे रहनेसे, उपसर्गके अवर्णका* लोप होता है; यथा—प्र + एषयति = प्रेषयति; परा + ओखति = परोखति ।

(क) इण् और एध् धातुका एकार परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती उपसर्गके अवर्णका लोप नहीं होता; यथा—प्र + एधते = प्रैधते; अव + एति = अवैति; आ + एति = ऐति ।

३९ । 'प्र'-शब्दसे परे 'एष' और 'एष्य' शब्द रहनेसे अकारका विकल्पसे† लोप होता है; यथा—प्र + एषः = प्रेषः, प्रैषः; प्र + एष्यः = प्रेष्यः, प्रैष्यः ।

४० । 'आङ्' (आ) उपसर्गके योगसे उत्पन्न एकार वा ओकार परे रहनेसे, अवर्णका लोप होता है; यथा—(आ + इहि = एहि) अत्र +

---

* अवर्णान्त उपसर्ग—प्र, परा, अप, उप, अव, आ ।

† एक वार होने और एक वार न होनेको 'विकल्प' कहते हैं ।

एहि = अत्रेहि; (आ + उतम् = ओतम्) सूत्र + ओतम् = सूत्रोतम् ।

४१ । उपसर्गके अवर्णके परवर्त्ती धातुके ऋकारके स्थानमे 'आर्' होता है; यथा—अप + ऋच्छति = अपार्च्छति; परा + ऋपति = परार्पति ।

४२ । समासमे अवर्णान्त शब्दसे परे 'ओष्ठ' वा 'ओतु' शब्द रहनेसे; अवर्णका विकल्पसे लोप होता है; यथा—बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः; उमा + ओष्ठः = उमोष्ठः, उमौष्ठः; स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः ।

४३ । पदान्तस्थित 'गो'-शब्दके ओकारसे परे अकार रहनेसे, अकारका लोप होता है, वा ओकारके स्थानमे 'अव' होता है, अथवा सन्धि नहीं होती; यथा—गो + अङ्गम् = गोऽङ्गम्, गवाङ्गम्, गो-अङ्गम् ।

(क) वातायन (झरोखा) अर्थमें—गो + अक्षः = गवाक्षः नित्य होता है ।

(ख) अकार-भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदान्तस्थित 'गो'-शब्दके ओकारके स्थानमे 'अव' वा 'अव्' होता है; यथा—गो + ईशः = गवेशः, गवीशः । गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः नित्य होता है ।

सन्धि-निषेध ।

४४ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, ओकारान्त अव्यय और एकस्वरमात्र अव्ययकी सन्धि नहीं होती;* यथा—अहो ईशानः उ उत्तिष्ठ ।

किन्तु सीमा, व्याप्ति वा ईषदर्थ समझानेसे, अथवा क्रियाके साथ योग होनेसे, आङ् (आ) अव्ययकी सन्धि होती है; यथा—(सीमा)

---

* ओदन्ता अ इ उ आ निपाताः स्वरे प्रकृत्या । (ओदन्ता निपाताः अ इ उ आश्च केवलाः स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठन्ति ।)

आ + अध्ययनात् = आध्ययनात् (अध्ययनपर्य्यन्त); (व्याप्ति) आ + एकदेशात् = ऐकदेशात् (एकदेश व्यापकर); (ईषदर्थे) आ + आलोचितम् = आलोचितम् (ईषत् अर्थात् अल्पमात्र विचार किया हुआ); (क्रियायोग) आ + इहि = एहि ।

४५। स्वरवर्ण परे रहनेसे, द्विवचन-निष्पन्न ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त पदकी सन्धि नहीं होती; *यथा—गिरी इमौ; साधू आगतौ; लते एते । पचेते एतौ; एधेते इमौ ।

४६। स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'अदस्'-शब्दनिष्पन्न 'अमी'-पदकी सन्धि नहीं होती; †यथा—अमी अश्वाः ।

४७। ऋवर्ण परे रहनेसे, अवर्ण, इवर्ण और उवर्णकी विकल्पसे सन्धि होती है, और सन्धि न होनेसे विकल्पसे ह्रस्व होता है; यथा—ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्मा ऋषिः, ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः ।

व्यञ्जन-सन्धि (Conjunction of consonants) ।

(व्यञ्जन और व्यञ्जनमें)

[१ म वर्ण + ३ य, ४ र्थ वर्ण, य, र, ल, व, ह]

४८। वर्गका तृतीय या चतुर्थ वर्ण, अथवा य र ल व ह परे रहनेसे, पदके अन्तमें स्थित वर्गके प्रथमवर्णके स्थानमें

---

* द्विवचनमतौ । (द्विवचनं यत् अनीभूतम् औकाररूपं परित्यज्य रूपान्तरं प्राप्तमित्यर्थः, तत् स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठति ।)

† बहुवचनममी । (बहुवचनं यत् 'अमी'-रूपम् , तत् स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठति ।)

स्वस्ववर्गका तृतीय वर्ण होता है;*

क् + व = ग्व—वाक् + विभवः = वाग्विभवः ।

ट् + व = ड्व—षट् + विद्वांसः = षड्विद्वांसः ।

त् + भ = द्भ—तत् + भवनम् = तद्भवनम् ।

प् + भ = ब्भ—अप् + भाण्डम् = अब्भाण्डम् ।

सन्धि करो—दिक् + गजः, धिक् + धनगर्वितम्, जगत् + भारः, अप् + भाजनम्, परिव्राट् + याति ।

विश्लेष करो—वाग्बोधः, किंव्यवहारः, वषड्देवेन्द्राय, तडिद्वाहः ।

शुद्ध करो—जगजबन्धुः, जरद्कङ्कालः, वाड्जयः ।

[१ म वर्ण + ५ म वर्ण]

४६ । पञ्चम वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) परे रहनेसे पदके अन्तमे स्थित प्रथम वर्णके स्थानमे पञ्चम वा तृतीय वर्ण होता है;† यथा—

क् + न = ङ्न वा ग्न—दिक् + नागः = दिङ्नागः; दिग्नागः ।

ट् + म = ण्म वा ड्म—षट् + मासाः = षण्मासाः, षड्मासाः ।‡

---

* वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वरघोषवत्सु तृतीयान् । (आपद्यन्ते इति शेषः)।

† प्रत्ययका पञ्चमवर्ण परे रहनेसे, नित्य पञ्चमवर्ण होता है; यथा—तत् + मात्रम्=तन्मात्रम् ; जगत् + मयः=जगन्मयः ।

‡ पञ्चमे पञ्चमांस्तृतीयान् वा । (वर्गप्रथमाः पदान्ताः पञ्चमे परे पञ्चमानापद्यन्ते, तृतीयान् वा ।)

सन्धि करो—जगत् + निःसारम्, वाक् + निपुण, अप् + मग्नः।

विश्लेष करो—दिङ्मुखम्, तन्मुखम्, अम्मध्यम्, प्राङ्मुख।

[१ म वर्ण + श]

५०। पदके अन्तमे स्थित वर्गके प्रथम वर्णसे परे तालव्य श रहनेसे, 'श' के स्थानमे विकल्पसे 'छ' होता है; और 'त्' के स्थानमे 'च्' होता है*; यथा—

क् + श = क्छ—वाक् + शूरः = वाक्छूरः, वाक्शूरः।

प् + श = प्छ—त्रिष्टुप् + श्रूयते = त्रिष्टुप्छ्रूयते, त्रिष्टुप् श्रूयते।

त् + श = च्छ वा च्श—जगत् + शरण्यम् = जगच्छरण्यम्, जगच्शरण्यम्।

द् + श = च्छ वा च्श—आपद् + शान्तिः = आपच्छान्तिः, आपच्शान्तिः† ‡।

---

* शकार—स्वरवर्ण और य व र भिन्न अन्य वर्णसे मिलित रहनेसे, 'छ' नहीं होता; यथा—तत् + श्मशानम्=तच्श्मशानम्।

† पदके अन्तमे स्थित वर्गीय वर्णके स्थानमे अपने अपने वर्गका प्रथम वर्ण होता है–इस नियमके अनुसार 'आपद्'-शब्दके स्थानमे पहले 'आपत्' होकर पीछे सन्धि हुई।

‡ वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वर-य-व-र-परश्छकारं, न वा। (वर्गप्रथमेभ्यः पदान्तेभ्यः परः शकारः स्वर-य-व-र-परश्छकारमापद्यते, न वा।)

चं शे। (तकारः पदान्तः शे परे चम् आपद्यते; यथा—तच्श्लक्ष्णम्; तच्श्मशानम्। अछत्वपक्षे वचनमिदम्।)

सन्धि करो—अच् + शेषम्, पट् + श्यामाः, महत् + शकटम्, एतद् + शाकद्वीयम् ।

विश्लेष करो—तच्छरीरम्, बृहच्छयनम् ।

[च्, ज् + न]

५१ । पदके मध्यमे स्थित चकार वा जकारसे परे दन्त्य नकार रहनेसे, 'न' के स्थानमे 'ञ' होता है; यथा—

च् + न = च्ञ—याच् + ना = याच्ञा ।

ज् + न = ज्ञ—यज् + नः = यज्ञः ।

सन्धि करो—राज् + ना, जज् + नाते ।

विश्लेष करो—राज्ञी, जज्ञे ।

[त्, द् + च छ ज झ, ट ठ ड ढ]

५२ । च छ, ज झ, ट ठ, ड ढ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित त् वा द् के स्थानमे यथाक्रमसे च्, ज्, ट्, ड् होते हैं, अर्थात् च छ परे रहनेसे 'च्', ज झ परे रहनेसे 'ज्', ट ठ परे रहनेसे 'ट्', और ड ढ परे रहनेसे 'ड्' होता है;* यथा—

त् + च = च्च—महत् + चित्रम् = महच्चित्रम् ।

द् + छ = च्छ—शरद् + छटा = शरच्छटा ।

त् + ज = ज्ज—जगत् + जीवनम् = जगज्जीवनम् ।

त् + झ = ज्झ—बृहत् + झटिका = बृहज्झटिका ।

सन्धि करो—तत् + टीका, एतद् + ठक्कुरः, जगत् + ढक्का, उत् +

---

* पररूपं तकारो ल-चटवर्गेषु । (तकारः पदान्तो ल-चटवर्गेषु परतः पररूपमापद्यते ।)-५२ और ५३ सूत्र ।

डीयते, तत् + ढुण्ढनम्।

विश्लेष करो—उड्डीयमानम्, महच्छत्रम्, उच्चारणम्, तज्जपः, भगड्डमरुः, उद्भिन्नः।

शुद्ध करो—विपद्जालम्, बृहद्झङ्कारः, तद्ढका।

[त्, द् + ल]

५३। पदके अन्तमें स्थित तकार या दकारसे परे 'ल' रहनेसे, 'त्' या 'द्' स्थानमें 'ल्' होता है; यथा—

त् + ल = ल्ल—तत् + लवणम् = तल्लवणम्।

द् + ल = ल्ल— एतद् + लीला = एतल्लीला।

सन्धि करो—महत् + लावण्यम्, बृहत् + ललाटम्, तत् + लीलायितम्।

विश्लेष करो—तल्लयः, उल्लेखः, समिल्लता, जगल्लक्ष्मीः, एतल्लीलोद्यानम्।

[त्, द् + ह]

५४। पदके अन्तमें स्थित त् या दकारसे परे 'ह' रहनेसे, 'त्' या 'द्' के स्थानमें 'द्', और 'ह' के स्थानमें विकल्पसे 'ध' होता है;* यथा—

त् + ह = द्ध या द्ह—ईषत् + हसितम् = ईषद्धसितम्, ईषद्हसितम्।

द् + ह = द्ध या द्ह—तद् + हेयम् = तद्धेयम्, तद्हेयम्।

---

* वर्गप्रथमेभ्यो हकारः पूर्वचतुर्थं, न वा। (वर्गप्रथमेभ्यः पदान्तेभ्यः परो हकारः पूर्वचतुर्थमापद्यते, न वा; यथा-वाग्घीनः, वाग्हीनः।)

सन्धि करो—जगत् + हितम्, विपद् + हेतुः ।

विश्लेप करो—उद्धतः, उद्धरणम् ।

[न् + च छ]

५५ । च वा छ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित नकारके स्थानमे अनुस्वार और तालव्य श् होते हैं; 'श्' परवर्णमे युक्त होता है;* यथा—

न् + च = ंश्च—भास्वान् + चन्द्रः = भास्वांश्चन्द्रः ।

न् + छ = ंश्छ—गायन् + छात्रः = गायंश्छात्रः ।

सन्धि करो—गच्छन् + चकोरः, धावन् + छागः ।

विश्लेप करो—महांश्छेदः, हसंश्चलति ।

[न् + ट ठ]

५६ । ट वा ठ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे अनुस्वार और मूर्द्धन्य ष् होते हैं; 'ष्' परवर्णमे युक्त होता है;† यथा—

न् + ट = ंष्ट—उद्यन् + टङ्कारः = उद्यंष्टङ्कारः ।

न् + ठ = ंष्ठ—महान् + ठक्कुरः = महांष्ठक्कुरः ।

सन्धि करो—महान् + टीकाकारः, जानन् + ठक्कुरः ।

विश्लेप करो—चलंष्टिट्टिभः ।

---

* नोऽन्तश्च-छयोः शकारमनुस्वारपूर्वम् । (नकारः पदान्तः च-छयोः परयोः शकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम् ।)

† ट-ठयोः षकारम् । (नकारः पदान्तः ट-ठयोः परयोः षकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम् ।)

[न्+त थ]

५७। त या थ परे रहनेसे, पदके अन्तमें स्थित 'न्' के स्थानमें अनुस्वार और दन्त्य स् होते हैं; 'स्' परवर्णमें युक्त होता है;* यथा—

न्+त्=ंस्त—महान्+तरुः=महांस्तरुः।
न्+थ=ंस्थ—क्षिपन्+थुत्कारम्=क्षिपंस्थुत्कारम्।
सन्धि करो—शाम्यन्+तापः, उत्पतन्+तरङ्गः, महान्+थकारः।
विश्लेष करो—वर्द्धंस्त्वमवादीः, सिद्यंस्तटतरः, महांस्तडागः।

[न्+ज झ]

५८। ज या झ परे रहनेसे, पदके अन्तमें स्थित 'न्' के स्थानमें 'ञ्' होता है; 'ञ्' परवर्णमें युक्त होता है;† यथा—

न्+ज=ञ्ज—राजन्+जागृहि=राजञ्जागृहि।
न्+झ=ञ्झ—उद्यन्+झङ्कारः=उद्यञ्झङ्कारः।
सन्धि करो—गच्छन्+झटिति, विद्वान्+जयति।
विश्लेष करो—बुद्धिमाञ्जीवतु।

[न्+ड ढ]

५९। ड या ढ परे रहनेसे, पदके अन्तमें स्थित 'न्' के

---

* त-थयोः सकारम्। (नकारः पदान्तः त-थयोः परयोः सकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम्।)

† ज-झ-श-शकारेषु शकारम्। (नकारः पदान्तो ज-झ-श-शकारेषु परतो शकारमापद्यते।)

स्थानमे 'ण्' होता है;* यथा—

न् + ड = ण्ड—महान् + डमरुः = महाण्डमरुः ।

न् + ढ = ण्ढ–राजन् + ढौकसे = राजण्ढौकसे ।

सन्धि करो—त्वन् + डिण्डिमः, स्फुटन् + डिम्बः ।

विश्लेष करो—भवाण्डुण्ढति, महाण्ढोलः ।

[न् + ल]

६० । 'ल' परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे सानुनासिक 'ल्' (चन्द्रबिन्दुयुक्त ल्—ँल्) होता है;† यथा—

न् + ल = ँल्ल—महान् + लाभः = महाँल्लाभः ।

सन्धि करो—भवान् + लभते ।

विश्लेष करो—विद्वांल्लिखति ।

[न् + श]

६१ । पदके अन्तमे स्थित नकारसे परे तालव्य श रहनेसे, 'न्' के स्थानमे 'ञ्', और 'श' के स्थानमे 'छ' होता है;‡ यथा—

न् + श = ञ्छ—महान् + शब्दः = महाञ्छब्दः§ ।

---

* ड-ढ-ण-परस्तु णकारम् । (ड-ढ-णाः परेऽस्मादिति ड-ढ-ण-परः । ड-ढ-ण-परो नकारो णमापद्यते ।)

† ले लम् । (नकारः पदान्तो ले परे लमापद्यतेऽनुस्वारहीनम् । कार-हीनत्वादनुनासिकम् ।)

‡ शि ञ्छौ वा । (नकारः पदान्तः शि परे ञ्छौ वा प्राप्नोति, नकारं वा ।)

§ अथवा केवल 'न्' के स्थानमे 'ञ्' वा 'ञ्च्' होता है; यथा—महाञ्शब्दः, महाञ्छब्दः ।

सन्धि करो—गच्छन् + शशकः ।

विश्लेष करो—चलञ्छशी, निन्दञ्छठः ।

[म् + व्यञ्जनवर्ण

६२ । स्पर्शवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'म्' के स्थानमे अनुस्वार होता है, अथवा जिस वर्गका वर्ण परे रहता है, उसी वर्गका पञ्चम वर्ण होता है; और अन्तःस्थ वा ऊष्मवर्ण परे रहनेसे, केवल अनुस्वारही होता है; *यथा—

म् + क = ंक वा ङ्क—किम् + करोषि = किं करोषि, किङ्करोषि ।

म् + द = ंद, न्द-धनम् + ददाति = धनं ददाति, धनन्ददाति ।

म् + व = ंव—हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे ।

म् + ह = ंह—मधुरम् + हसति = मधुरं हसति ।

सन्धि करो—धर्मम् + चर, नदीम् + तर, गृहम् + गच्छ ।

विश्लेष करो—किं कर्त्तव्यम्, स्तनन्धयति, गुरुन्नमति ।

शुद्ध करो—वशम्वदः, किम्वदन्ती, सम्वादः, स्वयम्वरः, सम्वत्सरः, किम्वा, एवम्विधः ।

सन्धि करो—अविरलम् + रमते, ज्ञानम् + लभते ।

विश्लेष करो—सत्यं वदति, नौकायां शेते, दुःखं सहते ।

---

* मोऽनुस्वारं व्यञ्जने । (मकारः पुनरन्तो व्यञ्जने परेऽनुस्वारमापद्यते ।) वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा । (अन्तोऽनुस्वारो वर्गे परे तद्वर्गपञ्चमं वाऽऽपद्यते ।)

६३। धुट्-वर्ण *परे रहनेसे, पदके मध्यमे स्थित 'म्' और 'न्' के स्थानमे अनुस्वार होता है; यथा—

म्+स्य=ंस्य—रम्+स्यते=रंस्यते।

न्+श=ंश—दन्+शनम्=दंशनम्।

न्+ह=ंह—बृन्+हितम्=बृंहितम्।

सन्धि करो—अन्+शत, जिघान्+सति।

विश्लेष करो—शंसन्ति, स्रंसते, तृंहन्ति।

६४। जिस वर्गका वर्ण परे रहता है, पदके मध्यमे स्थित अनुस्वारके स्थानमे उस वर्गका पञ्चम वर्ण होता है; यथा—

ं+क=ङ्क—आशं+कते=आशङ्कते।

ं+छ=ञ्छ—वां+छति=वाञ्छति।

सन्धि करो—ं+टयति, उत्कं+ठते।

विश्लेष करो—क्षन्तव्यम्, हन्तव्यम्, भ्रान्तिः।

[ष्+त, थ]

६५। मूर्द्धन्य षकारसे परे 'त' वा 'थ' रहनेसे, 'त' के स्थानमे 'ट', और 'थ' के स्थानमे 'ठ' होता है; यथा—

ष्+त=ष्ट—उत्कृष्+तम्=उत्कृष्टम्।

ष्+थ=ष्ठ—षष्+थः=षष्ठः।

सन्धि करो—आकृष्+तम्।

विश्लेष करो—स्रष्टा, सृष्टिः।

---

* य र ल व, ङ ञ ण न म भिन्न व्यञ्जनवर्णको 'धुट्-वर्ण' कहते हैं।—धुड्व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनासिकम्।

(व्यञ्जन और स्वरमें)

[१ म वर्ण + स्वरवर्ण]

६६। स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमें स्थित वर्गके प्रथम वर्णके स्थानमें तृतीय वर्ण होता है; * यथा—

क् + ई = गी—वाक् + ईशः = वागीशः।

च् + अ = ज—अच् + अन्तः = अजन्तः।

ट् + आ = डा—षट् + आननः = षडाननः।

त् + ई = दी—जगत् + ईश्वरः = जगदीश्वरः।

प् + अ = ब—ईप् + अन्तः = ईबन्तः।

सन्धि करो—भवत् + उक्तम्, त्वच् + इन्द्रियम्, विराट् + असौ।

विश्लेष करो—जगदिन्द्रः, प्रागेव, परिव्राडुवाच।

[न् + स्वरवर्ण]

६७। स्वरवर्ण परे रहनेसे, ह्रस्व स्वरके परस्थित पदान्त नकारका द्वित्व होता है; † यथा—

न् + आ = न्ना—गायन् + आयाति = गायन्नायाति। ‡

---

* वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वर-घोषवत्सु तृतीयान्।

† 'ङ्' और 'ण' का भी द्वित्व होता है; यथा—प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः। समासमें नहीं होता; यथा—तिङ् + अन्तः = तिङन्तः, सन् + अन्तः = सनन्तः।

‡ ङ-ण-ना ह्रस्वोपधाः स्वरे द्विः। (ङ-ण-नाः पदान्ता ह्रस्वोपधाः स्वरे परे द्विर्भवन्ति।—अन्त्यात् पूर्व उपधा।)

सन्धि करो—चिन्तयन् + आह, स्मरन् + उवाच, गच्छन् + एव ।

विश्लेष करो—हसन्नागतः, दीव्यन्नमरः ।

शुद्ध करो--महान्नानन्दः, भगवान्नब्रवीत् ।

६८ । स्वरवर्णके परवर्त्ती 'छ' के स्थानमे 'च्छ' होता है;* यथा—

इ + छ = इच्छ--परि + छदः = परिच्छदः ।

सन्धि करो—तरु + छाया, आ + छन्नम् ।

विश्लेष करो—विच्छेदः, आच्छाद्यम् ।

* * * *

६९ । क ख, त थ, प फ और स परे रहनेसे, 'द्' के स्थानमे,—और व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'ध्' के स्थानमे 'त्' होता है; यथा—द् = त्—तद् + कालः = तत्कालः, तद् + सकाशम् = तत्सकाशम् ।

सन्धि करो—विपद् + तारणम् , क्षुध् + पिपासा ।

विश्लेष करो—तत्खननम् , विपत्पातः ।

७० । 'उत्' उपसर्गके परस्थित स्था और स्तम्भ् धातुके सकारका लोप होता है; यथा—उत् + स्थानम् = उत्थानम् ; उत् + स्तम्भः = उत्तम्भः ।

७१ । 'कृ' धातुके पद परे रहनेसे, सम्—समूस् , और परि—परिष् होता है; यथा—सम् + कृतम् = संस्कृतम् ; परि + कारः = परिष्कारः ।

७२ । व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'वस्'-भागान्त शब्दके 'स्' के स्थानमे

---

* द्विर्भावं स्वरपरश्छकारः । (स्वरात् परश्छकारो द्विर्भावमापद्यते ।)

'त्',* और 'दिव्' के स्थानमे 'द्यु' होता है, यथा—विद्वस्+जन=विद्वज्जन, दिव्+लोक =द्युलोक ।

विसर्ग-सन्धि ।

विसर्ग (:) दो प्रकार—(१) 'र्' जात विसर्ग और (२) 'स्'-जात विसर्ग ।

७३ । विराममे अर्थात् कोई वर्ण परे न रहनेसे, अथवा व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, रेफ (र्) और स्' के स्थानमे विसर्ग होता है† । 'र्' के स्थानमे जो विसर्ग होता है, उसे 'र्'-जात विसर्ग,‡ और स्' के स्थानमे जो विसर्ग होता है, उसे 'स्'-जात विसर्ग कहते हैं, यथा—

('र्' जात) दुर्=दुः, निर्=निः, अन्तर्=अन्तः, प्रातर्=प्रातः, स्वर्=स्वः, गीर्=गीः, धूर्=धूः, पुनर्=पुनः ।

('स्'-जात) रामस्=रामः, हविस्=हविः, पयस्=पयः, मुनिस्=मुनिः, उच्चैस्=उच्चैः, नीचैस्=नीचैः ।

---

* 'त्' पदान्तवत् होकर ५२ सूत्रानुसार सन्धिकार्य्य प्राप्त होता है ।

† 'अहन्' शब्दके 'न्' के स्थानमे पहले 'र्', पीछे विसर्ग होता है, यथा—अहन्=अहः ; अहन्+सु ('सुप्' विभक्ति)=अहःसु ।

‡ भ्रातृ-पितृ प्रभृति ऋकारान्त शब्दके सम्बोधनके एकवचनके पदमे स्थित विसर्गभी 'र्'-जात ।

(विसर्ग और व्यञ्जनमे)

[: + क ख, प फ]

७४ । समासमे क ख, प फ परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे दन्त्य 'स्' होता है; 'स्' परवर्णमे युक्त होता है; यथा—

: + क = स्क—भाः + करः = भास्करः ।

: + प = स्प—भाः + पतिः = भास्पतिः ।

सन्धि करो—वाचः + पतिः, दिवः + पतिः ।

[: + च छ]

७५ । च छ परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे तालव्य 'श्' होता है; 'श्' परवर्णमे युक्त होता है;* यथा—

: + च = श्च—पूर्णः + चन्द्रः = पूर्णश्चन्द्रः ।

: + छ = श्छ—पीवरः + छागः = पीवरश्छागः ।

सन्धि करो—निः + चितः, कृष्णः + चिन्त्यः, तरोः + छाया, दुः + छेद्यः ।

विश्लेष करो—हरेश्चरणौ, वायुश्चलति, रवेश्छविः, मुनेश्छात्रः ।

[: + ट ठ]

७६ । ट ठ परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे मूर्द्धन्य 'ष्' होता है; 'ष्' परवर्णमे युक्त होता है;† यथा—

: + ट = ष्ट—धनुः + टङ्कारः = धनुष्टङ्कारः ।

---

* विसर्जनीयश्चे छे वा शम् । (विसर्जनीयश्चे वा छे वा परे शम् आपद्यते ।)

† टे ठे वा षम् । (विसर्जनीयष्टे वा ठे वा परे षम् आपद्यते ।)

ः+ठ=ष्ठ—सुन्दरः+ठक्कुरः=सुन्दरष्ठक्कुरः। (ठक्कुरः—देवप्रतिमा)।

सन्धि करो—भीतः+टलति, उड्डीनः+टिट्टिभः, कः+टीकते।

विश्लेष करो—कष्टकारः, स्थिरष्ठक्कुर।

[ः+त थ]

७७। त थ परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे दन्त्य 'स्' होता है; 'स्' परवर्णमे युक्त होता है; *यथा—

ः+त=स्त—ततः+ततः=ततस्ततः।

ः+थ=स्थ—स्थितः+थुत्कारः=स्थितस्थुत्कारः।

सन्धि करो—निः+तारः, सरः+तीरम्, उन्नतः+तरुः।

विश्लेष करो—विशेषस्तु, मनस्तापम्, भुवस्तलम्।

[ः+श ष स]

७८। तालव्य श परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे विकल्पसे तालव्य श् होता है; मूर्द्धन्य ष परे रहनेसे, विकल्पसे मूर्द्धन्य ष् होता है; और दन्त्य स परे रहनेसे, विकल्पसे दन्त्य स् होता है;† यथा—

ः+श=श्श—शिशुः+शेते=शिशुश्शेते, शिशुः शेते।

ः+ष=ष्ष—मत्तः+षट्पदः=मत्तष्षट्पदः।

ः+स=स्स—मनः+सुखम्=मनस्सुखम्।

---

* ते थे वा सम्। (विसर्जनीयस्ते वा थे वा परे सम् आपद्यते।)

† शे षे से वा पररूपम्। (विसर्जनीयः शे वा षे वा से वा परे पररूपमापद्यते, न वा।)

सन्धि करो—अग्नेः + शिखा, साधोः + सङ्गः, मधुरः + षड्जः।

विश्लेष करो—गौश्शब्दायते, प्रथमस्सर्गः, देवाप्सर्।

(क) वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण-युक्त श ष स परे रहनेसे, विसर्गका विकल्पसे लोप होता है; यथा—निः + स्पन्दः = निस्पन्दः, निस्स्पन्दः, निःस्पन्दः; मनः + स्थः = मनस्थः, मनस्स्थ, मनःस्थः; दुः + स्थ = दुस्थः, दुस्स्थ, दुःस्थः; द्वाः + स्थ = द्वास्थः, द्वास्स्थः, द्वाःस्थ।

[अः + ३ य, ४ र्थ, ५ म वर्ण, य र ल व ह]

७६। अकारके परस्थित विसर्गसे परे घोषवद्वर्ण (९ सू०) रहनेसे, अकार और विसर्ग—दोनो मिलके ओकार होता है; ओकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है;* यथा—

अः + ग = ओ + ग—नरः + गच्छति = नरो गच्छति।

सन्धि करो—अश्वः + धावति, दृढः + बन्धः, मनः + हरः, नूतनः + घटः, शिवः + वन्द्यः, निर्वाणः + दीपः।

विश्लेष करो—शीतो वातः, मनोगतम्, मधुरो झङ्कारः, पयोविन्दुः, सद्योजातः, शान्तो रोषः।

[सः, एषः + व्यञ्जनवर्ण]

८०। व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'सः' और 'एषः'—इन दोनो पदोंके अन्तमे स्थित विसर्गका लोप होता है;† यथा—

---

* [उम्] अ-घोषवतोश्च। (अकार-घोषवतोर्मध्ये विसर्जनीय उम् आपद्यते।)

† एष-स-परो व्यञ्जने लोप्यः। (एष-साभ्यां परो विसर्जनीयः लोप्यो भवति, व्यञ्जने परे।)

सः + गच्छति = स गच्छति ; एषः + बन्धुः = एष बन्धुः ।

विश्लेष करो—स याति, एष बाहुः, एष हसति ।

शुद्ध करो—एषो महाशयः, सो मे पिता, एषो शेते ।

[आः + ३ य, ४ र्थ, ५ म वर्ण, य र ल व ह]

८१। घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, आकारके परस्थित विसर्गका लोप होता है ; *यथा—

आः + ग = आ ग—दिवसाः + गताः = दिवसा गताः ।

सन्धि करो—मधुराः + अङ्गुराः, भीताः + नराः, छात्राः + पतन्ते ।

विश्लेष करो—मानवा लभन्ते, प्रदीपा निर्वान्ति ।

शुद्ध करो—जाता पुत्राः, नरा क्षन्तव्याः ।

(क) घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, 'भोः'-शब्दके अन्तस्थित विसर्गका लोप होता है ; यथा—

भोः + द = भो द—भोः + देवराज = भो देवराज ।

सन्धि करो—भोः + भोः । विश्लेष करो—भो राजन् ।

[इः ईः उः ऊः ऋः एः ऐः ओः औः + ३ य, ४ र्थ,

५ म वर्ण, य र ल व ह]

८२। घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, अ आ भिन्न स्वरवर्णके परस्थित विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है; †'र्' परवर्णके मस्त-

---

* घोषवति लोपम् । (आकार-भोशब्दाभ्यां परो विसर्जनीयो लोपमापद्यते, घोषवति परे ।)

† [नामिपरो] घोषवत्-स्वर-परो [रम्] । (नामिनः परो विसर्ज-

कमे जाता है ; *यथा—

इः + भ = इर्भ—निः + भयः = निर्भयः ।

उः + नी = उर्नी—दुः + नीतिः = दुर्नीतिः ।

सन्धि करो—हरेः + दया, गुरुः + जयति, मुहुः + मुहुः, गोः + दुग्धम्, हविः + घ्राणम्, मातृः + वदति ।

विश्लेप करो—गौर्याति, तयोर्वहिः, रवेर्दर्शनम्, वहिर्योगः ।

शुद्ध करो—रामर्गच्छति, शिशोर्क्रीडा, गुरुर्पातु ।

['र्'-जात : + ३ य, ४ र्थं, ५ म वर्ण, य र ल व ह]

८३ । घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, अकारके परस्थित 'र्'-जात विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है ; 'र्' परवर्णके मस्तकमे

नीयो घोषवत्-स्वर-परो रम् आपद्यते ।—स्वरोऽवर्णवर्ज नामी—अवर्णवर्जस्वरो 'नामि'-संज्ञो भवति ।)

* द्वित्वविधि—(ॅ) रेफयुक्त व्यञ्जनवर्णका विकल्पसे द्वित्व होता है। किन्तु द्वित्व होनेसे आदिमे स्थित वर्गके द्वितीयवर्णके स्थानमे प्रथमवर्ण, और चतुर्थवर्णके स्थानमे तृतीयवर्ण होता है ; यथा—मूर्च्छा, मूर्छा ; मूर्द्धा, मूर्धा ; कर्म्म, कर्म । ऊष्मवर्णका द्वित्व नहीं होता ; यथा—दर्शनम्, मर्षणम्, अर्हणा ।

जिस वर्णके आदिमे ह्रस्वस्वर, और अन्तमे व्यञ्जनवर्ण रहता है, उसकाभी विकल्पसे द्वित्व होता है ; यथा—य् + अ + त् + र = यत्त्र, यत्र ; प् + उ + त् + र = पुत्त्र, पुत्र इत्यादि । अर्थविशेषमे पदकाभी द्वित्व होता है ; यथा—एह्येहि, गच्छ गच्छ, भो भोः पान्थाः इत्यादि ।

जाता है; *यथा—

अः + ग = र्ग—अन्तः + गमनम् = अन्तर्गमनम्।

सन्धि करो—जामातः + यद, दुहितः + याहि, मात. + देहि, अ-न्तः + दाहः, स्वः + गतः, अन्त. + धत्ते।

विश्लेष करो—स्वर्नदी, भ्रातर्द्यस्व।

शुद्ध करो—प्रातर्कालः, अन्तर्पुरम्।

८४। 'र' परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे जो 'र्' होता है,† उसका लोप होता है, और पूर्वस्वर दीर्घ होता है; ‡यथा—

अः + रा = आरा—स्वः + राज्यम् = स्वाराज्यम्।

सन्धि करो—भ्रातः + रघुनाथ, निः + रोगः, पितः + रक्ष मातुः + रोदनम्।

विश्लेष करो—नीरसः, पितृ रक्षणम्।

शुद्ध करो—बहीरंराः, नीलज्जः।

८५। 'अहन्' शब्दके विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है; किन्तु रात्र, रूप और रथन्तर शब्द परे रहनेसे, अथवा 'क' और विभक्ति परे रहनेसे, 'र्' नहीं होता; यथा—अहः + पतिः = अहर्पतिः§। अहः + रूपम् =

* 'र'-प्रकृतिरनामिपरो [घोषवत्-स्वर-परो रम्]। ('र'-प्रकृतिर्विसर्जनीयोऽनामिनः परो घोषवत्-स्वर-परो रम् आपद्यते।)

† ८२ और ८३ सूत्रोंके अनुसार जो 'र्' होता है।

‡ रो रे लोपम्—स्वरश्च पूर्वो दीर्घः। (रो रे परे लोपमापद्यते—स्वरश्च पूर्वो दीर्घो भवति।)

§ अहस्पतिः, अहःपति.—ऐसेभी होते हैं।

अहोरूपम् ; ('क' परे) अहः + करः = अहस्करः; (विभक्ति परे) अहः + भिः = अहोभिः ।

सन्धि करो—अहः + रथन्तरम्, अहः + भ्यः ।

विश्लेप करो—अहोरात्रम् ।

शुद्ध करो—अहोगणः, अहर्भ्याम् ।

* * * *

८६ । समासमे—कृ और कम् धातु-निष्पन्न पद (कार, कर, काम, कान्त), और कुम्भ तथा पात्र शब्द परे रहनेसे, अव्यय भिन्न अकारके परस्थित विसर्गके स्थानमे दन्त्य स् होता है, यथा—अयः + कारः = अयस्कारः, श्रेयः + करः = श्रेयस्करः, मनः + कामः = मनस्कामः, अयः + कान्तः = अयस्कान्तः; पयः + कुम्भः = पयस्कुम्भः; पयः + पात्रम् = पयस्पात्रम् ।

८७ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'नमः' और 'पुरः' शब्दके विसर्गके स्थानमे दन्त्य स् होता है ; यथा —नमः + कारः = नमस्कारः, पुरः + कारः = पुरस्कारः, पुरः + करोति = पुरस्करोति ।

८८ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'तिरः'-शब्दके विसर्गके स्थानमे विकल्पसे दन्त्य स् होता है ; यथा—तिरः + करोति = तिरस्करोति, तिरः करोति ।

८९ । पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे दन्त्य स् होता है ; यथा—अयस्पाशम्, यशस्कल्पम्, यशस्कम्, यशस्काम्यति । किन्तु अव्ययके विसर्गके स्थानमे 'स्' नहीं होता; यथा—प्रातःकल्पम् ।

१० । पाशादि परे रहनेसे, इवर्ण और उवर्णके परस्थित विसर्गके स्थानमें मूर्द्धन्य ष् होता है; यथा सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्काम्यति ।

११ । क ख, प फ परे रहनेसे, इकार और उकारोपध अव्यय* श-ब्दके विसर्गके स्थानमें मूर्द्धन्य ष् होता है; यथा—निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्; आविः + कृतम् = आविष्कृतम्; बहिः + करणम् = बहिष्करणम्; दुः + कृतम् = दुष्कृतम् ।

१२ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'इस्' और 'उस्'-भागान्त शब्दके विसर्गके स्थानमें विकल्पसे मूर्द्धन्य ष् होता है, यथा—सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति; धनुष्करोति, धनुः करोति ।

१३ । समासमें—क ख, प फ परे रहनेसे, 'इस्' और 'उस्'-भागान्त शब्दके विसर्गके स्थानमें नित्य मूर्द्धन्य ष् होता है; यथा—हविः + कुण्डम् = हविष्कुण्डम्; धनुः + खण्डम् = धनुष्खण्डम्; धनुष्पाणिः ।

(विसर्ग और स्वरमें)

[अः + अ]

१४ । अकार परे रहनेसे, अकारके परस्थित विसर्ग पूर्ववर्त्ती अकारके साथ मिलके 'ओ' होता है, और परवर्त्ती अकारका लोप होता है; लुप्त अकारका चिह्न (ऽ) रहता है;† यथा—

अः + ओ = ओऽ-नरः + अयम् = नरोऽयम् ।

सन्धि करो—सः + अधुना, देवः + अयम्, वेदः + अधीतः ।

---

* इकार और उकारोपध अव्यय—निः, आविः, बहिः, दुः, प्रादुः ।

† उमकारयोर्मध्ये । (द्वयोरकारयोर्मध्ये विसर्जनीय उम् आपद्यते ।)

विश्लेष करो—तीक्ष्णोऽङ्कुशः, ज्वलितोऽङ्गारः ।

[अः + 'अ'-भिन्न स्वरवर्ण]

९५ । अकार भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, अकारके परस्थित विसर्गका लोप होता है; लोप होनेसे फिर सन्धि नहीं होती;* यथा—

अः + आ = अ आ—कुतः + आगतः = कुत आगतः ।

सन्धि करो—नरः + इव, राज्ञः + औदार्य्यम् ।

[आः + स्वरवर्ण]

९६ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, आकारके परस्थित विसर्गका लोप होता है; लोप होनेसे फिर सन्धि नहीं होती;† यथा—

आः + अ = आ अ—देवाः + अत्र = देवा अत्र ।

सन्धि करो—छात्राः + आगताः, आगताः + ऋषयः ।

विश्लेष करो—अश्वा उद्धताः, गजा इमे, तारा उदिताः ।

शुद्ध करो—मासातीताः, वालकेमे ।

[इः ईः उः ऊः ऋः एः ऐः ओः औः + स्वरवर्ण]

९७ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, अ आ भिन्न स्वरवर्णके पर-

---

*'अ'-परो लोप्योऽन्यस्वरे । (अकारात् परो विसर्जनीयो लोप्यो भवति, उक्तादन्यस्वरे ।) न विसर्जनीयलोपे पुनः सन्धिः ।

† आ-भोभ्यामेवमेव स्वरे । (आकार-भो-शब्दाभ्यां परो विसर्जनीय एवमेव भवति, स्वरे परे ।)

स्थित विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है; *यथा—

इः + अ = इर् + अ—हरिः + अयम् = हरिरयम्।

सन्धि करो—मतिः + इयम्, धनुः + आनीयताम्, सुधीः + एषः।

विश्लेष करो—हविरिदम्, लक्ष्मीरेषा।

शुद्ध करो—धी एषा।

['र्'-जात ः + स्वरवर्ण]

६८। स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'र्' जात विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है;† यथा

ः + आ = रा—स्वः + आलयः = स्वरालयः।

सन्धि करो—पुनः + अपि, अन्तः + अङ्गम्, प्रातः + एव।

विश्लेष करो—निरन्तरम्, दुराशयः, पुनरेति।

शुद्ध करो—भ्रातो याहि, पितोऽनुजानीहि।

* * * *

६६। निपातन सन्धि।—मनीषा-प्रभृति शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं;‡ यथा—

मनः + ईषा = मनीषा; कुल + अटा = कुलटा; सीम + अन्तः = सीमन्तः (केशवीथी); सार + अङ्गः = सारङ्गः; पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः; गो + यूतिः = गव्यूतिः (दो कोस); आ + चर्य्यम् =

---

* नामिपरो घोषवत्-स्वर-परो रम्।

† 'र'-प्रकृतिर्घोषवत्-स्वर-परो रम्।

‡ जो शब्द प्रयोगमें आते हैं, अथ च उनके साधनके सूत्र नहीं हैं, उन्हें 'निपातन-सिद्ध' कहते हैं।

आश्चर्य्यम् ; हरि + चन्द्रः = हरिश्चन्द्रः ; आ + पदम् = आस्पदम् ; गो + पदम् = गोष्पदम् ; वन + पतिः = वनस्पतिः ; बृहत् + पतिः = बृहस्पतिः ; तत् + करः = तस्करः ; प्राय + चित्तम् = प्रायश्चित्तम् ; अन्य + अन्यम् = अन्योन्यम् ; पर + परम् = परस्परम् ; पर + शतम् = परःशतम् ; पर + सहस्रम् = परःसहस्रम्* ; भुवः + लोकः = भुवर्लोकः ; पश्चात् + अर्द्धम् = पश्चार्द्धम् ; षट् + दश = षोडश ; पर + परा = परम्परा ; मध्य + दिनम् = मध्यन्दिनम् ; रात्रि + दिवम् = रात्रिन्दिवम् ; धुर + धरः = धुरन्धरः इत्यादि ।

सन्धि-निर्घण्ट ।

अ, आ + अ, आ = आ (१३ सूत्र) ।

अ, आ + इ, ई = ए (१४ सू) ।

अ, आ + उ, ऊ = ओ (१५ सू) ।

अ, आ + ऋ = अर् (१६ सू) ।

अ, आ + ए, ऐ = ऐ (१७ सू) ।

अ, आ + ओ, औ = औ (१८ सू) ।

इ, ई + इ, ई = ई (१९ सू) ।

इ, ई + इ ई भिन्न स्वरवर्ण = इ ई के स्थानमे य् (२० सू) ।

---

* 'आश्चर्य्य'-प्रभृति पदोंमे सुट् (स्) आगम होता है ।

उ, ऊ+उ, ऊ=ऊ (२१ सू)।

उ, ऊ+उ ऊ भिन्न स्वरवर्ण=उ ऊ के स्थानमे व् (२२ सू)।

ऋ+ऋ=ॠ (२३ सू)।

ऋ+ऋ भिन्न स्वरवर्ण=ऋ के स्थानमे र् (२४ सू)।

ए+स्वरवर्ण=ए के स्थानमे अय् (२५ सू)।

ऐ+स्वरवर्ण=ऐ के स्थानमे आय् (२६ सू)।

ओ+स्वरवर्ण=ओ के स्थानमे अव् (२७ सू)।

औ+स्वरवर्ण=औ के स्थानमे आव् (२८ सू)।

[ए ओ पदान्त+अ=अकारका लोप, लुप्तअकारका चिह्न (२९सू)।]

ए पदान्त+'अ' भिन्न स्वरवर्ण='अय्'के यकारका विकल्पसे लोप (३० सू)।

ऐ पदान्त+स्वरवर्ण='आय्'के यकारका विकल्पसे लोप (३२ सू)।

ओ पदान्त+'अ'- भिन्न स्वरवर्ण='अव्'के वकारका विकल्पसे लोप (३१ सू)।

औ पदान्त+स्वरवर्ण='आव्'के वकारका विकल्पसे लोप (३३सू)।

स्वरवर्ण+छ=छ के स्थानमे च्छ (६८ सू)।

क्+स्वरवर्ण=क् के स्थानमे ग् (६६ सू)।

क्+३य, ४र्थ वर्ण, य र ल व ह=क् के स्थानमे ग् (४८ सू)।

क्+५म वर्ण=क् के स्थानमे ग् वा ङ् (४९ सू)।

क्+श=क्श वा क्छ (५० सू)।

च्, ज्+न=न के स्थानमे ञ (५१ सू)।

ट्+स्वरवर्ण=ट् के स्थानमे ड् (६६ सू)।
ट्+३य, ४र्थ वर्ण, य र ल व ह=ट् के स्थानमे ड् (४८ सू)।
ट्+५म वर्ण=ट् के स्थानमे ड् वा ण् (४९ सू)।

त्+स्वरवर्ण=त् के स्थानमे द् (६६ सू)।
त्+ग, घ=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+च, छ=त् के स्थानमे च् (५२ सू)।
त्+ज, झ=त् के स्थानमे ज् (५२ सू)।
त्+ट, ठ=त् के स्थानमे ट् (५२ सू)।
त्+ड, ढ=त् के स्थानमे ड् (५२ सू)।
त्+द, ध=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+न=त् के स्थानमे द् वा न् (४९ सू)।
त्+ब, भ=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+म=त् के स्थानमे द् वा न् (४९ सू)।
त्+य, र=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+ल=त् के स्थानमे ल् (५३ सू)।
त्+व=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+श=च्श वा च्छ (५० सू)।

त्+ह=द्ह वा द्ध (५४ सू)।

न् + स्वरवर्ण = नकारका द्वित्व (६७ सू)।

न्+च=ंश्च (५५ सू)।

न्+छ=ंश्छ (५५ सू)।

न्+ज=ञ्ज (५८ सू)।

न्+झ=ञ्झ (५८ सू)।

न्+ट=ंष्ट (५६ सू)।

न्+ठ=ंष्ठ (५६ सू)।

न्+ड=ण्ड (५९ सू)।

न्+ढ=ण्ढ (५९ सू)।

न्+त=ंस्त (५७ सू)।

न्+थ=ंस्थ (५७ सू)।

न+ल=ँल्ल (६० सू)।

न्+श=ञ्छ (६१ सू)।

प्+स्वरवर्ण = प् के स्थानमे ब् (६६ सू)।

प्+३य, ४र्थ वर्ण, य र ल व ह = प् के स्थानमे ब् (४८ सू)

प्+५म वर्ण = प् के स्थानमे ब् वा म् (४९ सू)।

म्+स्पर्शवर्ण = म् के स्थानमे अनुस्वार वा ५म वर्ण (६२ सू)।

म्+अन्तःस्थ, ऊष्मवर्ण = म् के स्थानमे अनुस्वार (६३ सू)।

ड्+त=ट (६९ सू)।

ड्+थ=ठ (६९ सू)।

42298

:+क=स्क (७४ सू)।

:+ख=स्ख (७४ सू)।

B-157
212

:+च=श्च (७५ सू)।

:+छ=श्छ (७५ सू)।

:+ट=ष्ट (७६ सू)।

:+ठ=ष्ठ (७६ सू)।

:+त=स्त (७७ सू)।

:+थ=स्थ (७७ सू)।

अः+अ=ओऽ (९४ सू)।

अः+अकार-भिन्न स्वरवर्ण=विसर्गका लोप (९५ सू)।

अः+३य, ४र्थ, ५म वर्ण, य र ल व ह=अः के स्थानमे ओ (७९ सू)।

सः, एषः+अ=सोऽ, एषोऽ (९४ सू)।

सः, एषः+अकार-भिन्न स्वरवर्ण=विसर्गका लोप (९५ सू)।

सः, एषः+व्यञ्जनवर्ण=विसर्गका लोप (८० सू)।

आः+स्वरवर्ण=विसर्गका लोप (९६ सू)।

आः+३य, ४र्थ, ५म वर्ण, य र ल व ह=विसर्गका लोप (८१ सू)।

इः, ईः, उः, ऊः, ऋः, एः, ऐः, ओः, औः+स्वरवर्ण=विसर्गके

स्थानमे र् (६७ सू) ।

इः, ईः, उः, ऊः, ऋः, एः, ऐः, ओः, औः + ३य, ४र्थ, ५म वर्ण, य ल व ह = विसर्गके स्थानमे र् (८२ सू) ।

इः, ईः, उः, ऊः, ऋः, एः, ऐः, ओः, औः + र = विसर्गके स्थानमे र, रकारका लोप और पूर्वस्वर दीर्घ (८२, ८४ सू) ।

'र' जात विसर्ग + स्वरवर्ण = विसर्गके स्थानमे र् (६८ सू) ।

" : + ३य, ४र्थ, ५म वर्ण, य ल व ह = विसर्गके स्थानमे र् (८३ सू) ।

" : + च = श्च (७५ सू) ।

" : + छ = श्छ (७५ सू) ।

" : + ट = ष्ट (७६ सू) ।

" : + ठ = ष्ठ (७६ सू) ।

" : + त = स्त (७७ सू) ।

" : + थ = स्थ (७७ सू) ।

" : + र = विसर्गके स्थानमे र्, रकारका लोप और पूर्वस्वर दीर्घ (८३, ८४ सू) ।

सन्धि-प्रश्नमाला ।

क । (१) अकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (२) अकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (३) अकारसे परे एकार रहनेसे क्या होता है ? (४) अकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ? (५) इकारसे

परे इकार रहनेसे क्या होता है ? (६) उकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (७) उकारसे परे ऋकार रहनेसे क्या होता है ? (८) ऋकारसे परे ऋकार रहनेसे क्या होता है ? (९) ऋकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ? (१०) एकारसे परे एकार रहनेसे क्या होता है ? (११) एकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (१२) ऐकारसे परे ऐकार रहनेसे क्या होता है ? (१३) ऐकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (१४) ओकारसे परे ओकार रहनेसे क्या होता है ? (१५) औकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (१६) औकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ?

ख । सन्धि करो—विद्या + एव, ते + आहुः, वन्धु + आदरः, सुन्दर + उद्यानम्, मुनि + ऋषी, कौ + एतौ, सर्व + उपरि, लो + इत्रम्, एहि + एहि, सा + इयम्, मुनि + ईश्वरः, गिरि + अग्रे, सा + एव, पितृ + उक्तिः, मातृ + आज्ञा, नौ + उपरि, चारु + अङ्गम्, वहु + आरम्भः ।

ग । (१) 'क्'से परे 'ग' रहनेसे क्या होता है? (२) 'क्'से परे 'म' रहनेसे क्या होता है ? (३) 'त्'से परे 'न' रहनेसे क्या होता है ? (४) 'त्'से परे 'च' रहनेसे क्या होता है ? (५) 'त्'से परे 'श' रहनेसे क्या होता है ? (६) 'त्'से परे 'ल' रहनेसे क्या होता है ? (७) 'त्'से परे 'ह' रहनेसे क्या होता है ? (८) 'न्'से परे 'त' रहनेसे क्या होता है ? (९) 'न्'से परे 'ल' रहनेसे क्या होता है ? (१०) विसर्गसे (ः) परे 'च' रहनेसे क्या होता है ? (११) 'अः'से परे 'अ' रहनेसे क्या होता है ? (१२) 'इः'से परे 'र' रहनेसे क्या होता है ?

घ । सन्धि करो—धिक् + ऋणकारिणम्, प्राक् + घनोदयः, सः + अयम्, महान् + अश्वः, तत् + एव, सः + गतिः, पुनः + रमते, गृह +

छिद्रम्, रिपुः + राजते, तद् + जातिः, भास्वान् + तपति, मुनिः + ऋषिः, तत् + याति, महान् + शङ्करगुरुः, सः + मनः, विलसन् + उपैति, तद् + ज्ञानम् ।

९९ । सन्धि विच्छेद करो—चन्द्रार्कौ, उच्छ्वसितम्, क्षित्यम्मरुद्व्योमानि, सर्व एव, तज्जीवनम्, तांस्तान्, तच्छमनम्, सामर्ग्यजूंषि, गा रक्ष, नम्मिस्तुष्टे, विधैव, वाङ्मनसे, अविघ्नघन., यन्मूर्द्धि, पायादपायाच्छिवः ।

णत्व-विधान ।

१०० । ऋ ॠ र् ष्—इन चार वर्णोंके परस्थित दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है ; यथा—

ऋ + न = ऋण—तृ + नम् = तृणम् ।

ॠ + न = ॠण—पितॄ + नाम् = पितॄणाम् ।

र् + न = र्ण—पूर् + नम् = पूर्णम् ।

ष + न = ष्ण—कृष् + नः = कृष्णः ।

(क) स्वरवर्ण, कवर्ग, पवर्ग, य व ह और अनुस्वारका व्यवधान* रहनेसेभी दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है† ; यथा—

---

* पहले ऋ ॠ र् या ष्, पीछे 'न', और इनके बीचमें स्वरवर्ण-प्रभृति रहनेको 'व्यवधान' कहते हैं ।

† इनको छोड़ अन्य वर्णका व्यवधान रहनेसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा-किर् + (ई + ट + ए) + न = किरीटेन ; आर्त्तेन, विरलेन, स्पर्शेन ।

मूर् + (ख् + ए) + न = मूर्खेण।

दर् + (प् + ए) + न = दर्पेण।

र् + (अ + य् + ए) + न = रयेण।

गर् + (व् + ए) + न = गर्वेण।

बृ + (ं + ह् + अ) + नम् = बृंहणम्।

(ख) पदके अन्तमे स्थित (व्यञ्जनान्त) 'न्' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—नर् + (आ) + न् = नरान्; पितृ + न् = पितॄन्; वृक्ष् + (आ) + न् = वृक्षान्*।

(ग) त थ द ध प और भ-युक्त दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—

कृ + (न्त) + नम् = कृन्तनम्। तृ + (प्नो) + ति = तृप्नोति।

ग्र + (न्थ) + नम् = ग्रन्थनम्। क्षु + (भ्ना) + ति = क्षुभ्नाति।

क्र + (न्द) + नम् = क्रन्दनम्। र + (न्ध) + नम् = रन्धनम्।

(घ) एक पदमे ऋ ॠ र् ष्, और अन्य पदमे 'न' रहनेसे, मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—नृ + यानम् = नृयानम्; त्रि + नेत्रः = त्रिनेत्रः; सर्व + नाम = सर्वनाम; मुद्रा + अङ्कनम् + मुद्राङ्कनम्; नर + नाथः = नरनाथः; चारु + नेत्रा = चारुनेत्रा; भृङ्ग + नादः = भृङ्गनादः†।

(ङ) किन्तु परपदमे यदि समासके पश्चात् विभक्तिके स्थानमे जात

---

* जिनके उत्तर 'मात्र' और 'मयट्' प्रत्यय होते हैं, वे पदमे गण्य, इसलिये 'सुहृन्मात्र', 'मृन्मय' इत्यादिस्थलोंमे मूर्द्धन्य 'ण्' नहीं होगा।

† रपूवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वर-ह-य-व-कवर्ग-पवर्गान्तरोऽपि [समानपदे]। (रेफ-षकार-ऋवर्णेभ्यः परोऽनन्त्यो नकारो णमापद्यते, स्वर-ह-य-व-कवर्ग-पवर्गैर्व्यवहितोऽपि।)

'न', अथवा विभक्तियुक्त या 'ईप्' प्रत्ययमें मिलित नकारान्त शब्दका 'न' रहे, तो विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—(विभक्तिके स्थानमें आत 'न') प्र + भाव + (टा = इन) = प्रभावेण, प्रभावेन ; (विभक्तियुक्त 'न') हरि + भाविन्* + (टा = आ) = हरिभाविणा, हरिभाविना ; ('ईप्'-प्रत्ययमिलित 'न') हरि + भाविन् + ई = हरिभाविणी, हरिभाविनी† ।

(ख) परपदका उस प्रकार 'न' यदि एकस्वरविशिष्ट अथवा कवर्गयुक्त शब्दके उत्तर रहे, तो नित्यही मूर्द्धन्य होता है ; यथा—(एकस्वर) प्र + भु + ना = प्रभुणा ; (कवर्ग) श्री + काम + इन = श्रीकामेण, नगर + गामिन् + ई = नगरगामिणी ।

(छ) परन्तु पक्व, युवन् और अहन् शब्दका नहीं होता ; यथा—परिपक्वेन, क्षत्रियवूना, दीर्घाह्ना ।

* * * * *

१०१ । टवर्गके पूर्वस्थित 'न'—ऋ, र् और ष् , इनसे परस्थित न होनेसेभी मूर्द्धन्य होता है ; यथा—कण्टक , कण्ठ, दण्ड , कुण्डिः ।

१०२ । दो वा तीन स्वरवाले वृक्षवाचक और ओषधिवाचक‡ शब्द-

---

* हरिं भावयति य =हरिभाविन् ।

† हरिं भावयति या सा हरिभाविनी ॥ 'स्वर्गं गामिनः—स्वर्गगामिनः'—इस स्थलमें समाससे पहलेही 'न' विभक्तियुक्त होनेसे, मूर्द्धन्य नहीं हुआ । 'हरेः कामिनी—हरिकामिनी'—इस स्थलमभी समाससे पूर्वही 'न' ईप्-प्रत्ययमें मिलनेसे, मूर्द्धन्य नहीं हुआ ।

‡ फल पक जानेसे जिन वृक्षादिकोंका नाश हो जाता है, उन्हें 'ओषधि' कहते हैं ।—ओषध्यः फलपाकान्ताः ।"

के परवर्त्ती 'वन'-शब्दका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है । यथा—(द्विस्वर) लोध्रवणम्, लोध्रवनम् । (त्रि-स्वर) मन्दारवणम्, मन्दारवनम्; वदरीवणम्, वदरीवनम् । (ओषधि) रम्भावणम्, रम्भावनम्; नीवारवणम्, नीवारवनम् इत्यादि ।

किन्तु अग्रे, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र और खदिर शब्दके परवर्त्ती, तथा प्र, निर् और अन्तर्—इन अव्ययोंके परवर्त्ती 'वन'-शब्दका दन्त्य 'न' नित्य मूर्द्धन्य होता है; यथा—अग्रेवणम्, शरवणम्, इक्षुवणम्, प्लक्षवणम्, आम्रवणम्, खदिरवणम्, प्रवणम्, निर्वणम्, अन्तर्वणम् ।

१०३ । अन्यपदस्थित 'र्'-प्रभृतिके परवर्त्ती 'पान'-शब्दका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है; यथा—क्षीरपाणम्, क्षीरपानम्; विषपाणम्, विषपानम् ।

(क) पूर्वपदके अन्तमे मूर्द्धन्य 'ष्' रहनेसे, परपदवर्त्ती दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—निष्पानम्, दुष्पानम्, हविष्पानम्; निष्कामेन, निष्कामानाम्, आयुष्कामेन ।

१०४ । प्र, पूर्व, अपर प्रभृति शब्दोंके परवर्त्ती 'अह्न'-शब्दका,—पर, पार, उत्तर, राम, चान्द्र और नार शब्दके परवर्त्ती 'अयन'-शब्दका,-तथा अग्र और ग्राम शब्दके परवर्त्ती 'नी'-शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा-(अह्न) प्राह्णः, पूर्वाह्णः, अपराह्णः; (अयन) परायणम्, पारायणम्, उत्तरायणम्, रामायणम्, चान्द्रायणम्, नारायणः; (नी) अग्रणीः, ग्रामणीः ।

१०५ । वयस् (उम्र) अर्थ समझानेसे त्रि और चतुर् शब्दके परवर्त्ती 'हायन'-शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—त्रिहायणो वत्सः,

चतुर्हायणी गौः।

१०६। 'शूर्प'-शब्दके परवर्त्ती 'नख'-शब्दका,—तथा प्र, दु, खर और वार्ध्री शब्दके परवर्त्ती 'नस'-शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—शूर्पणखा; प्रणसः, द्रुणसः, खरणसः, वार्ध्रीणसः।

१०७। गिरिनदी-प्रभृतिका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है; यथा—गिरिणदी, गिरिनदी; स्वर्णदी, स्वर्नदी; गिरिणितम्बः, गिरिनितम्बः; गिरिणद्धम्, गिरिनद्धम्।

स्वाभाविक णत्व।

कङ्कणं किङ्किणी कोणः कणिका काकिणी क्वणः।
कल्याणं कुणपः काणः कफोणिश्चिक्कणः किणः॥
निक्वाणो निक्वणः क्वाणो लावण्यं गणिका गणः।
मत्कुणः शोणितं शोणः पण्यं पुण्यं पणो मणिः॥
वाणिज्यं विपणिः शाणो वणिगापण उल्वणः।
बाणो वीणा घुणो वेणुस्तूणः स्थाणुः फणा फणी॥
पणवो लवणं गौणी चणकोऽप्युल्बणः कुणिः।
माणिक्यं पक्वणो वेणी पाणिरेणस्तथैव च॥
भाणो वाणी—स्वतो ह्येते शब्दा णत्वं प्रपेदिरे॥

प्रश्नमाला।

(१) किस किस वर्णसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है? (२) 'रचना—इस पदमें दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य क्यों नहीं हुआ? और 'दीर्घेण'—यहाँ मूर्द्धन्य 'ण' क्यों हुआ? (३) सूत्रनिर्देश-पूर्वक शुद्धाशुद्धि निर्णय करो—अर्चना, मर्द्दन, शठेण, द्रुमेन, अर्थेण, रसेण, मृद्देण, कारणम्, करि-

ना। (४) 'भ्रान्तिः'—इस स्थानमे मूर्द्धन्य 'ण' क्यों नहीं हुआ? (५) 'विपपायिणी' और 'प्रभावानाम्'—ये दोनो पद शुद्ध हैं, या नहीं? शुद्ध होनेसे, क्यों शुद्ध,—बतलाओ। (६) सूत्रनिर्देशपूर्वक पदोंकी शुद्धयशुद्धि निर्णय करो—गृहाण, त्रिणयनः, वृत्रहनौ, दोषभागिनी, दुर्गमेन, अन्तर्भा-मेन, वृपाण्।

षत्व-विधान।

१०८। अ आ भिन्न स्वरवर्ण, क और र्-इनके परस्थित प्रत्ययका* दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' होता है; यथा—

इ+सु=इ+षु—मुनि+सु=मुनिषु।

र्+सु=र्षु—चतुर्+सु=चतुर्षु।

क्+सु=क्षु—वाक्+सु=वाक्षु।

(क) अनुस्वार और विसर्गका व्यवधान रहनेसेभी, दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—

ऊ+(ं)+सि=ऊंषि-धनू+(ं)+सि=धनूंषि।

उ+(ः)+सु=उःषु-आयु+(ः)+सु=आयुःषु†।

प्रश्न। 'पुंसु'-इस पदमे मूर्द्धन्य 'ण' क्यों नहीं हुआ? (५८ पृष्ठ देखो)

* प्रत्ययसे आदेश और आगमकाभी ग्रहण करना चाहिये।

† नामि-क-र-परः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नु-विसर्जनीय-षान्तरोऽपि।-(नामि-क-रेभ्यः परः प्रत्ययविकारागमस्थोऽनन्त्यः सिः षत्वमापद्यते, नु-विसर्जनीय-षान्तरः; 'अपि'-शब्दादनन्तरोऽपि।)

किन्तु क्लीवलिङ्ग शब्दकी प्रथमा और द्वितीयाके बहुवचनका अनुस्वार छोड़कर अन्य अनुस्वारके व्यवधानसे नहीं होता ; यथा-पुंसः, पुंसा ।

(ख) 'सात्'-प्रत्ययका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—अग्निसात्, नदीसात् ।

* * * *

१०९ । टवर्गके पूर्वस्थित दन्त्य 'स' प्रायः मूर्द्धन्य होता है ; यथा-षष्ठम्, दुष्टः ।

११० । सु, वि, निर् और दुर् उपसर्गके परवर्त्ती 'सम' शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—सुषमः, विषमः, निःषमः, दुःषमः ।

१११ । समासमें—अम्ब, गो, भूमि, अङ्गु, दिवि, द्वि, त्रि और अग्नि शब्दके परवर्त्ती 'स्थ'-शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—अम्बष्ठः, गोष्ठम्, भूमिष्ठः, अङ्गुष्ठः, दिविष्ठः, द्विष्ठः, त्रिष्ठः, अग्निष्ठः ।

११२ । समासमें—मातृ और पितृ शब्दके परवर्त्ती 'स्वसृ'-शब्दका प्रथम दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—मातृष्वसा, पितृष्वसा । विभक्ति रहनेसे विकल्पसे; यथा—मातुःष्वसा, मातुःस्वसा; पितुःष्वसा, पितुःस्वसा । समास न होनेसे नहीं होता ; यथा—मातुः स्वसा, पितुः स्वसा ।

११३ । 'युधि'-शब्दके परवर्त्ती 'स्थिर'-शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—युधिष्ठिरः ।

प्रश्न । कारणनिर्देश-पूर्वक शुद्धाशुद्धि निर्णय करो-नरेसु, अदःषु, अनैषीत्, पतिषात्, नौषु, दिक्षु, भ्रातृषु, हवींषि, नदीषु ।

११४। समासमें—'अङ्गुलि'-शब्दके परवर्त्ती 'सङ्ग'-शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—अङ्गुलिषङ्गा (यवागूः)।

स्वाभाविक षत्व।

ईषत् कोष इषुर्योषिद्भूषणं विषमोषधिः।
उत्कर्षो वर्षणं हर्षः षोडशः षण्ड ऊषरम्॥
अमर्षो दूषणं श्लेषो दोषो द्वेषः षडाननः।
पुरुषः पुरुषः श्लेष्मा पुष्पं भीष्मो विशेषणम्॥
विषयो मूषिको मेषो महिषो घोषणा वृषः।
वर्षा विशेष्यं भाषोष्मा पौष आषाढ औषधम्॥
प्रदोषः सर्षपः प्रेष्यस्तोषणं पोषणं भिषक्।
भीषणं शोषणं शेषः कषायः कलुषं तुषः॥
अभिलाष ऋषिर्ग्रीष्मो निमेषो निकषाऽऽमिषम्।
उषा तुषारः पाषाणः काषायश्च ततः परम्॥
गण्डूषः कल्मषं शष्पं—स्वतः षत्वमिमे गताः।

साधारण-संज्ञा।

११५। शब्द—एक वा उससे अधिक वर्ण लेकर एक एक शब्द घटित होता है। यथा—(एकवर्ण) अ (विष्णु)। (अधिक वर्ण) ह्+अ+र्+इ=हरि ; र्+आ+म्+अ=राम।

धातु और प्रत्यय* भिन्न अर्थयुक्त (वस्तुवाचक अथवा विशेषणवाचक) जो शब्द, उसे 'प्रातिपदिक या नाम' कहते हैं, यथा—(वस्तुवाचक) घट, पट, तरु, लता, (विशेषण वाचक) उत्तम, अधम, सुन्दर ।

(क) समासनिष्पन्न, कृत्प्रत्ययान्त, तद्धितप्रत्ययान्त और स्त्री प्रत्ययान्त होनेसे प्रातिपदिक या शब्द होता है ।

Parts of Speech

११६ । पद—विभक्तियुक्त शब्द (प्रातिपदिक) और धातुको—अर्थात् शब्दरूप और धातुरूपको—'पद' कहते हैं ; यथा—राम+सु=राम , भू+ति=भवति ;—ये दोनों पद हैं ।

पद दो प्रकार—(१)सुबन्त और (२) तिङन्त । पद न होनेसे भाषामें प्रयोग नहीं होता ।

Noun

११७ । विशेष्य—जिससे वस्तु, व्यक्ति, जाति, गुण या

---

* भू (होना), स्था (रहना) प्रभृति क्रियावाचकोंको 'धातु' कहते हैं । शब्द और धातुको 'प्रकृति' कहते हैं । प्रकृतिके उत्तर अर्थविशेषमें जो होता है, उसका नाम 'प्रत्यय' । प्रत्यय पाँच प्रकार-(१) सुप्, (२) तिङ्, (३) कृत्, (४) तद्धित और (५) स्त्रीप्रत्यय । इनके बीचमें सुप् और तिङ्-प्रत्ययको 'विभक्ति' कहते हैं ।

शब्द और धातुके उत्तर कई प्रत्यय होनेसे, समुदायमें धातु होता है, उन प्रत्ययोंको 'धात्ववयव' कहते हैं । (प्रत्ययान्त धातु द्रष्टव्य) ।

क्रियाका बोध होता है, उसे 'विशेष्य' कहते हैं । विशेष्य पाँच-प्रकार, यथा—

(१) वस्तुवाचक (Material)—जलम् , प्रस्तरः, घटः, मठः ।

(२) व्यक्तिवाचक (Proper)—रामः, हिमालयः, गङ्गा, भारतवर्षम् ।

(३) जातिवाचक (Common)—मनुष्यः, पशुः, पक्षी, कीटः ।

(४) गुणवाचक (Abstract)—ऋजुता, साधुता, मृदुता, धैर्य्यम् ।

(५) क्रियावाचक (Verbal)—गमनम् , भोजनम् , दर्शनम् , श्रवणम् ।

Adjective.

११८ । विशेषण—जिससे अन्य पदके गुण वा दोष, सङ्ख्या और अवस्थादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'विशेषण' कहते हैं ।

विशेषण तीन-प्रकार-(१) विशेष्यका विशेषण, (२) विशेषणका विशेषण और (३) क्रियाका विशेषण ।

(१) जिस पदसे विशेष्यके गुण, अवस्था, आकार, वर्ण, सङ्ख्यादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'विशेष्यका विशेषण' कहते हैं ; यथा—(गुण) सुन्दरः बालकः, दुष्टः मनुष्यः ; (अवस्था) सन्निहितः देहः ; (आकार) विशालः तरुः ; (वर्ण) नीलं

नभः, शुक्लं वसनम् ; (सहृया) पक्वं फलम् , पञ्चमः पाठः ।

(क) विशेष्य और विशेषणके लिङ्ग, विभक्ति और वचन समान होते हैं ;* यथा—सुन्दरः बालकः, सुन्दरौ बालकौ, सुन्दराः बालकाः, सुन्दरम् बालकम् इत्यादि , सुन्दरी बालिका, सुन्दर्य्यौ बालिके, सुन्दर्य्यः बालिकाः, सुन्दरीम् बालिकाम् इत्यादि ; सुन्दरम् पुष्पम् , सुन्दरे पुष्पे, सुन्दराणि पुष्पाणि ।

(ख) जो शब्द नियतलिङ्ग वा अजहल्लिङ्ग (अर्थात् नित्यपुंलिङ्ग नित्य-स्रीलिङ्ग वा नित्यक्लीवलिङ्ग), वे विशेषण होनेसे लिङ्गका परिवर्त्तन नहीं होता ; यथा—आदिः कृत्यम् ; वाल्मीकेः कृतिः रामायणम् ; जगतः कारणं विभुः ।

(२) जिस पदसे विशेषणके अर्थको वर्द्धित अथवा सङ्कोचित किया जाता है (बढाया या घटाया जाता है), उसे 'विशेषणका विशेषण' (Adverb) कहते हैं ; यथा—अति सुन्दरः, अति मन्दः, अत्यन्तं कोमलम् , नितान्तं क्षुद्रम् , अतिशयं महत् ।

(३) जिस पदसे क्रियाके गुण, अवस्थादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'क्रियाका विशेषण' (Adverb) कहते हैं ; यथा-मधुरं हसति, सत्वरं धाव, शीघ्रं देहि ।

Pronoun.

११९ । सर्वनाम—जो सब नाम अर्थात् विशेष्यके बदले

---

* विशेष्येषु हि यल्लिङ्गं, विभक्तिवचने च ये ।
तानि सर्वाणि योज्यानि विशेषणपदेष्वपि ॥

व्यवहृत होता है, ऐसे 'सर्व'-प्रभृति शब्दको 'सर्वनाम' कहते हैं।

रूपके वैलक्षण्यानुसार सर्वनाम शब्द पाँच भागोंमे विभक्त, यथा—

(१) सर्वादि—सर्व, विश्व, उभ, उभय, एक, एकतर, सम, सिम, नेम।

(२) अन्यादि—अन्य, अन्यतर, इतर, कतर, कतम, यतर, यतम, ततर, ततम, एकतम।

(३) पूर्वादि—पूर्व, पर, अपर, अवर, अधर, दक्षिण, उत्तर, अन्तर, स्व।

(४) यदादि—यद्, तद्, त्यद्,* एतद्, किम्।

(५) इदमादि—इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्।

Indeclinable or Particle.

१२०। अव्यय—जिन पदोंका किसी भी अवस्थामे रूपान्तर नहीं होता, उन्हें 'अव्यय' कहते हैं; यथा—च, वा, तु, हि, यदि, एवम् इत्यादि।

Gender.

१२१। लिङ्ग—शब्दोंका लिङ्ग है। लिङ्ग तीन प्रकार—(१) पुंलिङ्ग (Masculine), (२) स्त्रीलिङ्ग (Feminine) और (३) क्लीबलिङ्ग वा नपुंसकलिङ्ग (Neuter)। संस्कृतभाषामे बहुतेरे स्थलोंमे ही लिङ्ग शब्दगत होता है। यथा—

---

* तद् और त्यद् शब्द एकार्थक।

आलय, वसति और गृह—ये तीन शब्द एकार्थबोधक होनेपरभी, प्रथम शब्द पुलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग, और तृतीय क्लीवलिङ्ग । दार और कलत्र शब्द स्त्रीवाचक होनेपरभी, दार शब्द पुंलिङ्ग, और कलत्र क्लीवलिङ्ग । सन्तान, सन्तति और अपत्य शब्द—पुत्र और कन्या, इन दोनोंके वाचक होनेपरभी, प्रथम शब्द पुलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग, और तृतीय क्लीवलिङ्ग ।

Number.

१२२ । वचन—वचन तीन-प्रकार—(१) एकवचन (Singular), (२) द्विवचन (Dual) और (३) बहुवचन (Plural) । एकवचनमें एक, द्विवचनमें दो, और बहुवचनमें तीन वा तदधिक सङ्ख्याका बोध होता है; यथा—त्वम्-तू एक आदमी, युवाम्-तुम दोनो, यूयम्-तुम तीन वा तदधिक । यहाँ हिन्दीसे संस्कृतका इतना भेद, कि हिन्दीमें द्विवचन-का व्यवहार नहीं है ।

Verb.

१२३ । क्रिया—जिससे कर्मका (अर्थात् गमन, भोजन, शयन प्रभृति किसीप्रकार कार्य्यका) बोध होता है, उसे 'क्रिया' कहते हैं; यथा—गमन (जाना), गत (गया है, ऐसा), गच्छति (जाता है), गत्वा (जाकर)—ये चारही क्रिया । (क्रियाका नामान्तर भाव, धात्वर्थ) ।

'मृदु गमनम्'—यहाँ 'गमनम्' क्रियावाचक विशेष्य; 'गतं दिनम्'—यहां 'गतम्' क्रियावाचक विशेषण; 'स गच्छति' (वह जाता है) कहने-से वाक्य समाप्त होता है, अर्थात् श्रोताकी आकाङ्क्षा-निवृत्ति करती है,

इसलिये 'गच्छति' समापिका क्रिया (Finite); 'स गत्वा' (उसने जाकर) कहनेसे 'गत्वा' क्रिया वाक्यको समाप्त नहीं कर सकती (अर्थात् "उसने जाकर—क्या किया ?' इस प्रकार श्रोताकी एक आकाङ्क्षा रह जाती है), इसलिये यह असमापिका क्रिया (Infinite) ।*

Tense.

१२४ । काल—क्रियाके समयको 'काल' कहते हैं । काल तीन-प्रकार—(१) भूत, (२) भविष्यत् और (३) वर्त्तमान । जो क्रिया पूर्वमे हो चुकी, उसके कालको 'भूत वा अतीत काल' (Past) कहते हैं । जो क्रिया पश्चात् होगी, उसके कालको 'भविष्यत् काल' (Future) कहते हैं । और जो क्रिया हो रही है, उसके कालको 'वर्त्तमान काल' (Pre-

---

* सब तिङन्तपद समापिका क्रिया । स्थानविशेषमे क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, य प्रभृति कृदन्तपदभी समापिका क्रिया होते हैं ; यथा–स गतः (वह गया), तेन गन्तव्यम् (वह जायेगा) । तुम् , क्त्वा, यप् और णमुल्-प्रत्ययान्त पद असमापिका क्रिया । जिसका विशेषण रहता है, वह विशेष्य होगाही ; सुतरां विशेषण रहनेसे समापिका और असमापिका क्रियाभी विशेष्य होती है ; यथा–द्रुतं गच्छति (शीघ्र जाता है), यहाँ 'गच्छति' विशेष्य ; मन्दं मन्दं गत्वा (धीरे धीरे जाकर), यहाँ 'गत्वा' विशेष्य ; 'सुखं स्थातुम्' (सुखसे रहनेके लिये), यहाँ 'स्थातुम्' विशेष्य , क्योंकि "कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते" अर्थात् भाववाच्यमे कृत्प्रत्ययनिष्पन्न शब्द द्रव्यके नामबोधक शब्दके तुल्य गण्य होता है ('कृ'-धातु + भाववाच्ये तुम्=कर्त्तुम्)।

sent) कहते हैं।

Case.

१२५। कारक—क्रियाके साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है, उसको 'कारक' कहते हैं।*

कारक छः-प्रकार—(१) कर्त्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) सम्प्रदान, (५) अपादान और (६) अधिकरण।

(१) कर्त्ता (Nominative)—जो क्रिया-निष्पादन करता है, उसको 'कर्त्ता' कहते हैं;† यथा—(राम करता है) रामः करोति; (लड़का रोता है) बालः रोदिति;—यहाँ 'रामः' और 'बालः' कर्त्तृकारक।

(२) कर्म (Objective or Accusative)—जो किया जाता है, उसको 'कर्मकारक' कहते हैं;‡ यथा—(काम करता है) कार्य्यं करोति; (जल पीता है) जलं पिबति; (रोटी खाता है) रोटिकां भुङ्क्ते;—यहाँ 'कार्य्यम्', 'जलम्' और 'रोटिकाम्' कर्मकारक।

(३) करण (Instrumental)—जिससे क्रिया सम्पादित की जाती है, अर्थात् जो क्रियानिष्पत्तिका सर्वप्रधान उपाय, उसको 'करणकारक' कहते हैं;§ यथा—(आँखसे दे-

---

* क्रियान्वयि कारकम्।

† यः करोति, स कर्त्ता।

‡ यत् क्रियते, तत् कर्म।

§ येन क्रियते, तत् करणम्।

खता है) चक्षुषा पश्यति; (हाथसे लेता है) हस्तेन गृह्णाति;—यहाँ 'चक्षुषा' और 'हस्तेन' करणकारक ।

(४) सम्प्रदान (Dative)—जिसको कोई वस्तु दी जाती है, उसे 'सम्प्रदान' कहते हैं;* यथा—(दरिद्रको धन देता है) दरिद्राय धनं ददाति; (भिक्षुकको भिक्षा देता है) भिक्षवे भिक्षां ददाति;—यहाँ 'दरिद्राय' और 'भिक्षवे' सम्प्रदानकारक ।

(५) अपादान (Ablative)—जिससे कोई पदार्थ वियुक्त (अलग) होता है, उसे 'अपादान' कहते हैं;† यथा—(पेड़से फल गिरता है) वृक्षात् फलं पतति; (गाँवसे आता है) ग्रामात् आयाति;—यहाँ 'वृक्षात्' और 'ग्रामात्' अपादानकारक ।

(६) अधिकरण (Locative)—कर्त्ता वा कर्मका जो आधार, उसे 'अधिकरण' कहते हैं;‡ यथा—(शिवदत्त घरमे सोता है) शिवदत्तः गृहे शेते; (मा बच्चेको बिछौनेमे सुलाती है) जननी शय्यायां शिशुं शाययति;—यहाँ 'गृहे' और 'शय्यायाम्' अधिकरणकारक ।

Possessive or Genitive.

१२६ । सम्बन्ध—जो पद और किसी पदके साथ सम्बन्ध

---

* यस्मै दानं संप्रदानम् ।

† यतो विश्लेषोऽपादानम् ।

‡ आधारोऽधिकरणम् ।

प्रकाश करता है, उसे 'सम्बन्ध' कहते हैं; यथा—(वृक्षकी शाखा) वृक्षस्य शाखा; (उसकी पुस्तक) तस्य पुस्तकम् ;—यहाँ 'वृक्षस्य' और 'तस्य' सम्बन्धपद ।

Inflectional termination.

१२७। विभक्ति—शब्दके उत्तर 'सु' औ, जस्' प्रभृति, और धातुके उत्तर 'तिप्, तस्, अन्ति' प्रभृति जो प्रत्यय होते हैं, उनको 'विभक्ति' कहते हैं। 'सु, औ, जस्' प्रभृतिको 'सुप्-विभक्ति', और 'तिप्, तस्, अन्ति' प्रभृतिको 'तिङ्-विभक्ति' कहते हैं ।

सुबन्त-प्रकरण ।

१२८। प्रयोगकालमें शब्दके उत्तर सुप्-विभक्ति होती है। सुप्-विभक्ति सात-प्रकार—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी। प्रत्येक विभक्तिके तीन तीन वचन* ।

सुप्-विभक्तिकी आकृति (Inflectional termination)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	(स)	औ	जस् (अः)
द्वितीया	अम्	औट् (औ)	शस् (अः)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भिः)

---

* अत. सुप्-विभक्तिकी सङ्ख्या २१ ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पञ्चमी	ङसि (अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	ङस् (अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप् (सु)

आद्य अक्षर 'सु' और अन्त्य अक्षर 'प्' को लेकर इन विभक्तियोंका नाम 'सुप्' रखा गया। इनको शब्दके अन्तमे जोड़नेसे जो पद बनता है, उसे 'सुबन्त-पद' कहते हैं। स्मरण रहे, कि बन्धनीके मध्यस्थित आकार (रूप) ही कार्य्यकालमे अवशिष्ट रहते हैं।

रूपभेदसे शब्द चार भागोंमे विभक्त—(१) साधारण शब्द, (२) सर्वनाम शब्द, (३) सङ्ख्यावाचक शब्द और (४) अव्यय शब्द।

साधारण शब्द फिर छः भागोंमे विभक्त—(१) स्वरान्त पुंलिङ्ग, (२) स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग, (३) स्वरान्त क्लीवलिङ्ग; (४) व्यञ्जनान्त पुंलिङ्ग, (५) व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग, (६) व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग।

पुंलिङ्ग-निर्णय।

१२९। (क) पुरुषवाचक शब्द प्रायः पुंलिङ्ग।

(ख) चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, वायु, प्रस्तर, पर्वत, समुद्र और वृक्ष-पर्य्याय शब्द* पुंलिङ्ग। किन्तु प्रस्तर-पर्य्यायके बीचमे शिला और दृषद्—स्त्रीलिङ्ग।

(ग) स्वर्ग-पर्य्याय शब्द पुंलिङ्ग। किन्तु द्यो, दिव्—स्त्री०;

---

* एक अर्थमे जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन सबको 'पर्य्याय-शब्द' कहते हैं।

त्रिविष्टप—क्ली० ; स्वर्—अव्यय ।

(घ) मेघ-पर्य्याय शब्द पुंलिङ्ग । किन्तु अभ्र-शब्द—क्ली० ।

(ङ) सप्ताह, मास, रक्तादि वर्ण, रस, काल और कल्प-वाचक शब्द पुंलिङ्ग ।

(च) ऋतु-वाचक शब्द पुंलिङ्ग । किन्तु शरद् और वर्षा स्त्री० ।

(छ) वत्सर-वाचक शब्द पुंलिङ्ग । किन्तु शरद्, समा—स्त्री०; हायन—पुं०, क्ली० ।

(ज) शब्द, गर्व, हस्त, गण्ड, ओष्ठ, कण्ठ, केश, नख, दन्त और स्तन-वाचक शब्द पुंलिङ्ग ।

(झ) तरङ्ग-वाचक शब्द पुंलिङ्ग । किन्तु ऊर्मि और वीचि शब्द स्त्रीलिङ्गभी होते हैं ।

(ञ) खड्ग, बाण, मनुष्य, दासु, सर्प, मत्स्य, कच्छप, भेक, कुम्भीर-वाचक शब्द और किरण-वाचक शब्द* पुंलिङ्ग ।

(ट) दार, प्राण, असु, अक्षत, लाज और बिन्दु शब्द पुंलिङ्ग ।

(ठ) तुषार, नीहार, और अवश्याय शब्द पुंलिङ्ग ।

(ड) 'अन्' भागान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—राजन्, मज्जन् इत्यादि । किन्तु द्विस्वर 'मन्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिङ्ग ; यथा—कर्मन् वर्मन् इत्यादि ।

(ढ) 'तु'-अन्त और 'रु'-अन्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—(तु) हेतुः, सेतुः, केतुः ; (रु) मेरुः, त्सरुः । किन्तु (तु) जतु और वस्तु—क्ली०; (रु) जत्रु, दारु—क्ली०, कशेरु—पुं०, क्ली० ।

---

* किन्तु मरीचि शब्द—पुं०, स्त्री० ; दीधिति शब्द—स्त्री० ।

(ण) 'घञ्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—त्यागः, भागः, पाकः इत्यादि ।

(त) 'अच्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—लयः, जयः, चयः इत्यादि । किन्तु भय, वर्ष, लिङ्ग, पद और मुख शब्द—क्ली० ।

(थ) 'अप्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—रवः, स्तवः, भवः इत्यादि ।

(द) 'ण'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—व्याधः इत्यादि ।

(ध) 'नङ् (न)-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—यत्नः, स्वप्नः, प्रश्नः इत्यादि । केवल याच्ञा शब्द—स्त्री० ।

(न) 'अथु'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—वेपथुः, श्वयथुः, इत्यादि ।

(प) 'इमन्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—लघिमन्, गरिमन् इत्यादि । किन्तु प्रेमन् शब्द—पुं०, क्ली० ।

(फ) 'कि'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—विधिः, जलधिः इत्यादि । किन्तु इषुधि शब्द—पुं०, स्त्री० ।

(ब) समासनिष्पन्न 'रात्र'-भागान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—सर्वरात्रः, पुण्यरात्रः । किन्तु सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे क्लीवलिङ्ग होता है ; यथा—द्विरात्रम्, त्रिरात्रम् इत्यादि ।

(भ) समासनिष्पन्न 'अह'-भागान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—परमाहः । किन्तु पुण्याह शब्द—क्ली० ।

(म) समासनिष्पन्न 'अह्न'-भागान्त शब्द पुंलिङ्ग ; यथा—सर्वाह्णः, पूर्वाह्णः ।

स्वरान्त पुलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र।

१३०। अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'अम्' के स्थानमे 'म्' होता है; यथा—देव + अम् = देव + म् = देवम्; विधि + अम् = विधिम्; साधु + अम् = साधुम्।

१३१। ह्रस्वस्वरान्त शब्दके 'शस्' के स्थानमे 'न्' होता है, और वह 'न्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—देव + शस् = देव + न् = देवान्; विधि + शस् = विधि + न् = विधीन्; साधु + शस् = साधून्; दातृ + शस् = दातॄन्।

१३२। अकारान्त शब्दके परस्थित 'टा' के स्थानमे 'इन', 'भिस्' के स्थानमे 'ऐस्', 'ङे' के स्थानमे 'अय', 'ङसि' के स्थानमे 'आत्', 'ङस्' के स्थानमे 'स्य', और 'ओस्' के स्थानमे 'योस्' होता है; यथा—देव + टा = देव + इन = देवेन, देव + भिस् = देव + ऐस् = देवैः; देव + ङे = देव + अय = देवाय; देव + ङसि = देव + आत् = देवात्; देव + ङस् = देव + स्य = देवस्य; देव + ओस् = देव + योस् = देवयोः।

१३३। 'भ्याम्' परे रहनेसे अकारके स्थानमे आकार, और 'भ्यस्' तथा 'सुप्' परे रहनेसे एकार होता है; यथा—देव + भ्याम् = देवाभ्याम्; देव + भ्यस् = देवेभ्यः; देव + सुप् = देवेषु (१०८ सू)।

१३४। ह्रस्वस्वरान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमे 'नाम्' होता है; वह 'नाम्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—देव + आम् = देव + नाम् = देवानाम्, विधि + आम् = विधि + नाम् = विधीनाम्; साधु + आम् = साधूनाम्; दातृ + आम् = दातॄणाम् (१०० सू)।

१३५। ह्रस्वस्वरान्त शब्दके सम्बोधनमे 'सु' का लोप होता है;

यथा—देव + सु = देव ।

१३६ । 'शस्'-प्रभृतिका स्वरवर्ण परे रहनेसे, धातु-निष्पन्न आकारान्त शब्दके आकारका लोप होता है; यथा—विश्वपा + शस् = विश्वपा + अः = विश्वप् + अः = विश्वपः ।

१३७ । इकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ई', और उकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ऊ' होता है; यथा—विधि + औ = विधि + ई = विधी; साधु + औ = साधु + ऊ = साधू ।

१३८ । 'जस्', 'ङे', 'ङसि', 'ङस्' और सम्बोधनके एकवचनमे इकारान्त शब्दके 'इ' के स्थानमे 'ए', और उकारान्त शब्दके 'उ' के स्थानमे 'ओ' होता है; यथा—विधि + जस् = विधि + अः = विधे + अः = विधयः (२९ सू); विधि + ङे = विधि + ए = विधे + ए = विधये; साधु + जस् = साधु + अः = साधो + अः = साधवः (२७ सू); साधु + ङे = साधु + ए = साधो + ए = साधवे; विधि + सु (सम्बोधन) = विधे (१३९ सू); साधु + सु (सम्बो०) साधो (१३९ सू) ।

१३९ । एकार वा ओकारसे परे 'ङसि' और 'ङस्' के अकारका लोप होता है; यथा—विधि + ङसि = विधि + अः = विधे + अः (१३८ सू) = विधे + ः = विधेः; साधु + ङसि = साधु + अः = साधो + अः (१३८ सू) = साधो + ः = साधोः ।

१४० । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'टा' के स्थानमे 'ना' होता है; यथा—विधि + टा = विधि + ना = विधिना; साधु + टा = साधुना ।

१४१ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'ङि' के स्थानमे 'औ'

होता है, और अन्त्यस्वरका लोप होता है; यथा—विधि + ङि = विधि + औ = विध् + औ = विधौ ; साधु + ङि = साधु + औ = साध् + औ = साधौ।

१४२। स्वरवर्ण परे रहनेसे, धातुनिष्पन्न ईकारान्त शब्दके 'ई' के स्थानमें प्रायः 'इय्', और ऊकारान्त शब्दके 'ऊ' के स्थानमें 'उव्' होता है; यथा—सुधी + औ = सुध् + इय् + औ = सुधियौ ; प्रतिभू + औ = प्रतिभ् + उव् + औ = प्रतिभुवौ ; प्रतिभू + जस् = प्रतिभू + अः = प्रतिभ् + उव् + अः = प्रतिभुवः।

१४३। ऋकारान्त शब्दके 'स' का लोप, और 'ऋ' के स्थानमें 'आ' होता है; यथा—दातृ + सु = दाता।

१४४। 'जस्', 'औ' और 'अम्' परे रहनेसे, ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' के स्थानमें 'आर्' होता है; किन्तु 'पितृ'-प्रभृति शब्दके 'ऋ' के स्थानमें 'अर्' होता है; यथा—दातृ + जस् = दात् + आर् + अः = दातारः ; दातृ + औ = दात् + आर् + औ = दातारौ ; दातृ + अम् = दात् + आर् + अम् = दातारम्। पितृ + औ = पित् + अर् + औ = पितरौ।

१४५। ऋकारान्त शब्दके 'ङसि' और 'ङस्' के स्थानमें 'उः' होता है; 'उः' परे रहनेसे, ऋकारका लोप होता है; यथा—दातृ + ङसि = दातृ + उः = दात् + उः = दातुः ; पितृ + ङसि = पितृ + उः = पित् + उः = पितुः।

१४६। सम्बोधनका 'स', अथवा 'ङि' परे रहनेसे, ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' के स्थानमें 'अर्' होता है; यथा—पितृ + स = पित् + अर् = पित + अः = पितः ; दातृ + ङि = दात् + अर् + इ = दातरि।

१४७ । 'सु', 'जस्' अथवा 'औ' परे रहनेसे, ओकारान्त शब्दके 'ओ' के स्थानमे 'औ' होता है ; और 'अम्' तथा 'शस्' परे रहनेसे, 'आ' होता है ; यथा—गो + सु = ग् + औ + : = गौः ; गो + औ = ग् + औ + औ = गौ + औ = गावौ (२८ सू) ; गो + जस् = गौ + अः = गावः ; गो + अम् = ग् + आ + अम् = गाम् ; गो + शस् = ग् + आ + अः = गाः ।

सर्वनाम पुंलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१४८ । अकारान्त सर्वनाम शब्दके 'जस्' के स्थानमे 'इ', 'ङे' के स्थानमे 'स्मै', 'ङसि' के स्थानमे 'स्मात्', 'ङि' के स्थानमे 'स्मिन्', और 'आम्' के स्थानमे 'साम्' होता है ; वह 'साम्' परे रहनेसे, अकारके स्थानमे एकार होता है ; यथा—सर्व + जस् = सर्व + इ = सर्वे ; सर्व + ङे = सर्व + स्मै = सर्वस्मै ; सर्व + ङसि = सर्व + स्मात = सर्वस्मात ; सर्व + आम् = सर्व + साम् = सर्व् + ए + साम् = सर्वे + साम् = सर्वेषाम् (१०८ सू) ; सर्व + ङि = सर्व + स्मिन् = सर्वस्मिन् ।

१४९ । 'पूर्वादि'-शब्दके 'जस्' के स्थानमे 'इ', 'ङसि' के स्थानमे 'स्मात्', और 'ङि' के स्थानमे 'स्मिन्' विकल्पसे होता है ।

१५० । विभक्ति परे रहनेसे,—'तद्' के स्थानमे 'त', 'एतद्' के स्थानमे 'एत', 'यद्' के स्थानमे 'य', और 'किम्' के स्थानमे 'क' होता है ; किन्तु क्लीवलिङ्गकी प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमे-नहीं होता ।

ये शब्द तीनो लिङ्गोंमेही 'सर्व'-शब्दके तुल्य; केवल 'सु' परे रहनेसे,—'तद्' और 'एतद्' शब्दके पुंलिङ्गमे 'सः' और 'एषः', तथा स्त्रीलिङ्गमे 'सा' और 'एषा' होते हैं ।

(शब्द-रूप)

Declension of S'abdas or stems

स्वरान्त पुंलिङ्ग शब्द ।

अकारान्त ।

देव शब्द (देवता Deity) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	देवः	देवौ	देवाः
द्वितीया	देवम्	देवौ	देवान्
तृतीया	देवेन	देवाभ्याम्	देवैः
चतुर्थी	देवाय	देवाभ्याम्	देवेभ्यः
पञ्चमी	देवात्	देवाभ्याम्	देवेभ्यः
षष्ठी	देवस्य	देवयोः	देवानाम्
सप्तमी	देवे	देवयोः	देवेषु
सम्बोधन	देव*	देवौ	देवाः

प्रायः सब अकारान्त पुंलिङ्ग शब्दके† रूप 'देव'-शब्दके तुल्य ।

※ नामके उल्लेख (कथन, उच्चारण)-मात्रमे प्रथमा विभक्ति होती है ; यथा—चन्द्रः, सूर्यः, घटः, पटः, सिंहः, व्याघ्रः इत्यादि ।

---

* अङ्ग, अयि, अरे, हे, भोः-ये पद सम्बोधन पदके पूर्वमे बैठते हैं ।

† कर, मृग, वृष, रोप, द्रुम, ग्रह, अर्थ, अश्व, गज, शैल, सागर, पराग इत्यादि ।

※ कर्त्तामे प्रथमा विभक्ति होती है :; यथा—(लड़का सोता है) बालकः शेते ; (छात्र पढ़ता है) छात्रः पठति ; (श्याम हसता है) श्यामः हसति ; (राम जाता है) रामः याति ।

साधारणतः हिन्दीभाषामे पहले कर्त्ता, पीछे क्रिया प्रयुक्त होती है ; किन्तु संस्कृतमे पदस्थापनका वैसा कोई नियम नही है ;—श्रुतिमधुरताके लिये वा पद्यके अनुरोधसे कर्त्ता क्रियासे पहले वा पीछे सब स्थानोमेही बैठ सकता है, केवल अर्थ करनेके समय पदोंको नियमानुसार बैठाना होता है, उसीको 'अन्वय' कहते हैं ;—यथा—(घोड़ा वेगसे जाता है) अश्वो वेगेन याति ; (कुछ विशेष है) अस्ति कश्चिद्विशेषः ;—यहाँ कर्त्ता प्रथमवाक्यमें पहले, और द्वितीयवाक्यमे पीछे बैठा है ।

अनुवाद करो—भेक, कुम्भीर, लोक, जन, देश, पर्वत । हे बालक ! रो मत (मा रुदिहि) । वत्स ! मेघ गरजता है (गर्जति) । एक वृक्ष । दो घोड़े । बहुत लड़के । अच्छे (शिष्ट) पुरुष अच्छे मार्गका (सन्मार्गम्) आश्रय करते हैं (आश्रयन्ति) । पेड़ हिलता है (कम्पते) । यहाँ (अत्र) अच्छा (उत्तम) आदमी (जन) नहीं है (नास्ति) ।

शुद्ध करो—दीर्घं केशः, क्षुद्रो घोटकाः, सुन्दरं घटः, स्थूलाः गजाः, शुभं दिवस आगतम् , शुष्कं वृक्षाः, सेव्यं जनकः ।

* * * *

(क) अल्प (किञ्चित् ; क्षुद्र) ; प्रथम (आदिम) ; चरम (अन्तिम) ; द्वितय, द्वय (द्वित्वसङ्ख्यायुक्त) ; त्रितय, त्रय (त्रित्वसङ्ख्यायुक्त) ; चतुष्टय (चारसङ्ख्यायुक्त); कतिपय (कई) ; अर्द्ध (खण्ड, अंश, टुकड़ा) ;—

अल्पादि शब्दके रूप 'देव'-शब्दके तुल्य ; केवल 'जस्'-विभक्तिमें विकल्पसे 'सर्व'-शब्दके तुल्य ; यथा—

अल्पे अल्पाः ; प्रथमे प्रथमाः ; चरमे चरमाः ; द्वितये द्वितयाः ; द्वये द्वयाः ; त्रितये त्रितयाः ; चतुष्टये चतुष्टयाः ; कतिपये कतिपयाः ; अर्द्धे अर्द्धाः ।

(ख) 'शस्' से लेकर अन्य सब विभक्तियोंमें 'दन्त'-शब्दके स्थानमें 'दत्', 'पाद' शब्दके स्थानमें 'पद्', और 'मास'-शब्दके स्थानमें 'मास्' आदेश विकल्पसे होता है ; यथा—

दन्त शब्द (दशन, दाँत Tooth) ।

प्रथमा—दन्तः, दन्तौ, दन्ताः; द्वितीया—दन्तम् , दन्तौ, दन्तान् दतः; तृतीया—दन्तेन दता, दन्ताभ्याम् दद्भ्याम्, दन्तैः दद्भिः ; चतुर्थी—दन्ताय दते, दन्ताभ्याम् दद्भ्याम् , दन्तेभ्यः दद्भ्यः ; पञ्चमी—दन्तात् दतः, दन्ताभ्याम् दद्भ्याम् , दन्तेभ्यः दद्भ्यः ; षष्ठी—दन्तस्य दतः, दन्तयोः दतोः, दन्तानाम् दताम् ; सप्तमी—दन्ते दति, दन्तयोः दतोः, दन्तेषु दत्सु ; सम्बोधन—दन्त !

पाद शब्द (पाँव Foot, leg) ।

प्रथमा—पादः, पादौ, पादाः ; द्वितीया—पादम् , पादौ, पादान् पदः ; तृतीया—पादेन पदा, पादाभ्याम् पद्भ्याम् , पादैः पद्भिः ; चतुर्थी—पादाय पदे, पादाभ्याम् पद्भ्याम् , पादेभ्यः पद्भ्यः ; पञ्चमी—पादात् पदः, पादाभ्याम् पद्भ्याम् , पादेभ्यः पद्भ्यः ; षष्ठी—पादस्य पदः, पादयोः पदोः, पादानाम् पदाम् ; सप्तमी—पादे पदि, पादयोः पदोः, पादेषु पत्सु ; सम्बोधन—पाद !

मास शब्द (उभयपक्षात्मक काल Month)।

प्रथमा—मासः, मासौ, मासाः ; द्वितीया—मासम्, मासौ, मासान् मासः ; तृतीया—मासेन मासा, मासाभ्याम् माभ्याम्, मासैः माभिः ; चतुर्थी—मासाय मासे, मासाभ्याम् माभ्याम्, मासेभ्यः माभ्यः ; पञ्चमी—मासात् मासः, मासाभ्याम् माभ्याम्, मासेभ्यः माभ्यः ; षष्ठी—मासस्य मासः, मासयोः मासोः, मासानाम् मासाम् ; सप्तमी—मासे मासि, मासयोः मासोः, मासेषु माःसु ; सम्बोधन—मास !

(ग) विभक्तिके स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'जर'-शब्दके स्थानमे विकल्पसे 'जरस्' आदेश होता है ; यथा—

निर्जर शब्द (देवता)।

प्रथमा—निर्जरः, निर्जरौ निर्जरसौ, निर्जराः निर्जरसः ; द्वितीया—निर्जरम् निर्जरसम्, निर्जरौ निर्जरसौ, निर्जरान् निर्जरसः ; तृतीया—निर्जरेण निर्जरसा, निर्जराभ्याम्, निर्जरैः निर्जरसैः ; चतुर्थी—निर्जराय निर्जरसे, निर्जराभ्याम्, निर्जरेभ्यः ; पञ्चमी—निर्जरात् निर्जरसः, निर्जराभ्याम्, निर्जरेभ्यः ; षष्ठी—निर्जरस्य निर्जरसः, निर्जरयोः निर्जरसोः, निर्जराणाम् निर्जरसाम् ; सप्तमी—निर्जरे निर्जरसि, निर्जरसयोः निर्जरसोः, निर्जरेषु ; सम्बोधन—निर्जर !

अजर, विजर प्रभृति 'जर'-भागान्त शब्दके रूप 'निर्जर' शब्दके तुल्य ।

सर्वनाम पुंलिङ्ग ।

सर्व शब्द (सकल, सब All)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	सर्व	सर्वौ	सर्वे

विश्व (सकल); उभ, उभय* (दोनो); एक† (एक One; कोई कोई; मुख्य; केवल); एकतर (दोनोके बीचमे एक); सम (सब); सिम (सकल); नेम (आधा);—इन शब्दोंके और अन्यादि शब्दके रूप 'सर्व'-शब्दके तुल्य । केवल 'नेम'-शब्दके प्रथमाके बहुवचनमे 'नेमे नेमाः'—ये दो पद होते हैं ।

पूर्व शब्द (दिक्, देश और कालका विशेषण— Eastern, ancient)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्

* 'उभ'-शब्द नित्य द्विवचनान्त । 'उभय'-शब्द एकवचन और बहुवचनमेही प्रयुक्त होता है ।

† 'एक'-शब्द एकसङ्ख्यामात्र अर्थमे एकवचन; अर्थान्तरमे—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पञ्चमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु
सम्बोधन	पूर्व	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः

पूर्वादि शब्दके रूप 'पूर्व'-शब्दके तुल्य ।

कर्ममे द्वितीया विभक्ति होती है ; यथा—(गोपाल चन्द्रको देखता है) गोपालः चन्द्रं पश्यति ।

हिन्दीमे 'चन्द्रको देखता है' इसके सिवा 'देखता है चन्द्रको' ऐसा व्यवहार नहीं होता; किन्तु संस्कृतमे 'चन्द्रं पश्यति' अथवा 'पश्यति चन्द्रम्'—ये दोनोही हो सकते ।

अनुवाद करो—लड़के चन्द्र देखते हैं (पश्यन्ति)। सूर्य्यका प्रखर ताप सह (सोढुम्) नहीं सकता हूं (न शक्नोमि)। राम, श्याम— दोनो इस दिशामे (अनया दिशा) आते हैं (आगच्छतः)। भेड़ा घास खाता है (खादति)। सब देश अवलोकन करो (अवलोकय)। अच्छा आदमीही दूसरेका (द्वितीया) आदर करता है (आद्रियते)। सब लोग मत्स्य नहीं खाते (खादन्ति)। पुरोहित शङ्ख बजाता है (वादयति)। अभिलाप सबको अभिभूत करता है (अभिभवति)। लोभ का (द्वितीया) परिहार करो (छोड़ो—परिहर)। मयूर नाचते हैं (नृत्यन्ति)। सब खेलते हैं (खेलन्ति)। पवन बहता है (वहति)। सब समयमेही स-

दुव्यवहार शोभा पाता है (शोभते) (ही—एव) । धर्म धार्मिकको (द्वितीया) रक्षा करता है (रक्षति) । जहाँ (यतः) धर्म, वहां (ततः) जय ।

शुद्ध करो—सर्वः मत्स्याः, पश्चिमं देशः, अपरं वृक्षाः, सुन्दरं वेशः ।

यदादि ।

यद् शब्द (जो Who, which) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्म	याभ्याम्	येभ्यः
पञ्चमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु*

तद् शब्द (वह He) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः

* यदादि शब्दका सम्बोधनमे प्रयोग नहीं है ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

एतद् शब्द (यह This)।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	एषः	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्	एतौ	एतान्
तृतीया	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पञ्चमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

※ सर्वनामकी सहायता लेनेसे, विशेष्यका वारवार उल्लेख नहीं करना पड़ता; और विशेष्यकी अनुपस्थितिमे सर्वादि सव सर्वनामोका विशेष्यके तुल्य प्रयोग होता है; यथा—(राम शिष्ट वालक; सव उसकी प्रशंसा करते हैं) रामः शिष्टो वालकः; सर्वे 'तं' प्रशंसन्ति—यहां 'रामः'के स्थानमे 'तं' वैठा है, और 'लोकाः' इस विशेष्यपदकी अनुपस्थितिमे 'सर्वे' यह पद विशेष्यके तुल्य व्यवहृत हुआ है।

※ यद् और तद्—ये दो शब्द नित्यसम्बन्धविशिष्ट, अर्थात् 'यद्'-शब्दका प्रयोग करनेसेही इसके पश्चात 'तद्'-शब्दका प्रयोग करना होगा; यथा—(जो गुरुभक्त, वही शिष्य) यो गुरुभक्तः, स एव शिष्यः—यहाँ 'यः' (जो) इस शब्दके पश्चात् 'सः' (वह)

इस शब्दका प्रयोग न करनेसे अर्थकी सम्यक् उपलब्धि अथवा आकाङ्क्षाकी निवृत्ति नहीं होती।

अनुवाद करो—सुरेन्द्र, नरेन्द्र, गणेश—सब अपना अपना (स्वं स्वं) पाठ पढ़ते हैं (पठन्ति)। रमेशने उसे नहीं देखा (न अपश्यत्)। जो आश्रित जनकी (द्वितीया) रक्षा नहीं करता, परमेश्वर उसका (द्वितीया) त्राण नहीं करते (न त्रायते)। बछड़े (वत्स) विचरते हैं (विचरन्ति)। दीप जलता है (ज्वलति)। वह जाय (यातु)। वह आदमी वहाँ (तत्र) जायेगा (यास्यति)। घोड़े रथ ले जाते हैं (वहन्ति)। वे पुत्रको दुलार करते हैं (लालयन्ति)।

किम् शब्द (कौन, क्या Who, what)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

※ जहाँ किसी अपरिज्ञात वस्तु, व्यक्ति वा गुणके जाननेकी इच्छासे प्रश्नार्थमें 'क्या' 'कौन' इत्यादि शब्दका व्यवहार होता है, वहाँ संस्कृतमें 'किम्'-शब्दका प्रयोग करना चाहिये; यथा—(धर्म क्या?) कः धर्मः?; (कौन जाता है?) कः याति?; (किसको

मारता है) कं प्रहरति ?

अनुवाद करो—कौन मनुष्य ? किसको सिंह कहते हैं (वदन्ति) ? क्या उपकार ? कौन हाथ ? कौन किसको पूजता है ? कौन शिक्षक जाता है (गच्छति) ? कौन कहते हैं (कथयन्ति) । कौन जागता है (जागर्त्ति) ? कौन लाभ ? किसका हाथ ? कौन बालक हसता है (हसति) ? किसकी (द्वितीया) निन्दा करता है (निन्दति) ? राम किसको देखता है (पश्यति) ?

इदमादि ।

इदम् शब्द (यह This) ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	इमौ	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

अदस् शब्द (वह That).

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमून्
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु*

※ हिन्दीमें जहाँ विशेष्यसे पूर्व अथवा विशेष्यके स्थानमें 'यह' रहता है, संस्कृतमें वहाँ 'इदम्' वा 'एतद्' शब्दका व्यवहार किया जाता है ; और जहाँ 'वह' रहता है, वहाँ 'अदस्'-शब्दका प्रयोग करना होता है। यथा—(यह वृक्ष) अयं वृक्षः ; (वह मनुष्य) असौ मनुष्यः। विशेष्यके स्थानमें, यथा—(यह जाता है) अयं याति।

अनुवाद करो—यह संसार। वह व्याघ्र। यह मैं (अहम्) हूँ (अस्मि)। वह आता है (आगच्छति)। वह तालवृक्ष हिलता है (कम्पते)। वह इस ग्रन्थको पढ़ता है (पठति)। जिससे (येन) सुना जाता है (श्रूयते), उसे कर्ण कहते हैं (कथयन्ति)। निष्ठुर व्याध उसका (तस्य) हाथ बाँधता है (बध्नाति)।

---

* इदमः प्रत्यक्षगतं, समीपतरवर्त्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं, तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

अर्थात् 'इदम्'-शब्दके रूप—प्रत्यक्षवस्तुविषयमें, 'एतद्'-शब्दके रूप—अत्यन्तसमीपस्थवस्तुविषयमें, 'अदस्'-शब्दके रूप—दूरस्थितवस्तुविषयमें, और 'तद्'-शब्दको परोक्षवस्तुविषयमें जानना।

युष्मद् शब्द (तू, तुम You—मध्यमपुरुष Second person)

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, वः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

अस्मद् शब्द (मैं, हम I—उत्तमपुरुष First person)।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

सब लिङ्गोंमेही 'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्दके रूप एक प्रकार ।

कोई पद पूर्वमे रहनेसे, युष्मद् और अस्मद्-शब्द-निष्पन्न त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, वः, नः—ये पद विकल्पसे व्यवहृत होते हैं; यथा—(ईश्वर तेरी रक्षा करे) ईश्वरः त्वा अथवा त्वां पातु;

(राजा तुझे अर्थ देगा) भूप: ते अथवा तुभ्यम् अर्थं दास्यति; (हमारे मनोरथ पूर्ण हुए) पूर्णा. नः मनोरथाः; (वह हम दोनोंको उपहार देगा) स नौ अथवा आवाभ्याम् उपहारं दास्यति; (परमेश्वर हमारी रक्षा करेगा) परमेश्वरः नः अथवा अस्मान् रक्षिष्यति।

च, वा, एव—इन अव्ययशब्दोंके योगसे त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, वः, नः—इन पदोंका व्यवहार नहीं होता: यथा—(शिक्षक तुझे और मुझे उपदेश देता है) शिक्षकः त्वां मां च उपदिशति; (ईश्वर तेरा और मेरा मङ्गल करे) ईश्वरः तव मम च मङ्गलं विदधातु; (वह तुम दोनो और हम दोनोको धन देगा) सः युवाभ्याम् आवाभ्यां च धनं दास्यति; (वह तुम्हारा और हमारा गुरु) *सः युष्माकम् अस्माकं च गुरुः।* 'वा' और 'एव' शब्दके योगसेभी ऐसा होगा।

वाक्यके आरम्भमें और श्लोकके चरणके आदिमें त्वा, मा इत्यादि पदोंका व्यवहार नहीं होता। यथा—वाक्यके आदिमें—(मेरी पुस्तक दो) मम पुस्तकं देहि;—यहाँ 'मम' के स्थानमें 'मे' नहीं होगा। चरणके आदिमें—

त्वा स रक्षति यत्नेन, मा स द्वेष्टि निरन्तरम्।
ते दोष एव, नैवात्र मे दोषो विद्यते सखे! ॥
ऐसा प्रयोग नहीं होता।
त्वां स रक्षति यत्नेन, मां स द्वेष्टि निरन्तरम्।
तवैव दोषो, नैवात्र मम दोषोऽस्ति कश्चन ॥
ऐसा प्रयोग होता है।

शुद्ध करो—माता ते मे च मङ्गलं प्रार्थयते । तं विना वां नौ च उपायो नास्ति। स ते मे च उपकारं करिष्यति । श्यामः नः एव आलापं श्रणोति। नः धनं देहि ।

☞ धिक्, प्रति, यावत्, अनु, अन्तरेण, अन्तरा और निकषा शब्दके योगसे द्वितीया विभक्ति होती है; यथा—(दरिद्रके प्रति सदय हो) दरिद्रं प्रति सदयो भव ; (जो दरिद्रके प्रति सदय नहीं होता, उस निष्ठुरको धिक्कार) यो हि दरिद्रं प्रति सदयो न भवति, धिक् अस्तु तं निष्ठुरम् ; (मृत्युतक आचार्य्यके अधीन हो) प्राणात्ययं यावत् आचार्याधीनो भव ; (शिक्षकके पीछे जा) शिक्षकम् अनुयाहि ; (श्रम विना विद्यालाभ नहीं होता) श्रमम् अन्तरेण विद्यालाभो न भवति ; (आचार विना धर्म नहीं होता) आचारम् अन्तरेण धर्मों न भवति; (तेरे और मेरे बीचमे वह बैठे) त्वां मां च अन्तरा स उपविशतु ; (शिवजीके पास अन्नपूर्णा) शिवं निकषा अन्नपूर्णा ।

अनुवाद करो—तुम दरिद्रोंके प्रति सद्व्यवहार करो (कुरुत) । हम तुम्हें छोड़ (विना) रहनेको (स्थातुम्) असमर्थ । बहुत कालसे (यावत्) तुझे देखता हूँ (पश्यामि) । राम अत्यन्त धार्मिक; तू उनका (द्वितीया) अनुवर्त्तन कर (अनुवर्त्तस्व) । सूर्य्यके पास अँधेरा नहीं रहता (न तिष्ठति) । तू और मै कभी (कदाऽपि) सदालाप छोड़ असदालाप नहीं करेंगे (न करिष्यावः) । तू अब (अधुना) पाठके प्रति मनोनिवेश कर (कुरु); मै भी (अपि) अपना काम (स्वकार्य्यम्) करूँ (अनुतिष्ठामि) ।

द्वितीय और तृतीय शब्द ।

'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दके रूप 'देव'-शब्दके तुल्य; केवल चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमीके एकवचनमें विकल्पसे 'सर्व'-शब्दके तुल्य; यथा—

	चतुर्थी	पञ्चमी	सप्तमी
द्वितीय	द्वितीयस्मै	द्वितीयस्मात्	द्वितीयस्मिन्
	द्वितीयाय	द्वितीयात्	द्वितीये
तृतीय	तृतीयस्मै	तृतीयस्मात्	तृतीयस्मिन्
	तृतीयाय	तृतीयात्	तृतीये

*　　*　　*

आकारान्त ।

हाहा शब्द (गन्धर्व-विशेष* Name of a Gandharva) ।

प्रथमा—हाहाः, हाहौ, हाहाः; द्वितीया—हाहाम्, हाहौ, हाहान्; तृतीया—हाहा, हाहाभ्याम्, हाहाभिः; चतुर्थी—हाहे, हाहाभ्याम्, हाहाभ्यः; पञ्चमी—हाहाः, हाहाभ्याम्, हाहाभ्यः; षष्ठी—हाहाः, हाहौः, हाहाम्; सप्तमी—हाहे, हाहौः, हाहासु; सम्बोधन—हाहाः !

विश्वपा शब्द (विश्वरक्षक; सूर्य्य; चन्द्र; अग्नि Protector of all; sun ; moon; fire)

प्रथमा—विश्वपाः, विश्वपौ, विश्वपाः; द्वितीया—विश्वपाम्, विश्वपौ, विश्वपः; तृतीया—विश्वपा, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभिः; चतुर्थी—विश्वपे, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः; पञ्चमी—विश्वपः, विश्वपाभ्याम्,

* 'हूहू'-शब्दमें इसी अर्थमें होता है ।

विश्वपाभ्यः ; षष्ठी—विश्वपः, विश्वपोः, विश्वपाम्; सप्तमी—विश्वपि, विश्वपोः, विश्वपासु; सम्बोधन—विश्वपाः !

सब धातुनिष्पन्न (क्विप्-प्रत्ययान्त) आकारान्त शब्दके (यथा—गोपा, गोदा, अन्तस्था इत्यादि) रूप 'विश्वपा'-शब्दके तुल्य । पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमे समान ।

इकारान्त ।

मुनि शब्द (तपस्वी An ascetic) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मुनिः	मुनी	मुनयः
द्वितीया	मुनिम्	मुनी	मुनीन्
तृतीया	मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः
चतुर्थी	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
पञ्चमी	मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
षष्ठी	मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्
सप्तमी	मुनौ	मुन्योः	मुनिषु
सम्बोधन	मुने	मुनी	मुनयः

प्रायः सब इकारान्त पुंलिङ्ग शब्दके रूप 'मुनि'-शब्दके तुल्य । यथा—

विधि (ब्रह्मा; विधान; प्रकार; नियम इत्यादि); ऋषि (मन्त्रद्रष्टा मुनि); हरि (विष्णु); पयोधि, वारिधि (सागर, समुद्र); अग्नि, वह्नि (अनल, आग); निधि (रत्न); गिरि (पर्वत); रवि (सूर्य्य); कपि (वानर); कवि (काव्यकर्त्ता और पण्डित); यति (सन्न्यासी); नरपति (राजा) ।

※ हिन्दीमे करणविहित 'से' 'द्वारा' विभक्ति-घटित पदके अनुवादमे [करणे] तृतीया विभक्तिका व्यवहार होता है ; यथा—(पाँवोंसे जाता है) पादाभ्यां याति ; (यत्नसे निधि मिलती है) यत्नेन निधि: प्राप्यते ; (परिश्रमसे कार्य्य सिद्ध होता है) परिश्रमेण कार्य्यं सिध्यति।

अनुवाद करो—मनोयोगसे पाठ चिन्ता करो (चिन्तय)। अग्निद्वारा पाक करता है (पचति)। वानर हाथसे वृक्ष उत्पाटन करते हैं (उत्पाटयन्ति)। राजा नियमसे शासन करता है (शास्ति)। मुनिलोग सर्वदा ईश्वरका (द्वितीया) ध्यान करते हैं (ध्यायन्ति)। अगस्त्य ऋषिने सागर पान किया था (पपौ)। देख (पश्य), वह एक गिरि। मैंने उस नृपतिको देखा है (दृष्टवान्)। हरिका (द्वितीया) स्मरण कर (स्मर)।

पति शब्द (स्वामी, नायक Master ; husband)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	पते	पती	पतयः

श्रीपति, नृपति, भूपति प्रभृति समासनिष्पन्न 'पति'-भागान्त शब्दके रूप पुंलिङ्गमे 'मुनि'-शब्दके तुल्य ।

सखि शब्द (मित्र, सहचर Friend, Companion) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	सखे	सखायौ	सखायः

कति, यति और तति शब्द ।

कति (कितना); यति (जितना); तति (तितना);—ये शब्द नित्य बहुवचनान्त; इनके रूप तीनो लिङ्गोंमेही इस प्रकार—कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु । इत्यादि ।

शुद्ध करो—कतयः लोकाः ? यतिः विधिः वर्त्तन्ते, सर्वं मनुष्यः तं पालयन्ति । सखिं पश्य । नरपत्युः अपकारः मा कुरु । अहं पतेः समीपं यास्यामि ।

☙ हिन्दीमे जहाँ 'साथ' 'सहित' वा 'सङ्ग' शब्दके योगसे षष्ठी विभक्ति रहती है, संस्कृतमे वहाँ उन्हीं सहार्थबोधक 'सह'

प्रश्न । हरि, अग्नि और नरपति शब्दके रूप लिखो ।

'सार्द्धम्' 'साकम्' समम्' प्रभृति शब्दोंके योगसे अथवा 'सह' अर्थमे तृतीया-विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये; यथा—(रामके साथ लक्ष्मण गया था) रामेण सह लक्ष्मणः जगाम, अथवा रामेण लक्ष्मण जगाम।

अनुवाद करो—रामके साथ श्याम जाता है (गच्छति)। पतिके साथ विवाद न करना (न कुर्य्यात्)। ज्ञातिके सङ्ग कलह करना नहीं चाहिये (न कुर्य्यात्)। तुम्हारे साथ मै नहीं जाऊंगा (न यास्यामि)। बालकोंके साथ सद्व्यवहार करना (कुर्य्यात्)। सखाके साथ सद्भाव रहता है (तिष्ठति)। नरपतिके साथ विरोध नहीं करना। लड़के शिक्षकके साथ घूमनेको (भ्रमितुम्) जाते हैं (गच्छन्ति)।

द्वि शब्द (दो Two)। द्विवचनान्त।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
द्वौ	द्वौ	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

त्रिशब्द (तीन Three)। बहुवचनान्त।

त्रयः त्रीन् त्रिभिः त्रिभ्यः त्रिभ्यः त्रिभ्यः त्रयाणाम् त्रिषु।

※ 'एक' 'दो' 'तीन' शब्दके संस्कृत अनुवादमे यथाक्रम 'एक' 'द्वि' 'त्रि' शब्दका व्यवहार होता है; यथा—(एक ब्राह्मण) एकः ब्राह्मणः; (दो हाथ) द्वौ हस्तौ; (तीन आदमी) त्रयः लोकाः; ('एक साँप जाता है) एकः सर्पो याति; (दो हरिण दौड़ते हैं) द्वौ हरिणौ धावत.; (यहाँ तीन छात्र हैं) अत्र त्रयः छात्राः सन्ति।

अनुवाद करो—एक हरिण। दो पांव। तीन मुनि। दो बालक

हसते हैं (हसतः)। एक ऋषि जाता है (गच्छति)। ये तीन आदमी यहां रहें (तिष्ठन्तु)। दो सहोदर खाते हैं (खादतः)। मनुष्य दो पावोंसे गमन करते हैं (गच्छन्ति)। एक चन्द्र समस्त संसारको उजाला करता है (प्रकाशयति)।

ईकारान्त ।

सुधी शब्द (पण्डित Wise, learned)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	सुधीः	सुधियौ	सुधियः

सुश्री (शोभान्वित, खूबसूरत); निर्भी (भयहीन); शुद्धधी (पवित्रबुद्धिसम्पन्न); मन्दधी (अल्पबुद्धि); हतधी (बुद्धिहीन); अपह्री (निर्लज्ज);—इस प्रकार क्विबन्त (क्विप्-प्रत्ययान्त) ईकारान्त पुंलिङ्ग शब्दके रूप 'सुधी'-शब्दके तुल्य ।

* * * *

सेनानी शब्द (सेनाध्यक्ष; कार्त्तिकेय Leader of an army)

प्रथमा—सेनानीः, सेनान्यौ, सेनान्यः ; द्वितीया—सेनान्यम्, सेना-

न्यौ, सेनान्यः; तृतीया-सेनान्या, सेनानीभ्याम्, सेनानीभिः; चतुर्थी—सेनान्ये, सेनानीभ्याम्, सेनानीभ्यः; पञ्चमी—सेनान्यः, सेनानीभ्याम्, सेनानीभ्यः; षष्ठी—सेनान्यः, सेनान्योः, सेनान्याम्; सप्तमी—सेनान्याम्, सेनान्योः, सेनानीषु; सम्बोधन—सेनानीः!

अग्रणीः (अग्रगण्य); ग्रामणी (ग्रामका प्रधान; नाई)। अग्रणी-प्रभृति 'नी'-धातु-निष्पन्न शब्दोंके रूप 'सेनानी'-शब्दके तुल्य।

'प्रधी'-शब्दके रूप 'सेनानी' शब्दके तुल्य; केवल सप्तमीके एकवचनमें 'प्रध्यि' होता है। 'वातप्रमी' (वायुवत् वेगगामी मृग)-शब्दके रूप 'सेनानी'-शब्दके तुल्य; केवल द्वितीयाके एकवचन और बहुवचनमें यथाक्रम 'वातप्रमीम्' और 'वातप्रमीन्', तथा सप्तमीके एकवचनमें 'वातप्रमी' होता है।

उकारान्त।

साधु (सत् A noble and virtuous man)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	साधुः	साधू	साधवः
द्वितीया	साधुम्	साधू	साधून्
तृतीया	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभिः
चतुर्थी	साधवे	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
पञ्चमी	साधोः	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
षष्ठी	साधोः	साध्वोः	साधूनाम्
सप्तमी	साधौ	साध्वोः	साधुषु
सम्बोधन	साधो	साधू	साधवः

सब उकारान्त पुंलिङ्ग शब्दके रूप 'साधु'-शब्दके तुल्य* । यथा—प्रभु, विभु (स्वामी); शिशु (बच्चा); विधु (चन्द्र); रिपु, शत्रु (विपक्ष); वटु (वालक; ब्रह्मचारी); वायु (हवा); भानु (सूर्य्य और किरण) ।

शुद्ध करो—इधीयः पुरुषाः । साधुः मानवाः । साधवो ऋषिः । उज्ज्वलं भानवः । पटुः मनुष्याः ।

ऊकारान्त ।

प्रतिभू शब्द (तत्स्थानीय, ज़ामिन Bail, surety) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रतिभूः	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
द्वितीया	प्रतिभुवम्	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
तृतीया	प्रतिभुवा	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभिः
चतुर्थी	प्रतिभुवे	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः
पञ्चमी	प्रतिभुवः	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः

* क्रोष्टृ(शृगाल)-शब्दके रूप—१मा—क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः ;२या—क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ, क्रोष्टून्; ३या—क्रोष्ट्रा क्रोष्टुना, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभिः; ४र्थी—क्रोष्ट्रे क्रोष्टवे, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभ्यः; ५ मी—क्रोष्टुः क्रोष्टोः, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभ्यः; ६ष्ठी—क्रोष्टुः क्रोष्टोः, क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः, क्रोष्टूनाम्; ७मी—क्रोष्टरि क्रोष्टौ, क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः, क्रोष्टुषु; सम्बोधन—क्रोष्टो, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः ।

प्रश्न । (१) 'विधौ'—यह पद सप्तमीके एकवचनमें किस किस शब्दसे निष्पन्न हो सकता है ? (२) सुश्री और अपह्नी शब्दके रूप लिखो ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	प्रतिभुवः	प्रतिभुवोः	प्रतिभुवाम्
सप्तमी	प्रतिभुवि	प्रतिभुवोः	प्रतिभूषु
सम्बोधन	प्रतिभूः	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः

मनोभू (कन्दर्प, काम) ; अग्निभू (कार्त्तिकेय); स्वभू, स्वयम्भू (ब्रह्मा; विष्णु, शिव), अधिभू (प्रभु) ;—ऐसे क्विबन्त ऊकारान्त शब्दके रूप 'प्रतिभू'-शब्दके तुल्य* ।

अनुवाद करो—साधुलोग सब स्थानोंमें (सर्वत्र) विचरण करते हैं (विचरन्ति)। साधु द्वारा यह संसार पवित्र। भानु प्रखर किरण वितरण करता है (वितरति)। पशु जो आहार पाते हैं (प्राप्नुवन्ति), वही खाते हैं (भक्षयन्ति)। सुधी व्यक्ति का (द्वितीया)सबलोग सम्मान करते हैं (सम्मानयन्ति)। उस सुश्री शिशुको अवलोकन करो (अवलोकय)। अग्नि शुष्क तरुको दग्ध करता है (दहति)। ऋषिलोग वेद पढ़ते हैं (पठन्ति)। वे तुझे जामिन मानते हैं (मन्यन्ते)। स्वयम्भूको प्रणाम करो (प्रणम)।

* * * *

सुलू शब्द (उत्तम छेदनकारी A good cutter)।

प्रथमा—सुलूः, सुल्वौ, सुल्वः; द्वितीया—सुल्वम्, सुल्वौ, सुल्वः; तृतीया—सुल्वा, सुलूभ्याम्, सुलूभिः; चतुर्थी—सुल्वे, सुलूभ्याम्, सुलूभ्यः; पञ्चमी—सुल्वः, सुलूभ्याम्, सुलूभ्यः; षष्ठी—सुल्वः, सुल्वोः, सुल्वाम्; सप्तमी—सुल्वि, सुल्वोः, सुलूषु; सम्बोधन—सुलूः।

* 'सुभू'-शब्दभी इसप्रकार।

खलपू (फराश, झाड़ूदार); वर्षाभू (भेक); करभू (नख); हन्भू (सर्प; सूर्य्य; चक्र; वज्र)—इन शब्दोंके रूप 'सुलू'-शब्दके तुल्य। 'हूहू'-शब्दके रूप 'सुलू'-शब्दके तुल्य; केवल द्वितीयाके एकवचनमे 'हूहूम्' और वहुवचनमे 'हूहून्' होता है।

ऋकारान्त।

दातृ शब्द (जो दान करता है A giver)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दाता	दातारौ	दातारः
द्वितीया	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृतीया	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
चतुर्थी	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
पञ्चमी	दातुः	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
षष्ठी	दातुः	दात्रोः	दातॄणाम्
सप्तमी	दातरि	दात्रोः	दातृषु
सम्बोधन	दातः	दातारौ	दातारः

'पितृ'-प्रभृति*-भिन्न सब ऋकारान्त पुंलिङ्ग शब्दके रूप 'दातृ'-शब्दके तुल्य। यथा—

कर्त्तृ (जो करता है); धातृ, विधातृ (जो विधान करता है); द्रष्टृ (दर्शनकारी); श्रोतृ (श्रवणकारी); ज्ञातृ (जो जानता है, बोद्धा); सवितृ (सूर्य्य); जेतृ (जयकारी); हन्तृ (हननकारी); क्रेतृ (जो

---

* पिता माता ननन्दा ना सव्येष्ठृ-भ्रातृ-यातरः।
जामाता दुहिता देवा न तृणन्ता इमे दश॥

क्रय करता है); स्रष्टृ (सृष्टिकर्त्ता)।

पितृ शब्द (जनक, बाप Father)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पञ्चमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	पितः	पितरौ	पितरः

भ्रातृ (भाई); जामातृ (दामाद); देवृ (देवर); सव्येष्टृ (सारथि); नृ (नर);—इन शब्दोंके रूप 'पितृ'-शब्दके तुल्य; केवल 'नृ'-शब्दकी षष्ठीके बहुवचनमें 'नृणाम्, नॄणाम्'—ये दो पद होते हैं।

※ हिन्दीमें जहाँ 'दो, देता है, देता हूँ' इत्यादि दानार्थक धातुकी क्रियाके योगसे 'को' विभक्तिका प्रयोग रहता है, संस्कृतमें वहाँ [सम्प्रदाने] चतुर्थी विभक्ति होती है; यथा-(दाता दरिद्रको धन देता है) दाता दरिद्राय धनं ददाति; (तू वस्त्रहीनको वस्त्र दे) त्वं वस्त्रहीनाय वस्त्रं देहि।

अनुवाद करो—शिक्षकको उपहार दो (देहि)। अध्यापक छात्रोंको आहार देते हैं (ददति)। विधाताको पुष्पाञ्जलि दो। हे

प्रश्न। 'पितृ' और 'दातृ' शब्दके बीचमें रूपका क्या वैषम्य है?

विधातः ! तुझे क्या दूंगा (किं दास्यामि) ? कन्यादाता दामादको उपहार देता है (यच्छति) । पिताको प्रणाम कर (प्रणम) । सारथि योद्धाकी (योद्धृ) (द्वितीया) रक्षा करता है (रक्षति) । हन्तापर विश्वास न करो (मा विश्वसिहि) । सूर्य्यको अर्घ दो । दुष्टको आश्रय नहीं देना (दद्यात्) । मुझे दो । शरणागतको अभय दो ।

ऐकारान्त-'रै' (धनवाचक)-शब्दके रूप सन्धि-द्वारा साध्य ; केवल विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'रै'-शब्दके स्थानमे 'रा' होता है ; यथा—राः, रायौ, रायः ;...राभ्याम् इत्यादि ।

ओकारान्त ।

गो शब्द (वैल Bull) ।*

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
सम्बोधन	गौः	गावौ	गावः

औकारान्त—ग्लौ शब्द (चन्द्र ; कर्पूर Moon ; camphor) ।

प्रथमा- ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः ; द्वितीया—ग्लावम् , ग्लावौ, ग्लावः ;

---

* 'गाय' अर्थमे 'गो'-शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है । रूप इसीप्रकार ।

तृतीया-ग्लावा, ग्लौभ्याम्, ग्लौभिः ; चतुर्थी-ग्लावे, ग्लौभ्याम्, ग्लौभ्यः ; पञ्चमी-ग्लावः, ग्लौभ्याम्, ग्लौभ्यः ; षष्ठी-ग्लावः, ग्लावोः, ग्लावाम् ; सप्तमी-ग्लावि, ग्लावोः, ग्लौषु ; सम्बोधन-ग्लौः ।

अनुवाद करो-काली गौ । यति गायको घास देता है (ददाति) । शस्यपति गायोंको बांधता है (बध्नाति) । चञ्चल बालक गायके साथ दौड़ते हैं (धावन्ति) । मेघ वायुके साथ यातायात करता है (गतागतं करोति) ।

स्त्रीलिङ्ग-निर्णय ।

१५१ । (क) आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग : यथा-माला, शाखा, बाला, कन्या इत्यादि ।

(ख) स्त्रीजातीय प्राणिवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग* ; यथा-हंसी, कुमारी।

(ग) एकस्वर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ; यथा—श्रीः, भूः ।

(घ) भूमि, विद्युत्, नदी, लता, रात्रि, दिक्, श्रेणि, बुद्धि, वाणी, शोभा, सम्पत और विपत्-पर्य्याय शब्द स्त्रीलिङ्ग ।

(ङ) 'प्रतिपद्'-प्रभृति तिथिवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग ।

(च) 'ऊनविंशति' से 'नवनवति' तक सङ्ख्यावाचक शब्दभी स्त्रीलिङ्ग ।

(छ) अप्, अप्सरस्, जलौकस्, (पुष्पार्थे) सुमनस्, और सिकता शब्द स्त्रीलिङ्ग ।

(ज) समूहार्थ और भावार्थमे विहित 'तल्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्री-

---

* किन्तु 'दार'-शब्द पुंलिङ्ग, 'कलत्र'-शब्द क्लीवलिङ्ग ।

लिङ्ग ; यथा—जनता (जनसमूह) ; लघुता, गुरुता, मूर्खता ।

(ञ) क्ति, अ, अङ्, क्यप्, श और अनि-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ; यथा-(क्ति) मतिः ; (अ) प्रशंसा ; (अङ्) भीपा ; (क्यप्) विद्या ; (श) क्रिया ; (अनि) तरणिः—किन्तु 'अशनि'-शब्द पु०, स्त्री०।

स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१५२ । आकारान्त और ईकारान्त शब्दके 'सु' का लोप होता है ; यथा-लता + सु = लता ; नदी + सु = नदी ।*

१५३ । आकारान्त और इकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ई', और उकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ऊ' होता है ; यथा—लता + औ = लता + ई = लते ; मति + औ = मति + ई = मती ; धेनु + औ = धेनु + ऊ = धेनू ।

१५४ । 'टा' और 'ओस्' परे रहनेसे, आकारके स्थानमे 'अय्' होता है ; यथा—लता + टा = लत् + अय् + आ = लतया ; लता + ओस् = लत् + अय् + ओः = लतयोः ।

१५५ । 'ङे', 'ङसि', 'ङस्' और 'ङि' परे रहनेसे, आकारके पश्चात् अकारान्त 'य' होता है, और 'ङि' के स्थानमे 'आम्' होता है ; यथा-लता + ङे = लता + य + ए = लतायै , लता + ङसि = लता + य + अः = लतायाः ; लता + ङस् = लता + य + अः = लतायाः ; लता + ङि = लता + य + आम् = लतायाम् ।

१५६ । आकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमे 'नाम्' होता है ;

---

* तन्त्री, तरी, लक्ष्मी, श्री, ह्री, भी प्रभृतिके नहीं होता ।

यथा—लता + आम् = लता + नाम् = लतानाम् ।

१५७। आकारान्त शब्दके सम्बोधनमें 'सु' का लोप, और आकारके स्थानमें एकार होता है ; यथा-लता + सु = लत् + ए = लते ।

१५८। इकारान्त, उकारान्त और धातुनिष्पन्न-भिन्न ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दके 'अम्' और 'शस्' के अकारका लोप होता है ; यथा-मति + अम् = मति + म् = मतिम् ; धेनु + अम् = धेनु + म् = धेनुम् ; नदी + अम् = नदी + म् = नदीम् ; नदी + शस् = नदी + अः = नदी + : = नदीः ।

१५९। 'शस्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है ; यथा-मति + शस् = मती + अः = मती + : = मतीः ; धेनु + शस् = धेनू + अः = धेनू + : = धेनूः ।

१६०। इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'ङे' के स्थानमें 'ऐ', और 'ङसि' तथा 'ङस्'के स्थानमें 'आः' होता है—विकल्पसे। विकल्पपक्षमें—इकारके स्थानमें एकार, और उकारके स्थानमें ओकार होता है ; पश्चात् 'ङसि' और 'ङस्' के अकारका लोप होता है । यथा—मति + ङे = मति + ऐ = मत्यै ; पक्षे—मति + ङे = मत् + ए + ङे = मते + ए = मतये । धेनु + ङसि = धेनु + आः = धेन्वाः ; पक्षे—धेनु + ङसि = धेन् + ओ + ङसि = धेनो + अः = धेनो + : = धेनोः ।

१६१। इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमें 'नाम्' होता है, और पूर्वस्वर दीर्घ होता है ; यथा-मति + आम् = मति + नाम् = मती + नाम् = मतीनाम् ; धेनु + आम् = धेनु + नाम् = धेनूनाम् ; स्वसृ + आम् = स्वसृ + नाम् = स्वसॄ + नाम् = स्वसॄणाम्

(सू० १००)।

१६२। इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'ङि' के स्थानमे 'आम्' और 'औ' होते हैं ; औकार परे रहनेसे, इकार और उकारका लोप होता है। यथा—मति + ङि = मति + आम् = मत्याम् ; पक्षे—मति + ङि = मति + औ = मत् + औ = मतौ। धेनु + ङि = धेनु + आम् = धेन्वाम् ; पक्षे—धेनु + ङि = धेनु + औ = धेन् + औ = धेनौ।

१६३। इकारान्त और उकारान्त शब्दके सम्बोधनके एकवचनमे 'इ' के स्थानमे 'ए', और 'उ' के स्थानमे 'ओ' होता है ; यथा-मति + सु = मते (१३५ सू०) ; धेनु + सु = धेनो।

१६४। ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दके 'ङे' के स्थानमे 'ऐ', 'ङसि' तथा 'ङस्' के स्थानमे 'आः', और 'ङि' के स्थानमे 'आम्' होता है; धातुनिष्पन्न होनेसे विकल्पसे होता है। यथा—नदी + ङे = नदी + ऐ = नद्यै ; वधू + ङसि = वधू + आः = वध्वाः ; वधू + ङि = वधू + आम् = वध्वाम्। (धातुनिष्पन्न) श्री + ङे = श्री + ऐ = श्र् + इय् + ऐ = श्रियै (१४२ सू०) ; पक्षे—श्री + ङे = श्री + ए = श्रिये (१४२ सू०) ; श्री + ङसि = श्री + आः = श्र् + इय् + आः = श्रियाः (१४२ सू०) ; भू + ङि = भू + आम् = भ् + उव् + आम् = भुवाम् (१४२ सू०) ; पक्षे—भू + ङि = भू + इ = भ् + उव् + इ = भुवि (१४२ सू०)।

१६५। ईकारान्त ओर ऊकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमे 'नाम्' होता है ; यथा—नदी + आम् = नदीनाम् ; वधू + आम् = वधूनाम् ; स्त्री + आम् = स्त्री + नाम् = स्त्रीणाम् (१०० सू०) ; भू + आम् = भूनाम्।

१६६। धातुनिष्पन्न-भिन्न ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दके सम्बोधनमें 'स' का लोप और अन्त्यस्वर ह्रस्व होता है; यथा—नदी+स= नदि; वधू+स=वधु।

१६७। स्वरवर्ण परे रहनेसे, धातुनिष्पन्न ईकारान्त शब्दके 'ई' के स्थानमें 'इय्', और ऊकारान्त शब्दके 'ऊ' के स्थानमें 'उव्' होता है; 'आम्' परे विकल्पसे होता है; 'इय्' और 'उव्' होनेसे 'आम्' के स्थानमें 'नाम्' नहीं होता; यथा—श्री+औ=श्र्+इय्+औ=श्रियौ; भू+औ=भ्+उव्+औ=भुवौ; श्री+आम्=श्र्+इय्+आम्= श्रियाम्, (पक्षे) श्रीणाम् (१६० सू); भू+आम्=भ्+उव्+आम्=भुवाम्, (पक्षे) भूनाम् (१६९ सू०)।

१६८। ऋकारान्त शब्दके 'शस्' के अकारका लोप होता है, और अन्त्यस्वर दीर्घ होता है; यथा-स्वसृ+शस्=स्वसृ+अः=स्वसॄ+ः =स्वसॄः।

सर्वनाम स्त्रीलिङ्ग शब्दका साधारण सूत्र।

१६९। आकारान्त सर्वनाम शब्दके 'ङे'के स्थानमें 'स्यै', 'ङसि' तथा 'ङस्' के स्थानमें 'स्याः', 'ङि'के स्थानमें 'स्याम्', और 'आम्' के स्थानमें 'साम्' होता है; 'स्य' परे आकारके स्थानमें अकार होता है; अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'लता'-शब्दके तुल्य।

स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द ।

आकारान्त ।

लता शब्द (वेल A creeper) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लता	लते	लताः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः
पञ्चमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
सम्बोधन	लते	लते	लताः

प्रायः सब आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'लता'-शब्दके तुल्य । यथा—

विद्या (ज्ञान); शुश्रूषा (सेवा); शिखा (चूड़ा, अग्रभाग; ज्वाला); सेना (सैन्य); प्रभा, आभा (दीप्ति); शाखा (विटप, डाली); पाठशाला (विद्यालय); प्रजा (सन्तति; जन) ।

किन्तु 'अम्बा' (मातृवाचक)-शब्दके सम्बोधनके एकवचनमे 'अम्ब' होता है ।

द्वितीया और तृतीया शब्द ।

द्वितीया और तृतीया शब्दके रूप 'लता'-शब्दके तुल्य; केवल चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्तिके एकवचनमे विकल्पसे 'सर्वा'-श-

न्दके तुल्य ; तथा—

	४र्थी	५ मी और ६ ष्ठी	७ मी
द्वितीया	द्वितीयस्यै	द्वितीयस्याः	द्वितीयस्याम्
	द्वितीयायै	द्वितीयायाः	द्वितीयायाम्

※ निवृत्ति, प्रतीकार और निमित्त अर्थमें चतुर्थी विभक्ति होती है ; यथा—(मशक निवृत्तिके लिये धूम) मशकाय धूमः ; (रोग-प्रतीकारके लिये औषध) रोगाय औषधम्, (दानके निमित्त धन उपार्जन करो) दानाय धनम् उपार्जय, (छात्रलोग पाठके लिये पाठशालामें जाते हैं (छात्राः पाठाय पाठशालां व्रजन्ति)।

अनुवाद करो—दरिद्र भिक्षाके लिये प्रतिद्वार (प्रतिद्वारम्) घूमते हैं (अटन्ति)। रोगी (व्याधित) चिकित्साके लिये औषध सेवन करे (सेवेत)। सबलोग जीविकाके लिये अर्थोपार्जन करें (अर्थोपार्ज्जनं कुर्य्युः)। शिक्षाके लिये पाठमें मन लगा (मनो निवेशय)। अश्वके लिये घास। राजा प्रजाओंका (द्वितीया) पुत्रके समान (पुत्रान् इव) पालन करता है (पालयति)। दुष्मन्तने शकुन्तलाका (द्वितीया) विवाह किया था (परिणीतवान्)। रामने सीताको वनमें भेजा था (निर्वासितवान्, अथवा वनं प्रेषितवान्)। जो सेवासे पितामाताको (पितरौ, मातापितरौ) सन्तुष्ट करता है (सन्तोषयति), ईश्वर उसका (तस्य) सहाय होता है (भवति)। भक्तलोग कृष्णके गलेमें माला पहराते हैं (परिधापयन्ति)। पर्वतशिलापर मयूर केका कर रहे हैं (कुर्वन्ति)।

* * * *

(क) 'शस्' से लेकर अन्य सब विभक्तियोंमे 'निशा'-शब्दके स्थानमे 'निश्', और 'नासिका'-शब्दके स्थानमे 'नस्' आदेश विकल्पसे होता है; यथा—

निशा शब्द (रात्रि Night)।

प्रथमा—निशा, निशे, निशाः; द्वितीया—निशाम्, निशे, निशाः निशः; तृतीया—निशया निशा, निशाभ्याम् निड्भ्याम्, निशाभिः निड्भिः; चतुर्थी—निशायै निशे, निशाभ्याम् निड्भ्याम्; निशाभ्यः निड्भ्यः; पञ्चमी—निशायाः निशः, निशाभ्याम् निड्भ्याम्, निशाभ्यः निड्भ्यः; षष्ठी-निशायाः निशः, निशयोः निशोः, निशानाम् निशाम्; सप्तमी-निशायाम् निशि, निशयोः निशोः, निशासु निट्सु; सम्बोधन—निशे!

नासिका शब्द (नाक Nose)।

प्रथमा—नासिका, नासिके, नासिकाः; द्वितीया—नासिकाम्, नासिके नासिकाः नसः; तृतीया—नासिकया नसा, नासिकाभ्याम् नोभ्याम्, नासिकाभिः नोभिः; चतुर्थी—नासिकायै नसे, नासिकाभ्याम् नोभ्याम्, नासिकाभ्यः नोभ्यः; पञ्चमी—नासिकायाः नसः, नासिकाभ्याम् नोभ्याम्, नासिकाभ्यः नोभ्यः; षष्ठी—नासिकायाः नसः, नासिकयोः नसोः, नासिकानाम् नसाम्; नासिकायाम् नसि, नासिकयोः नसोः, नासिकासु नःसु; सम्बोधन—नासिके!

(ख) विभक्तिके स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'जरा'-शब्दके स्थानमे विकल्पसे 'जरस्' आदेश होता है; यथा—

जरा शब्द (वार्द्धक्य Old age, decrepitude) ।

प्रथमा—जरा, जरे जरसौ, जराः जरसः ; द्वितीया—जराम् जरसम्, जरे जरसौ, जराः जरसः ; तृतीया—जरया जरसा, जराभ्याम्, जराभिः ; चतुर्थी—जरायै जरसे, जराभ्याम्, जराभ्यः ; पञ्चमी—जरायाः जरसः, जराभ्याम्, जराभ्यः ; षष्ठी—जरायाः जरसः, जरयोः जरसोः, जराणाम् जरसाम् ; सप्तमी—जरायाम् जरसि, जरयोः जरसोः, जरासु ; सम्बो—जरे !

शुद्ध करो—नृपतीं प्रजान् श्रमेन पालयति (पालन करता है) । गोपालः गां धारयति (पकड़ता है) । श्यामः निशां यापयति (गुज़ारता है) । हे अम्बे ! सर्वाय साधुभ्यः भिक्षां देहि । कुरु करुणां जगदम्बे ! ।

सर्वनाम स्त्रीलिङ्ग ।

सर्वा शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
सम्बोधन	सर्वे	सर्वे	सर्वाः

विश्वा, अन्या, अन्यतरा, कतरा, कतमा, पूर्वा, परा प्रभृति शब्दके

रूप 'सर्वा'-शब्दके तुल्य।

यद् शब्द।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	या	ये	याः
द्वितीया	याम्	ये	याः
तृतीया	यया	याभ्याम्	याभिः
चतुर्थी	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पञ्चमी	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
षष्ठी	यस्याः	ययोः	यासाम्
सप्तमी	यस्याम्	ययोः	यासु

तद् शब्द।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पञ्चमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

एतद् शब्द।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एषा	एते	एताः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	एताम्	एते	एताः
तृतीया	एतया	एताभ्याम्	एताभिः
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पञ्चमी	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
षष्ठी	एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयोः	एतासु

किम् शब्द।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभिः
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पञ्चमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु

अनुवाद करो—सब देवता पूजासे सन्तुष्ट होते हैं (सन्तुष्यन्ति)। किस देवताको पुष्पाञ्जलि दूंगा (दास्यामि) ? ममता क्या ? श्याम क्या वृत्तान्त (वार्त्ता) कहता है (कथयति) ? इसके लिये दया। पिपासासे आकुल होता है (आकुलीभवति) जरासे मनुष्य दुर्बल होता है (भवति)।

शुद्ध करो—तेन बालिकया उपकारान् भवन्ति। तस्मै कालिकाय

उपहारान् देहि । एता एव खेलितुं वेला । या जनः एतं देवताम् उपास्ते (उपासना करता है), अयं तस्मै स्वस्ति ददाति ।

इदम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्	इमे	इमाः
तृतीया	अनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः	आसु

अदस शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पञ्चमी	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
षष्ठी	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम
सप्तमी	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

प्रश्न । 'अस्यै' और 'अमुष्यै'–इन दोनो पदोंमे पुंलिङ्गके रूपके साथ क्या पार्थक्य है ?

अनुवाद करो—कौन वह बालिका? यह लड़की उस चिन्तासे विषण्ण होती है (भवति)। इस आतुरा वृद्धाकी (द्वितीया) घृणा न करो (न अवहेलय)। इस लज्जासे मेरे प्राण जाते हैं (प्रयान्ति)। वे गोपकन्यायें हर्षसे (हर्षेण अथवा हर्षम्) नृत्य करती हैं (नृत्यन्ति)। उनको उपहार दो (देहि)। इस दुर्दशासे पीड़ित होकर (सन्) अनेक यातनायें अनुभव करता हूँ (अनुभवामि)। विविध उपचारसे इस देवताकी (द्वितीया) पूजा करो (पूजय)। यह देवता ही (एव) मङ्गल (स्वस्ति) विधान करेगा (विधास्यति)।

इकारान्त।

मति शब्द (बुद्धि Intellect)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	मते	मती	मतयः

सब इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'मति'-शब्दके तुल्य। यथा—

क्षिति (पृथिवी); बुद्धि (ज्ञान); गति (गमन ; उपाय); व्रतति (लता); धूलि (धूल); कान्ति (सौन्दर्य); भ्रान्ति (भ्रम);

श्रान्ति (श्रम); आलि, श्रेणि, पङ्क्ति (कतार); स्मृति (स्मरण; धर्मशास्त्र); प्रणति (प्रणाम)।

द्वि शब्द—द्वा । द्विवचनान्त ।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
द्वे	द्वे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

त्रिशब्द । बहुवचनान्त ।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
तिस्रः	तिस्रः	तिसृभिः	तिसृभ्यः	तिसृभ्यः	तिसृणाम्	तिसृषु

अनुवाद करो—श्रमशील मानव शान्ति पाता है (प्राप्नोति)। भक्ति मुक्ति देती है (ददाति)। एकमात्र (केवल) बुद्धिसे उसने यह सम्पत्ति पायी (अलभत)। दो व्रततियाँ एक तरुको वेष्टन करती हैं (वेष्टेते)। भ्रान्ति बुद्धिको लुप्त करती है (लुम्पति)। वृक्षश्रेणिके बीचमे (अन्तराले) भानुकी रश्मि प्रविष्ट होती है (प्रविशति)। हमने मिताक्षराके साथ याज्ञवल्क्यकी स्मृति पढ़ी थी (पठितवन्तः)। धूलिसे दर्पण मलिन होता है (सम्पद्यते)।

ईकारान्त ।

नदी शब्द (River)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	नदि	नद्यौ	नद्यः

प्रायः सब ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'नदी'-शब्दके तुल्य । यथा—

मही (क्षिति); पृथिवी (भूमि); जननी (माता); गौरी, पार्वती (दुर्गा); राज्ञी (रानी); मञ्जरी (पल्लवाङ्कुर)।

अवी, तन्त्री, तरी और लक्ष्मी शब्दके प्रथमाके एकवचनमें यथाक्रम अवीः, तन्त्रीः, तरीः और लक्ष्मीः होते हैं ।

अनुवाद करो—नदीमें नौका जाती है (याति)। उत्तम स्त्रियाँ (नारी) स्वप्रशंसाका (द्वितीया) उच्चारण नहीं करतीं (न उच्चारयन्ति)। प्रजायें राजाको उपहार देती हैं (यच्छन्ति)। तीन स्त्रियाँ आती हैं (आगच्छन्ति)। बाहुओंसे नदी नहीं तैरना (न तरेत्)।

स्त्री शब्द (Woman; female; wife)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पञ्चमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
सम्बोधन	स्त्रि	स्त्रियौ	स्त्रियः

श्री शब्द (शोभा ; सम्पत ; लक्ष्मी Beauty ; prosperity ; the goddess of wealth) ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पञ्चमी	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
सप्तमी	श्रियाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु
सम्बोधन	श्रीः	श्रियौ	श्रियः

प्रायः सब धातु-निष्पन्न (क्विवन्त) ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'श्री'-शब्दके तुल्य । यथा—

धी (बुद्धि) ; भी (भय) ; ह्री (लज्जा) ।

शुद्ध करो—अयं पार्वती शिवस्य सह तिष्ठति (रहती है) । आहारेन श्री वर्द्धते (बढ़ती है) । एषाः स्त्रीः मुखरा । दशरथः त्रिन् स्त्रीन् पालयामास (पालन करता था) । तिस्रः व्याघ्राः धावन्ति (दौड़ते हैं) । द्वौ स्त्री दशरथं सम्मेनाते (मानती थीं) । भीना (भयसे) का-

तरं स्त्रियः ।

उकारान्त ।

धेनु शब्द (गाय Cow) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पञ्चमी	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
षष्ठी	धेन्वाः, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु
सम्बोधन	धेनो	धेनू	धेनवः

सब उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'धेनु'-शब्दके सदृश । यथा—

चञ्चु (चोंच); रज्जु (रस्सी); तनु (शरीर); रेणु (धूलि); काकु (विकृतकलध्वनि) ।

ऊकारान्त ।

वधू शब्द (बहू Bride; wife) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
सम्बोधन	वधु	वध्वौ	वध्वः

प्रायः सब ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'वधू'-शब्दके तुल्य। यथा—

चञ्चू (चोंच); चमू (सेना); श्वश्रू (सास); तनू (शरीर)।

☞ हिन्दीमे जहाँ 'से' चिह्न रहता है, संस्कृतमे वहाँ [अपादाने] पञ्चमी विभक्ति होती है; यथा—(विद्यालयसे छात्र आता है) विद्यालयात् छात्रः आगच्छति; (आदमी व्याघ्रसे डरता है) नरः व्याघ्रात् बिभेति; (लोहेसे वाण उत्पन्न होता है) लोहात् वाणः उत्पद्यते।

अनुवाद करो—मेघसे वृष्टि होती है (भवति)। शिक्षकसे विद्या सीखता है (शिक्षते)। असाधु धर्मसे नहीं डरता (न बिभेति)। चिड़ियाये (विहग) चोंचसे आहार ग्रहण करती हैं (गृह्णन्ति)। लड़के धूलसे खेलते हैं (क्रीडन्ति)। रस्सीसे गायको बाँधता है (बध्नाति)। हरि स्त्रीके साथ बात कर रहा है (आलपति)। यतिलोग सर्वदा सब स्त्रियोंका (द्वितीया) माताके समान (मातृवत्) आदर करते हैं (आद्रियन्ते)। पण्डितलोग बुद्धिसे (धी) सब भाव समझते हैं (बुध्यन्ते)। श्वशुर बहूको उपदेश देता है (उपदिशति)।

भू शब्द (पृथिवी ; स्थान Earth ; place) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूः	भुवौ	भुवः
द्वितीया	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृतीया	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
चतुर्थी	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पञ्चमी	भुवाः, भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
षष्ठी	भुवाः, भुवः	भुवोः	भूनाम्, भुवाम्
सप्तमी	भुवाम्, भुवि	भुवोः	भूषु
सम्बोधन	भूः	भुवौ	भुवः

भ्रू (नेत्रके ऊर्द्धस्थ रोमराजि); सुभ्रू (सुन्दरभ्रूयुक्त) ;— इनके रूप 'भू'-शब्दके तुल्य ; केवल 'सुभ्रू'-शब्दके सम्बोधनके एकवचनमे 'सुभ्रु' होता है। (पाणिनि-मते—सुभ्रूः)। "विमानना सुभ्रु ! कुतः पितुर्गृहे ?" कु. ५. ४३.।

ऋकारान्त।

स्वसृ शब्द (भगिनी, बहिन Sister)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वितीया	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः
तृतीया	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
चतुर्थी	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
पञ्चमी	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्
सप्तमी	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु
सम्बोधन	स्वसः	स्वसारौ	स्वसारः

मातृ शब्द (मा Mother) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	मातः	मातरौ	मातरः

दुहितृ (कन्या); यातृ (पतिकी भ्रातृपत्नी); ननन्द वा ननान्द (भर्तृभगिनी);—इनके रूप 'मातृ'-शब्दके तुल्य ।

ओकारान्त—गो और द्यो शब्द पुंलिङ्ग 'गो'-शब्दके तुल्य ; यथा—द्यौः, द्यावौ, द्यावः इत्यादि ।

औकारान्त—'नौ'-शब्द पुंलिङ्ग 'ग्लौ'-शब्दके तुल्य ।

शुद्ध करो—श्वश्रुः ननान्दणा सह कलहः करोति । पिताः त्रिशय त्रीन् दुहितॄन् ददाति । जलेनाहं मातॄन् तर्पयामि (तर्पण करता हूँ) । विज्ञ-जनाः विधवां स्वसां बिभ्रति (पोषण करते हैं) । ये भ्राता स्वसॄन् न

आद्रियते, मानवाः तं निन्दन्ति । । राजा दुहित्राय वासं ददाति। अस्मिन् भुवि मनुष्यः वसति । सुन्दरी तस्य भ्रुवः ।

क्लीवलिङ्ग-निर्णय ।

१७०। (क) वन, आकाश, गृह, हिम, छिद्र, मांस, रक्त, सुख, नेत्र, धन, पत्र, नृत्य, गीत, वाद्य, चिह्न और जल-वाचक शब्द क्लीवलिङ्ग। किन्तु (वनवाचक) अटवी शब्द—स्त्रीलिङ्ग, (आकाशवाचक) आकाश और विहायस् शब्द—पुं०, क्ली०; (गृहवाचक) निकाय्य, निलय और आलय शब्द—पुं०; (धनवाचक) अर्थ, रै और विभव शब्द—पुंलिङ्ग; (पत्रवाचक) छद शब्द—पुं०; (चिह्नवाचक) कलङ्क और अङ्क शब्द—पुं०; (जलवाचक) अप् शब्द—स्त्री०, घनरस—पुं०।

(ख) हल, स्वर्ण, लौह, ताम्र, लवण, पुष्प, फल, सुख, दुःख, पाप, पुण्य, शुभ और अशुभ-वाचक शब्द क्लीवलिङ्ग। किन्तु (हलवाचक) सीर शब्द—पुं०; लोह या लौह शब्द—पुं०, क्ली०; (लवणवाचक) सैन्धव शब्द—पुं०; (पापवाचक) पाप्मन् शब्द—पुं०; (पुण्यवाचक) धर्म शब्द—पुं०, क्ली०। विशेष विशेष फल और पुष्पके नामवाचक शब्द अन्यान्य लिङ्गभी हो सकते हैं; यथा—रम्भा, जपा इत्यादि।

(ग) व्यञ्जन और अनुलेपन-वाचक शब्द क्लीवलिङ्ग।

(घ) 'मित्र'-शब्द क्लीवलिङ्ग, किन्तु सूर्य-अर्थमे पुंलिङ्ग।

(ङ) शतादि सङ्ख्यावाचक शब्द क्लीवलिङ्ग। किन्तु वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म और सागर—पुं०।

(च) अन्न और वस्त्र-वाचक शब्द क्लीवलिङ्ग। किन्तु (अन्नवाचक)

ओदन शब्द—पुं०, क्लो० ; (वस्त्रवाचक) पट शब्द—पुं०, क्लो० ।

(छ) द्विस्वरविशिष्ट 'अस्', 'इस्' और 'उस्'-भागान्त शब्द क्लीव-लिङ्ग ; यथा—पयस्, हविस्, धनुस् । किन्तु वेधस् शब्द—पुं० ।

(ज) जिन शब्दोंकी उपधामे 'य' और 'ल' रहते हैं, वे क्लीवलिङ्ग होते हैं ; यथा—धान्यम्, कुलम् इत्यादि ।

(झ) भाववाच्यमे 'अनट्' (ल्युट्)-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग ; यथा—पानम्, ज्ञानम्, दानम्, गमनम् ।

(ञ) 'इत्र'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग ; यथा—लवित्रम्, चरित्रम् ।

(ट) भावे 'क्त'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग ; यथा—भाषितम् (भाषण), गीतम् (गान) ।

(ठ) भावार्थमे 'ष्ण' 'ष्णय' और 'त्व'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग ; यथा—(ष्ण) यौवनम् ; (ष्णय) साम्यम् ; (त्व) साधुत्वम् ।

(ड) समूहार्थमे 'ष्ण' 'ष्णय' और 'कण्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग ; यथा—(ष्ण) भैक्षम् ; (ष्णय) गाणिक्यम् ; (कण्) राजकम् ।

(ढ) विशेष्य होनेसे 'अयट्' और 'तयट्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीव-लिङ्ग ; यथा—द्वयम्, त्रितयम् ।

(ण) भाववाच्यमे 'कृत्य'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्गः ; यथा—(तव्य) भवितव्यम् ; (अनीय) भवनीयम् ; (य) भव्यम् ; (ण्यत्) भाव्यम् ; (ध्यण्) वाक्यम् ; (क्यप्) कृत्यम् ।

(त) अव्ययीभाव और समाहारद्वन्द्व-समासनिष्पन्न शब्द क्लीव-लिङ्ग ; यथा—प्रतिदिनम् ; पाणिपादम् ।

(थ) सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे 'रात्र'-भागान्त शब्द

क्लीवलिङ्ग होता है ; यथा—एकरात्रम्, द्विरात्रम् ।

(द) समाहारद्विगुसमासनिष्पन्न पात्रादि-शब्द क्लीवलिङ्ग ; यथा—पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम् इत्यादि । पात्रादि-भिन्न—त्रिलोकी—स्त्रीलिङ्गः ।

(ध) संख्या और अव्यय-पूर्वक कृत-समासान्त 'पथ'-शब्द क्लीवलिङ्ग, यथा—त्रिपथम्, चतुष्पथम्, विपथम् इत्यादि ।

(न) 'पुण्य' और 'सुदिन' शब्द-पूर्वक 'अह'-भागान्त शब्द क्लीवलिङ्ग ; यथा—पुण्याहम्, सुदिनाहम् ।

(प) क्रियाका विशेषण और अव्यय-शब्दका विशेषण क्लीवलिङ्ग होता है ; यथा—स्तोकं पचति ; शोभनं स्वः ।

स्वरान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१७१ । अकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके 'सु' और 'अम्' के स्थानमें 'म्' होता है ; यथा—फल + सु = फल + म् = फलम् ; फल + अम् = फल + म् = फलम् ।

१७२ । क्लीवलिङ्ग शब्दके 'औ' के स्थानमें 'ई', और 'जस्' तथा 'शस्' के स्थानमें 'नि' होता है ; 'नि' और 'आम्' परे पूर्वस्वर दीर्घ होता है ; यथा—फल + औ = फल + ई = फले ; वन + जस = वन + नि = वना + नि = वनानि ; वारि + आम् = वारि + नाम् (१६१ सू) = वारी + नाम् = वारी + णाम् = वारीणाम् ।

१७३ । सम्बोधनमें क्लीवलिङ्ग शब्दके 'सु' का लोप होता है ; यथा—फल + सु = फल ।

१७४ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'सु' और 'अम्' का लोप

होता है, और स्वरवर्ण परे रहनेसे 'न्' होता है ; यथा—वारि+सु= वारि ; मधु+सु=मधु ; वारि+औ=वारि+न्+ई=वारिणी ।

१७९ । सम्बोधनके एकवचनमे 'इ' के स्थानमे 'ए', और 'उ' के स्थानमे 'ओ' होता है—विकल्पसे ; यथा—वारि+सु=वारे (१३९सू), पक्षे—वारि ; अम्बु+सु=अम्बो, पक्षे—अम्बु ।

स्वरान्त क्लीवलिङ्ग शब्द ।

अकारान्त ।

फल शब्द (Fruit) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
सम्बोधन	फल	फले	फलानि

अवशिष्ट विभक्तियोंमे पुलिङ्ग 'देव'-शब्दके तुल्य ।

प्रायः सब अकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'फल'-शब्दके तुल्य । यथा—

शास्त्र (ऋषिप्रणीत ग्रन्थ) ; वन, कानन, अरण्य (वन) ; पुष्प, कुसुम (फूल) ; तृण (घास) ; शष्प (नया घास) ; मुख, आनन, आस्य, वदन (मुख) ; नयन, लोचन, नेत्र (आँख) ; उदक (जल) ; चित्त (मन) ।

❀ 'पृथक्' और 'विना'-शब्दके योगमे द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा—(रामसे श्याम पृथक्) रामं

श्यामः पृथक्; (मैं तुमसे पृथक् नहीं) नाहं त्वया पृथक्; (सुवर्णसे रौप्य पृथक्) सुवर्णात् रौप्यं पृथक् । (ज्ञान विना सुख नहीं होता) ज्ञानं विना सुखं न भवति; (उद्‌योग विना कार्य्य सिद्ध नहीं होता) उद्‌योगेन विना कार्य्यं न सिध्यति; (अधर्म विना दुःख कहाँ ?) अधर्मात् विना दुःखं कुतः ? ।

अनुवाद करो—धन विना मान नहीं होता (न भवति) । जल विना पिपासा नहीं जाती (न उपशाम्यति) । गुरुके उपदेश विना शिक्षा नहीं होती । मधुसे मधु पृथक् । पुष्प विना देवार्चना नहीं होती । पिपासातुर जल पीता है (पिबति) । आगसे वन दग्ध होता है (भवति) । प्रातःकाल (प्रातः) मुख धोना चाहिये (प्रक्षालयेत्) । जलसे तृष्णा दूर होती है (दूरीभवति) । सब शास्त्र पढ़े गये (अधीतानि) । मेरा हृदय अत्यन्त आकुल होता है (आकुलीभवति) । तृणसे समस्त स्थान आच्छादित । तूलिकासे भ्रू अङ्कित करता है (अङ्कयति) । जो भूमिपर (सप्तमी विभक्ति) विचरण करते हैं (विचरन्ति), उनको 'भूचर' कहते हैं (वदन्ति) । विनोद उसकी भगिनीको (द्वितीया) आदर करता है (आद्रियते) । मझली (मध्यमा) बहू अपनी (स्वीया) ननदकी (द्वितीया) अवज्ञा करती है (अवजानाति) । यह उत्तम पात्रके लिये (सम्प्रदाने चतुर्थी) दुहिताको (द्वितीया) अर्पण करता है (अर्पयति) ।

* * * *

हृदय शब्द (वक्षःस्थल ; मन Heart; mind) ।

प्रथमा—हृदयम्, हृदये, हृदयानि; द्वितीया—हृदयम्, हृदये, हृदयानि

हृन्दि; तृतीया—हृदयेन हृदा, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयैः हृद्भिः; चतुर्थी—हृदयाय हृदे, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयेभ्यः हृद्भ्यः; पञ्चमी—हृदयात् हृदः, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयेभ्यः हृद्भ्यः; षष्ठी—हृदयस्य हृदः, हृदययोः हृदोः, हृदयानाम् हृदाम्; सप्तमी—हृदये हृदि, हृदययोः हृदोः, हृदयेषु हृत्सु; सम्बोधन—हृदय !

अजर शब्द ।

प्रथमा—अजरम्, अजरे अजरसी, अजराणि अजरांसि; द्वितीया विभक्तिमे प्रथमाके तुल्य; अन्यान्य विभक्तियोंमे पुलिङ्ग 'निर्जर'-शब्दके तुल्य; सम्बोधन—अजर !

सर्वनाम क्लीवलिङ्ग ।

सर्व शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
सम्बोधन	सर्व	सर्वे	सर्वाणि

अन्यान्य विभक्तियोंमे पुंलिङ्ग 'सर्व'-शब्दके तुल्य ।

सर्वादि, पूर्वादि और अन्यादि समस्त सर्वनाम शब्दके रूप 'सर्व'-शब्दके तुल्य; केवल प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनके एकवचनमे अन्यादि-शब्दके अन्तमे 'त्' होता है; यथा—अन्यत्, अन्यतरत् इत्यादि ।

यद् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यत्	ये	यानि
द्वितीया	यत्	ये	यानि

तद् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१ मा	तत्	ते	तानि
२ या	तत्	ते	तानि

एतद् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एतत्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्	एते	एतानि

किम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि

इदम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि

अदस् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अदः	अमू	अमूनि
द्वितीया	अदः	अमू	अमूनि

अन्यान्य विभक्तियोंमे पुंलिङ्गके तुल्य ।

※ जिनसे हीनता या आधिक्य निर्द्धारित होता है, अर्थात्

जिससे दूसरेका अपकर्ष अथवा उत्कर्ष अवधारित होता है, उसके उत्तर पञ्चमी विभक्ति होती है; यथा—(रामसे श्याम कुत्सित) रामात् श्यामः कुत्सितः ; (तुझसे मैं बड़ा हूं) त्वत् अहं ज्यायान् ।

अनुवाद करो—उस फलसे यह फल प्रयोजनीय । ग्रामसे नगर बड़ा (महत्) । जननीसे गुरु नहीं (नास्ति) । भाईसे वन्धु नहीं । हाथसे पांव बड़ा (दीर्घतर) । नदीसे जल आता है (आयाति) । छत्र-द्वारा आतप निवारण करता है (निवारयति) । उस वनसे व्याघ्र स्थानान्तर-को (स्थानान्तरम्) गया (अगच्छत्) । इस वृक्षसे मीठा फल गिरता है (पतति) । जो होनेका (भाव्यम्), सो होगा (भविष्यति) ।

इकारान्त ।

वारि शब्द (जल Water) ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	वारे, वारि	वारिणी	वारीणि

प्रायः सब इकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'वारि'-शब्दके तुल्य ।

दधि शब्द (दही Curd)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	दधि	दधिनी	दधीनि
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पञ्चमी	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
षष्ठी	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
सप्तमी	दध्नि, दधनि	दध्नोः	दधिषु
सम्बोधन	दधे, दधि	दधिनी	दधीनि

अस्थि (हड्डी); अक्षि (चक्षु); सक्थि (ऊरु);—इनके रूप 'दधि'-शब्दके तुल्य।

शुद्ध करो—पिपासः वारि पिबति। दधिना अन्नान् खादति। मम अक्षि पश्यसि? एकेन अक्षिणा हीनः। के फलाः? असौ वनम्। इमानि वृक्षाः। एषः काननम्। तानि पुष्पे। इदं माया। सर्वान् तृणान्। अन्यं सुखम्। इमे सुखानि। यानि दुःखम्। इमानि पुस्तकाः। एष शय्या। असौ फलम्। अयं वनः।

द्वि शब्द।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
द्वे	द्वे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

त्रि शब्द।

१म	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
त्रीणि	त्रीणि	त्रिभिः	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	त्रयाणाम्	त्रिषु

अनुवाद करो—दो मुख । तीन नेत्र । एक नक्षत्र । दो तारायें । तीन ब्राह्मण । तीन नदियां यहां (अत्र) मिली हैं (मिलितवत्यः) । यह वानर किस वनसे आया है (आगच्छत्) ? किस पुष्करिणीसे इन पद्मोको लाया (आनीतवान्) ? माता कौन द्रव्य देती है (ददाति) ? मैं तीन दुहिताओंका (द्वितीया) पालन करता हूँ (पालयामि) । दुष्ट बालकके साथ मत खेल (मा क्रीड) । शिक्षक बालकोंका देवता । जो हित शासन करता है (शास्ति), वही शास्त्र ।

* * * *

टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, ङि और ओस् विभक्तिमें उक्तपुंस्क* अर्थात् विशेषण इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप विकल्पसे पुंलिङ्गके तुल्य होते हैं; यथा—शुचिने शुचये; स्वादुने स्वादवे; पातृणा पात्रा इत्यादि ।

हेतु-अर्थमे तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती है; यथा—(दुःखहेतु—दुःखसे—रोता है) दुःखेन रोदिति; (हर्षहेतु—हर्षसे—नाचता है) हर्षात् नृत्यति ।

अनुवाद करो—गर्वके कारण किसीसे (केनचित्) बोलता नहीं (न भाषते) । इसलिये सब व्यवहार अविद्यामूलक । जिसलिये वह पाठ सुना न सका (श्रावयितुं न अपारयत्), तिसलिये मैं उसे दण्ड

---

* जो शब्द पुंलिङ्ग और क्लीवलिङ्गमे एकही आकारमे एकही अर्थ प्रकाश करता है, उसको 'उक्तपुंस्क (भाषितपुंस्क) क्लीवलिङ्ग शब्द' कहते हैं; यथा—शुचि (पवित्र) ब्राह्मण, शुचि (पवित्र) जल ।

दूँगा (दण्डयिष्यामि) ।

उकारान्त ।

मधु शब्द (Honey) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सम्बोधन	मधो, मधु	मधुनी	मधूनि

सब उकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'मधु'-शब्दके तुल्य ।

ऋकारान्त—धातृ शब्द—(१मा, २या) धातृ, धातृणी, धातृणि ; (सम्बोधन) धातृ धातः, धातृणी, धातृणि । *अवशिष्ट 'दातृ'-शब्दके तुल्य ।

※ हिन्दीमे जहाँ 'का, के, की' अथवा स्थलविशेषमे 'रा, रे, री' रहता है, वहाँ संस्कृतमे [सम्बन्धे] षष्ठी-विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये ; यथा-(उसका वस्त्र) तस्य वस्त्रम् ; (मेरा घर)

---

* भ्याम्, भिस्, भ्यस् और सुप्-भिन्न विभक्तियोंमे 'न' होता है ; यथा—(टा) धातृणा ; (ङे) धातृणे ; (ङसि) धातृणः ; (ङस्) धातृणः ; (ओस्) धातृणोः ; (ङि) धातृणि ।

मम गृहम्।

अनुवाद करो—हमारा गुरु। तेरी पुस्तक। शङ्करकी छतरी (छत्र)। जिसको (षष्ठी) विद्या है (वर्त्तते), वह सर्वत्र सम्मान पाता है (लभते)। परशुरामने पिताकी आज्ञासे माताका शिरश्छेदन किया था (चकार)। उसका पुत्र मेरा दामाद। साधुशब्दोंके परिज्ञानके लिये व्याकरणशास्त्र उपयुक्त है (उपयुज्यते)। वेगवती नदीके जलसे स्वास्थ्य बढ़ता है (वर्द्धते)। आर्य्य (Sir)! चन्द्रकुमार मेरे हाथसे पुस्तक छीन लेता है (आच्छिनत्ति)।

व्यञ्जनान्त पुंलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र।

१७६। व्यञ्जनान्त शब्दके 'सु' का लोप होता है; यथा—विश्वजित्+सु=विश्वजित्।

१७७। 'सु' और और 'सुप्' परे रहनेसे चकारान्त और जकारान्त शब्दके 'च्' तथा 'ज्' के स्थानमे 'क्', और 'भ' परे रहनेसे 'ग्' होता है; यथा—जलमुच्+सु=जलमुक्; जलमुच्+भ्याम्=जलमुग्+भ्याम्=जलमुग्भ्याम्; जलमुच्+सुप्=जलमुक्+सु=जलमुक्+षु (१०८ सू)=जलमुक्षु।

१७८। 'सु' और 'सुप्' परे रहनेसे 'राज्' और 'सृज्'-भागान्त शब्दके 'ज्' के स्थानमे 'ट्', और 'भ' परे रहनेसे 'ड्' होता है; यथा—देवराज्+सु=देवराट्; विश्वसृज्+भ्याम्=विश्वसृड्भ्याम्; विश्वसृज्+सुप्=विश्वसृट्+सु=विश्वसृट्सु।

१७९। 'सु', 'औ', 'जस्' और 'अम्' परे रहनेसे, ऋकार-इत्

(शतृ और स्यतृ)-प्रत्ययान्त शब्दके, और उकार-इत् (क्तु, ईयसु और मतुप्)-प्रत्ययान्त शब्दके अन्त्यस्वरके पश्चात् 'न्' होता है; किन्तु अभ्यस्त शब्दके* नहीं होता।

१८०। 'सु' परे रहनेसे, 'न्त्' और 'न्स्'-भागके अन्त्यवर्णका लोप होता है; यथा—पा (धातु) + शतृ (प्रत्यय) = पिबत् (शब्द) + सु = पिबन्त् + सु = पिबन्; या (धातु) + स्यतृ (प्रत्यय) = यास्यत् (शब्द) + सु = यास्यन्त् + सु = यास्यन्; विद् (धातु) + क्वसु (प्रत्यय) = विद्वस् (शब्द) + सु = विद्वन्स् + सु = विद्वान् (१८२सू)।

१८१। 'सु' परे,—'मत्', 'वत्', 'अस्', 'इन्' और 'विन्'-प्रत्ययान्त शब्दतथा 'हन्' भागान्त शब्दका अन्त्यस्वर दीर्घ होता है; किन्तु सम्बोधनके एकवचनमे नहीं होता; यथा—धीमत् + सु = धीमन्त् + सु (१७९ सू) = धीमन् + सु (१८० सू) = धीमान्; विद्यावत् + सु = विद्यावन्त् + सु = विद्यावन् + सु = विद्यावान्; वेधस् + सु = वेधः + सु = वेधाः; धनिन् + सु = धनी (१८३ सू); मेधाविन् + सु = मेधावी (१८३ सू); वृत्रहन् + सु = वृत्रहा (१८३ सू)। (सम्बोधनके एकवचनमे) धीमत् + सु = धीमन्त् + सु = धीमन्।

१८२। 'सु', 'औ', 'जस्' और 'अम्' परे रहनेसे, 'अन्' और 'वस्'-भागान्त शब्दके अकारके स्थानमे आकार होता है; यथा-राजन् + सु = राजा (१८३ सू); राजन् + औ = राजानौ; राजन् + जस् = राजान् + अः = राजानः; राजन् + अम् = राजानम्; विद्वस् + सु = विद्वन्स् +

---

* जाग्रत्, शासत्, चकासत् प्रभृति शब्द, यङ्लुगन्त और ह्लादगणीय-धातुनिष्पन्न 'अत्'-भागान्त शब्द 'अभ्यस्त'।

सु = विद्वान् ; विद्वस् + औ = विद्वन्स् + औ = विद्वांसौ (६३ सू) ; विद्वस् + जस् = विद्वन्स् + जस् = विद्वान्स् + अः = विद्वांसः ; विद्वस् + अम् = विद्वन्स् + अम् = विद्वांसम् ।

१८३ । 'सु', 'भ' और 'सुप्' परे रहनेसे, नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है ; किन्तु सम्बोधनके एकवचनमे नहीं होता ; यथा—धनिन् + सु = धनी (१८१ सू) ; मेधाविन् + सु = मेधावी (१८१ सू) ; वृत्रहन् + सु = वृत्रहा (१८१ सू) ; राजन् + सु = राजा (१८२ सू) ; राजन् + भिः = राजभिः ; राजन् + सुप् = राजसु ; राजन् + सु (सम्बोधने) = राजन् ।

१८४ । 'सुप्' परे, 'द्' के स्थानमे 'त्' होता है ; यथा—सुहृद् + सुप् = सुहृत्सु ।

१८५ । 'शस्'-प्रभृति स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'हन्' के स्थानमे 'घ्न्' होता है ; किन्तु 'ङि' परे विकल्पसे होता है ; उस 'घ्न्' का 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा-वृत्रहन् + शस् = वृत्रहन् + अः = वृत्रघ्न् + अः = वृत्रघ्नः ; वृत्रहन् + ङि = वृत्रघ्न् + इ = वृत्रघ्नि, (पक्षे) वृत्रहन् + ङि = वृत्रहन् + इ = वृत्रहणि (१०० (क) सू) ।

१८६ । 'शस्'-प्रभृति स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'म' और 'व'-संयुक्त-भिन्न 'अन्'-भागान्त शब्दके अकारका लोप होता है ; किन्तु 'ङि' परे विकल्पसे होता है ; यथा—राजन् + शस् = राज्न् + अः = राज्ञः (५१ सू) ; राजन् + ङि = राज्न् + इ = राज्ञि, (पक्षे) राजन् + ङि = राजन् + इ = राजनि । ('म', 'व'-संयुक्त) ब्रह्मन् + शस् = ब्रह्मन् + अः = ब्रह्मणः ; यज्वन् + शस् = यज्वन् + अः = यज्वनः ।

१८७। 'दश्'-भागान्त शब्दके 'श' के स्थानमे 'स' तथा 'सप्' परे 'क्', और 'भ' परे 'ग्' होता है ; यथा—ईदश् + स = ईदक्; ईदश् + भ्याम् = ईदग् + भ्याम् = ईदग्भ्याम् ; ईदश् + सप् = ईदक् + स = ईदक्षु (१०८ सू) ।

१८८। 'शस्'-प्रभृति स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'वस्'-भागान्त शब्दके 'व' के स्थानमे 'उ' होता है ; 'उ' होनेसे 'वस्' के पूर्वस्थित 'इ' का लोप होता है ; यथा—विद्वस् + शस् = विदुस् + अः = विदुषः (१०८ सू) ; तस्थिवस् + शस् = तस्थुस् + अः = तस्थुषः* ।

१८९। 'वस्'-भागान्त शब्दके 'स्' के स्थानमे—'भ' परे 'द्', और 'सप्' परे 'त्' होता है ; यथा—विद्वस् + भ्याम् = विद्वद्भ्याम् ; विद्वस् + सप् = विद्वत्सु ।

१९०। हकारान्त शब्दके 'ह्' के स्थानमे—'स' तथा 'सप्' परे 'ट्', और 'भ' परे 'ड्' होता है ; यथा—मधुलिह् + स = मधुलिट् ; मधुलिह् + भ्याम् = मधुलिड्भ्याम् ।

१९१। हकारान्त शब्दके पूर्वमे 'द' रहनेसे, 'ह्' के स्थानमे—'स' तथा 'सप्' परे 'क्', और 'भ' परे 'ग्' होता है ; और 'द्' के स्थानमे 'घ्' होता है ; यथा—दुह् + स = धुक् ; दुह् + भ्याम् = धुग्भ्याम् ; दुह् + स = धुक्षु (१०८ सू) ।

---

* शुश्रुवस् , सुस्रुवस् , तुष्टुवस् , दुद्रुवस्—इनके 'व' के स्थानमे 'उ' होनेसे तत्पूर्ववर्त्ती 'उ' के स्थानमे 'उव्' होता है ; यथा—शुश्रुवुषः, शुश्रुवुषा इत्यादि ।

व्यञ्जनान्त पुंलिङ्ग शब्द ।

चकारान्त ।

जलमुच् शब्द (मेघ Cloud) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः
द्वितीया	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुचः
तृतीया	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भिः
चतुर्थी	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
पञ्चमी	जलमुचः	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
षष्ठी	जलमुचः	जलमुचोः	जलमुचाम्
सप्तमी	जलमुचि	जलमुचोः	जलमुक्षु
सम्बोधन	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः

प्रायः सब चकारान्त शब्दके रूप जलमुच्'-शब्दके तुल्य । यथा—वारिमुच्, पयोमुच् (मेघ) इत्यादि ।

*　　*　　*　　*

प्राच् शब्द (पूर्वकाल ; पूर्वदेश Prior; eastern) ।

प्रथमा—प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः ; द्वितीया—प्राञ्चम्, प्राञ्चौ, प्राचः ; सम्बोधनमे—प्रथमाके तुल्य ; अन्यान्य विभक्तियोंमे 'जलमुच्'-शब्दके तुल्य ।

पराच् (पराङ्मुख) और अवाच् (अधोमुख) शब्दभी 'प्राच्'-शब्दके तुल्य ।

प्रत्यच् शब्द (पश्चाद्वर्त्ती ; पश्चिमदेशीय
Subsequent ; western)।

प्रथमा—प्रत्यङ्, प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्चः ; द्वितीया—प्रत्यञ्चम्, प्रत्यञ्चौ, प्रतीचः ; तृतीया—प्रतीचा, प्रत्यग्भ्याम्, प्रत्यग्भिः ; चतुर्थी—प्रतीचे, प्रत्यग्भ्याम्, प्रत्यग्भ्यः ; पञ्चमी—प्रतीचः, प्रत्यग्भ्याम्, प्रत्यग्भ्यः ; षष्ठी—प्रतीचः, प्रतीचोः, प्रतीचाम् ; सप्तमी—प्रतीचि, प्रतीचोः, प्रत्यक्षु ; सम्बोधन—प्रत्यङ्!

सम्यच् (योग्य ; यथार्थ, ठीक ; सुन्दर) ; सध्र्यच् (सहचर, सहाय) ; न्यच् (निम्न ; नीच, क्षुद्र) ;—इन शब्दोंके रूप 'प्रत्यच्'-शब्दके तुल्य।

उदच् शब्द (उत्तर दिक्, देश वा काल
Northern ; subsequent)।

(१मा) उदङ्, उदञ्चौ, उदञ्चः ; (२या) उदञ्चम्, उदञ्चौ, उदीचः ; (३या) उदीचा, उदग्भ्याम्, उदग्भिः ; (४र्थी) उदीचे, उदग्भ्याम्, उदग्भ्यः ; (५मी) उदीचः, उदग्भ्याम्, उदग्भ्यः ; (६ष्ठी) उदीचः, उदीचोः, उदीचाम् ; (७मी) उदीचि, उदीचोः, उदक्षु ; (सम्बो०) उदङ्!

अन्वच् शब्द (अनुगामी Going after, following)।

(१मा) अन्वङ्, अन्वञ्चौ, अन्वञ्चः ; (२या) अन्वञ्चम्, अन्वञ्चौ, अनूचः ; (३या) अनूचा, अन्वग्भ्याम्, अन्वग्भिः ; (४र्थी) अनूचे, अन्वग्भ्याम्, अन्वग्भ्यः ; (५मी) अनूचः, अन्वग्भ्याम्, अन्वग्भ्यः ;

प्रश्न। तृतीयासे सब विभक्तियोंमें 'प्राच्' शब्दके रूप लिखो।

(६ष्ठी) अनूचः, अनूचोः, अनूचाम्; (७मी) अनूचि, अनूचोः, अन्वक्षु; (सम्बो०) अन्वङ्!

विष्वच् (सर्वव्यापी) शब्दभी इसी प्रकार।

तिर्य्यच् शब्द (वक्रगामी; पशु, पक्षी Oblique ; animal)।

(१मा) तिर्य्यङ्, तिर्य्यञ्चौ, तिर्य्यञ्चः; (२या) तिर्य्यञ्चम्, तिर्य्यञ्चौ, तिरश्चः; (३या) तिरश्चा, तिर्य्यग्भ्याम्, तिर्य्यग्भिः; (४र्थी) तिरश्चे, तिर्य्यग्भ्याम्, तिर्य्यग्भ्यः; (५मी) तिरश्चः, तिर्य्यग्भ्याम्, तिर्य्यग्भ्यः; (६ष्ठी) तिरश्चः, तिरश्चोः, तिरश्चाम्; (७मी) तिरश्चि, तिरश्चोः, तिर्य्यक्षु; (सम्बो०) तिर्य्यङ्!

☞ हिन्दीमे जहाँ 'मे' चिन्ह रहता है, संस्कृतमे वहाँ [अधिकरणे] सप्तमी विभक्ति होती है; यथा—(घरमे आदमी रहते हैं) गृहे मानुषाः वसन्ति; (कुशासनमे बैठा है) कुशासने आस्ते; (तुझमे दया नहीं) त्वयि दया नास्ति।

अनुवाद करो—बरसातमे (वर्षा—बहुवचन) मेघ सब स्थानोपर वारि बरसाता है (वर्षति)। लड़के आकशमे मेघ देखते हैं। (पश्यन्ति)। पूर्वदेशमे उसका निवास। जलमे मछली तैरती है (सन्तरति)। उसके हाथमे धन नहीं। मन्दिरमें दीया जलता है (ज्वलति)। जिसको (षष्ठी) नेत्र नहीं, वह सदा दुःख पाता है (प्राप्नोति)। वह मेरी पुस्तक।

जकारान्त।

वणिज् शब्द (व्यवसायी, बनिया Merchant)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
द्वितीया	वणिजम्	वणिजौ	वणिजः
तृतीया	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
चतुर्थी	वणिजे	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
पञ्चमी	वणिजः	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
षष्ठी	वणिजः	वणिजोः	वणिजाम्
सप्तमी	वणिजि	वणिजोः	वणिक्षु
सम्बोधन	वणिक्	वणिजौ	वणिजः

प्रायः सब जकारान्त शब्दके रूप 'वणिज्'-शब्दके तुल्य। यथा—

भिषज् (वैद्य); बलिभुज् (काक); हुतभुज् (अग्नि); ऋत्विज् (पुरोहित); भृतिभुज् (भृत्य); भूभुज् (राजा)।

परिव्राज् शब्द (भिक्षु Ascetic, religious mendicant)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्राजः
द्वितीया	परिव्राजम्	परिव्राजौ	परिव्राजः
तृतीया	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः
चतुर्थी	परिव्राजे	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
पञ्चमी	परिव्राजः	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
षष्ठी	परिव्राजः	परिव्राजोः	परिव्राजाम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सप्तमी	परिव्राजि	परिव्राजोः	परिव्राट्सु
सम्बोधन	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्राजः

व्राज्, राज्, भ्राज्, छज्, मृज्, और सृज्-भागान्त शब्दके रूप 'परिव्राज्'-शब्दके तुल्य *। यथा—

सम्राज् (राजाधिराज); देवराज् (इन्द्र); विराज् (क्षत्रिय; सर्वव्यापी पुरुष—परमेश्वर); विभ्राज्; परिमृज् इत्यादि ।

तकारान्त ।

भूभृत् शब्द (राजा ; पर्वत King ; mountain) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः

* 'विश्वसृज्'-शब्द विकल्पसे 'वणिज्-शब्दके तुल्य ; यथा—विश्वसृज् विश्वसृट् इत्यादि । 'विश्वराज्'-शब्दके 'ज्' के स्थानमे 'ट्' होनेसे अकारके स्थानमे आकार होता है ; यथा—विश्वाराट्, विश्वराजौ, विश्वराजः इत्यादि ।

प्रश्न । निम्नलिखित पदोंसे एक एक वाक्य रचना करो—

तिर्य्यञ्चः—तिष्ठन्ति । मनोयोगेन—पठन्ति ।—आकाशं—पश्यन्ति । प्रतीचि—विद्यते । वृक्षात्—पतति ।—गुरोः—पालयति ।—शिष्याय—ददाति ।

उत्तर । तिर्यञ्चः कुलाये तिष्ठन्ति । मनोयोगेन बालकाः पुस्तकं पठन्ति । सर्वे आकाशं मेघाच्छन्नं पश्यन्ति । प्रतीचि देशे चन्द्रशेखरो विद्यते । वृक्षात् पत्रं पतति । शिष्यः गुरोः वाक्यं पालयति । गुरुः शिष्याय विद्यां ददाति ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृतीया	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
चतुर्थी	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
पञ्चमी	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
षष्ठी	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
सप्तमी	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु
सम्बोधन	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः

प्रायः सब तकारान्त शब्दके रूप 'भूभृत'-शब्दके तुल्य। यथा—

महीभृत् (पर्वत); शशभृत् (चन्द्र); परभृत् (काक); महीक्षित् (राजा); दिनकृत् (सूर्य्य); विपश्चित् (पण्डित)।

धावत् शब्द (दौड़ता हुआ Running)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः
द्वितीया	धावन्तम्	धावन्तौ	धावतः
सम्बोधन	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः

अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।

भवत्, कुर्वत्, ग्रुवत्, जानत्, करिष्यत्, गमिष्यत् प्रभृति सब 'शतृ' (अत्) और 'स्यतृ' (स्यत्)-प्रत्ययान्त तकारान्त शब्द, और जरत् तथा 'वृहत्' शब्दके रूप 'धावत्'-शब्दके तुल्य; किन्तु जक्षत्, जाग्रत्, चकासत्, शासत्, दरिद्रत्, ददत्, दधत्, बिभ्रत्, बिभ्यत्,

जहत्, लेलिहत् प्रभृति शब्दके रूप 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।*

※ समुदायसे एकदेशके पृथक् करनेको 'निर्द्धारण' कहते हैं। 'निर्द्धारण'-अर्थमे समुदायवाचक शब्दके उत्तर षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है; यथा—(कवियोंके बीचमे कालिदास श्रेष्ठ) कविषु कालिदासः श्रेष्ठः; (वर्णोंमे ब्राह्मण गुरु) वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।

अनुवाद करो—देवताओंके बीचमे इन्द्र श्रेष्ठ। पक्षियोंमे (खग) काक धूर्त्त। सबके बीचमे क्षत्रिय बलवान्। हमलोगोंमे रमेश पण्डित। उमेश और सुरेशके बीचमे उमेश बुद्धिमान्। पर्वतोंमे हिमालय श्रेष्ठ।

धीमत् शब्द (बुद्धिमान् Wise, intelligent)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः
द्वितीया	धीमन्तम्	धीमन्तौ	धीमतः
सम्बोधन	धीमन्	धीमन्तौ	धीमन्तः

अवशिष्ट विभक्तियोंमे 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।

---

* 'ददत्'-प्रभृति शब्द ह्वादिगणीय धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त, और 'लेलिहत्'-प्रभृति शब्द यङ्लुगन्त धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त।

प्रश्न। निम्नलिखित शून्यस्थानसमूह पूर्ण करो—

सम्राट्—पालयति (पालन करता है)।—विक्रीणीते (बेचता है)। भिषक्—चिकित्सति (चिकित्सा करता है)।—ऋत्विजं—सन्तोषयति (सन्तुष्ट करता है।). भृतिभुक्—शुश्रूषते (सेवा करता है)। मुमुक्षु—गृह्णाति (लेता है)। धीमान्—बुध्यते (समझता है)।

मतुप्, वतुप् और क्तवतु (तवत्)-प्रत्ययान्त सब शब्दोंके रूप 'श्रीमत्'-शब्दके तुल्य। यथा—

(मतुप्)—श्रीमत् (शोभासम्पन्न); सानुमत् (पर्वत); अंशुमत् (सूर्य्य); नभस्वत् (वायु); ज्ञानवत् (ज्ञानी)। (वतुप्)—यावत् (जितना); तावत् (तितना); एतावत् (इतना); कियत् (कितना); इयत् (इतना)। (क्तवतु)—गतवत् (गया था)।

युष्मदर्थे 'भवत्' (भा + डवतु—सर्वनाम) शब्दभी 'श्रीमत्'-शब्दके तुल्य।*

शुद्ध करो—चातकं नद्यम्बु न पिबति। तस्य मृदूनि स्वराः। विधातृं प्रणम। आकाशे पयोमुचान् पश्य। प्राश्चि काले उदञ्चः देशात् बहूनि विराश्च आगताः। सर्वदा सम्राजस्य आधिपत्यम् अस्ति। भूभृतानां बलं सैन्यम्। श्रीमानस्य भोजनकालं आयातः।

महत् शब्द (बड़ा; प्रबल Great; strong; intense)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
सम्बोधन	महन्	महान्तौ	महान्तः

अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।

---

* भवत्, भगवत् और अघवत् शब्दके सम्बोधनके एकवचनमें यथाक्रम भोः, भगोः और अघोः होते हैं—विकल्पसे।

दकारान्त ।

सुहृद् शब्द (बन्धु Friend) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुहृत्*	सुहृदौ	सुहृदः
द्वितीया	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृतीया	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
चतुर्थी	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पञ्चमी	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
षष्ठी	सुहृदः	सुहृदोः	सुहृदाम्
सप्तमी	सुहृदि	सुहृदोः	सुहृत्सु
सम्बोधन	सुहृत्	सुहृदौ	सुहृदः

प्रायः सब दकारान्त शब्दके रूप 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य † । यथा—

सभासद् (सभ्य); दिविषद् (देवता); उद्भिद् (तरु-लता-प्रभृति); निरापद् (आपद्-शून्य) ।

अनुवाद करो—भाई, सूर्य्यको प्रणाम करो (प्रणम) । ज्ञानवान् पुरुष कौशलसे सब कार्य्य सम्पन्न करता है (सम्पादयति) । जितने आदमी, उतनी पत्तल करो (रचय) । इतना अत्याचार कौन सह सकता

---

*'सु' और 'सुप्' परे, दकारान्त शब्दके 'द्' के स्थानमे 'त्' होता है ।

† द्विपाद्, त्रिपाद्, चतुष्पाद्-प्रभृति 'पाद्'-भागान्त शब्दके 'पाद्'-के स्थानमे टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि और ओस् विभक्तिमे 'पद्' होता है ; यथा—द्विपदा, द्विपाद्भ्याम्, द्विपाद्भिः ; द्विपदे इत्यादि ।

है (सोऽहं शक्नोति)? इतने दिवस गये (गत), तोभी (तथाऽपि) वह नहीं आया (आयात)। राम पिताके वाक्यसे वनमे (द्वितीया) गया था । यह पुस्तक श्रीमान् योगेन्द्रनाथको दो (देहि)। आपके आलयमे (द्वितीया) जाउंगा (यास्यामि)।

नकारान्त।

'अन्'-भागान्त—महिमन् शब्द (माहात्म्य Greatness)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महिमा	महिमानौ	महिमानः
द्वितीया	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृतीया	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
चतुर्थी	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
पञ्चमी	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
षष्ठी	महिम्नः	महिम्नोः	महिम्नाम्
सप्तमी	महिम्नि	महिम्नोः	महिमसु
सम्बोधन	महिमन्	महिमानौ	महिमानः

प्रायः सब 'अन्'-भागान्त शब्दके रूप 'महिमन्'-शब्दके तुल्य। यथा—

लघिमन् (लघुता); गरिमन् (गुरुता); द्रढिमन् (दृढता); म्रदिमन् (मृदुता); प्रेमन् (स्नेह, प्रणय); मूर्द्धन् (मस्तक)।

राजन् शब्द (नृपति King)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	राजन्	राजानौ	राजानः

शून्यस्थान पूर्ण करो ।—तिष्ठति । राजनि—नास्ति । सुहृदः—शृणोति (सुनता है) ।—ददाति ।—राज्ञः—तिष्ठति ।

वृत्रहन् शब्द (इन्द्र) ।

(१मा) वृत्रहा, वृत्रहणौ, वृत्रहणः ; (२या) वृत्रहणम्, वृत्रहणौ, वृत्रघ्नः ; (३या) वृत्रघ्ना, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः ; (४र्थी) वृत्रघ्ने, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्यः ; (५मी) वृत्रघ्नः, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्यः ; (६ष्ठी) वृत्रघ्नः, वृत्रघ्नोः, वृत्रघ्नाम् ; (७मी) वृत्रघ्नि वृत्रहणि, वृत्रघ्नोः, वृत्रहसु ; (सम्बो) वृत्रहन्!

सब 'हन्'-भागान्त शब्दके रूप 'वृत्रहन्'-शब्दके तुल्य ।

अर्य्यमन् शब्द (सूर्य्य Sun) ।

प्रथमा और द्वितीयाके एकवचन और द्विवचनमें इसके रूप 'वृत्रहन्'-शब्दके तुल्य ; और और विभक्तियोंमें 'महिमन्'-शब्दके सदृश । यथा—अर्य्यमा, अर्य्यमणौ, अर्य्यमणः ; अर्य्यमणम्, अर्य्यमणौ, अर्य्यमणः इत्यादि ।

पूषन् शब्द (सूर्य्य)।

इसके रूप 'अर्य्यमन्'-शब्दके तुल्य ; केवल सप्तमीके एकवचनमें 'पूष्णि, पूषणि, पूषि'–ये तीन रूप होते हैं। यथा—पूषा, पूषणौ, पूषणः ; पूषणम्, पूषणौ, पूष्णः इत्यादि।

आत्मन् शब्द (स्वयम्, अपना ; मन ; जीव ; परमात्मा Oneself, mind, individual and supreme soul ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पञ्चमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बोधन	आत्मन्	आत्मानौ	आत्मानः

जिन 'अन्'-भागान्त शब्दोंका अकार 'म'-संयुक्त या 'व'-संयुक्त वर्णमें मिलित रहता है, उनके रूप प्रायः 'आत्मन्' शब्दके तुल्य। यथा—अश्मन् (प्रस्तर) ; यक्ष्मन् (क्षयरोग) ; ब्रह्मन् (विधाता) ; द्विजन्मन् (ब्राह्मण) ; यज्वन् (यागकर्त्ता)।

श्वन् शब्द (कुत्ता Dog)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्वा	श्वानौ	श्वानः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
द्वितीया	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृतीया	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
चतुर्थी	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पञ्चमी	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
षष्ठी	शुनः	शुनोः	शुनाम्
सप्तमी	शुनि	शुनोः	श्वसु
सम्बोधन	श्वन्	श्वानौ	श्वानः

युवन् शब्द (तरुण Young)।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	युवा	युवानौ	युवानः
द्वितीया	युवानम्	युवानौ	यूनः
तृतीया	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
चतुर्थी	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पञ्चमी	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
षष्ठी	यूनः	यूनोः	यूनाम्
सप्तमी	यूनि	यूनोः	युवसु
सम्बोधन	युवन्	युवानौ	युवानः

अनुवाद करो—तेरे मस्तकपर केश नहीं। उसका विश्वास अति दृढ़ समझता हूँ (मन्ये)। धर्मशील राजालोग प्राणपणसे प्रजाओंकी (द्वितीया) रक्षा करते हैं (रक्षन्ति)। वह भगवान्के प्रेमसे आकुल। वह अपने (आत्मन्) गुणकी गरिमासे पृथ्वीपर पाँव नहीं

रसना (न निदधाति)। यागकर्त्ता यज्ञ करता है (यजते)। मैं यक्ष्मासे अत्यन्त (अतीव) कातर। उन स्त्रियोंके करुण वाक्यसे पाषाण (अश्मन्) भी (अपि) गल जाता है (द्रवति)। सब देवता इन्द्रका (द्वितीया) सम्मान करते हैं (सम्मन्यन्ते)।

* * * *

मघवन् शब्द (इन्द्र)।

(१मा) मघवा, मघवानौ मघवन्तौ, मघवानः मघवन्तः; (२या) मघवानम् मघवन्तम्, मघवानौ मघवन्तौ, मघोनः मघवतः; (३या) मघोना मघवता, मघवभ्याम् मघवद्भ्याम्, मघवभिः मघवद्भिः; (४र्थी) मघोने मघवते, मघवभ्याम् मघवद्भ्याम्, मघवभ्यः मघवद्भ्यः; (५मी) मघोनः मघवतः, मघवभ्याम् मघवद्भ्याम्, मघवभ्यः मघवद्भ्यः; (६ष्ठी) मघोनः मघवतः, मघोनोः मघवतोः, मघोनाम् मघवताम्; (७मी) मघोनि मघवति, मघोनोः मघवतोः, मघवसु मघवत्सु; (सम्बो) मघवन्!

अर्वन् शब्द (घोड़ा Horse)।

(१मा) अर्वा, अर्वन्तौ, अर्वन्तः; (२या) अर्वन्तम्, अर्वन्तौ, अर्वतः; (३या) अर्वता, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भिः; (४र्थी) अर्वते, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भ्यः; (५मी) अर्वतः, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भ्यः; (६ष्ठी) अर्वत, अर्वतोः, अर्वताम्; (७मी) अर्वति, अर्वतोः, अर्वत्सु; (सम्बो) अर्वन्!

'इन्'-भागान्त—धनिन् शब्द (धनवान् Rich)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धनी	धनिनौ	धनिनः
द्वितीया	धनिनम्	धनिनौ	धनिनः
तृतीया	धनिना	धनिभ्याम्	धनिभिः
चतुर्थी	धनिने	धनिभ्याम्	धनिभ्यः
पञ्चमी	धनिनः	धनिभ्याम्	धनिभ्यः
षष्ठी	धनिनः	धनिनोः	धनिनाम्
सप्तमी	धनिनि	धनिनोः	धनिषु
सम्बोधन	धनिन्	धनिनौ	धनिनः

प्रायः सब 'इन्'-भागान्त शब्दके रूप 'धनिन्'-शब्दके तुल्य। यथा—

गुणिन् (गुणवान्); वलिन् (वलवान्); ज्ञानिन् (ज्ञानवान्); मेधाविन् (मेधाविशिष्ट); मनोहारिन् (मनोहर); एकाकिन् (अकेला); हस्तिन, करिन् (हाथी); पक्षिन् (चिड़िया); अर्थिन् (याचक); मन्त्रिन् (अमात्य); वाजिन् (घोड़ा); विषयिन् (संसारी); स्वामिन् (अधिपति)।

शुद्ध करो—अस्य संसारे यो मनुष्याः सुहृदस्य वाक्यान् न पालयति, स कदाऽपि मातां पितामपि न साधु मन्यते। ये युवाः आत्मां व्यथयन्ति, तस्य मङ्गलो न भवति। युवायाः कार्य्यान् वालः कर्त्तुं न शक्नोति। गुनोऽपि गुणीं प्रभुं सेवन्ते। मन्त्रिस्य वाक्यं पालय। व्याधः पक्षीं मारयति। धनवानस्य सर्वत्र आदरः। साध्वी स्त्री स्वामीं शुश्रूषते। इन्द्रजितः वृत्रघ्नं पराबभूव (हराया था)।

※ क्रियाविशेषण सर्वदा क्लीवलिङ्ग; उसमे द्वितीया-विभक्तिका एकवचन होता है; यथा—(शून्यपात्र अधिक शब्द करता है) शून्यपात्रम् अधिकं शब्दायते; (चोर तुरत भागता है) तस्करः द्रुतं पलायते।

अनुवाद करो—वह चुपचाप (नीरव) अपना काम कर रहा है (करोति)। चित्तकी एकाग्रतासे तू शास्त्रका गूढ़ अर्थ सत्वर समझ सकेगा (अवगन्तुं शक्ष्यसि)। मन्द मन्द वायु बहती है (वहति)। बच्चेको मधुर हसते (हसन्तम्) देखकर (दृष्ट्वा) माता आनन्दमे मग्न होती है (निमज्जति)। राजा दशरथने रामके दुःखसे सातिशय क्रन्दन किया था (रुरोद)।

पथिन् शब्द (पथ Way, road)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पञ्चमी	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथः	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बोधन	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः

'मथिन्' (मन्थनदण्ड)-शब्दके रूप 'पथिन्'-शब्दके तुल्य।

ऋभुक्षिन् (इन्द्र)-शब्द—(१मा) ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः ; (२या) ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षः इत्यादि 'पथिन्'-शब्दके तुल्य ।

शकारान्त ।

विश् शब्द (वैश्य ; मनुष्य A man of the third caste ; a man in general) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विट्*	विशौ	विशः
द्वितीया	विशम्	विशौ	विशः
तृतीया	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
चतुर्थी	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
पञ्चमी	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
षष्ठी	विशः	विशोः	विशाम्
सप्तमी	विशि	विशोः	विट्सु
सम्बोधन	विट्	विशौ	विशः

प्रायः सब शकारान्त शब्दके रूप 'विश्'-शब्दके तुल्य ।

तादृश् शब्द (तैसा, उसके सदृश Like that ; like him &c.) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तादृक्	तादृशौ	तादृशः
द्वितीया	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृतीया	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
चतुर्थी	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः

* शकारन्त और षकारान्त शब्दकी प्रक्रिया हकारान्त शब्दके तुल्य ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
षष्ठी	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
सप्तमी	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु

सब 'दृश्'-भागान्त और 'स्पृश्'-भागान्त शब्दके रूप 'तादृश्'-शब्दके तुल्य। यथा—

यादृश् (जैसा); कीदृश् (कैसा); ईदृश्, एतादृश् (ऐसा); त्वादृश् (तेरे सदृश); भवादृश् (आपके सदृश); युष्मादृश् (तुम्हारे सदृश); मादृश् (मेरे सदृश); अस्मादृश् (हमारे सदृश); मर्मस्पृश् (हृदयस्पर्शी)।

अनुवाद करो—उसके समान दुष्ट नहीं। आपके सदृश पुरुषोंका यह कर्त्तव्य नहीं (न कर्त्तव्यम्)। वह मर्मस्पर्शी शब्द व्यवहार करता है (व्यवहरति)। हमजैसे आदमियोंका ऐसा व्यवहार समीचीन नहीं। शत्रुके साथ सन्धि करो (सन्धेहि)। विषयीलोग विषयोंमें मत्त। राजालोग मन्त्रीके साथ मन्त्रणा करते हैं (मन्त्रयन्ते)। इस पथसे जा (याहि)।

षकारान्त।

द्विष् शब्द (शत्रु Enemy)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्विट्	द्विषौ	द्विषः
द्वितीया	द्विषम्	द्विषौ	द्विषः
तृतीया	द्विषा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	द्विषे	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
पञ्चमी	द्विषः	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
षष्ठी	द्विषः	द्विषोः	द्विषाम्
सप्तमी	द्विषि	द्विषोः	द्विट्सु
सम्बोधन	द्विट्	द्विषौ	द्विषः

प्रायः सब षकारान्त शब्दके रूप 'द्विष्'-शब्दके तुल्य ।

सकारान्त ।

'अस्'-भागान्त—वेधस् शब्द (विधाता Creator) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पञ्चमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसोः	वेधःसु
सम्बोधन	वेधः	वेधसौ	वेधसः

प्रायः सब 'अस्'-भागान्त शब्दके रूप 'वेधस्'-शब्दके तुल्य । यथा—

चन्द्रमस् (चन्द्र); दिवौकस् (देवता); विहायस् (आकाश); प्रचेतस् (वरुण); विमनस्, दुर्मनस् (उद्विग्न, व्याकुल ; दुःखित); अनेहस् (काल); उशनस् (शुक्राचार्य्य) । किन्तु 'अनेहस्'-शब्दकी

प्रथमाके एकवचनमे 'अनेहा' होता है ; और 'उशनस्'-शब्दकी प्रथमाके एकवचनमे 'उशना', तथा सम्बोधनके एकवचनमे 'उशनन्' उशन, उशनः'— ये तीन पद होते हैं ।

शून्य स्थान पूर्ण करो ।—रामः—अनेन—गतवान् । कण्टकाः— विद्यन्ते ।—पृथिवीं—प्रकाशयति । पक्षिणः—विचरन्ति । सर्वे—प्रणमन्ति ।

विद्वस् शब्द (ज्ञानी, पण्डित Wise, learned) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
पञ्चमी	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
षष्ठी	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
सम्बोधन	विद्वन्	विद्वांसौ	विद्वांसः

तस्थिवस् शब्द (स्थित Stayed) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तस्थिवान्	तस्थिवांसौ	तस्थिवांसः
द्वितीया	तस्थिवांसम्	तस्थिवांसौ	तस्थुषः
तृतीया	तस्थुषा	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भिः
चतुर्थी	तस्थुषे	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्यः
पञ्चमी	तस्थुषः	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	तस्थुषः	तस्थुषोः	तस्थुषाम्
सप्तमी	तस्थुषि	तस्थुषोः	तस्थिवत्सु
सम्बोधन	तस्थिवन्	तस्थिवांसौ	तस्थिवांसः

समस्त क्वसु (वस्)-प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'तस्थिवस्'-शब्दके तुल्य । यथा—

निषेदिवस् (निषण्ण, उपविष्ट) ; जग्मिवस् (जो गया) ; उपेयिवस् (प्राप्त) ; पेचिवस् (जिसने पाक किया) ।

शुद्ध करो—अस्यां पथे व्याघ्रः अस्ति । दिवौकसस्य पथम् अनुसरामि । सकले वेधाम् अर्चयन्ति । इदं वेधसात् उत्पन्नः । चन्द्रमां दृष्ट्वा चित्तः सहर्षः भवति । विद्वानस्य उपदेशानि गृहाण । तत्र तस्थिवसो जनानां इमानि पुस्तकाः । कवीनाम् उशनाः कविः । धनीनां नास्ति निर्वृतिः । दधिना भोजनः हृष्टु सम्पद्यते ।

गरीयस् शब्द (अतिगुरु Heavier ; more important) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गरीयान्	गरीयांसौ	गरीयांसः
द्वितीया	गरीयांसम्	गरीयांसौ	गरीयसः
तृतीया	गरीयसा	गरीयोभ्याम्	गरीयोभिः
चतुर्थी	गरीयसे	गरीयोभ्याम्	गरीयोभ्यः
पञ्चमी	गरीयसः	गरीयोभ्याम्	गरीयोभ्यः
षष्ठी	गरीयसः	गरीयसोः	गरीयसाम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सप्तमी	गरीयसि	गरीयसोः	गरीयःसु
सम्बोधन	गरीयन्	गरीयांसौ	गरीयांसः

सब ईयसु (ईयस्)-प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'गरीयस्'-शब्दके तुल्य। यथा—

लघीयस् (अतिलघु); द्रढीयस् (अतिदृढ़); स्थेयस् (अतिस्थिर); श्रेयस् (अतिप्रशस्त); प्रेयस् (अतिप्रिय); ज्यायस् (ज्येष्ठ); कनीयस्, यवीयस् (कनिष्ठ)।

'उस्'-भागान्त—दीर्घायुस् शब्द (दीर्घजीवी Long-lived)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दीर्घायुः	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः
द्वितीया	दीर्घायुषम्	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः
तृतीया	दीर्घायुषा	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भिः
चतुर्थी	दीर्घायुषे	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भ्यः
पञ्चमी	दीर्घायुषः	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भ्यः
षष्ठी	दीर्घायुषः	दीर्घायुषोः	दीर्घायुषाम्
सप्तमी	दीर्घायुषि	दीर्घायुषोः	दीर्घायुःषु
सम्बोधन	दीर्घायुः	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः

सब 'उस्'-भागान्त शब्दके रूप 'दीर्घायुस्'-शब्दके तुल्य।

पुमस् शब्द (पुरुष A male ; man)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
तृतीया	पुंसा	पुम्भ्याम्*	पुम्भिः
चतुर्थी	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पञ्चमी	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
षष्ठी	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
सप्तमी	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
सम्बोधन	पुमन्	पुमांसौ	पुमांसः

अनुवाद करो—विद्वान्‌लोग इसे जानते हैं (विदन्ति)। विद्वान्‌मे सभीकी (एव) श्रद्धा रहती है (तिष्ठति)। अतिप्रिय चन्द्रको देख (पश्य)। पर्वत अत्यन्त दृढ़। अतिस्थिर पुरुष कार्य्यदक्ष होता है (भवति)। मूर्ख अविगुरु विषयकी (द्वितीया) भी उपेक्षा करता है (उपेक्षते)। यही (एतत् एव) पुरुषका काम। विद्वान्‌के वाक्योंकी (द्वितीया) अवज्ञा न करो (न अवधीरय)। उत्कृष्ट पथका अनुसन्धान करो (अनुसन्धेहि)। मूर्खलोग विद्वानोको नहीं मानते (न सम्मन्यन्ते)।

* * *

दोस् शब्द (बाहु Arm)।

(१मा) दोः, दोषौ, दोषः ; (२या) दोषम्, दोषौ, दोषः दोष्णः, (३ या) दोषा दोष्णा, दोर्भ्याम् दोषभ्याम्, दोर्भिः दोषभिः ; (४र्थी) दोषे दोष्णे, दोर्भ्याम् दोषभ्याम्, दोर्भ्यः दोषभ्यः ; (५मी)

---

* पुंभ्याम्, पुंभिः, पुंभ्यः—ऐसाभी होता है।

दोषः दोष्णः, दोर्भ्याम् दोषभ्याम्, दोर्भ्यः दोषभ्यः ; (६ ष्ठी) दोषः दोष्णः, दोषोः दोष्णोः, दोषाम् दोष्णाम् ; (७मी) दोषि दोष्णि, दोषोः दोष्णोः, दोःषु दोषसु ; (सम्बो) दोः !

हकारान्त ।

मधुलिह् शब्द (भ्रमर Bee) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः
द्वितीया	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृतीया	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
चतुर्थी	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पञ्चमी	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
षष्ठी	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
सप्तमी	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्सु
सम्बोधन	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः

प्रायः सब हकारान्त शब्दके रूप 'मधुलिह्'-शब्दके तुल्य ।*

अनडुह् शब्द (वृष Ox, bull) ।

(१मा) अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाहः ; (२या) अनड्वाहम्, अनड्वाहौ, अनडुहः ; (३या) अनडुहा, अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः ; (४र्थी) अनडुहे, अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भ्यः ; (५मी) अनडुहः, अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भ्यः ; (६ष्ठी) अनडुहः, अनडुहोः, अनडुहाम् ; (७मी)

* 'तुराषाह्' (इन्द्र)-शब्दके रूपभी मधुलिह्-शब्दके तुल्य ; केवल 'साह्' का दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—तुराषाट् तुराषाड्भ्याम् इत्यादि।

अनडुहि, अनडुहोः, अनडुत्सु ; (सम्बो) अनड्वन् !

गोदुह् शब्द (गोप, ग्वाला Cow-milker, cowherd) ।

(१मा) गोधुक्, गोदुहौ, गोदुहः ; (२या) गोदुहम्, गोदुहौ, गोदुहः ; (३या) गोदुहा, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भिः ; (४र्थी) गोदुहे, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भ्यः ; (५मी) गोदुहः, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भ्यः ; (६ष्ठी) गोदुहः, गोदुहोः, गोदुहाम् ; (७मी) गोदुहि, गोदुहोः, गोधुक्षु ; (सम्बो) गोधुक् !*

सब दकारादि हकारान्त शब्दके रूप 'गोदुह्'-शब्दके तुल्य ।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१९२ । 'सु', 'सुप्' और 'भ' परे रहनेसे, धातुनिष्पन्न रकारान्त शब्दके पूर्ववर्त्ती इकार और उकार दीर्घ होते हैं ; यथा—गिर् + सु = गीः ; पुर् + भ्याम् = पूर्भ्याम् ; पुर् + सुप् = पूर् + सु = पूर् + षु = पूर्षु ।

१९३ । पकारान्त शब्दके 'प्' के स्थानमे—'सु' और 'सुप्' परे 'ट्', और 'भ' परे 'ड्' होता है ; यथा—त्विप् + सु = त्विट् ; त्विप् + भ्याम् = त्विड्भ्याम् ; त्विप् + सुप् = त्विट्सु ।

---

* पदके अन्तमे, और विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, दह्, दिह्, दुह्, और द्रुह् शब्दके 'द्' के स्थानमे 'ध्', और 'ह्' के स्थानमे 'क्' होता है ; यथा—(दह्) धक्, दहौ, दहः ; दहम्, दहौ, दहः ; दहा, धग्भ्याम्, धग्भिः इत्यादि । 'द्रुह्' शब्दके 'ह्' के स्थानमे विकल्पसे 'ट्' होता है ; यथा—ध्रुक् ध्रुट्, ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम् इत्यादि ।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग शब्द ।

चकारान्त ।

सब चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'जलमुच्'शब्दके तुल्य। यथा—वाच् (वाक्य); त्वच् (चर्म; वल्कल); रुच् (शोभा, दीप्ति; स्पृहा), ऋच् (वेदमन्त्र) ।

जकारान्त ।

सब जकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'वणिज्'-शब्दके तुल्य। यथा—स्रज् (माला); रुज् (रोग) ।

तकारान्त ।

सब तकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य। यथा—योषित् (नारी); सरित् (नदी); तडित्, विद्युत् (सौदामनी, बिजली) ।

दकारान्त ।

सब दकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य। यथा—आपद्, विपद् (अमङ्गल); सम्पद् (सम्पत्ति); संसद्, परिषद् (सभा); दृषद् (प्रस्तर); संविद् (ज्ञान); उपनिषद् (वेदान्त); शरद् (ऋतुविशेष) ।

धकारान्त ।

क्षुध् शब्द (क्षुधा Hunger) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	क्षुधम्	क्षुधौ	क्षुधः
तृतीया	क्षुधा	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भिः
चतुर्थी	क्षुधे	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
पञ्चमी	क्षुधः	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
षष्ठी	क्षुधः	क्षुधोः	क्षुधाम्
सप्तमी	क्षुधि	क्षुधोः	क्षुत्सु
सम्बोधन	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः*

सब धकारान्त शब्दके रूप 'क्षुध्'-शब्दके तुल्य।† यथा—

वीरुध् (लता); युध् (युद्ध); समिध् (यज्ञकाष्ठ)।

नकारान्त।

सीमन् (सीमा, अवधि); पामन् (खुजली) प्रभृति नकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'महिमन्'-शब्दके तुल्य।

पकारान्त।

अप् शब्द (जल Water)। नित्य बहुवचनान्त।

१मा	२या	३या	४र्थी
आपः	अपः	अद्भिः	अद्भ्यः

---

* धकारान्त शब्दके 'ध्'के स्थानमें—'सु' और 'सुप्' परे 'त्', और 'भ' परे 'द्' होता है।

† पदके अन्तमें, और विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'बुध्'-शब्दके 'ब्'के स्थानमें 'भ्' होता है; यथा—भुत्, बुधौ, बुधः; बुधम्, बुधौ, बुधः; बुधा, भुद्भ्याम्, भुद्भिः इत्यादि।

५मी	६ष्ठी	७मी	सम्बो
अद्भ्य.	अपाम्	अप्सु	आपः

शुद्ध करो—मन्ध पथ न पश्यति । बालक पथे कलह. करोति । इन्द्र चन्द्रमा पश्यति । राजाः दुर्जन धनान् ददाति । विद्वानम्य सर्वत्र सम्मानम् । अह यत् वाच वदामि, तस्मिन् किं दोष अस्ति ? अह त्वचे (चर्ममे) वेदना अनुभवामि । राम एकं शाक ब्राह्मणे ददाति । विद्युता इतस्ततो यान्ति । अह सम्पदन श्रेष्ठ । निर्मलम् आपं पिब ।

भकारान्त ।

ककुभ् शब्द (दिक् Direction) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ककुप्*	ककुभौ	ककुभ
द्वितीया	ककुभम्	ककुभौ	ककुभ·
तृतीया	ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भिः
चतुर्थी	ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्य·
पञ्चमी	ककुभः	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
षष्ठी	ककुभः	ककुभोः	ककुभाम्
सप्तमी	ककुभि	ककुभोः	ककुप्सु
सम्बोधन	ककुप्	ककुभौ	ककुभ·

सब भकारान्त शब्दके रूप 'ककुभ्-शब्दके तुल्य । यथा—अनुष्टुभ्, त्रिष्टुभ् (छन्दोविशेष) ।

---

* भकारान्त शब्दके 'भ्' के स्थानमे—सु' और 'सुप्' परे 'प्',और 'भ' परे 'ब्' होता है।

रकारान्त।

द्वार् शब्द (दरवाज़ा ; उपाय Door ; means)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वाः	द्वारौ	द्वारः
द्वितीया	द्वारम्	द्वारौ	द्वारः
तृतीया	द्वारा	द्वार्भ्याम्	द्वार्भिः
चतुर्थी	द्वारे	द्वार्भ्याम्	द्वार्भ्यः
पञ्चमी	द्वारः	द्वार्भ्याम्	द्वार्भ्यः
षष्ठी	द्वारः	द्वारोः	द्वाराम्
सप्तमी	द्वारि	द्वारोः	द्वार्षु
सम्बोधन	द्वाः	द्वारौ	द्वारः

सब 'आर्'-भागान्त शब्दके रूप 'द्वार्'-शब्दके तुल्य।

गिर् शब्द (वाक्य Speech)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गीः	गिरौ	गिरः
द्वितीया	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृतीया	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
चतुर्थी	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पञ्चमी	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
षष्ठी	गिरः	गिरोः	गिराम्
सप्तमी	गिरि	गिरोः	गीर्षु
सम्बोधन	गीः	गिरौ	गिरः

पुर् शब्द (नगरी Town)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूः	पुरौ	पुरः
द्वितीया	पुरम्	पुरौ	पुरः
तृतीया	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
चतुर्थी	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पञ्चमी	पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
षष्ठी	पुरः	पुरोः	पुराम्
सप्तमी	पुरि	पुरोः	पूर्षु
सम्बोधन	पूः	पुरौ	पुरः

धुर् (भार)-शब्दके रूप 'पुर्' शब्दके तुल्य।

वकारान्त।

दिव् शब्द (स्वर्ग Heaven)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्यौः	दिवौ	दिवः
द्वितीया	दिवम्, द्याम्	दिवौ	दिवः
तृतीया	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
चतुर्थी	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
पञ्चमी	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
षष्ठी	दिवः	दिवोः	दिवाम्
सप्तमी	दिवि	दिवोः	द्युषु
सम्बोधन	द्यौः	दिवौ	दिवः

अनुवाद करो—क्षुधासे प्राण निकलते हैं (निर्यान्ति)। ब्राह्मण-लोग प्रातःकालमे समिध् आहरण करते हैं (आहरन्ति)। लता पुष्पसे सुशोभित। पिपासु जन उदर पूर्ण करके (उदरपूरम्) जल पीता है (पिबति)। किसी प्रकारसे (कथमपि) तेरा वाक्य नहीं सुनूंगा (श्रोष्यामि)। वह वचन-द्वारा सब लोगोंको सन्तुष्ट करता है (सन्तोषयति)। पुण्यात्मा विष्णुरथमे (तृतीया) स्वर्गको जाता है (याति)।

शकारान्त।

दिश् (दिक्), दृश् (नेत्र) शब्दके रूप 'तादृश्'-शब्दके तुल्य ; और निश् (रात्रि)-शब्दके रूप 'विश्'-शब्दके तुल्य ।

षकारान्त।

रुष् (क्रोध) ; विष् (विष्ठा) ; विप्रुष् (बूँद) ; त्विष् (तेज, कान्ति) प्रभृति षकारान्त शब्दके रूप 'द्विष्'-शब्दके तुल्य ।

सकारान्त।

'अस्'-भागान्त (अप्सरस्-प्रभृति) शब्दके रूप 'वेधस्'-शब्दके तुल्य ।

'आस्'-भागान्त—भास् शब्द (दीप्ति Lustre)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भाः	भासौ	भासः
द्वितीया	भासम्	भासौ	भासः
तृतीया	भासा	भाभ्याम्	भाभिः
चतुर्थी	भासे	भाभ्याम्	भाभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	भासः	भाभ्याम्	भाभ्यः
षष्ठी	भासः	भासोः	भासाम्
सप्तमी	भासि	भासोः	भाःसु
सम्बोधन	भाः	भासौ	भासः

'इस्'-भागान्त—अर्चिस् शब्द* (शिखा, ज्वाला Flame)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अर्चिः	अर्चिषौ	अर्चिषः
द्वितीया	अर्चिषम्	अर्चिषौ	अर्चिषः
तृतीया	अर्चिषा	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भिः
चतुर्थी	अर्चिषे	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्यः
पञ्चमी	अर्चिषः	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्यः
षष्ठी	अर्चिषः	अर्चिषोः	अर्चिषाम्
सप्तमी	अर्चिषि	अर्चिषोः	अर्चिःषु
सम्बोधन	अर्चिः	अर्चिषौ	अर्चिषः

सब 'इस्'-भागान्त शब्दके रूप 'अर्चिस्'-शब्दके तुल्य।

आशिस् शब्द (शुभाकाङ्क्षा ; अभिलाष Benediction; desire)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आशीः	आशिषौ	आशिषः
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः

* 'अर्चिस्'-शब्द क्लीवलिङ्गभी होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पञ्चमी	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषोः	आशीःषु
सम्बोधन	आशीः	आशिषौ	आशिषः

शुद्ध करो—पूर्वस्मिन् दिशि निशाकरो राजते । उत्तरस्मिन् दिशि हिमालयर्वर्त्तते । सर्वे देवताः मयि शुभं आशीं कुर्वन्ति । तेन आशिना अहं सुस्थं भवामि। पश्चिमस्यां दिशि चन्द्रमाम् अस्तमितां पश्यामि । ग्रीष्मे काकाः वाप्याः अपं पिबन्ति । यः सत्यं गिरं वदति, स सर्वदा दिवे वसति । तव आशिषस्य अपूर्वः शक्तिः ।

हकारान्त।

उपानह् शब्द (जूता Sandal, shoe)।

(१मा) उपानत्, उपानहौ, उपानहः ; (२या) उपानहम्, उपानहौ, उपानहः ; (३या) उपानहा, उपानद्भ्याम्, उपानद्भिः ; (४र्थी) उपानहे, उपानद्भ्याम्, उपानद्भ्यः ; (५मी) उपानहः, उपानद्भ्याम्, उपानद्भ्यः; (६ष्ठी) उपानहः, उपानहोः, उपानहाम् ; (७मी) उपानहि, उपानहोः, उपानत्सु ; (सम्बो) उपानत्।

व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र।

१९४। 'सु', 'अम्' और सम्बोधनके 'सु' का लोप होता है ;

यथा—जगत्+सु=जगत्; जगत्+अम्=जगत् ।

१९५ । 'औ' के स्थानमे 'ई', और 'जस्' तथा 'शस्' के स्थानमे 'इ' होता है; यथा—जगत्+औ=जगत्+ई=जगती; ददत्+जस्=ददत्+इ=ददति ।

१९६ । 'जस्' और 'शस्' पे चकारान्त शब्दके 'च्' के स्थानमे 'ञ्', और जकारान्त शब्दके 'ज्' के स्थानमे 'ञ' होता है; यथा—प्राच्+जस्=प्राञ्+इ (१९५ सू)=प्राञ्चि; असृज्+जस्=असृञ्+इ=असृञ्जि ।

१९७ । 'जस्' और 'शस्' पे अन्त्यस्वरके पश्चात् 'न्' होता है; नान्त शब्दके नहीं होता; यथा—जगत्+जस्=जगन्त्+इ=जगन्ति ।

१९८ । 'जस्' और 'शस्' पे रहनेसे, अत्प्रत्यन्त शब्दके 'त्' के स्थानमे विकल्पसे 'न्त्' होता है; यथा—जाग्रत्+जस्=जाग्रन्त्+इ=जाग्रन्ति; पक्षे—जाग्रत्+जस्=जाग्रत्+इ=जाग्रति ।

१९९ । 'जस्' और 'शस्' पे नकारान्त और 'न्स्'-भागान्त शब्दका अन्त्यस्वर दीर्घ होता है; यथा—नामन्+जस्=नामान्+इ=नामानि; हविस्+जस्=हविन्स् (१९७ सू)+जस्=हवीन्स्+इ=हवींस् (६३ सू)+इ=हवींषि (१०८ (क) सू) ।

२०० । 'सु' पे नकारका लोप होता है; सम्बोधनके 'सु' मे विकल्पसे होता है; यथा—नामन्+सु (सम्बोधन)=नाम, (पक्षे) नामन् ।

२०१ । 'ई' पे 'अन्'-भागान्त शब्दके अकारका विकल्पसे लोप

होता है ; यथा—नामन् + औ = नामन् + ई = नाम्न् + ई = नाम्नी ; (पक्षे) नामन् + औ = नामन् + ई = नामनी ।

व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग शब्द ।

☞ व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनमे समान ; और तृतीयासे सप्तमीतक पुंलिङ्गके तुल्य । इसलिये उनकी केवल प्रथमा विभक्तिके रूपही यहां लिखे जाते हैं ।

चकारान्त—प्राच् शब्द—प्राक्, प्राची, प्राञ्चि । प्रायः सब चकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'प्राच्'-शब्दके तुल्य । प्रत्यच् शब्द—प्रत्यक्, प्रतीची, प्रत्यञ्चि । उदच् शब्द—उदक्, उदीची, उदञ्चि । अन्वच् शब्द—अन्वक्, अनूची, अन्वञ्चि । तिर्य्यच् शब्द—तिर्य्यक्, तिरश्ची, तिर्य्यञ्चि ।

जकारान्त ।

असृज् शब्द (शोणित, रक्त Blood) ।

असृक् असृजी असृञ्जि ।

अवशिष्ट 'वणिज्'-शब्दके तुल्य ।

प्रायः सब जकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'असृज्'-शब्दके तुल्य ।

तकारान्त ।

जगत् शब्द (विश्व World) ।

जगत् जगती जगन्ति ।

अवशिष्ट 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य ।

प्रायः सब तकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'जगत्'-शब्दके तुल्य।

गच्छत् शब्द—गच्छत्, गच्छन्ती, गच्छन्ति।—भ्वादि, दिवादि, चुरादि और णिजन्त प्रभृति धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त सब क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'गच्छत्' शब्दके तुल्य।

इच्छत् शब्द—इच्छत्, इच्छती इच्छन्ती, इच्छन्ति।—तुदादि-गणीय धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त सब क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'इच्छत्'-शब्दके तुल्य।

यात् शब्द—यात्, याती यान्ती, यान्ति।—आकारान्त अदादि-गणीय धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त सब क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'यात्'-शब्दके तुल्य।

दरिद्रत् शब्द—दरिद्रत्, दरिद्रती, दरिद्रति दरिद्रन्ति।

जाग्रत् शब्द—जाग्रत्, जाग्रती, जाग्रति जाग्रन्ति।—जक्षत्, चकासत् प्रभृति (१४२ पृ० २० पं०) शब्दके रूप क्लीवलिङ्गमे 'जाग्रत्'-शब्दके तुल्य।

भविष्यत् शब्द—भविष्यत्, भविष्यती भविष्यन्ती, भविष्यन्ति।—सब 'स्यतृ'-प्रत्ययान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'भविष्यत्'-शब्दके तुल्य।

महत् शब्द।

महत्	महती	महान्ति।

दकारान्त।

हृद् शब्द (वक्षःस्थल, छाती; मन Chest; mind)।

हृत्	हृदी	हृन्दि।

अवशिष्ट 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य।

सब दकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'हृद्'-शब्दके तुल्य*।

नकारान्त।

'अन्'-भागान्त—नामन् शब्द (आख्या Name)।

नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि।

अवशिष्ट 'महिमन्'-शब्दके तुल्य†।

प्रायः सब 'अन्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'नामन्'-शब्दके तुल्य। यथा—

धामन् (गृह); व्योमन् (आकाश); दामन् (रस्सी); प्रेमन् (प्रणय); वेमन् (तांत); सामन् (वेदविशेष)।

अनुवाद करो—शरीरसे रुधिर निकलता है (निःसरति)। वृक्षके पत्र श्रीयुक्त। ग्रीष्ममे आकाश निर्मल रहता है (तिष्ठति)। व्रजधाममे गोपियाँ वास करती हैं (वसन्ति)। प्रातःकालमे ऋपितनय साम गान करते हैं (गायन्ति)। जो वेद जानता है (वेत्ति), उसे 'वैदिक' कहते हैं (वदन्ति)। लड़के गायकी रस्सी खींचते हैं (आकर्षन्ति)। इस संसारमे सभी प्रेमसे आवद्ध। तांतसे कपड़ा बूनता है (वयति)।

जन्मन् शब्द (उत्पत्ति Birth)।

जन्म	जन्मनी	जन्मानि।

---

* द्विपाद् शब्द—द्विपात्, द्विपदी, द्विपान्दि। सब 'पाद्'-भागान्त शब्द इसी प्रकार।

† सम्बोधनके एकवचनमे—नाम, नामन्—ये दो पद होते हैं।

अवशिष्ट 'आत्मन्'-शब्दके तुल्य* ।

'म' और 'व'-संयुक्त सब 'अन्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'जन्मन्'-शब्दके तुल्य । यथा—

चर्मन् (चमड़ा); वर्मन् (कवच); शर्मन् (सुख ; कल्याण); कर्मन् (काम); नर्मन् (परिहास); सद्मन् (गृह); भस्मन् (राख); लक्ष्मन् (चिह्न) ; वर्त्मन् (पथ) ; पर्वन् (ग्रन्थि ; उत्सव) ।

अहन् शब्द (दिन Day) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
द्वितीया	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहःसु
सम्बोधन	अहः	अह्नी अहनी	अहानि

'इन्'-भागान्त—स्थायिन् शब्द (स्थितिशील; स्थिर Staying; lasting) ।

स्थायि स्थायिनी स्थायीनि

अवशिष्ट 'धनिन्' शब्दके तुल्य ।

सब 'इन्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'स्थायिन्'-शब्दके तुल्य ।

---

* सम्बोधनके एकवचनमें—जन्म, जन्मन्—ये दो पद होते हैं ।

रकारान्त ।

वार् शब्द (जल Water) ।

वाः	वारि	वारि

अवशिष्ट 'द्वार्'-शब्दके तुल्य ।

शकारान्त ।

तादृश् शब्द ।

तादृक्	तादृशी	तादृंशि ।

सकारान्त ।

'अस्-भागान्त—पयस् शब्द (दुग्ध ; जल Milk ; water) ।

पयः	पयसी	पयांसि

अवशिष्ट 'वेधस्'-शब्दके तुल्य ।

सब 'अस्-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'पयस्'-शब्दके तुल्य । यथा—

अम्भस् (जल) ; रजस् (धूलि); तमस् (अन्धकार) ; वचस् (वाक्य) ; चेतस्, मनस् (चित्त) ; आगस् (अपराध) ; यशस् (कीर्त्ति) ; उरस्, वक्षस् (छाती) ; अयस् (लौह) ; वासस् (वस्त्र) ; वयस् (जीवितकालका परिमाण ; पक्षी), छन्दस् (पद्य-वन्ध) ।

क्वसु (वसु)-प्रत्ययान्त—विद्वस् शब्द—विद्वत्, विदुषी, विद्वांसि । शुश्रुवस् शब्द—शुश्रुवत्, शुश्रुवुषी, शुश्रुवांसि । तस्थिवस् शब्द—तस्थिवत्, तस्थुषी, तस्थिवांसि ।

शुद्ध करो—महान् दुःखम्। पतन् फलानि गृहाण। एप असक् दुखानि जाताः। श्रीमन्तं फलम् अवलोकय। द्यामस्य ग्रामं गच्छामि। काशाधामे शिवो विद्यते। ऊर्द्ध्वे भस्मं मा क्षिप। चर्माद पादुका जायते। वृषः दामं छिनत्ति। कर्मेण फलं स्यात्। कर्मेभ्यः सुखदुःखाः जायन्ते। जन्मे जन्मे विष्णुभक्तर्मेरेयम्। हितं मनोहारी च दुर्लभो वचः।

※ व्याप्ति-अर्थमें कालवाचक और मार्गके परिमाण-वाचक शब्दके उत्तर द्वितीया विभक्ति होती है; यथा—(एक महीनाभर पढ़ता हूँ, तबभी कुछ हुआ नहीं) मासम् एकं पठामि, तथाऽपि न किमपि अभवत्; (एक कोस व्यापकर यह जनपद है) क्रोशम् एकं जनपदोऽयं तिष्ठति।

※ प्रयोजन सिद्ध होनेसे, उक्त कालवाचक और मार्गके परिमाण-वाचक शब्दके उत्तर तृतीया विभक्ति होती है; यथा—(यह पुस्तक एक महीनेमें पढ़ा है) मासेन एकेन पुस्तकम् एतत् पठितवान्; (कोसभरमें सूर्य्यस्तव पढ़ा गया) क्रोशेन एकेन सूर्य्यस्तोत्रं पठितम्;—यहाँ पुस्तकका पढ़ना एक महीनेमें, और सूर्य्यका स्तव-पाठ एक कोसमें समाप्त हुआ है।

अनुवाद करो—दीर्घकाल गुरुके समीपमें (अन्तिक) वास करना चाहिये (वसेत्)। पाँच कोस व्यापकर काशीनगरी। साधक उपासनाके लिये सारी रात जागता है (जागर्त्ति)। वह सारा दिन उपनिषदोंका अध्ययन करता है (कुरुते)। तू एकदिनमेंही इस ग्रन्थको पढ़ सकेगा (पठितुं शक्ष्यसि)। क्षणकाल प्रतीक्षा कर (प्रतीक्षस्व); तेरा मनोरथ सिद्ध होगा (सेत्स्यति)।

'इस्'-भागान्त—हविस् शब्द (घृत Clarified butter)।

हविः हविषी हवींषि

अवशिष्ट 'अर्चिस्'-शब्दके तुल्य।

सब 'इस्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'हविस्'-शब्दके तुल्य। यथा—

ज्योतिस् (तेज; नक्षत्र); रोचिस्, शोचिस् (दीप्ति); बर्हिस् (कुश); सर्पिस् (घृत)।

'उस्'-भागान्त—धनुस् शब्द (धनुक Bow)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वितीया	धनुः	धनुषी	धनूंषि
तृतीया	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
चतुर्थी	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
पञ्चमी	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
षष्ठी	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
सप्तमी	धनुषि	धनुषोः	धनुःषु
सम्बोधन	धनुः	धनुषी	धनूंषि

सब 'उस्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'धनुस्'-शब्दके तुल्य। यथा—

आयुस् (जीवितकाल); चक्षुस् (नेत्र); वपुस् (शरीर); यजुस् (वेदविशेष)।

अनुवाद करो—निष्काम कर्मसे चित्त शुद्ध होता है (भवति)।

चमड़ेका जूता । चन्द्रमे जो मलिन चिह्न है (अस्ति), उसीको कवि-लोग 'मृग' कहते हैं (वदन्ति) । पूर्वजन्मकी सुकृतिसे मनुष्योंकी धर्ममें प्रवृत्ति होती है (जायते) । दो दिनमें यह काम होगा (भविष्यति) । लोहसे अस्त्र उत्पन्न होता है (उत्पद्यते) । धार्मिक राजाका यश सब देशोंमें सब कोई गाते हैं (गायन्ति) । मेरा अपराध क्षमा कीजिये (क्षमस्व) । मनमें कुचिन्ता नहीं करना (न कुर्य्यात्) । पढ़नेमें मन लगा (संयोजय) । गोवत्स दुग्ध पान करता है (पिबति) । ब्रह्मचर्य्यसे तेज बढ़ता है (वर्द्धते) । घृतसे (हविस्) होम करता है (जुहोति) । सूर्य्यकी दीप्तिसे जगत् प्रकाशित होता है (प्रकाशते) । शिवजीके तीन चक्षु । अनाचारसे आयुका क्षय होता है । लुब्धक धनुषमें बाण योजना करता है (योजयति) ।

सर्वनाम-व्यवहार ।

सर्वादि समस्त सर्वनामोंके रूप यथाक्रम पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और क्लीवलिङ्ग शब्द-रूपके बीचमें दिखलाये गये ।

सर्व, विश्व और सम शब्द—'सकल' यह अर्थ समझानेसेही सर्व-नाम होते हैं ; अन्य अर्थमें उनके रूप साधारण शब्दके तुल्य ; यथा—

सर्व { (सकल) सबको नमस्कार—सर्वस्मै नमः ।
(शिव) शिवको नमस्कार—सर्वाय नमः ।

विश्व
- (सकल) सबमे विश्वास युक्त नहीं—विश्वस्मिन् विश्वासो न युज्यते।
- (जगत्) जगत्मे सभी नश्वर—विश्वे सर्वं हि नश्वरम्।

सम
- (सकल) सभीकाही गुरु पिता—समेषां हि गुरुः पिता।
- (तुल्य) पशुओंके तुल्य मूर्खोंका सङ्ग छोड़ना चाहिये—पशुभिः समानां मूर्खाणां सङ्गं परिहरेत्।

दिक्, देश वा काल समझानेसेही 'पूर्व'-प्रभृति सात शब्द सर्वनाम होते हैं; अन्य अर्थमे साधारण शब्दके तुल्य; यथा—

पर
- (काल) यतियोंका पर दिनके लिये सङ्ग्रह निषिद्ध—यतीनां परस्मै दिनाय सङ्ग्रहो निषिद्धः।
- (श्रेष्ठ) परम पुरुषको नमस्कार—पराय पुरुषाय नमः।

दक्षिण
- (दिक्) दक्षिण दिशाका अधिपति यम—दक्षिणस्या दिशः अधिपतिः कृतान्तः।
- (निपुण) ब्रह्मविचारमे कुशल गार्गीका याज्ञवल्क्यके साथ संवाद हुआ था—ब्रह्मविचारे दक्षिणायाः गार्ग्याः याज्ञवल्क्येन समं संवादः समभवत्।

उत्तर
- (देश) वह तपस्याके लिये उत्तर देशको गया—स तपसे उत्तरस्मै देशाय प्रातिष्ठत।
- (प्रतिवचन) तेरे पत्रके उत्तरके लिये व्यग्र हूँ—तव पत्रस्य उत्तराय व्यग्रोऽस्मि।

आत्मा (स्वयम्) और आत्मीय (स्वकीय) अर्थमेही 'स्व'-शब्द सर्वनाम होता है; अन्य अर्थमे सामान्य अकारान्तके तुल्य; यथा—

(आत्मा) ज्ञानी अपनेमें रमण करता है—ज्ञानी स्वस्मिन् रमते ।
(आत्मीय) सब कोई स्वकीय पुत्रमें स्नेह करता है—सर्वः स्वस्मिन् पुत्रे स्निह्यति ।
(धन) दूसरेके धनमें स्पृहा न करना—परस्य स्वाय न स्पृहयेत् ।
(ज्ञाति) ज्ञातिको विद्या दान करना—स्वाय विद्यां दद्यात्*

'एक'-शब्द†—एक, अन्य, केवल, श्रेष्ठ प्रभृति सभी अर्थमें सर्वनाम होता है; यथा—(एक आदमीमें पक्षपात नहीं करना) एकस्मिन् पक्षपातं न कुर्य्यात्; (अन्य-लोग कहते हैं) एके वदन्ति; (कोई कोई आत्माको निर्गुण नहीं मानते) एके आत्मानं निर्गुणं न मन्यन्ते; (केवल नारायणको नमस्कार) एकस्मै नारायणाय नमः; (श्रेष्ठ ज्ञानी वसिष्ठसे रामचन्द्रने तत्त्वज्ञान पाया) एकस्मात् ज्ञानिनः वसिष्ठात् रामभद्रः तत्त्वज्ञानम् अवाप ।

इदम् और एतद्—एन ।

पुनरुक्तिविषयमें, अर्थात् उल्लिखितका पुनरुल्लेख होनेसे, द्वितीयाके एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, तृतीयाका एकवचन, और षष्ठी तथा सप्तमीके द्विवचनमें 'इदम्' और 'एतद्'-शब्दके स्थानमें 'एन' आदेश होता है; यथा—(पुं०) एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः; (स्त्री०)

---

* 'स्व'-शब्द—'धन'-अर्थमें-पुं०, क्ली०, और 'ज्ञाति'-अर्थमें—पुं० ।

† एकोऽल्पान्य-प्रधानेषु प्रथमे केवले तथा ।
साधारणे समानेऽपि सङ्ख्यायाञ्च प्रयुज्यते ॥

एनाम्, एने, एनाः, एनया, एनयोः ; (क्लीव०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयोः। उदाहरण—(इस छात्रकी परीक्षा करो; पीछे इसको योग्य-श्रेणीमे भरती कर लो) इमम् अथवा एतं छात्रं परीक्षस्व ; तत एनं योग्य-श्रेण्यां प्रवेशय।

उभ (Both)।

'उभ'-शब्द केवल द्विवचनमे व्यवहृत होता है ; यथा—(पुंलिङ्ग)—(राम लक्ष्मण दोनो जाते हैं) उभौ रामलक्षणौ यातः ; (स्त्रीलिङ्ग)—(सारदा ज्ञानदा दोनो हसती हैं) उभे सारदाज्ञानदे हसतः ; (क्लीव-लिङ्ग)—(एकसमय फल पत्र दोनों गिरते हैं) युगपत् उभे फलपत्रे पततः। समासमे 'उभ'-शब्दके स्थानमे 'उभय' होता है ; यथा—उभौ पार्श्वौ—उभयपार्श्वौ।

उभय (Both)।

'उभय'-शब्द द्विवचनमे व्यवहृत नहीं होता ; केवल एकवचन और बहुवचनमे व्यवहृत होता है ; यथा—(देवगण असुरगण दोनोंने समुद्र मन्थन किया था) उभयः देवासुरगणः समुद्रं ममन्थ ; (देवता मनुष्य दोनो नृत्य करते हैं) उभये देवमनुष्याः नृत्यन्ति।

भवत् (आप Your honour)।

सभ्य वचनप्रयोगमे (as a courteous form of expression)'भवत्'-शब्दका व्यवहार होता है; किन्तु इसका सम्मान-अर्थ नियत नहीं। सम्मान-अर्थमे 'भवत्'-शब्दके पूर्वमे 'अत्र' और 'तत्र' वा 'स' संयुक्त किये जाते हैं ; यथा—अत्रभवत् ; तत्रभवत्* वा सभवत्।

---

* "पूज्ये तत्रभवानत्रभवांश्च भगवानपि"।

इनमेसे 'अत्रभवत्'-शब्द वक्ताके निकटस्थ व्यक्तिके सम्बन्धमे, और 'तत्रभवत्' वा 'भवत्' शब्द दूरस्थ अथवा अनुपस्थित व्यक्तिके सम्बन्धमे प्रयुक्त होता है। उदाहरण—(आपको निवेदन करता हूँ) अत्रभवन्तं निवेदयामि; (अरे हट जा, आप प्रकृतिस्थ हुए हैं) "अपेहि रे, अत्रभवान् प्रकृतिम् आपन्नः" शाकु० १; (पूज्यपाद काश्यपसे आदिष्ट हुआ हूँ) "आदिष्टोऽस्मि तत्रभवता काश्यपेन" शाकु० ४; (वे कर्त्तव्य-विषयमे मुझे नियुक्त करते हैं) "मां विधेयविषये भवान् (His Honour) नियुङ्क्ते" मालती० १. १२।

परस्पर, अन्योन्य, इतरेतर (Each other, one another)।

परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर शब्दका एकही अर्थ। वे क्लीवलिङ्ग-के एकवचनमेही व्यवहृत होते हैं; यथा—दुःशीलाः छात्राः परस्परं विवदन्ते (विवाद करते हैं); ये परस्परम् आद्रियन्ते, ते हि सुशीलाः। क्वचित् बहुवचनमेभी प्रयोग दृष्ट होता है; यथा—"अन्योन्येषां पुष्करै-रामृशन्त." माघ० १८. ३२।

सर्वनाम शब्दके उत्तर सम्बन्धार्थमे 'ईय'-प्रभृति प्रत्यय करनेसे कई विशेषणपद उत्पन्न होते हैं; (वे सर्वनाम नहीं)। यथा—मदीय, मामक, मामकीन (मेरा); अस्मदीय, आस्माक, आस्माकीन (हमारा); त्वदीय, तावक, तावकीन (तेरा); युष्मदीय, यौष्माक, यौष्माकीण (तुम्हारा); भवदीय, भावत्क (आपका); तदीय (उसका, उनका); अन्यदीय (अन्योंका, अन्यका); परकीय (दूसरेका, दूसरोंका);-स्वीय, स्वकीय (अपना)।* यथा—(हमारा घर) अस्मदीयं गृहम्;

* तावक, मामक, यौष्माक और आस्माक शब्दके स्त्रीलिङ्गमे—तावकी,

(तेरी पुस्तक) त्वदीयं पुस्तकम् ।

अनुवाद करो—दूसरेके धनमे लोभ मत कर (मा लुभ्य) । श्याम सब बालकोंमे श्रेष्ठ । ब्राह्मण क्षत्रिय दोनो परस्पर सौहार्दसे रहें (तिष्ठेताम्) । राम श्याम दोनो गये (गतौ) । मूर्ख परस्परका (द्वितीया) उपहास करते हैं (उपहसन्ति) । बालक अन्योन्यका वस्त्र आकर्षण करते हैं (आकर्षन्ति) । हमलोग परस्परमे अनुरक्त ।

सङ्ख्यावाचक शब्द (Numerals) ।

एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पञ्चन्, षष्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन्, एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, चतुर्दशन्, पञ्चदशन्, षोडशन्, सप्तदशन्, अष्टादशन्, ऊनविंशति,* विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य, परार्द्ध †—

मामकी, यौष्माकी और आस्माकी होते हैं। तद्भिन्न शब्द स्त्रीलिङ्गमे आकारान्त होते हैं ।

* अथवा-एकोनविंशति, एकादूनविंशति, एकान्नविंशति ।

† विंशति और त्रिंशत् शब्द परे रहनेसे—'द्वि' शब्दके स्थानमे 'द्वा', 'त्रि' शब्दके स्थानमे 'त्रयः', और 'अष्टन्' शब्दके स्थानमे 'अष्टा' होता है ; यथा—द्वाविंशति, त्रयोविंशति, अष्टाविंशति ; द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत्, अष्टात्रिंशत् ।

चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति और नवति शब्द परे रहनेसे

ये सङ्ख्यावाचक शब्द* ।

एक शब्द (One)—एकवचनान्त ।

इसके रूप पुंलिङ्ग और क्लीबलिङ्गमे 'सर्व'-शब्दके तुल्य, स्त्रीलिङ्गमे 'सर्वा'-शब्दके तुल्य ।

द्वि शब्द (दो Two)—द्विवचनान्त ।

त्रि शब्द (तीन Three)—बहुवचनान्त ।

विकल्पसे होता है ; यथा—द्विचत्वारिंशत् द्वाचत्वारिंशत्, त्रिचत्वारिंशत् त्रयश्चत्वारिंशत्, अष्टचत्वारिंशत् अष्टाचत्वारिंशत् ।

'अशीति'-शब्द परे रहनेसे नहीं होता ; यथा—द्व्यशीति, त्र्यशीति, अष्टाशीति ।

९९=नवनवति अथवा एकोनशतम् ।

समासस्त्रानुसार 'षष्' शब्दके स्थानमे 'षट्' आदेश, और पञ्चन्, सप्तन् प्रभृति नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है ; यथा—षड्‌विंशति, पञ्चविंशति इत्यादि ।

१०१, १०२, १०३, १०४, १०५ इत्यादि=एकोत्तरशत अथवा एकाधिकशत, द्व्युत्तरशत अथवा द्व्यधिकशत, त्र्युत्तरशत वा त्र्यधिकशत, चतुरुत्तरशत वा चतुरधिकशत, पञ्चोत्तरशत वा पञ्चाधिकशत इत्यादि ।

२००, ३०० इत्यादि=द्विशत, त्रिशत इत्यादि ।

* एकं दश शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा ।
लक्षञ्च नियुतञ्चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥
वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्ख-पद्मौ च सागरः ।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धञ्च दशवृद्ध्या यथोत्तरम् ॥

इनके रूप समस्त लिङ्गोंमेही दिखलाये गये ।

'त्रि' से 'अष्टादशन्' पर्य्यन्त शब्द बहुवचनान्त ।

चतुर् शब्द (चार Four) ।

	पुंलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	क्लीवलिङ्ग
१मा	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
२या	चतुरः	चतस्रः	चत्वारि
३या	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः
४र्थी	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
५मी	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
६ष्ठी	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
७मी	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु
सम्बो	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि

शुद्ध करो—एकं मुद्रा । द्वे ब्राह्मणौ गच्छतः । द्वौ फलौ पश्यामि । द्वौ वस्त्रम् । तिसृभ्यः मुनिभ्यः देहि । चत्वारः पुष्पमालाः । अत्र चत्वारि माला तिष्ठन्ति । चतस्रः मनुष्याः हसन्ति । चतुर्षु दिक्षु । चत्वारि गृहाः विद्यन्ते । तिसृभिः बालकैः सह नद्यां गतवान् ।

पञ्चन् शब्द (पाँच Five)		षष् शब्द (छः Six) ।
१मा	पञ्च	षट्
२या	पञ्च	षट्
३या	पञ्चभिः	षड्भिः
४र्थी	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः
५मी	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः

६ष्ठी	पञ्चानाम्	षण्णाम्
७मी	पञ्चसु	षट्सु

तीनो लिङ्गोंमेंही समान।

अष्टन् शब्द (आठ Eight)।

१मा	अष्ट, अष्टौ
२या	अष्ट, अष्टौ
३या	अष्टभिः, अष्टाभिः
४र्थी	अष्टभ्यः, अष्टाभ्यः
५मी	अष्टभ्यः, अष्टाभ्यः
६ष्ठी	अष्टानाम्
७मी	अष्टसु, अष्टासु
सम्बो	अष्ट, अष्टौ

तीनो लिङ्गोंमेंही समान।

'पञ्चन्' से 'अष्टादशन्' पर्य्यन्त शब्दोंके रूप तीनो लिङ्गोंमेंही एक-प्रकार : यथा—पञ्च वृक्षाः ; पञ्च स्त्रियः ; पञ्च फलानि।

सप्तन्, नवन्, दशन् प्रभृति नकारान्त शब्दके रूप—'पञ्चन्'-शब्दके तुल्य।

'ऊनविंशति', 'विंशति' प्रभृति इकारान्त शब्दके रूप—'मति'-शब्दके तुल्य।

'त्रिंशत्'-प्रभृति तकारान्त शब्दके रूप—'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।

'शत'-प्रभृति अकारान्त शब्दके रूप—'फल'-शब्द के तुल्य। किन्तु वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म और सागर शब्दके रूप—'देव'-शब्दके

तुल्य ।

अनुवाद करो—एक वृक्ष । दो मनुष्य जाते हैं (गच्छतः) । इस दिशामे (तृतीया) तीन बालिकायें आती हैं (आगच्छन्ति) । चार गायें इधर उधर (इतस्ततः) घूमती हैं (भ्रमन्ति) । कान्यकुब्जसे पाँच ब्राह्मण वङ्गदेशको गये थे (गतवन्तः) । छः रिपु सबको आक्रमण करते हैं (आक्रामन्ति) । वे सात भाई । आठ प्रहरोंमे (तृतीया) एक दिन । नौ बालक । दश दिक् । ग्यारह रुद्र । बारह आदित्य । तेरह आदमी इस घरमे रहते हैं (वसन्ति) । चौदह भुवन । पन्द्रह तिथि । सोलह भाग । उसने मुझे अठारह रुपये (रौप्यमुद्रा, रूप्यकम्) दिये थे ।

'ऊनविंशति' से 'परार्द्ध' पर्य्यन्त समस्त सङ्ख्यावाचक शब्द नित्य एकवचनान्त ।

किन्तु उनकी आवृत्ति होनेसे, अर्थात् 'द्वि', 'त्रि' प्रभृति सङ्ख्या-वाचक शब्द उनका विशेषण रहनेसे, अथवा उनको बहुत्व-विवक्षा होनेसे यथासम्भव द्विवचनान्त और बहुवचनान्त होते हैं; यथा—द्वे विंशती, तिस्रो विंशतयः इत्यादि ।

सङ्ख्यावाचक शब्द विशेष्य और विशेषण दोनो होते हैं । जब सङ्ख्याको समझाते हैं, तब 'विशेष्य'; और जब सङ्ख्याविशिष्ट पदार्थको समझाते हैं, तब 'विशेषण' । ये जब विशेष्य होते हैं, तब जिसकी सङ्ख्या कही जाय, उसमे षष्ठीका बहुवचन होता है ।*

---

* 'एक'से 'अष्टादशन्' पर्य्यन्त शब्द तीनो लिङ्गोंमेही व्यवहृत होते हैं । किन्तु सङ्ख्या समझानेसे अर्थात् विशेष्य होनेसे क्लीवलिङ्ग होते हैं ।

(उदाहरण)

	विशेषण	विशेष्य
एक ब्राह्मण—	एकः ब्राह्मणः	ब्राह्मणानाम् एकम् ।
बीस फल—	विंशतिः फलानि	फलानां विंशतिः ।
बाईस लड़कियाँ—	द्वाविंशतिः बालिकाः	बालिकानां द्वाविंशतिः ।
पचास फल दो—	पञ्चाशतं फलानि देहि	फलानां पञ्चाशतं देहि ।
सौ घोड़े—	शतम् अश्वाः	अश्वानां शतम् ।
सहस्र हाथी—	सहस्रं हस्तिनः	हस्तिनां सहस्रम् ।
कोटि मनुष्य—	कोटिः मनुष्याः	मनुष्याणां कोटिः ।
सहस्र दरिद्रको धन दो	सहस्राय दरिद्रेभ्यो धनं देहि	दरिद्राणां सहस्राय धनं देहि ।
दो कोड़ी मनुष्य	द्वे विंशती मनुष्याः	मनुष्याणां द्वे विंशती ।
दो सौ अश्व	द्वे शते अश्वाः	अश्वानां द्वे शते ।
तीन सौ वृक्ष	त्रीणि शतानि वृक्षाः	वृक्षाणां त्रीणि शतानि ।
कोड़ीमें कोड़ीमें मनुष्य	विंशतयः मानुषाः	मानुषाणां विंशतयः ।
शत शत अश्व	शतानि अश्वा.	अश्वानां शतानि (वा शतशः* अश्वाः) ।
सहस्र सहस्र पदाति	सहस्राणि पदातयः	पदातीनां सहस्राणि ।

अनुवाद करो—मनुष्यके दो हाथ, बीस अङ्गुलियाँ । तीस दिनमें (तृतीया) एक महीना । बारह महीनेमें एक वर्ष । पन्द्रह बालक खेलते

---

* 'शस्'-प्रत्ययान्त 'शतशस्'-शब्द—अव्यय ।

हैं (क्रीडन्ति)। यह सौ छात्रका शिक्षक। रावणके लक्ष पुत्र थे (आसन्)। इस ग्राममे चार सौ आदमी रहते हैं (निवसन्ति)। दो कोड़ी फल दो।

पूरणवाचक शब्द (Ordinals)।

द्वि, त्रि-प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तीय'-प्रभृति प्रत्यय करनेसे, द्वितीय तृतीय प्रभृति पूरणवाचक शब्द निष्पन्न होते हैं। वे सङ्ख्यावाचक नहीं। पूरण-अर्थमे द्वि और त्रि-शब्दके उत्तर 'तीय',* चतुर् और षष् शब्दके उत्तर 'थट्' (थ), पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन् शब्दके उत्तर 'मट्' (म), सङ्ख्यापूर्व दशन् शब्दके उत्तर 'डट्' (अ), विंशति त्रिंशत् चत्वारिंशत् और पञ्चाशत् शब्दके उत्तर 'डट्' और 'तमट्', और षष्टि-प्रभृति समस्त सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तमट्' होता है;† किन्तु सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे, षष्टि सप्तति अशीति और नवति शब्दके उत्तर विकल्पसे 'डट्' होता है‡; यथा—द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम,...दशम, एकादश,...ऊनविंश वा ऊनविंशतितम, विंश वा विंशतितम, एकविंश वा एकविंशतितम,...ऊनत्रिंश वा ऊनत्रिंशत्तम,...

---

* 'त्रि'के स्थानमे 'तृ' होता है।

† 'डट्' प्रत्यय होनेसे,—दशन् शब्दका 'अन्', विंशति शब्दका 'शति', 'त्रिंशत् प्रभृति शब्दका 'अत्', और षष्टि प्रभृति शब्दके इकारका लोप होता है।

‡ 'एक'-सङ्ख्याद्वारा किसीका पूरण नहीं होता। इसलिये उससे कोई पूरणवाचक शब्द उत्पन्न नहीं हो सकता। 'प्रथम'-शब्द पूरणवाचक नहीं। प्रथ् (धातु)+अम=प्रथम; स्त्रीलिङ्गमे—'प्रथमा'।

ऊनचत्वारिंश वा ऊनचत्वारिंशत्तम,...ऊनपञ्चाश वा ऊनपञ्चाशत्तम,... ऊनषष्टितम,* षष्टितम, एकषष्ट वा एकषष्टितम,...ऊनसप्ततितम, सप्ततितम, एकसप्तत वा एकसप्ततितम,...ऊनाशीतितम, अशीतितम, एकाशीत वा एकाशीतितम,...ऊननवतितम, नवतितम, एकनवत वा एकनवतितम,...नवनवत वा नवनवतितम, शततम, एकाधिकशततम,...सहस्रतम, अयुततम, लक्षतम इत्यादि ।

द्वितीय और तृतीय शब्द स्त्रीलिङ्गमें आकारान्त, और तद्भिन्न समस्त पूरणवाचक शब्दही स्त्रीलिङ्गमें ईकारान्त होते हैं; यथा—द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी इत्यादि ।

वचन-निर्णय ।

एकवचनान्त शब्द ।

२०२ । (क) जातिवाचक शब्द, समूहार्थ शब्द और समष्टिबोधक शब्द (Collective noun) एकवचनान्त; यथा—वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः; छात्रगणः; सेना ।†

---

* 'ऊन'-शब्द सङ्ख्यावाचक नहीं । 'ऊन'-शब्दका अर्थ—हीन, कम । एककम षष्टि=एकोनषष्टि वा ऊनषष्टि (एकेन ऊना एकोना, एकोना षष्टिः एकोनषष्टिः; ऊना चासौ षष्टिश्चेति ऊनषष्टिः ('एकेन' पद लुप्त रहता है)

† जातिवाचक शब्दका व्यक्तिगत विभिन्नतामें द्वित्व और बहुत्व समझानेमें द्विवचन और बहुवचनमें रूप होता है; यथा—ब्राह्मणौ, ब्राह्मणाः । समूहार्थ और समष्टिबोधक शब्दका द्वित्व और बहुत्व समझानेमें द्विवचन और बहुवचनमें रूप होता है; यथा—छात्रगणाः; उभे सेने ।

(ख) समाहार-द्वन्द्व और समाहार-द्विगु-समास-निष्पन्न शब्द एकवचनान्त; यथा—(द्वन्द्व) पाणिपादम्; (द्विगु) त्रिभुवनम् इत्यादि।

द्विवचनान्त शब्द।

(ग) अश्विनीकुमारके नाम (अश्विनीकुमार, अश्विन्, आश्विनेय, नासत्य, दस्र), दम्पति और जम्पति शब्द द्विवचनान्त।

बहुवचनान्त शब्द।

(घ) दार (पत्नी) अक्षत, लाज और असु तथा प्राण (जीवन) शब्द पुंलिङ्ग और नित्य बहुवचनान्त।

(ङ) अप्, वर्षा, सिकता और 'वस्रान्त'-वाचक दशा शब्द नित्य बहुवचनान्त।

(च) अप्सरस्, सुमनस् (पुष्प), जलौकस् और समा शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त।

(छ) 'गृह'-शब्द क्लीवलिङ्गमे तीनो वचनही होता है; किन्तु पुंलिङ्गमे नित्य बहुवचनान्त।

(ज) गौरव समझानेसे, सभी शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त होते हैं; यथा—'मम गुरुः' के स्थानमे 'मम गुरवः'।

गौरवार्थमे चरण-पर्य्यायक शब्दभी बहुवचनमे प्रयुक्त होता है; यथा—पितुः श्रीचरणेषु निवेदनम्; देवपादाः समादिशन्ति।

(झ) विशेषणरहित 'अस्मद्'-शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त होता है; यथा—'अहं ब्रवीमि, आवां ब्रूवः' के स्थानमे 'वयं ब्रूमः'। विशेषण* रहनेसे—दीनोऽहं ब्रवीमि, दीनौ आवां ब्रूवः।

* 'विशेषण'-शब्दसे यहाँ 'उद्देश्य विशेषण' विवक्षित है।

(ञ) जनपदका नाम (मुल्क या ज़िलाका नाम) बहुवचनान्त ; यथा—वङ्गाः, कलिङ्गाः* ।

(ट) वंश, परिवार प्रभृति अर्थ समझानेसे, व्यक्तिके नामके पश्चात् प्रत्यय-लोप करके बहुवचन प्रयुक्त होता है ; यथा—"रघूणामन्वयं वक्ष्ये" र० १ . ९ ; "जनकानां पुरोहितः" ।

शुद्ध करो—स मां सर्वाः मुद्राः दत्तवान् । स एषु त्रिभुवनेषु सर्वस्याधिपतिर्भवति । अश्विनीकुमारः सुराणां भिषक् । दारं मूलं त्रिवर्गस्य लोके प्राणमिव प्रियः । वर्षायां अप् वर्द्धन्ते । इन्द्रसभायाम् अप्सरसी नृत्यन्ति । बालकाः लाजं भक्षयन्ति ।

अव्यय और उनका व्यवहार

(Indeclinables and their use) ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति, तदव्ययम् ॥

किसी लिङ्गमे, किसी विभक्तिमे, अथवा किसी वचनमे जिन शब्दोंका रूपान्तर नहीं होता, उन्हें 'अव्यय' कहते हैं ; यथा—च, वा, तु, हि इत्यादि ।

अव्यय शब्दोंके बीचमे कई विशेष्य और कई विशेषण । स्वर्, अन्तर्, प्रातर्, दिवा, सायम्, नक्तम्, अद्य, ह्यस्, श्वस्, यदा, यत्र,

---

* जनपद-पर्य्यायक शब्द एकवचनान्त ; यथा—वङ्गदेशः, कलिङ्ग-विषयः ।

तदा, तत्र, इदानीम्, अधुना इत्यादि द्रव्यवाचक अव्यय-शब्द विशेष्य*। उच्चैस्, नीचैस्, शनैस्, मृषा, मिथ्या, वृथा, नाना इत्यादि गुणवाचक अव्यय-शब्द विशेषण । च, वा, तु, हि प्रभृति कई अव्यय विशेष्यभी नहीं, विशेषणभी नहीं ; केवल 'अव्यय'के नामसे परिचित ।

च (और, व And—Copulative conjunction) ।

हिन्दी वा अङ्गरेजीमे जिस पदके पूर्वमे 'और' अर्थका पद बैठता है, संस्कृतमे उसी पदके पश्चात् 'च' व्यवहृत होता है; यथा—(राम और लक्ष्मण) रामो लक्ष्मणश्च† ; (राम, सीता और लक्ष्मण) रामः सीता लक्ष्मणश्च ; (तू और मै) त्वम् अहञ्च ।

अपि (भी Also, too ; even) ।

(मै जाऊंगा ; वह-भी जायेगा) अहं यास्यामि ; सोऽपि यास्यति । (धातुओंमे विद्वान्‌लोग-भी चूकते हैं) धातुषु विद्वांसोऽपि भ्राम्यन्ति ।

वा (अथवा, या Or—Alternative or disjunctive conjunction) ।

हिन्दी या अङ्गरेजीमे जिस पदके पूर्वमे 'वा' अर्थका पद बैठता

---

* 'प्रातर्'-से 'अधुना'-पर्य्यन्त तेरह शब्द अधिकरणकारकमेही प्रयुक्त होते हैं।

† प्रत्येक पदका प्राधान्य अथवा प्रत्येक क्रियाकी समकालता समझानेके लिये प्रत्येक पदके पीछे 'च' बैठाया जा सकता है ; यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च; पपात च ममार च ।

है, संस्कृतमे उसी पदके पश्चात् 'वा' प्रयुक्त होता है*। यथा—(मैं या तू) अहं त्वं वा; (अन्न या व्यञ्जन) अन्नं व्यञ्जनं वा।

वितर्कस्थलमेभी 'वा' व्यवहृत होता है; यथा—(यह जानकर वह [शायद्—सम्भवतः] क्रुद्ध हो सकता है) एतद्विदित्वा स वा कुपितो भवेत्।

प्रश्नार्थक सर्वनामके साथभी सम्भावना-अर्थमे 'वा'-शब्दका व्यवहार होता है; यथा—"कस्य वा अन्यस्य वचसि मया स्थातव्यम्?" काद० (और किसका वाक्य मै पालन करूंगा?); "परिवर्त्तिनि ससारे मृतः को वा न जायते?" पञ्च० १,२८, (परिवर्त्तनशील संसारमे मरकर कौन जनमता नहीं?)। "लोप्त्रेण गृहीतस्य कुम्भीलकस्यास्ति वा प्रतिवचनम्?" विक्रमो० २।

हिन्दीमे 'नहीं तो', और अङ्गरेजीमे either—or, whether—or के अनुवादमे 'वा'-शब्दका प्रयोग प्रत्येक पदके अन्तमे करना चाहिये; यथा—(वह नहीं तो मै जाऊंगा) स वा अहं वा यास्यामि।

तु (परन्तु, लेकिन But, on the contrary—
Adversative particle)।

'तु'-शब्द वाक्यके आदिमे नहीं बैठता; किसी पदके पश्चात् इसका प्रयोग होता है†; यथा—(वह जाय; परन्तु मै नहीं जा-

---

* अथवा, किंवा, यद्वा, यदिवा—ये शब्द उस पदके पूर्वमेही बैठते हैं।

† किन्तु, परन्तु—इनका प्रयोग वाक्यके आदिमेही होता है।

ऊंगा) स यातु ; अहन्तु न यास्यामि । "स सर्वेषां सुखानां प्रायः अन्तं ययौ ; एकन्तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे" काद०। (ययौ— गया, प्राप्त हुआ ; लेभे—लाभ किया) ।

हि (ही—निश्चय Indeed, surely ; only, alone—to emphasize an idea) ।

'हि'-शब्द वाक्यके आदिमें नहीं बैठता ; यथा—"सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु" उत्तर० (गुरुजन शिशुओंमें सकरुणाही होते हैं) ; "मूढो हि मदनेन आयास्यते" काद० (मूर्खकोही काम सताता है) । हेतु-अर्थमेभी 'हि' होता है ।

एव (ही—अवधारण Only, alone) ।

(हंसही जलसे दूधको निकालता है) हंस एव जलाद्दुग्धम् उद्धरति ।

न, नो, मा* (नहीं Not) ।

ये प्रायशः क्रियापदके पूर्वमें ही बैठते हैं ; यथा—

(ऐसा प्रयोग युक्त नहीं) ईदृक् प्रयोगो न युज्यते, (अथवा) न युक्तः ।

(नहीं जाऊंगा) नो गमिष्यामि ।

(मत कर) मा कुरु ।

☞ प्रश्नार्थक 'या नहीं' और 'क्या'—इनका अनुवाद 'न वा' और 'किम्' 'अपि' द्वारा करना होता है ; इनमेंसे 'अपि' का प्रयोग

---

* मा—निवारणार्थक (A particle of prohibition); न—अस्वीकारार्थक, वा अभावार्थक (A particle of negation) ।

वाक्यके प्रारम्भमेंही होता है; यथा—(तेरा पुत्र है या नहीं ?) तव पुत्रोऽस्ति न वा ?; आपके पिता जीते हैं क्या ?) भवतः पिता जीवति किम् ? (अथवा) अपि जीवति ते पिता ?; (आप अच्छे हैं तो ?) अपि कुशली भवान् ? (अथवा) अपि कुशलं भवतः ?

इव ।

उपमाद्योतक 'तुल्य' 'सदृश' (Like) और उत्प्रेक्षाव्यञ्जक 'जैसा' 'सा' 'मानो'—इनकी संस्कृत 'इव'-शब्द-द्वारा की जाती है; यथा—(वह सिंहके तुल्य देखता है) स सिंह इव अवलोकयति; (वज्रके निनादसे पृथ्वी कम्पितसी होती थी) वज्रस्य निनादेन पृथिवी कम्पितेव बभूव।

नीचे हिन्दी-अङ्गरेज़ी-अर्थ और दृष्टान्त-समेत प्रचलित अव्यय-शब्द लिखे जाते हैं; यथा—

अब, इस समय, आजकल Now, now-a-days	अधुना, इदानीम्, एतर्हि, सम्प्रति, साम्प्रतम्।

(अब क्या करना चाहिये ?) अधुना किं विधेयम् ? (आजकल ब्राह्मणलोग वेद नहीं पढ़ते) साम्प्रतं ब्राह्मणा वेदं न अधीयते।

अबभी Even now—अधुनाऽपि, इदानीमपि।

(अबभी है) अधुनाऽपि तिष्ठति।

अभी Just now—इदानीमेव, अधुनैव।

(अभी जा) इदानीमेव गच्छ।

कब, किस समय When—कदा, कर्हि।

(वह कब आया ?) कदा स आयातः ?

कभी, किसी समय At some time—कदाचित्, कर्हिचित्, कदाचन, जातु, कदाऽपि ।

(कभी यह वृत्तान्त प्रकाशित होगा) कदाचिदेष वृत्तान्तो व्यक्तो भविष्यति ; (कभी मिथ्या नहीं बोलना चाहिये) न कदापि अनृतं वक्तव्यम् । "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" मनु० २. ९४. (भोग्यपदार्थोंके उपभोगसे कभी कामना शान्त नहीं होती) ।

जब, जिस समय When—यदा, यर्हि
तब, उस समय Then—तदा, तदानीम्, तर्हि

(जब वह पढ़ता है, तब किसीके साथ बात नहीं करता) यदा स पठति, तदा केनापि सार्द्धं न आलपति । (वह उस समय ध्यानस्थ था) स तदानीं ध्यानस्थ आसीत् ।

जबही Just when—यदैव ।

(जबही—जभी—होता है, तबही—तभी—मरता है) यदैव भवति, तदैव म्रियते ।

जब-तक As long as—यावत्
तब-तक ——— तावत्

(जब-तक वह नहीं आवे, तब-तक पढ़ो)यावत् स नायाति, तावत् पठ ।

उसी समय Instantly, immediately—सद्यः, तत्क्षणात्, तत्क्षणम्, तत्कालम्, सपदि ।

(भक्ति और एकाग्रताके साथ ईश्वरका स्मरण मनुष्यको उसी समय शुद्ध करता है) भक्त्या ऐकाग्र्येण च ईश्वरस्य स्मरणं मानवं सद्यः पुनाति ।

शीघ्र Soon—अचिरात्, अह्नाय, द्राक्, द्रुतम्, मङ्क्षु, झटिति, आशु, अञ्जसा।

(वह शीघ्र आयेगा) सः अचिरात् आगमिष्यति। (यह चिकित्सा शीघ्र की जाय) क्रियतामेतत् चिकित्सितं द्राक्।

अचानक Suddenly, all at once—अकस्मात्, सहसा, एकपदे, अकाण्डे।

(अचानक काम नहीं करना) "सहसा विदधीत न क्रियाम्" भा० २. ३०; (मुझे अचानक छोड़ जाते हो?) माम् एकपदे विहाय गच्छसि?

सबसमय Always—सदा, सर्वदा, अभीक्ष्णम्, शश्वत्, अजस्रम्, अनिशम्, निरन्तरम्।

(उत्तम छात्र सबसमय पढ़ता है) शश्वत् पठति सच्छात्रः; (सबसमय सत्य कहना) सदा सत्यं ब्रूयात्।

एकसमय Once upon a time—एकदा।

(एकसमय नारद आत्मज्ञानके लिये सनत्कुमारके पास गया) एकदा नारदः आत्मज्ञानाय सनत्कुमारम् उपससाद।

अन्यसमय At another time—अन्यदा।

एकसाथ Simultaneously—युगपत्, एकदा, समम्।

(एकसाथ सब हसते हैं) युगपत् सर्वे हसन्ति। "एकदा न विगृह्णीयाद्बहून् राजा विवादिनः" हितो० ४. १६. (राजा एकसाथ बहुतेरे विवादकारियोंके साथ कलह न करे)।

बहुधा, अकसर Mostly, generally, very often—

प्रायशः, प्रायः, प्रायेण ।

(शुभ कर्ममे अक्सर बहुत विघ्न होते हैं) शुभे कर्मणि प्रायशः बहवः अन्तरायाः भवन्ति ।

प्राचीन समयमे In former times—पुरा ।

(पूर्वकालमे ऋषिलोग तपोवनोमे निवास करते थे) पुरा ऋषयः तपोवनेषु न्यवसन् ।

आज To-day—अद्य ।

(आज मेरा जीवन सफल) अद्य मे सफलं जीवितम् ।

आजभी To this day, even now—अद्यापि ।

(आजभी दग्धप्राण नहीं निकलते !) नाद्यापि दग्धप्राणाः प्रयान्ति (निर्यान्ति वा) ।

आजही This very day—अद्यैव ।

(आजही वह जायेगा) अद्यैव स यास्यति ।

कल (गत), पूर्वदिन Yesterday—ह्यः, पूर्वेद्युः ।

(कल उसकी चिट्ठी पायी) ह्यः तस्य लिपिः प्राप्ता ।

कल (आगामी), परदिन To-morrow—श्वः, परेद्युः, परेद्यवि ।

(कल मै विद्यालयको नहीं जाऊंगा) श्वः अहं विद्यालयं न यास्यामि ।

परसों Day after to-morrow—परश्वः वा परःश्वः ।

(परसों हमारी परीक्षा होगी) परश्वः अस्माकं परीक्षा भविष्यति ।

उभय दिन On both days—उभयेद्युः वा उभयद्युः ।

(दोनो दिन पष्ठी है) उभयेद्युः पष्ठी विद्यते ।

इस वर्षमे In the present year—ऐषमः ।

(इस वर्षमे प्रचुर शस्य उत्पन्न हुआ है) ऐषमः प्रभूतं शस्यम् उत्पन्नम् ।

गतवर्षमे Last year—परुत् ।

(गतवर्ष वह परीक्षोत्तीर्ण हुआ) परुत् स परीक्षोत्तीर्णः अभूत् ।

गतवर्षके पूर्ववर्षमे The year before last—परारि ।

(गतवर्षके पूर्ववर्षमे दुर्भिक्ष हुआ था) परारि दुर्भिक्षं सञ्जातम् ।

दिनमे In the day-time—दिवा ।

"मा दिवा स्वाप्सीः" (दिनमे मत सो) ।

प्रातःकालमे In the morning—प्रातः, प्रगे ।

(प्रातःकालमे स्नान करके सन्ध्याकी उपासना करो) प्रातः स्नात्वा सन्ध्याम् उपास्स्व ।

सायाह्नमे, शामको In the evening—सायम् ।

(सायंकालमे भोजन, शयन और अध्ययन नहीं करना चाहिये) सायं भोजनं शयनम् अध्ययनञ्च न कर्त्तव्यम् ।

रात्रिमे At night—दोषा, नक्तम् ।

(रातमे अधिक नहीं जागना) नक्तं नाधिकं जागृयात् ।

पहले, पूर्वमे Before, at first—पूर्वम्, प्राक् ।

(एक मास पहले यह घटना हुई थी) मासात् पूर्वं वृत्तम् इदं सङ्घटितम् (सदा पञ्चमीके साथ); (ज्ञानदाताको पहले अभिवादन करना चाहिये) ज्ञानदातारं पूर्वम् अभिवादयेत् ।

पीछे Afterwards—पश्चात्, परस्तात्, अनु ।

(पीछे यह जाना गया) परस्तात् इदम् अवगतम् । (सब विद्यार्थी

अध्यापकसे पीछे बैठे)अध्यापकम् अनु उपविविशुः सर्वे विद्यार्थिनः ।

पीछे, पश्चाद्भागमे Behind--पश्चात्, पृष्ठतः, अन्वक्, अनुपदम् ।

(तेरे पीछे पुस्तक है) तव पश्चात् पुस्तकं वर्त्तते । "(वृद्धान्) गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात" मनु० ४.१५४.(जाते हुए वृद्धोंका पृष्ठदेशमे अनुगमन करना चाहिये) । "ताम् अन्वगय्यौ मध्यमलोकपालः" र० २. १६ (द्वितीयाके साथ) ।

आगे, सामने Ahead, before, in front--पुरः, पुरतः, पुरस्तात्, अग्रतः ।

(सामने चन्द्रमा चमक रहा है) पुरतो भाति चन्द्रमाः ।

अनन्तर Then--अथ, अथो ।

(अनन्तर उसने कहा) अथ सोऽब्रवीत ।

कुछ पहले A little before--अनतिपूर्वम्, किञ्चित् पूर्वम् ।

(थोड़ा आगे वर्षा हुई) अनतिपूर्वं वृष्टिरभवत ।

इससे पीछे After it--अतः परम् ।

(इससे पीछे मेरा कहना निरर्थक है) अतः परं मम भाषणं निरर्थकम् (व्यर्थं वा) ।

उससे पीछे After that--ततः परम्, तत्परम् ।

(उससे पीछे वह चला गया) ततः परं स प्रस्थितः ।

जिससे पीछे After which-यतः परम्, यत्परम् ।

(शिक्षकने उस छात्रको दण्ड दिया था, जिससे पीछे उसने दुष्टता छोड़ दी) शिक्षकस्तं छात्रम् अदण्डयत्, यतः परं स दुर्वृत्ततां परिहृतवान्।

दीर्घकाल Long--चिरम्, चिरेण, चिराय, चिरात्, चिरस्य ।

(जो कर्त्तव्य पालन नहीं करता, वह दीर्घकाल दुःख पाता है) यः कर्त्तव्यं न पालयति, स चिरं दुःखं भजते । (यथा, तेरे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ ; बहुत दिन जीता रह) "प्रीतोऽस्मि ते तात ! चिराय जीव" ।

कहाँ Where—कुत्र, कुतः, क्व ।

(कहां तेरी दया ?) कुत्र ते दया ?

"ईदृग्विनोदः कुतः ?" शकु० २. ६. (ऐसा आनन्द कहां ?) ।

(कहां जाता है ?) क्व गम्यते ?

कहाँसे Whence—कुतः ।

"कस्य त्वं वा कुत आयातः ?" (तू किसका है, और कहांसे आया ?)

कहीं Anywhere—कुत्रापि, कुत्रचित्, कुत्रचन, क्वचित्, क्वचन ।

(ऐसी पुस्तक और कहीं नहीं है) एतादृक् पुस्तकं नान्यत्र कुत्रापि वर्त्तते ।

जहाँ, जिसमें Where—यत्र
तहाँ, तिसमें There—तत्र

(जहां विद्वान् नहीं, तहां वास नहीं करना) यत्र विद्वान् नास्ति, तत्र न वसेत् ।

वहाँसे Thence—ततः ।

जहाँ कहीं Anywhere—यत्र कुत्रचित् ।

(जहां कहीं रहने दो) यत्र कुत्रचित् तिष्ठतु ।

यहाँ, इसमें Here—अत्र, इह, इतः ।

(इसमें दोष नहीं देखता हूँ) अत्र दोषं न पश्यामि । (यहां बैठ)

इतो निषीद ।

दक्षिणदिशामे; दहिनी ओर To the south; on the right side of—दक्षिणेन (द्वितीया और षष्ठीके साथ) ।

(घरके दक्षिणमे पुष्पोद्यान है) गृहं दक्षिणेन पुष्पोद्यानं विद्यते ।

"दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् आलाप इव श्रूयते" शकु० १. (बागीचेके दक्षिणमे बातचीतसी सुनी जाती है) ।

(गांवके दक्षिणमे) ग्रामस्य दक्षिणेन ।

उत्तरदिशामे Northward, on the north side of—उत्तरेण (द्वितीया और षष्ठीके साथ) ।

(घरके उत्तरमे जलाशय) गृहम् उत्तरेण जलाशयः ।

(निषधदेशके उत्तरमे) निषधस्योत्तरेण ।

सब दिशाओंमे, चारों ओर In all directions, on all sides—सर्वतः, समन्ततः, समन्तात्, परितः, अभितः ।

(सब दिशाओंमे वायु चलती है) सर्वतो वायुर्वहति । (सूर्य्यकी चारों ओर कहाँ अन्धकार ?) सूर्य्यम् अभितः कुत्रान्धकारः ? (२याके साथ) । (जिसके चतुष्पार्श्वमे) "यस्याभितः" इति षष्ठी. उत्तर० ६. ३६.

ऊपर Above, over, upon—उपरि, उपरिष्टात् ।

(अब मस्तकके ऊपर सूर्य्य है) इदानीं मस्तकस्योपरि भास्करो वर्त्तते । (वृक्षके ऊपर कबूतर था) वृक्षस्योपरि कपोत आसीत् ।

"इदम् उपरिष्टात् व्याख्यातम्" (पश्चात् इसकी व्याख्या की गयी)।

नीचे Below, beneath, under—अधः, अधस्तात् ।

(पथिक वटवृक्षके नीचे श्रम दूर करता है) वटविटपिनः अधस्तात् श्रमं शमयति पान्थः।

ऊँचा, उन्नत High; loudly—उच्चैः, उच्चकैः।

(अपना उच्च कुल विचारकर नीचकर्ममें प्रवृत्त मत हो) आत्मन उच्चैः कुलं विचार्य नीचकर्मणि मा प्रवर्त्तस्व। (उसने ऊँचा हसकर कहा) स उच्चैर्विहस्य अवदत्।

'अत्यन्त'-अर्थमेंभी 'उच्चैः'-शब्द प्रयुक्त होता है; यथा—"विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ताः" ऋतु० १. २२. (वनप्रदेश दृश्यमान होकर अत्यन्त भय उत्पादन करते हैं)।

नीचा, निम्न Low, in a low tone—नीचैः।

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" मेघ० १०९. (चक्रके प्रान्तभागकी रीतिसे मनुष्यकी अवस्था कभी नीचे कभी उपर जाती है)।

"नीचैः शंस" (धीरे बोल)।

भीतर Inside—अन्तः।

बाहर Outside—बहिः।

(घरके भीतर) अन्तर्वेश्मनि (सप्तमीके साथ)।

(प्राणियोंके भीतर और बाहर) "बहिरन्तश्च भूतानाम्" गीता. १३. १९. (षष्ठीके साथ)।

(नगरसे बाहर) पुराद्बहिः (पञ्चमीके साथ) । (बाहर जा) बहिर्गच्छ।

बीचमें Between, in the middle—अन्तरा।

(राम और श्यामके बीचमे वह है) रामं श्यामञ्चान्तरा सोऽस्ति। "मैनमन्तरा प्रतिबध्नीत" शकु० ६. (इसको बीचमे मत रोको)।

पास Near, by--समया, निकषा। आरात्।

(मेरे पास रह) मां निकषा तिष्ठ।

दूर Far—आरात्।

एकस्थानमे Together—एकत्र।

(वे एकस्थानमे रहते हैं) एकत्र ते तिष्ठन्ति।

प्रत्यक्षमे In the presence of—साक्षात्।

(प्रत्यक्षमे कहूंगा) साक्षात् वदिष्यामि।

"साक्षाद्यमः" (मूर्त्तिमान् इत्यर्थः)।

छिपेछिपे, निर्जनमे Secretly, in private—रहः, उपांशु, मिथः।

(वे छिपेछिपे बात करते हैं) ते रह आलपन्ति। (छिपकर रहो) उपांशु वस।

(उसने उसे निर्जनमे कहना आरम्भ किया) स तं मिथो वक्तुं प्राक्रमत।

इधर उधर Here and there—इतस्ततः, इतश्चेतश्च।

(बन्दर इधर उधर दौड़ते हैं) शाखामृगा इतस्ततो धावन्ति। "क सुखं धनलुब्धानाम् इतश्चेतश्च धावताम् ?" (इधर उधर दौड़ते हुए अर्थलोभियोंको सुख कहाँ ?)।

ओर Towards—प्रति (द्वितीयाके साथ)।

(वह शिशु सुन्दर पक्षीकी ओर देखता है) असौ शिशुः सुन्दरं

पक्षिणं प्रति दृष्टिं निक्षिपति।

परलोकमें In after-life—प्रेत्य, अमुत्र, परत्र।

"यावज्जीवं च तत् कुर्य्याद्येनामुत्र सुखं वसेत्" (सारा जीवन वह काम करना चाहिये, जिससे परलोकमें सुखसे रहे)। "सन्ततिः शुद्ध-वंश्या हि परत्रेह च शर्मणे" र० १. ६९. (शुद्धवंशोत्पन्न सन्तान इहलोक और परलोकमें सुखके लिये होती है)।

कैसा, किस प्रकार How—कथम्, कथङ्कारम्।

(मैं कैसे तुझपर विश्वास करूँ?) कथम् अहं त्वयि विश्वासं कुर्य्याम्? (यह कैसे सम्भव है?) कथङ्कारम् इदं सम्भवति?

क्यों Why—कथम्, किम्, कुतः।

(तू क्यों हसता है?) कथं हससि?

(क्यों उत्तर नहीं देता?) किं नोत्तरयसि?

(क्यों नहीं पढ़ता है?) कुतो न पठ्यते?

जैसा, जिस प्रकार As—यथा
वैसा, तिस प्रकार So—तथा

(जैसा वृक्ष, तैसा फल) यथा वृक्षस्तथा फलम्;

(जैसा बीज, तैसा अङ्कुर) यथा बीजं तथाऽङ्कुरः।

ऐसा, इस प्रकार Thus—इत्थम्, एवम्।

(वह ऐसा कहता है) स इत्थं वदति।

किसी प्रकारसे, कष्टसे Somehow, with great difficulty—कथमपि, कथञ्चित्, कथञ्चन।

(दरिद्र किसी प्रकारसे जीवन यापन करता है) दीनः कथमपि

जीवनं यापयति।

जिस किसी प्रकारसे Anyhow, in whatever way—यथाकथञ्चित्, यथाकथमपि, यथातथा।

(जिस किसी प्रकारसे विद्या उपार्जन करना) यथाकथञ्चित् विद्याम् उपार्जयेत्।

अच्छे प्रकारसे, वहुत अच्छा Well, very nice—सुष्ठु, सम्यक्, साधु।

(उसने इस कार्य्यको अच्छी तौरसे किया) स कृत्यमिदं सुष्ठु सम्पादितवान्। (वहुत अच्छा गाया) साधु गीतम्। (वाः वाः!—शावाश!) साधु साधु।

यथार्थरूपसे, ठीक, यथायोग्य Really, truly, rightly—यथार्थतः, यथायथम्, यथातथम्, यथास्वम्, वस्तुतः, अद्धा, अञ्जसा।

(सभाओंमे विद्वान् यथार्थरूपसे कहता है) यथातथं वक्ति सभासु विद्वान्। "यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद" मनु० ८. १०१. (जैसा सुना है, जैसा देखा है, सभी ठीक कहो)। [यत्सत्यम्—सच पूछो तो]।

सव प्रकारसे In every way, by all means सर्वथा।

(जिस कालमे जो करना चाहिये, सव प्रकारसे उसेही करना) सर्वथा कालोचितमेव कर्त्तव्यम्।

नहीं तो; अन्य प्रकार Or else, otherwise—अन्यथा।

(तू जा, नहीं तो वह नहीं जायेगा) त्वं याहि, अन्यथा स न

यास्यति।

"स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्त्तुमन्यथा" पञ्च० (उपदेशसे स्वभाव अन्यप्रकार नहीं किया जा सकता)।

तीन प्रकार In three ways, or in three parts—त्रिधा।

(तीन प्रकार उपाय) त्रिधा गतिः। "एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा" कु० ७.४४. (वह एकही मूर्त्ति तीन प्रकारसे विभक्त हुई)।

चार प्रकार In four ways—चतुर्द्धा।

(इसको चार भाग करके रखो) इमं चतुर्द्धा विभज्य स्थापय।

धीरे Slowly—शनैः।

(धीरे चल) शनैर्व्रज।

धीरे धीरे Slowly—शनैः शनैः।

(कछुआ धीरे धीरे गया था) कूर्मः शनैः शनैरगच्छत्।

बलपूर्वक, जबरन Forcibly—प्रसह्य।

(पुलिस चोरको बलपूर्वक पकड़के अदालतमे ले जाती हैं) रक्षापुरुषा मलिम्लुचं प्रसह्य धृत्वा अधिकरणं प्रापयन्ति।

एकबार Once—सकृत्।

(एकबार देखो) सकृत् अवलोकय।

दोबार Twice—द्विः।

(इस वाक्यको दोबार पढ़ो) वाक्यमेतत् द्विः पठ।

तीनबार Thrice—त्रिः।

(तीनबार आचमन करो) त्रिः आचाम।

चारबार Four times—चतुः।

(इस औषधको वारवार पिलाना) औषधमिदं चतुः पायय।

फिर Again—पुनः, भूयः।

(फिर ऐसा मत कहो) एवं भूयो मा वोचः।

वारवार Again and again, repeatedly—पुनःपुनः, भूयोभूयः, असकृत्, अभीक्ष्णम्, मुहुः, मुहुर्मुहुः।

(अधीतविषयोंका वार-वार आलोचन करना चाहिये) अधीतविषयाणां मुहुरालोचनं विधेयम्।

भाग्यवशात् Fortunately, (an exclamation of joy or gratification)—दिष्ट्या* ।

"दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्" मालती० ४. (भाग्यवशात् सङ्कट मिटा)। "दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्द्धनः" उत्तर० १.३२.।

लिये For, on account of—अर्थे, कृते (षष्ठीके साथ अथवा समासमे)।

"आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्" (अपने लिये पृथिवी छोड़ना)।

(किसके लिये अर्थ सञ्चय करते हो ?) कस्य कृते वित्तं सञ्चिनोषि ?

"काव्यं यशसेऽर्थकृते" (काव्य यश और अर्थके लिये) काव्यप्रकाशः १.।

इसलिये Hence, for this reason—इतः।

जिस कारण Since—यतः, यत्, हि
तिस कारण Therefore—ततः, तत्

(जिस कारण मैं केवल उसीकी चिन्ता करता हूँ, तिस कारण वैसा स्वप्न दीख पड़ा) यतोऽहं केवलं तदेव चिन्तयामि, ततो दृष्टस्तथा-

---

* 'दिष्ट्या' इति आनन्देऽव्ययम्।

विधः स्वप्नः ।

निश्चित Surely—नूनम्, अवश्यम्, ध्रुवम्, खलु, किल, एव।

(यह निश्चित परीक्षामें उत्तीर्ण होगा) नूनम् अनेन परीक्षोत्तीर्णेन भाव्यम् ।

यदि If—चेत्, यदि ।

(यदि वह आवे) स चेत् आयाति ।

['चेत्' वाक्यके आरम्भमे नहीं बैठता । 'यदि'के पश्चात् 'तदा' 'तर्हि' और कहीं कहीं 'ततः' 'तत्' अथवा 'अत्र' व्यवहृत होता है ।]

या (वितर्क, संशय) Whether—or (doubt)—आहो, आहोस्वित्, उत, उताहो, किमु, किमुत, नु ।

(देव या गन्धर्व ?) देव आहो गन्धर्वः ? (यह रस्सी या सांप ?) रज्जुरियम्, उत सर्पः ? "किमु विषविसर्पः किमु मदः ?" उत्तर० १. ३६. । "स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ?" शकु० ६. ९. ।

क्या (प्रश्नमे) Interrogation—किम्, किमु, कच्चित्, अपि, किंस्वित् (वितर्कें) ।

(वह आयेगा क्या ?) स किम् आगमिष्यति ? "कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ?" र० ५. ७. (हरिणिओंकी सन्तान अच्छी है तो ?) ।

[कच्चित् "कामप्रवेदने"—इष्टार्थप्रश्ने, स्वाभिलाषज्ञापनार्थं कृतः प्रश्ने] ।

हाँ Yes—बाढम्, अथ किम्, ओम्, एवम्, परमम् ।

"चाणक्यः—चन्दनदास ! एष ते निश्चयः ?

चन्दन—बाढम्, एष मे स्थिरो निश्चयः ।" मुद्रा० १. ।

"अपि वृषलम् अनुरक्ताः प्रकृतयः ?
अथ किम् ?" मुद्रा० १. (वृषलम्—चन्द्रगुप्तम्) ।

"सीता—अहो ! जाने, तस्मिन्नेव काले वर्त्ते ।
रामः—एवम् ।" उत्तर० १. (जाने—जानता हूँ ; वर्त्ते—हूँ) ।

"ततः परममित्युक्त्वा प्रतस्थे मुनिमण्डलम्" कु० ६.३५. (ओम् इत्युक्त्वा—अनुमन्य इत्यर्थः) ; (उक्त्वा—कहकर ; प्रतस्थे—प्रस्थान किया ; परमम्—अच्छा) । [अच्छा—बाढम्] ।

(हाँ, स्मरण हुआ) आं ज्ञातम् ।

अत्यन्त Very, very much—अति, अतीव, अत्यन्तम्, नितराम्, सुतराम्, बलवत्, निकामम्, प्रकामम्, परम्, परमम् ।
(उसकी साधुता देखकर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता है) तस्य साधुतां वीक्ष्य नितरां प्रसीदति मे चेतः । "सुतरां दयालुः" र० २. ५२. । "बलवत् दूयमानं हृदयम्" शकु० ५.३१. (दूयमानम्—परितप्तम्, खेदयुक्तम्) । "प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः (हरिः)" माघ० १.१७. (अप्रीयत—प्रीत हुआ) ।

कुछ, थोड़ा Somewhat, a little—किञ्चित्, किञ्चन, ईषत्, मनाक् ।
"(स सिंहः) किञ्चिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे" र० २.४६. (उस सिंहने थोड़ा हसकर राजाको कहा) । "रे पान्थ ! विह्वलमना न मनागपि स्याः" भामिनी० १.३६. (रे पथिक, कुछभी व्याकुलहृदय मत हो) ।

कुछ अच्छा, किसीकी अपेक्षा उत्कृष्ट Better than—वरम् ।

(घरसे वन अच्छा) गृहात् वनं वरम् ।

"वरं मौनं कार्य्यं, न च वचनमुक्तं यदनृतम् ''

"वरं भिक्षाशित्वं, न च परधनास्वादनसुखम्''

"वरं प्राणत्यागो, न पुनरधमानामुपगमः'' हितो० १.।

चुप Quiet, silently—तूष्णीम्, जोषम् ।

(चुप रह, जब तक मैं सुनूं) तूष्णीं भव—जोषम् आस्स्व—यावत्, अहम् आकर्णयामि । (आप क्यों चुप हो रहे ?) किं भवांस्तूष्णीमास्ते?

निष्प्रयोजन No need of, (having a prohibitive force)—अलम् (तृतीया अथवा 'क्त्वा'-प्रत्ययान्त पदके साथ) । कृतम् (३याके साथ) ।

(विवादमें प्रयोजन नहीं) विवादेनालम् । "अलम् अन्यथा गृहीत्वा'' म.लविका० १.२०. (अन्यप्रकार मत समझो) । "कृतं सन्देहेन'' शकु० १. (संशय नहीं करना) ।

समर्थ Able, competent—अलम् (चतुर्थी अथवा तुमन्त पदके साथ) ।

(वह विचारमें समर्थ) अलं स विचाराय ।

"आलव्यालमिदं, बभ्रोर्यत् स दारानपाहरत् ।
कथाऽपि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ॥'' माघ० २.४०. ।

"लोकान् अलं दग्धुं हि तत्तप.'' कु० २.५६. (उसकी तपस्या लोगोंको जलानेमें समर्थ) ।

[पर्य्याप्त, काफी—अलम्] ।

निरर्थक In vain—वृथा, मुधा ।

(निरर्थक समय नष्ट मत करो) वृथा अनेहसं मा क्षपय । "वृथा श्रमः" ।

युक्त, उचित Rightly, properly, justly--स्थाने, साम्प्रतम् ।

"स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुः" कु० ६.६७. (तुम्हें—हिमालयको—जो स्थावररूपी विष्णु कहते हैं, सो युक्तही है) ।

"सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः" मुद्रा० ३.१४. ।

टेढ़ा Crookedly, obliquely—साचि, तिरः, तिर्यक् ।

(वह मुझे तिरछा देखता है) स मां साचि विलोकयति ।

झूठ Falsely—मिथ्या, मृषा ।

(झूठ-मूठ किसीके ऊपर दोष नहीं लगाना) न कस्मिन्नपि मृषा दोषम् आरोपय । "यदुवाच न तन्मिथ्या" र० १७.४२. (वह जो वचन कहता, सो झूठ नहीं होता) ।

आप, खुद Oneself—स्वयम् ।

(अपना काम आपही करना चाहिये) स्वकीयं कर्म स्वयमेव सम्पाद्यम् ।

प्रकाश In sight—प्रादुः, आविः ।

भू, कृ और अस् धातुके साथ व्यवहृत होते हैं ; यथा--प्रादुर्भवति, प्रादुरस्ति ; आविर्भवति, आविरस्ति (प्रकाशित होता है) । प्रादुष्करोति, आविष्करोति (प्रकाशित करता है) ।

(दिवाकर प्रादुर्भूत हुआ) प्रादुरासीद्दिवाकरः ।

अदर्शन--अस्तम् ।

गम्, या, इ और आप् धातुके साथ व्यवहृत होता है ; यथा--

अस्तं गच्छति, अस्तं याति, अस्तम् एति, अस्तं प्राप्नोति ।
(सूर्य छिपता है—अदृश्य होता है) रविः अस्तमेति ।

हाय (खेद) Alas ! ah !—हन्त, बत, अहह, अहो, अहोबत, हा, कष्टम् ।
(हाय ! मर्मभेदि वाक्य सुना) अहह ! अरुन्तुदं वचः श्रुतम् ।
"हा धिक् कष्टम्" ।

कोप, स्पर्द्धा ; वेदना Anger; pain—आः ।
"आः पापे, तिष्ठ तिष्ठ" मालती० ८. । "आः शीतम् !"

छिः छिः (तिरस्कार) Fie, shame—धिक् ।
"धिगिमां देहभृतामसारताम्" र० ८.५० (देहधारियोंकी इस असारताको धिक्कार) ।

विना, सिवा Without, except—विना, अन्तरेण, ऋते, अन्तरा ।
"यथा तानं विना रागो, यथा मानं विना नृपः ।
यथा दानं विना हस्ती, तथा ज्ञानं विना यतिः ॥" भामिनी० १.११६. ।
"पङ्कैर्विना सरो भाति, सदः खलजनैर्विना ।
कटुवर्णैर्विना काव्यं, मानसं विषयैर्विना ॥" भामिनी० १.११३. ।
"मार्मिकः को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम् ?" भामिनी० १.११४. ।
(भौंरेको छोड़ पुष्पमधुओंका मर्म कौन जानता है ?) ।
"रत्नाकरात् ऋते कुतश्चन्द्रलेखायाः प्रसूतिः ?" नागानन्दम् ।
"न च प्रयोजनमन्तरा चाणक्यः स्वप्नेऽपि चेष्टते" मुद्रा० ३. ।

साथ With—साकम्, सार्द्धम्, समम्, सह ।

(उसके साथ जा) तेन साकं व्रज ।

से From, ever since, beginning with—प्रभृति, आरभ्य (पञ्चमीके साथ) ।

(शैशवसे धर्मपरायण हो) शैशवात् प्रभृति धार्मिको भव ।

(तबसे) ततः प्रभृति, तदाप्रभृति ; (अबसे) अतः प्रभृति ; (आजसे) अद्य प्रभृति ।

सम्बोधन Vocative particle, oh !—अङ्ग, अयि, अये, हे, भोः ।

"अङ्ग ! कच्चित् कुशली तातः ?" काद० ; "अयि भो महर्षिपुत्र !" शकु० ७ ; "कः कोऽत्र भोः !" शकु० २. ।

नीच सम्बोधन--रे, अरे, अरेरे ।

(नीचाशय ! गर्व मत कर) रे नीचाशय ! गर्वं मा कुरु ।

परस्पर Each other, one another—मिथः ।

(वे परस्पर सौहार्दसे रहते हैं) ते मिथः सौहार्देन वसन्ति ।

नमस्कार Salutation—नमः (चतुर्थीके साथ) ।

(देवताओंको नमस्कार) नमो देवेभ्यः ।

मन्त्रार्थमे—स्वाहा, स्वधा, वषट् ।

इन्द्राय स्वाहा ; पितृभ्यः स्वधा ; पूष्णे वषट् ।

मङ्गल May it be well with (one)—स्वस्ति ।

(सर्वजनोका मङ्गल हो) स्वस्त्यस्तु सर्वजनेभ्यः ।

प्रश्नमाला ।

निम्नलिखित शब्दोंके रूप कहो—

नर, गज, विधि, हरि, पति, सखि, भूपति, हतश्री, अग्रणी, ग्रामणी, विधु, बन्धु, ऊरु, स्वयम्भू, धातृ, भ्रातृ, नृ, गो। देवता, वसुधा, अम्बा, जगदम्बा, जरा, गति, बुद्धि, लक्ष्मी, स्त्री, श्री, तनु, रज्जु, वधू, स्वसृ, मातृ, दुहितृ, गो, द्यो, नौ। वन, वारि, दधि, अक्षि, अस्थि।

पयोमुच्, भूभुज्, सम्राज्, विपश्चित्, परीक्षित्, उदन्वत्, सानुमत्, जाग्रत्, बृहत्, महत्, ज्योतिर्विद्, द्विजन्मन्, अध्वन्, लघिमन्, अश्वत्थामन्, राजन्, श्वन्, युवन्, पक्षिन्, पथिन्, द्विष्; चन्द्रमस्, उशनस्, अनेहस्, दोस्, पुमस्, विद्वस्, शुश्रुवस्, उपेयिवस्, मधुलिट्, तुरासाट्। त्वच्, विद्युत्, शरद्, मृद्, विपद्, क्षुध्, अप्, द्वार्, गिर्, पुर्, दिव्, प्रावृष्, भास्, आशिस्। भवत् (शतृ-प्रत्ययान्त), भवत् (युष्मदर्थ)। प्राच् (पुंलिङ्ग और क्लीवलिङ्गमें), धामन्, चर्मन्, अहन्, मनस्, आयुस्, चक्षुस्।

सर्व, उभ, अन्य, पूर्व, स्व, तद्, एतद्, इदम्, किम्, युष्मद्, अस्मद्, अदस्, त्रि, चतुर्, सप्तन्, पञ्चाशत्, सहस्र, मिथ्या।
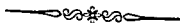
तिङन्त-प्रकरण ।

२०३ । प्रयोगकालमे धातुके उत्तर तिङ्*-विभक्ति होती है। 'तिङ्'-विभक्तिके योगसे जो पद निष्पन्न होता है, उसको 'तिङन्त पद' कहते हैं ।

२०४ । 'तिङ्-विभक्ति दश-प्रकार—लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, लृट्, लिट्, लुङ्, लुट्, लृङ् और आशीर्लिङ्। 'लट्'-प्रभृतिको 'लकार' कहते हैं† । प्रत्येक लकार दो पदोंमे विभक्त—परस्मैपद और आत्मनेपद । प्रत्येक पदके तीन तीन पुरुष हैं—प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष । और प्रत्येक पुरुषके तीन तीन वचन हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन‡ ।

---

* प्रथम विभक्ति 'तिप्'-का आद्य अक्षर 'ति', और शेष विभक्ति 'महिङ्'-का अन्त्य अक्षर 'ङ्' लेकर धातुविभक्तियोंका नाम 'तिङ्' रखा गया ।

† 'दशलकार' कहनेसे लट्, लोट् प्रभृति दशोंकोही समझना ; और 'चतुर्लकार' कहनेसे लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—इन चार प्रथम लकारको समझना ।

‡ अतः 'तिङ्'-विभक्तिकी सङ्ख्या १८० ।

तिङ्-विभक्तिकी आकृति
(Inflectional termination) ।

लट् (वर्त्तमाना) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ति	तस्	अन्ति
मध्यमपुरुष	सि	थस्	थ
उत्तमपुरुष	मि	वस्	मस्

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ते	आते	अन्ते
मध्यमपुरुष	से	आथे	ध्वे
उत्तमपुरुष	ए	वहे	महे

लोट् (पञ्चमी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तु	ताम्	अन्तु
मध्यमपुरुष	हि	तम्	त
उत्तमपुरुष	आनि	आव	आम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ताम्	आताम्	अन्ताम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	स्व	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐ	आवहै	आमहै

लङ् और लुङ् (ह्यस्तनी और अद्यतनी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	द्	ताम्	अन्
मध्यमपुरुष	स्	तम्	त
उत्तमपुरुष	अम्	व	म

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	त	आताम्	अन्त
मध्यमपुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	इ	वहि	महि

विधिलिङ् (सप्तमी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	यात्	याताम्	युस्
मध्यमपुरुष	यास्	यातम्	यात
उत्तमपुरुष	याम्	याव	याम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ईत	ईयाताम्	ईरन्
मध्यमपुरुष	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
उत्तमपुरुष	ईय	ईवहि	ईमहि

लृट् (भविष्यन्ती) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यति	स्यतस्	स्यन्ति
मध्यमपुरुष	स्यसि	स्यथस्	स्यथ
उत्तमपुरुष	स्यामि	स्यावस्	स्यामस्

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यते	स्येते	स्यन्ते
मध्यमपुरुष	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उत्तमपुरुष	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लिट् (परोक्षा) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अ	अतुस्	उस्
मध्यमपुरुष	थ	अथुस्	अ
उत्तमपुरुष	अ	व	म

आत्मनेपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ए	आते	इरे
मध्यमपुरुष	से	आथे	ध्वे
उत्तमपुरुष	ए	वहे	महे

लुट् (श्वस्तनी)।

परस्मैपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ता	तारौ	तारस्
मध्यमपुरुष	तासि	तास्थस्	तास्थ
उत्तमपुरुष	तास्मि	तास्वस्	तास्मस्

आत्मनेपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ता	तारौ	तारस्
मध्यमपुरुष	तासे	तासाथे	ताध्वे
उत्तमपुरुष	ताहे	तास्वहे	तास्महे

लृङ् (क्रियातिपत्तिः)।

परस्मैपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
मध्यमपुरुष	स्यस्	स्यतम्	स्यत
उत्तमपुरुष	स्यम्	स्याव	स्याम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
मध्यमपुरुष	स्यथास्	स्येथाम्	स्यध्वम्
उत्तमपुरुष	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

आशीर्लिङ् (आशीः) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	यात्	यास्ताम्	यासुस्
मध्यमपुरुष	यास्	यास्तम्	यास्त
उत्तमपुरुष	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
मध्यमपुरुष	सीष्ठास्	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उत्तमपुरुष	सीय	सीवहि	सीमहि

पुरुष ।

२०५ । पुरुष तीन-प्रकार—प्रथम पुरुष (Third person), मध्यम पुरुष (Second person) और उत्तम पुरुष (First person) । 'युष्मद्'-'अस्मद्'-भिन्न नाम (शब्द)-मात्रकोही 'प्रथमपुरुष' कहते हैं । 'युष्मद्'-शब्दको 'मध्यम-

पुरुष',* और 'अस्मद्'-शब्दको 'उत्तमपुरुष' कहते हैं ।

२०६ । तिङन्त क्रियाके तीन वाच्य (Voice)—(१) कर्त्तृवाच्य (Active voice), (२) कर्मवाच्य (Passive voice) और (३) भाववाच्य (Intransitive-passive voice)। क्रियापद जिसको समझाता है, उसे 'वाच्य' कहते हैं । जो क्रिया कर्त्ताको समझाती है, उसे 'कर्त्तृवाच्य' ; जो क्रिया कर्मको समझाती है, उसे 'कर्मवाच्य' ; और जो क्रिया 'भाव'† अर्थात् धातुके अर्थको समझाती है, उसे 'भाववाच्य' कहते हैं। यथा—स पश्यति (वह देखता है)—यहाँ 'देखता है' यह क्रिया जो देखता है उसको समझाती है, इसलिये यह कर्त्तृवाच्य । तेन चन्द्रो दृश्यते (उससे चन्द्र देखा जाता है)—यहाँ 'देखा जाता है' यह क्रिया जो देखा जाता है उसको समझाती है, इसलिये यह कर्मवाच्य । तेन दृश्यते (उसका देखना)—यहाँ 'देखना' यह क्रिया 'दृश्'-धातुके अर्थकोही समझाती है, इसलिये यह भाववाच्य ।

कर्त्तृवाच्य-प्रयोग ।

☞ कर्त्तृवाच्यमे—कर्त्तामे प्रथमा, और कर्ममे द्वितीया विभक्ति

---

* 'भवत्'-शब्दका अर्थ 'युष्मद्' होनेपरभी, वह 'युष्मद्'-शब्दसे भिन्न, इसलिये उसकी क्रियामे प्रथमपुरुषकी विभक्ति होगी ; यथा—भवान् गच्छति । किन्तु 'भवत्'-शब्दका प्रयोग न करनेसे, 'युष्मद्'-शब्दही ऊह्य होता है, इसलिये मध्यमपुरुषही होगा ।

† "धात्वर्थः केवलः शुद्धो भाव इत्यभिधीयते" ।

होती है, और क्रियापदके पुरुष और वचन कर्त्ताके अनुसार होते हैं (अर्थात् नाम--'युष्मद्'-'अस्मद्'-भिन्न शब्द--कर्त्ता होनेसे प्रथमपुरुषकी विभक्ति होती है; 'युष्मद्'-शब्द कर्त्ता होनेसे मध्यमपुरुषकी विभक्ति होती है; और 'अस्मद्'-शब्द कर्त्ता होनेसे उत्तमपुरुषकी विभक्ति होती है; और कर्त्ताका जो वचन, क्रियाकाभी वही वचन होता है); यथा--(बालक पुस्तक पढ़ता है) शिशुः पुस्तकं पठति, (दो बालक पुस्तक पढ़ते हैं) शिशू पुस्तकं पठतः, (बालक पुस्तक पढ़ते हैं) शिशवः पुस्तकं पठन्ति; (तू सत्यका पालन कर) त्वं सत्यं पालय, (तुम दोनो सत्यका पालन करो) युवां सत्यं पालयतम्, (तुम सत्यका पालन करो) यूयं सत्यं पालयत; (मैं चन्द्र देखता हूँ) अहं चन्द्रं पश्यामि, (हम दोनो चन्द्र देखते हैं) आवां चन्द्रं पश्यावः, (हम चन्द्र देखते हैं) वयं चन्द्रं पश्यामः।

२०७। वाच्यके अनुसार धातुके भिन्न भिन्न रूप होते हैं।

धातु दश गणोमे विभक्त--भ्वादि, अदादि, ह्वादि (जुहोत्यादि), दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि*।

२०८। धातु दो प्रकार--अकर्मक (Intransitive or neuter) और सकर्मक (Transitive)। जिन धातुओं

* भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तन-क्र्यादि-चुरादयः॥

का कर्म नहीं रहता, वे 'अकर्मक'*, और जिनका कर्म रहता है, वे 'सकर्मक' ।

(क) सकर्मक धातुओंके बीचमे दुह्, याच् प्रभृति† कई धातुओंके कभी कभी दो कर्म रहते हैं, तब उनको 'द्विकर्मक' कहते हैं।‡

---

* सत्ता-लज्जा-स्थिति-जागरणं
वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम् ।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्था
धातव एते कर्मविहीनाः ॥

कर्मकारकका उल्लेख न रहनेसे सकर्मक धातु अकर्मक होता है; यथा—स चन्द्रं पश्यति—यहाँ 'दृश्'-धातु सकर्मक ; स पश्यति—यहाँ अकर्मक। उपसर्गके योगसे अर्थान्तर होनेपर अकर्मक धातुभी सकर्मक होता है; यथा—दुःखमनुभवति (दुःख भोगता है)। अकर्मक धातु णिजन्त होनेसे सकर्मक होता है।

† दुहिर्याच्ञा-ब्रुवर्थौ च पचतिश्चि-जि-दण्डयः ।
रुधिः प्रच्छिर्मन्थतिश्च मुषिः शासिर्दुहादयः ॥
न्यादयो नयतिः प्रोक्ताः कर्षतिर्हरतिर्वहिः ॥

दुह्, याच् (याच्ञार्थ—अर्थ, नाथ्, भिक्ष् प्रभृति समस्त धातु), ब्रू (कथनार्थ—कथ, वच्, वद्, भाष् प्रभृति समस्त धातु), पच्, चि, जि, दण्डि, रुध्, प्रच्छ् (प्रश्नार्थ समस्त धातु), मन्थ्, मुष्, शास्—ये दुहादि; और नी, कृष्, हृ, वह्—ये न्यादि।

‡ जब एकही कर्म रहता है, तब केवल सकर्मक।

(ख) सकर्मक धातु कर्तृवाच्यमे, और अकर्मक धातु कर्त्तृ-वाच्य तथा भाववाच्यमे प्रयुक्त होते हैं।

धातु औरभी तीन प्रकारोंमे विभक्त—परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी। परस्मैपदी धातुके उत्तर परस्मैपदकी, आत्मनेपदी धातुके उत्तर आत्मनेपदकी, और उभयपदी धातुके उत्तर परस्मैपद और आत्मनेपद इन उभयपदोंकी विभक्ति होती है।*

संज्ञा।

सगुण विभक्ति।

२०१। 'तिङ्'-विभक्तियोंके बीचमे, लट्—ति, सि, मि; लोट्—तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै; लङ्—द्, स्, अम्; लिट्—प्रथम और उत्तमपुरुषके 'अ', मध्यमपुरुषके एकवचनका 'थ'; लुङ्, लुट् लृट् और लृङ्की समस्त विभक्ति; और आशीर्लिङ् आत्मनेपदकी समस्त विभक्ति सगुण।†

---

* जहाँ फलाकाङ्क्षा रहती है, वहाँ कर्त्ता स्वयं फलभागी होनेसे, उभयपदी धातुके उत्तर आत्मनेपद होता है, और दूसरा कोई फलभागी होनेसे, परस्मैपद होता है; यथा—(मैं दान करूंगा) अहं दानं करिष्ये; (मैं पिताजीकी स्वर्गकामनामे दान करूंगा) अहं पितुः स्वर्गकामः दानं करिष्यामि। उपसर्गविशेषके योगसे कोई कोई परस्मैपदी धातु आत्मनेपदी, और आत्मनेपदी धातु परस्मैपदी होता है (५१८ और ५२२ सूत्र द्रष्टव्य)।

† वैयाकरणलोग ति, सि, मि, तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै,

अगुण विभक्ति ।

२१० । ति, सि, मि भिन्न समस्त लट् ; तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै भिन्न समस्त लोट् ; द्, स्, अम् भिन्न समस्त लङ् ; प्रथम तथा उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ' और मध्यमपुरुषके एकवचनके 'थ' भिन्न समस्त लिट् ; समस्त विधिलिङ् ; और आशीर्लिङ्का समस्त परस्मैपद अगुण ।

२११ । गुण—इ ईके स्थानमे 'ए', उ ऊके स्थानमे 'ओ', ऋ ॠके स्थानमे 'अर्', और 'ऌ'के स्थानमे 'अल्' होनेका नाम 'गुण' ।

२१२ । वृद्धि—'अ'के स्थानमे 'आ', इ ईके स्थानमे 'ऐ', उ ऊके स्थानमे 'औ', ऋ ॠके स्थानमे 'आर्', और 'ऌ'के स्थानमे 'आल्' होनेका नाम 'वृद्धि' ।

२१३ । उपधा—अन्त्यवर्णके पूर्ववर्णको 'उपधा' कहते हैं ; यथा—र् + उ + च् = रुच्—यहाँ चकारसे पूर्ववर्ण 'उकार' उपधा ।

२१४ । आगम—प्रकृति और प्रत्ययका अनिष्ट न करके जो होता है, उसे 'आगम' कहते हैं ; यथा—भू + ति = भू + अ + ति—इस स्थलमे मध्यस्थित 'अ' आगम* ।

आमहै—इन विभक्तियोंके अन्तमे 'प्' युक्त करके पढ़ते हैं ; यथा—तिप्, सिप् इत्यादि ; और लङ्के द्, स्, अम्के स्थानमे दिप्, सिप्, अमप्, तथा लिट्के परस्मैपदके एकवचनमे णप्, थप्, णप् पढ़ते हैं ।

* मित्रवदागमः ।

२१५। आदेश—प्रकृति वा प्रत्ययके स्थानमे जो होता है, उसका नाम 'आदेश'; यथा—स्था + ति = तिष्ठ् + अ + ति = तिष्ठति—यहाँ 'स्था'के स्थानमे 'तिष्ठ्' आदेश हुआ है।*

२१६। टि—प्रकृतिका शेषस्वरवर्ण और तत्परस्थित व्यञ्जनवर्णको 'टि' कहते हैं।

उपसर्ग (Prefix)।

२१७। प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्, दुर्, अभि, वि, अधि, सु, उत्, अति, नि, प्रति, परि, अपि, उप, आङ्—ये अव्यय धातुके पूर्वमे संयुक्त होनेसे इनको 'उपसर्ग' कहते हैं।†

---

† शत्रुवदादेशः।

* प्र-पराप-समन्वव-निर्-दुरभि-

व्यधि-सूदति-नि-प्रति-पर्य्यपयः।

उप आङिति विंशतिसङ्ख्यमिमं

कुरु कण्ठगतं ह्युपसर्गगणम्॥

प्रादिके अर्थ—प्र=प्रकर्ष; परा=अपकर्ष, प्रत्यावृत्ति; अप=अपकर्ष; सम्=सम्यक्; अनु=पश्चात्, सादृश्य, वीप्सा, सामीप्य; अव=निश्चय, अपकर्ष; निर् निस्=निश्चय, निषेध, बहिष्करण; दुर् दुस्=कष्ट, निन्दा; अभि=समन्तात्, उभय, आभिमुख्य; वि=विशेष, वैपरीत्य; अधि=उपरि; सु=शोभन, प्रशंसा, आतिशय्य; उद् उत्=ऊर्द्ध्व, उत्कर्ष; अति=आतिशय्य, अतिक्रम, प्रशंसा; नि=निश्चय, निषेध; प्रति=प्रत्यर्पण, सादृश्य, वीप्सा; परि=सर्वतोभाव, वीप्सा; अपि=सम्भावना, समुच्चय; उप=सामीप्य, पश्चात्, आधिक्य; आङ्=समन्तात्, ईषत्, सीमा, व्याप्ति।

(क) उपसर्गोंके योगसे धातुके भिन्न भिन्न अर्थभी होते हैं ; यथा—'हृ'-धातुका अर्थ—हरण ; किन्तु प्र + हृ = प्रहार, आ + हृ = आहार, सम् + हृ = संहार, वि + हृ = विहार, परि + हृ = परिहार ।*

"धात्वर्थं बाधते कश्चित्"—कोई उपसर्ग धातुके अर्थका निरास करता है; यथा—'आदत्ते'—यहाँ दानार्थक 'दा'-धातुमे 'आ' उपसर्ग युक्त होनेसे 'ग्रहण' अर्थ हो गया ।

"कश्चित् तमनुवर्त्तते"—कोई उपसर्ग धातुके अर्थका अनुसरण करता है ; यथा—'प्रसूते'—यहाँ 'प्रसव—उत्पादन' 'सू'-धातुका अर्थ 'प्र'-उपसर्गके योगसेभी पूर्ववत् रहा ।

"तमेव विशिनष्टयन्यः"—और कोई उपसर्ग धातुके अर्थको बढ़ाता है ; यथा—'सन्तुष्यति' 'सम्पश्यति'—यहाँ 'तुष्'-धातुका अर्थ 'तुष्ट होना', और 'दृश्'-धातुका अर्थ 'देखना' 'सम्' उपसर्गके योगसे 'अत्यन्त तुष्ट होना' और 'अच्छे प्रकारसे देखना' हुआ ।

"उपसर्गगतिस्त्रिधा"—इस रीतिसे उपसर्गकी प्रवृत्ति तीन प्रकारकी होती है ।

(ख) 'अव' और 'अपि' उपसर्गके आदिस्थित अकारका विकल्पसे लोप होता है ; यथा—अवगाहः, वगाहः ; अवगाहते, वगाहते ; अवगाह्य, वगाह्य ; अपिधानम्, पिधानम् ; अपिहितम्, पिहितम् ; अपिदधाति, पिदधाति ; अवतंसः, वतंसः ।

(ग) क्विप्-घञ्-प्रभृति-प्रत्ययान्त शब्द परे रहनेसे, उपसर्गका अन्त्य-

---

* उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥

स्वर कभी कभी दीर्घ होता है ; यथा—प्रावृट्, नीवृत्, उपानत्, प्रासादः (देव-भूभुजां गृहे), नीकाश, अपामार्गः, नीहारः, नीरारः, नीवारः, प्राकारः (प्राचीर); अतीसारः, अतिसारः; प्रतीकार, प्रतिकारः; प्रतीहारः, प्रतिहारः; परीहासः, परिहासः; परीवादः, परिवादः; प्रतीकाशः, प्रतिकाशः इत्यादि।

(घ) अय् धातु परे रहनेसे, उपसर्गके 'र' के स्थानमें 'ल' होता है; यथा—प्र + अयते = प्लायते ; परा + अयनम् = पलायनम्।

लकारार्थ-निर्णय।

२१८। वर्त्तमान-कालमें—लट् (Present tense); अतीत-कालमें—लङ् (First preterite), लिट् (Second preterite) और लुङ् (Third preterite, Aorist); भविष्यत्-कालमें—लुट् (First future) और लृट् (Second future); अनुज्ञामें—लोट् (Imperative mood); विधि-अर्थमें—विधिलिङ् (Potential mood); आशीर्वाद-अर्थमें आशीर्लिङ् (Benedictive mood); और क्रियातिपत्ति अर्थात् क्रियाद्वयकी अनिष्पत्ति अर्थमें—लृङ् (Conditional mood) होता है।

२१९। लट्—(वह जाता है) स गच्छति।

(क) वर्त्तमानसामीप्यमें अर्थात् वर्त्तमानके समीपस्थ अतीत और भविष्यत् कालमेंभी 'लट्' होता है ; यथा—(मैं अभी आया हूँ) एषोऽहमागच्छामि, अयमागच्छामि; "अयमहमागच्छामि" शकु० ३. (अभी आता हूँ—आऊंगा); (मैं अभी जाऊंगा) इदानीमेव गच्छामि,

अयमहं गच्छामि, एष गच्छामि ।

(ख) 'स्म'-शब्दके योगसे अतीतकालमे 'लट्' होता है ; यथा—(वह मेरे घरमे आया था) स मद्गृहम् आगच्छति स्म ; (उसने व्याकरण पढ़ा) स व्याकरणम् अधीते स्म ।

(ग) 'यावत्' और 'पुरा' शब्दके योगसे भविष्यत्-कालमे 'लट्' होता है ; यथा—"यावत् अस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि" उत्तर० १. (इस दुरात्माके विनाशके लिये शत्रुघ्नको भेजूंगा) ; "पुरा भवति" नै० १.१८. (भविष्यति—होगा) ; "आलोके ते निपतति पुरा (सा)" मेघ० ८९. (वह तेरे दृष्टिपथमे पड़ेगी) ; "पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधाम्" शकु० ७.३३. (सप्तद्वीपसमन्विता वसुमती जय करेगा) ; "(सा) व्रजति पुरा परासुतां त्वदर्थे" भा० १०. ९०. (वह तेरे लिये मरेगी) ; "प्रत्यासीदति मुक्तिस्त्वां पुरा" भा० ११. ३६. (मुक्ति तेरे पास आयेगी) ; "पुरा दूषयति स्थलीम् (गन्धेनाशुचिना)" र० १२. ३०. (दुर्गन्धसे आश्रमस्थानको दूषित करेगा ।

'जब-तक' (Till, before) इस अर्थमेभी 'यावत्'-शब्दके योगसे 'लट्' होता है ; यथा—(वह जब-तक नहीं आयेगा, तब-तक पढूंगा) स यावत् न आगच्छति, तावत् पठिष्यामि ; "यावन्न परापतति, तावत् अपसर्पत अनेन तरुगहनेन" उत्तर० ४. (जब-तक वह न लौटे, तब-तक इस जङ्गलसे सिधारो) ।

(घ) 'कदा' और 'कर्हि' शब्दके योगसे भविष्यत्-कालमे विकल्पसे 'लट्' होता है ; यथा—(न जाने, कब जाऊंगा) न जाने, कदा गच्छामि, गमिष्यामि वा ।

(ङ) प्रश्नोत्तर कथनमें 'ननु' शब्दके योगसे अतीत-कालमें 'लट्' होता है ; यथा—प्रश्न—(वह आया है क्या?) स किमागच्छत्? उत्तर—(आया है) ननु आगच्छति।

२२०। लोट्—वर्त्तमान कालमें अनुज्ञा (अनुमति) अर्थमें 'लोट्' होता है ; यथा—(बचा, घर जा) वत्स! गृहं गच्छ।

(क) समर्थना अर्थात् अशक्य कर्ममें उत्साह समझानेसे 'लोट्' होता है ; यथा—(समुद्रकोभी शोषण कर सकता हूँ) सिन्धुमपि शोषयाणि।

(ख) आशीर्वाद अर्थमेंभी 'लोट्' होता है, (तब 'तु' और 'हि' विभक्तिके स्थानमें विकल्पसे 'तात्' होता है); यथा—(वह दीर्घकाल जीता रहे) स चिरं जीवतु, जीवतात् वा ; (तू दीर्घकाल जीता रह) त्वं चिरं जीव, जीवतात् वा।

(ग) अनेक क्रियाओंके प्रयोगसे पौनःपुन्य या आतिशय्य अर्थमें सब काल, सब पुरुष और सब वचनोंमेंही 'हि' 'त', 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं (परस्मैपदी धातुके उत्तर 'हि' तथा 'त', और आत्मनेपदी धातुके उत्तर 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं); यथा—"पुरीमवस्कन्द, लुनीहि नन्दनं, मुषाण रत्नानि, हरामराङ्गनाः" माघ० १. ५१. (रावण पुनः पुनः नगर आक्रमण करता, पुनः पुनः नन्दन-काननको छेदन करता, पुनः पुनः रत्नोंको छीन लेता, पुनः पुनः देवपत्नियोंको हरण करता)।

२२१। विधिलिङ्—वर्त्तमान-कालमें 'विधि' अर्थमें 'विधिलिङ्' होता है। विधि दो-प्रकार—प्रवर्त्तना और निवर्त्तना। सत्कर्ममें प्रवर्त्तित करनेका नाम 'प्रवर्त्तना'; यथा—(दीनमें दया करना) दीने दयां

कुर्य्यात्; (क्षुधार्त्तको अन्न देना चाहिये) क्षुधिताय अन्नं दद्यात्। असत्कर्मसे निवर्त्तित करनेका नाम 'निवर्त्तना'; यथा—(गुरुओंकी निन्दा न करना) गुरून् न निन्देत्; (परधन हरण नहीं करना) परस्वं नापहरेत्; (यत्नपूर्वक क्रोध त्यागना चाहिये) क्रोधं यत्नेन वर्जयेत्; (आलस्य छोड़ना चाहिये) आलस्यं परिहरेत्।

(क) सम्भावना और शक्ति अर्थमे 'विधिलिङ्' होता है; यथा— सम्भावना—(पढ़ूंगा, यदि वह पढ़ावे) पठिष्यामि, यदि स पाठयेत्; शक्ति—(मैं भार वहन कर सकता हूँ) अहं भारं वहेयम्।

(ख) दो क्रियाओंका कार्य्यकारणभाव समझानेसे, दोनोकेही उत्तर भविष्यत्-कालमे विकल्पसे 'विधिलिङ्' होता है; पक्षे—लृट्; यथा—(यदि लड़कपनमे पढ़े, तो सारा जीवन सुख पायेगा) यदि बाल्ये पठेत्, यावज्जीवं सुखम् आप्नुयात्; (पक्षे) यदि बाल्ये पठिष्यति, यावज्जीवं सुखम् आप्स्यति;—यहाँ बाल्यकालका अध्ययन यावज्जीवन सुखलाभका कारण है।

(ग) निमन्त्रण (विधिपूर्वक आह्वान), आमन्त्रण* (आह्वान), अध्येषणा (सम्मान-पूर्वक प्रवर्त्तन अर्थात् प्रेरणा), सम्प्रश्न (निरूपणार्थ जिज्ञासा) और प्रार्थना (याच्ञा) अर्थमे 'विधिलिङ्' और 'लोट्' दोनो होते हैं। यथा—निमन्त्रण—(आज मेरे पितृश्राद्धमे आप यहाँ

---

* जिसके प्रत्याख्यान अर्थात् अस्वीकारसे प्रत्यवाय (अपराध) होता है, उसको 'निमन्त्रण' कहते हैं। जिसके प्रत्याख्यानसे प्रत्यवाय नहीं होता, परन्तु जिसका स्वीकार वा अस्वीकार इच्छानुसार किया जा सकता है, उसको 'आमन्त्रण' कहते हैं।

भोजन करेंगे) अद्य मे निमन्त्र्य श्राद्धेऽन्न भुञ्जीत भवान् ; (पक्षे) भुङ्क्ताम्। आमन्त्रण—(आप यहाँ बैठिये) इह आसीत भवान् ; (पक्षे) आस्ताम् (इच्छा हो तो)। अध्येषणा—(आप मेरे पुत्रको पढ़ाइये) मम पुत्रम् अध्यापयेद् भवान् ; (पक्षे) अध्यापय। सम्प्रश्न—(कहिये,—मैं व्याकरण पढ़ूँ, या साहित्य ?) किं भो व्याकरणम् अधीयीय, उत साहित्यम् ? ; (पक्षे) अध्ययै। प्रार्थना—(मैं भिक्षा पाऊँ, अर्थात् मुझे भिक्षा दो) भो भिक्षां लभेय ; (पक्षे) देहि मे भिक्षाम्।

(घ) इच्छार्थ धातुके योगसे 'विधिलिङ्' और 'लोट्' दोनों होते हैं ; यथा—(मैं चाहता हूँ, आप इस पुस्तकको पढ़ें) इच्छामि, भवान् पुस्तकमेतत् पठेत्, पठतु वा।

२२२। लङ्—अनद्यतन अतीत कालमें 'लङ्' होता है, (वर्त्तमान दिन, पूर्वरात्रिके शेष प्रहर और पराहिके प्रथम प्रहरको 'अद्यतन' कहते हैं, तद्भिन्न काल 'अनद्यतन') ; यथा—(कल वह गया) ह्यः सोऽगच्छत्।

(क) 'मास्म'-शब्दके योगसे सब कालोंमेही 'लङ्' होता है ; यथा—(मत जा) मास्म गच्छः।

२२३। लिट्—अनद्यतन अथच परोक्ष (जो वक्ताका प्रत्यक्ष नहीं ऐसे) अतीत-कालमें 'लिट्' होता है ; यथा—(रामने रावणको मारा था) रामो रावणं जघान। उत्तमपुरुषकी क्रिया किसी प्रकारसे वक्ताका परोक्ष नहीं हो सकती, इसलिये उत्तमपुरुषमें कभीभी लिट्का प्रयोग नहीं होता ; केवल चित्तविक्षेप (मनकी चञ्चलता) और अत्यन्तापह्नव (सम्पूर्णरूपसे अस्वीकार) समझानेसे होता है ; यथा—(मैं सोता

सोता रोया था) सुप्तोऽहं रुरोद ; ('तुझे नदीमे पैरनेको देखा है') 'त्वं नदीं सन्तरन् दृष्टोऽसि' ऐसा किसीको कहनेसे, उसने उत्तर दिया— ('मै नदीमे नहीं गया') 'नाहं नदीं जगाम'।

२२४। लुङ्—अद्यतन, अनद्यतन और परोक्ष—सर्वप्रकार अतीत-कालमेही 'लुङ्' होता है ; यथा—(आज वह गया है) अद्यासौ अगमत्।

(क) 'मा' *और 'मास्म' शब्दके योगसे सवकालोंमेही 'लुङ्' होता है ; यथा—(मत कर) मा कार्षीः, मास्म कार्षीः।

२२५। लुट्—अनद्यतन भविष्यत्-कालमे 'लुट्' होता है ; यथा— (कल जाऊंगा) श्वो गन्तास्मि।

२२६। लृट्—भविष्यत्-कालमात्रमेही 'लृट्' होता है ; यथा— (मै जाऊंगा) अहं गमिष्यामि।

२२७। लृङ्—क्रियातिपत्ति अर्थात् दो क्रियाओंकी अनिष्पत्ति (असम्पूर्णता) समझानेसे, अतीत और भविष्यत् कालमे 'लृङ्' होता है ; यथा—(ज्ञान होता, तो सुख होता) ज्ञानं चेत् अभविष्यत्, सुखम् अभविष्यत् (अर्थात् ज्ञानभी नहीं हुआ, सुखभी नहीं हुआ) ; (यदि समुद्र शुष्क हो, तो मनुष्य अमर होंगे) सागरश्चेत् शुष्कोऽभविष्यत्, तदा मानुषाः अमराः अभविष्यन् (अर्थात् समुद्रभी शुष्क नहीं होगा, मनुष्यभी अमर नहीं होंगे)।

२२८। आशीर्लिङ्—आशीर्वाद अर्थमे भविष्यत्-कालमे 'आशी-र्लिङ्' होता है ; यथा—(तेरी कुशल हो) तव कुशलं भूयात् ; (सज्जन

---

* 'मा'-शब्दके योगसे 'लोट्' भी होता है ; यथा—"मद्वाणि! मा कुरु विषादमनादरेण" भामिनी० ४. ४१।

बहुत दिन जीता रहे) सज्जनश्चिरं जीव्यात्।

Note.—व्याकरणमें लङ् और लुङ्का अर्थभेद रहनेपरभी प्रयोगमें उनका कुछ भेद नहीं दीखता ; सुतरां अतीतकालमात्रमेंही उनका प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे लुट् और लट्कामी प्रयोगमें कुछ भेद नहीं।

धातुसम्बन्धी णत्व-विधि।

२२९। प्र, परा, परि, निर्—इन चार उपसर्गोंके, और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती 'नद्'*-प्रभृति धातुका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—प्रणदति, प्रणमति, परिहण्यते इत्यादि। किन्तु 'हन्'-धातुके 'हन्'के स्थानमें 'घ्न' होनेसे मूर्द्धन्य 'ण' नहीं होता ; यथा—परिघ्नन्ति।

(क) 'नश्'-धातुके 'श्'के स्थानमें 'ष्' होनेसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—प्रनष्ट, परिनष्ट इत्यादि। किन्तु 'प्रणाश'—इस शब्दमें मूर्द्धन्य 'ण' हुआ।

२३०। प्र, परा, परि, निर्—इन उपसर्गोंके, और 'अन्तर्' शब्दके परवर्त्ती धातुके उत्तर विहित लोट्की 'आनि'-विभक्तिका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—प्रभवाणि।

२३१। 'गद्'-प्रभृति* धातु परे रहनेसे, प्र, परा, परि, निर्—इन

---

* नद्, नम्, नश्, नह्, नी, नु, नुद्, अन्, हन्।

नदो नमो नशश्चैव नह-नी-नु-नुदस्तथा।

अनो हनश्चेति नव नदादिर्गण इष्यते॥

* गद्, नद्, पद्, पत्, वप्, वह्, शम्, हन्, दिह्, दा, धा, या, वा, द्रा, प्सा (भक्षणे—अदा० प०), चि।

उपसर्गोंके, और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती 'नि' उपसर्गका 'न' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—प्रणिगदति, प्रणिपतति इत्यादि ।

२३२ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती 'हिनु' और 'मीना' (मी वधे) का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—प्रहिणोति, प्रहिणुतः, प्रहिण्वन्ति ; प्रमीणाति ।

२३३ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती 'हन्'-धातुका 'न' व अथवा म-संयुक्त होनेसे विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—प्रहण्मि, प्रहन्मि ; प्रहण्वः, प्रहन्वः ।

२३४ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती निन्द्, निक्ष् (चुम्बने—भ्वा० प०) और निंस् (चुम्बने—अदा० आ०) धातुका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—प्रणिन्दति, प्रनिन्दति ; प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम् ; प्रणिंसितव्यम्, प्रनिंसितव्यम् ।

* * * *

२३५ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती धातुके उत्तर विहित 'कृत्'-प्रत्ययका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—प्रमाणम्, परिमाणम् ।

किन्तु भा, भू, पू, कम्, गम्, प्याय्, वेप् और कम्प् धातुके उत्तर विहित 'कृत्'-प्रत्ययका 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—(भू) परिभवनीयम् ।

२३६ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती व्यञ्जनादि धातुके उत्तर विहित 'कृत्'-प्रत्ययका 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—(कुप्) प्रकोपणीयम्, प्रकोपनीयम् ; (गुप्)

परिगोपणम्, परिगोपनम्।

किन्तु धातुकी उपधामे 'अ' अथवा 'आ' रहनेसे नित्य होता है; यथा— (वह्) प्रवहणम्, प्रवहमाणः।

२३७। प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती णिजन्त धातुके उत्तर विहित 'कृत्'-प्रत्ययका 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है; यथा—(यापि) प्रयापणम्, प्रयापनम्।

किन्तु २३६ सूत्रोक्त 'भा'-प्रभृति धातु णिजन्त होनेसेभी मूर्द्धन्य 'ण' नहीं होता; यथा—(भू) परिभावनीयम्।

२३८। व्यञ्जनवर्णमे मिलित होनेसे 'कृत्' प्रत्ययका 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—प्रभग्नः, परिमग्नः।

धातुसम्बन्धी षत्व विधि।

२३९। इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित 'सु'-प्रभृति* धातुका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' होता है; यथा—(सु) अभिषुणोति†; (सू) अभिषुवति; (सो) अभिष्यति; (स्तु) अभिष्टौति; (स्तुभ्)

---

* सु, सू (तुदादि), सो, स्तु, स्तुभ्, स्था, सेनि ('सेना'-शब्द + णिच्), सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, स्तम्भ्।

सुः सूः सोः स्तुः स्तुभश्चैव स्थाः सेनिश्च सिधः सिचः।

सञ्जः स्वञ्जः सदः स्तम्भः—स्वादिरेते त्रयोदश॥

† लृट्, और लृङ् विभक्ति तथा 'स्यत्'-प्रत्यय परे रहनेसे नहीं होता; यथा—(लृट्) अभिसोष्यति; (लृङ्) अभ्यसोष्यत्; (स्यत्) अभिसोष्यत्।

प्रतिष्टोभते ; (स्था) अधिष्ठास्यति, अनुष्ठास्यति ; (सेनि) अभिषेणयति ; (सिध्)* प्रतिषेधति ; (सिच्) निषिञ्चति ; (सञ्ज्) निषजति, अनुषजति ; (स्वञ्ज्) परिष्वजते ; (सद्) विषीदति † ; (स्तम्भ्) प्रतिष्टभ्नोति ‡ ।

'अट्'-व्यवधानसेभी मूर्द्धन्य होता है ; यथा—अभ्यषेणयत्, न्यषिञ्चत्, व्यषीदत् § ।

२४० । भोजन-अर्थमे 'वि' और 'अव'-पूर्वक 'स्वन्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—विष्वणति, अवष्वणति (सशब्दं भुङ्क्ते इत्यर्थः)। (अन्यत्र) विस्वनति वीणा (शब्दायते इत्यर्थः) ।

२४१ । नि, वि, परि उपसर्गके परवर्त्ती सेव्, सिव् और सह् ‖ धातुका

---

* गमनार्थ 'सिध्' धातुका नहीं होता ; यथा—स गङ्गां विसेधति ।

† 'प्रति'-पूर्वक 'सद्' धातुका नहीं होता ; यथा—प्रतिसीदति ।

‡ आलम्बन और सामीप्य अर्थमे 'अव'-पूर्वक 'स्तम्भ्'-धातुका ' स ' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—अवष्टभ्नाति यष्टिम् (अवलम्बते) ; अवष्टभ्यते गौः (सामीप्ये निरुध्यते) । 'क्त'-प्रत्यय करनेसे, नि और प्रति उपसर्गके परवर्त्ती 'स्तम्भ्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—निस्तब्धः, प्रतिस्तब्धः । णिजन्त करनेसे, लुङ्-विभक्तिमे, 'स्तम्भ्'-धातुका ' स ' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—पर्य्यतस्तम्भत् ।

§ परि, नि, वि-पूर्वक 'स्तु' और 'स्वञ्ज्' धातुका विकल्पसे होता है ; यथा—पर्य्यष्टावीत्, पर्य्यस्तावीत् ; पर्य्यष्वजत, पर्य्यस्वजत ।

‖ 'सह्' के स्थानमे ' सोढ् ' होनेसे मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता ; यथा—परिसोढा, निसोढुम, विसोढः ।

'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—निषेवते, परिषीव्यति, विषहते । 'अट्'-व्यवधानसेभी होता है ; किन्तु 'सेव्'-धातुका नित्य ; 'सिव्' और 'सह्' धातुका विकल्पसे ; यथा—(सेव्) पर्य्यषेवत ; (सिव्) पर्य्यषीव्यत्, पर्य्यसीव्यत् ; (सह्) न्यषहत, न्यसहत । णिजन्त करनेमे, लुङ्-विभक्तिमे सिव् और सह् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—(सिव्) पर्य्यसीषिवत् ; (सह्) पर्य्यसीसहत् ।

२४२ । 'परि' उपसर्गके परवर्त्ती 'स्कृ'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—परिष्करोति, परिष्कारः । 'अट्'-व्यवधानमे विकल्पसे ; यथा—पर्य्यष्करोत्, पर्य्यस्करोत् ।

२४३ । अनु, नि, वि, परि और अभि उपसर्गके परवर्त्ती 'स्यन्द्'-धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—अनुष्यन्दते निष्यन्दते विष्यन्दते घृतम् ; (पक्षे) अनुस्यन्दते इत्यादि । किन्तु प्राणी कर्त्ता होनेसे मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता ; यथा—निस्यन्दते मत्स्यः ।

२४४ । परि और वि उपसर्गके परवर्त्ती 'स्कन्द्'-धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—परिष्कन्दति, परिस्कन्दति ; विष्कन्दति विस्कन्दति । किन्तु 'निष्ठा'-प्रत्यय (क्त, क्तवतु) परे रहनेसे, वि-पूर्वक स्कन्द्-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—विस्कन्नः, विस्कन्नवान् ।

२४५ । निर्, नि और वि उपसर्गके परवर्त्ती स्फुर् और स्फुल् धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—(स्फुर्) विष्फुरति, विस्फुरति ; (स्फुल्) विष्फुलति, विस्फुलति ।

२४६ । 'वि'-पूर्वक 'स्कम्भ्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—विष्कम्नाति, विष्कम्भः, विष्कम्भकः ।

२४७। सु, वि, निर् और दुर् उपसर्गके परवर्त्ती 'स्वप्'-धातुके स्थानमें जात 'सुप्'का 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—सुषुप्तः; दुःषुष्वतुः।

२४८। इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके और 'प्रादुः'-शब्दके परस्थित 'अस्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—निषन्ति, निष्यात्; प्रादुःषन्ति, प्रादुःष्यात्। किन्तु व, म और त-संयुक्त 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—निस्वः, निस्मः, निस्तः।

*   *   *   *

२४९। षोपदेश धातुका* अभ्यस्त (द्विरुक्त) करनेसे, परभागका 'स' यदि इ, उ, ए, ओ—इन चार वर्णोंके परस्थित हो, तो मूर्द्धन्य होता है; यथा—(सिच्) सिषेच;† (सिध्) सिषेध; (स्तु) तुष्टाव।

२५०। धातुके उत्तर विहित 'सन्'-प्रत्ययका 'स' मूर्द्धन्य होनेसे, धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(सिच्) सिसिक्षति; (सेव्) सिसेविषते।

---

* सञ्ज्, सद्, सह्, साध्, सिच्, सिध्, सिव्, सु, सू, सेव्, सो, स्तम्भ्, स्तु, स्तुभ्, स्त्यै, स्था, स्ना, स्निह्, स्नु, स्मि, स्वञ्ज्, स्वद्, स्वप्, स्विद् इत्यादि।

सञ्जः सदः सहः साधः सिच्-सिधौ सिव् च सुस्तथा।
सूः सेवः सोस्तथा स्तम्भः स्तु-स्तुभौ स्त्यायतिस्तथा॥
स्था-स्ना-स्निह-स्नवः स्मिश्च स्वञ्जः स्वद्-स्वप्-स्विदस्तथा।
एते चान्ये च बहवः षोपदेशाः प्रकीर्त्तिताः॥

† 'यङ्'-प्रत्यय होनेसे, 'सिच्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—सेसिच्यते।

'सन्'का 'स' दन्त्य रहनेसे, धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—(स्था) तिष्ठासति ; (स्वप्) सुषुप्सति । किन्तु 'स्तु'-धातुके उत्तर विहित 'सन्'-प्रत्ययका 'स' और धातुका 'स'—दोनोंही मूर्द्धन्य होते हैं ; यथा—तुष्टूषति ।

२६१ । णिजन्त धातुके बीचमें, 'सन्'-प्रत्ययका 'स' मूर्द्धन्य होनेसे, केवल स्विद्, स्वद् और सह् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—(स्विद्) सिस्वेदयिषति ; (स्वद्) सिस्वादयिषति ; (सह्) सिसाहयिषति । एतद्भिन्न णिजन्त धातुका होता है ; यथा—(सिच्) सिषेचयिषति इत्यादि ।

२६२ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित 'सेनि'-प्रभृति धातु* अभ्यस्त होनेसे, दोनो 'स' मूर्द्धन्य होते हैं ; यथा—(सेनि) अभिषिषेनयिषति ; (सिच्) अभिषिषेच ; (सेव्) परिषिषेवे ।

लिट्-विभक्तिमें स्वञ्ज् और सद् धातुके अभ्यस्त परभागका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—(स्वञ्ज्) परिषस्वजे ; (सद्) निषसाद ।

२६३ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित अभ्यस्त स्था और स्तम्भ् धातुका 'स' 'त'-व्यवधानसेभी मूर्द्धन्य होता है ; यथा—(स्था) अनुतष्ठौ, अधितष्ठौ ; (स्तम्भ्) अभितष्टम्भ ।

२६४ । वस्, घस्, शास् और सह् यथाक्रम—उस्, जक्स्, शिस् और साद् होनेसे 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—उष्यते ; जक्षतुः ;

* सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, सेव् ।
सेनिः सिधः सिचश्चैव सञ्जः स्वञ्जः सदस्तथा ।
सेव इत्येष विज्ञेयः सेन्यादिः सप्तको गणः ॥

शिष्यते ; तुरापाट्।

कर्तृवाच्यमें लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् विभक्ति, और शतृ, शानच् प्रत्यय परे रहनेसे, धातुके उत्तर गणानुसार कई 'आगम' होते हैं। किस किस गणमें कौन कौन आगम होता है, सो बतानेके लिये नीचे एकत्र लिखा जाता हैः—

गणोंके नाम	आगम	उदाहरण
१. भ्वादि	अ (शप्)	भू—भवति
२. अदादि	कुछ नहीं	अद्—अत्ति
३. ह्वादि	कुछ नहीं	हु—जुहोति
४. दिवादि	य (श्यन्)	दिव्—दीव्यति
५. स्वादि	नु (श्नु)	सु—सुनोति, सुनुते
६. तुदादि	अ (श)	तुद्—तुदति, तुदते
७. रुधादि	न (श्नम्)	रुध्—रुणद्धि, रुन्धे
८. तनादि	उ	तन्—तनोति, तनुते
९. क्र्यादि	ना (श्ना)	क्री—क्रीणाति, क्रीणीते
१०. चुरादि	अ	चुर्—चोरयति

ये आगमके अक्षर धातुके अन्तिम वर्णके साथ युक्त होते हैं; केवल रुधादि-गणमें आगमका 'न' धातुके अन्त्यस्वरमें मिलता है।

तुदादि।

क्रियाघटन-सूत्र।

[तार (*) चिह्नित सूत्रोंको साधारण सूत्र समझना; अर्थात् विशेष-सूत्र द्वारा बाधित न होनेसे समस्त तिङन्त-प्रकरण और कृदन्त प्रकरणमे उन चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा।]

२९५। * चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे तुदादि और भ्वादिगणीय धातु, तथा स्वार्थमे अथवा प्रेरणार्थमे विहित णिजन्त, सनन्त, यङन्त और नामधातुके उत्तर 'अ' आगम होता है; यथा—विश्+ति=विश्+अ+ति=विशति।

२९६। * विभक्तिका अकार या एकार परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती अकारका लोप होता है; यथा—विश्+अन्ति=विश्+अ+अन्ति=विशन्ति।

२९७। * विभक्तिका 'व' अथवा 'म' परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती अकारके स्थानमे आकार होता है; यथा—विश्+अ+मि=विश्+आ+मि=विशामि।

२९८। * अ, उ, नु—इन तीन आगमोंके परस्थित 'हि'-विभक्तिका लोप होता है; यथा—(अ) विश्+हि=विश्+अ+हि=विश्+अ=विश; (उ) कृ+हि=कुरु; (नु) श्रु+हि=शृणु। किन्तु 'नु' व्यञ्जनवर्णमे मिलित होनेसे लोप नहीं होता; यथा—आप्नुहि।

२९९। * अकारके परस्थित विधिलिङ्के 'याम्' के स्थानमे

'इयम्', 'युस्' के स्थानमे 'इयुस्', तद्भिन्न 'या'-भागके स्थानमे 'इ' होता है ; यथा—विश्+याम्=विश्+अ+इयम्=विशेयम् ; विश् +युस्=विश्+अ+इयुस्=विशेयुः ; विश्+यात्=विश्+अ+इत्=विशेत् ।

२६० । * पदके अन्तमे स्थित 'झट्' (६३ सू० टिप्पनी)-वर्णके स्थानमे प्रथम वर्ण होता है ।

२६१ । * लङ्, लुङ्, लृङ् विभक्ति परे रहनेसे, धातुके आदिमे 'अट्' होता है ; 'अट्' का 'अ' रहता है ; यथा—विश्+द्=अ+विश्+अ+द्=अविशद्=अविशत् (२६० सू०)। किन्तु 'मा' और 'मास्म' के योगसे 'अट्' नहीं होता ; यथा—मा विशत्, मास्म विशत् ।

२६२ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें, इष्—इच्छ्, कृत्—कृन्त्, प्रच्छ्—पृच्छ्, मस्ज्—मज्ज् होता है ; यथा—इष्+ति=इच्छ्+अ+ति=इच्छति ; कृत्+ति=कृन्त्+अ+ति=कृन्तति ; प्रच्छ्+ति=पृच्छ्+अ+ति=पृच्छति इत्यादि ।

२६३ । * 'अट्' होनेसे, धातुके आदिस्थित इ ई के स्थानमें 'ए', उ ऊ के स्थानमे 'ओ', ऋ ॠ के स्थानमे 'अर्' होता है ; यथा—इष्+द्=अ+इच्छ्+अ+द्=अ+एच्छ्+अ+द्=ऐच्छत् ।

२६४ । चतुर्लकार परे रहनेसे, ऋ—रिय्, ॠ—इर् होता है ; यथा—मृ+ते=म्+रिय्+अ+ते=म्रियते ; कॄ+ति=क्+इर्+अ+ति=किरति ।

२६५ । * अकारके परवर्त्ती आते, आथे, आताम्, आथाम्

विभक्तिमें 'आ' के स्थानमें 'इ' होता है ; यथा—मृ + अ + आते = म् + रिय् (२६४ सू०) + अ + इते = म्रियेते ।

२६६ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें, मुच्—मुञ्च्, सिच्—सिञ्च्, लुप्—लुम्प्, लिप्—लिम्प्, विद्—विन्द्, प्रसृज्—सृम्ज् होता है ।

☞ लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—इन चार विभक्तियोंमें गणभेदसे धातुके रूपकी विभिन्नता है ; इस कारण, इन चार विभक्तियोंमें एक एक गणके धातुके रूप यहाँ पृथक् प्रदर्शित होते हैं । एतद्भिन्न और और विभक्तियोंमें गणभेदसे रूपभेद नहीं होता ; इसलिये उनकी एक एक विभक्तिमें सब गणोंके धातुकेही रूप पश्चात् दिखलाये जायेंगे । परन्तु संस्कृतरचनाभ्यासके लिये 'लृट्' के रूपभी यहाँ लिखे जाते हैं ; 'लृट्'-की साधनप्रणाली पश्चात् प्रदर्शित होगी ।

(कर्तृवाच्यमें धातुरूप)

Conjugation.

तुदादि ।

सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

विश्* प्रवेशे—घुसना To enter.

---

* 'कथ' प्रभृति कई चुरादिगणीय धातु अकारान्त ; उनको 'अदन्त चुरादि' कहते हैं ; तद्भिन्न सभी धातु हलन्त होते हैं ; किन्तु उनको अकारान्त करके उच्चारण करना चाहिये ; यथा—'विश्' धातुको 'विश' धातु पढना ।

(विशति तपोवनं मुनीन्द्रः ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमपुरुष	विशति*	विशतः	विशन्ति
मध्यमपुरुष	विशसि	विशथः	विशथ
उत्तमपुरुष	विशामि	विशावः	विशामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	विशतु	विशताम्	विशन्तु
मध्यमपुरुष	विश	विशतम्	विशत
उत्तमपुरुष	विशानि	विशाव	विशाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अविशत्	अविशताम्	अविशन्
मध्यमपुरुष	अविशः	अविशतम्	अविशत
उत्तमपुरुष	अविशम्	अविशाव	अविशाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	विशेत्	विशेताम्	विशेयुः
मध्यमपुरुष	विशेः	विशेतम्	विशेत
उत्तमपुरुष	विशेयम्	विशेव	विशेम

---

* विशति, विशतः, विशन्ति ; विशसि, विशथः, विशथ ; विशामि, विशावः, विशामः—ऐसा पढ़ना होगा ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेदयति	वेदयतः	वेदयन्ति
मध्यमपुरुष	वेदयसि	वेदयथः	वेदयथ
उत्तमपुरुष	वेदयामि	वेदयावः	वेदयामः

❀ आ + विश्—प्रवेशे । उप + विश्—उपवेशने (बैठना); अकर्मक । नि + विश्—प्रवेशे ; अवस्थाने (अक०) ; उपवेशने च (अक०)—आत्मनेपदी ; निविशते । नि + विश् + णिच्—स्थापने ; निवेशयति । अभि + नि + विश्—मनोनिवेशे ; आश्रये च ; आत्मनेपदी । निर् + विश्—उपभोगे ; विवाहे च । प्र + विश्—प्रवेशे । सम् + विश्—निद्रायाम् (अक०)। ❀

प्रच्छ् ज्ञीप्सायाम् (जिज्ञासायाम्)—पूछना To ask.

(द्विकर्मक—पृच्छति वार्त्तां गुरुं शिष्यः ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
मध्यमपुरुष	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
उत्तमपुरुष	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
मध्यमपुरुष	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उत्तमपुरुष	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमपुरुष	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
मध्यमपुरुष	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उत्तमपुरुष	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
मध्यमपुरुष	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उत्तमपुरुष	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
मध्यमपुरुष	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उत्तमपुरुष	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्याम

⚜ आ + प्रच्छ्—आमन्त्रणे (गमनानुज्ञार्थं प्रस्थानकाले सम्भाषणे—विदा लेना); आत्मनेपदी ; आपृच्छते । ⚜

इष् (इषु) इच्छायाम्—चाहना To desire, wish.

(इच्छति धनं लोकः ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमपुरुष	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
मध्यमपुरुष	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उत्तमपुरुष	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
मध्यमपुरुष	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उत्तमपुरुष	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
मध्यमपुरुष	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उत्तमपुरुष	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
मध्यमपुरुष	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
उत्तमपुरुष	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
उत्तमपुरुष	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

⚜ अनु + इष्—अभिलाषे ; अनु + इष् + णिच्—अनुसन्धाने · अन्वेषयति । प्रति + इष्—ग्रहणे ; सम्मानने ; प्रतीक्षायाञ्च । ⚜

स्पृश् स्पर्शे—छूना To touch.

(स्पृशति हस्तेन कुमारं जनकः ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति
मध्यमपुरुष	स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ
उत्तमपुरुष	स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्पशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
मध्यमपुरुष	स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
उत्तमपुरुष	स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
मध्यमपुरुष	अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत
उत्तमपुरुष	अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयुः
मध्यमपुरुष	स्पृशेः	स्पृशेतम्	स्पृशेत
उत्तमपुरुष	स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	स्प्रक्ष्यति स्पर्क्ष्यति	स्प्रक्ष्यतः स्पर्क्ष्यतः	स्प्रक्ष्यन्ति स्पर्क्ष्यन्ति

मध्यमपुरुष	स्पृदयसि / स्पर्दयसि	स्पृदयथः / स्पर्दयथः	स्पृदयथ / स्पर्दयथ
उत्तमपुरुष	स्पृदयामि / स्पर्दयामि	स्पृदयावः / स्पर्दयावः	स्पृदयामः / स्पर्दयामः

❁ स्पृश् + णिच्—दाने; स्पर्शयति । उप + स्पृश्—आचमने; स्नाने च । ❁

अनुवाद करो—मुझे मत छूना । माता सर्वदा सन्तानका मङ्गल चाहती है । यह धन ग्रहण करो । कभी लोभसे परद्रव्य स्पर्श करना नहीं चाहिये । इससे तुझे पाप स्पर्श करेगा । आपलोग पूछिये । कल एक चोर उसके घरमें घुसा था । तू क्या पूछता है ? भोजनके पूर्वमें आचमन करना चाहिये । उसने राजासे धन नहीं चाहा । मेरी पुस्तक ढूंढो । पूर्वकालमें पतिव्रतायें पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करती थीं ('स्म'-योगमें क्रिया बनाना) ।

* * * *

तुदादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

उज्झ् त्यागे—छोड़ना To abandon—(लट्) उज्झति ; (लृट्) उज्झिष्यति । "सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार" र० ६. ७८. ।

उञ्छ् (उछि) कणश आदाने (भूमौ पतितानामेकैकस्योपादाने)—चुनना, बिनना To glean, gather (bit by bit)—उञ्छति ; उञ्छिष्यति । "शिलानप्युञ्छत." मनु० ३. १००; "सुलभं शस्यमुञ्छन्ति यद्देशे व्रतिनो द्विजाः" हलायुधः ।

❀ प्र + उञ्छ्—मार्जने ; "प्रोञ्छन्ति प्रचुरेणैपामन्नेन दीनतां प्रजाः" हलायुधः । ❀

कृत् (कृती) छेदने—काटना To cut—कृन्तति ; कर्त्तिष्यति, कर्त्स्यति । "कृन्तत्यरिशिरांसि सः" ।

❀ नि + कृत्—छेदने । ❀

कॄ विक्षेपे (क्षेपणे)—बिखेरना, फेंकना To scatter, throw about—किरति ; करिष्यति, करीष्यति । "नरि नरि किरति द्राक् सायकान् पुष्पधन्वा" ।

❀ अव + कॄ—आच्छादने । उत् + कॄ—उत्क्षेपणे । प्रति + कॄ—हिंसायाम् ; प्रतिस्किरति । वि + कॄ—विक्षेपे । वि + नि + कॄ—निक्षेपे । प्र + कॄ—प्रक्षेपे । ❀

गुम्फ् (गुन्फ्) ग्रन्थने—गूथना To string or weave together—गुम्फति ; गुम्फिष्यति । गुम्फति मालां मालिकः ।

गॄ निगरणे (भक्षणे)—निगलना To swallow—गिरति, गिलति ; गरिष्यति, गरीष्यति । गिरत्यन्नं लोकः ।

❀ उत् + गॄ—वमने ; वागादीनां बहिष्करणे च । नि + गॄ—निगरणे । सम् + गॄ—प्रतिज्ञायाम् ; आत्मनेपदी ; सङ्गिरते । ❀

मिष् स्पर्द्धायाम् ।—दर्शने To look at, look helplessly ; "(हव्यं) जातवेदोमुखान्मायी मिषतामाच्छिनत्ति नः" कु० २.४६ ।

❀ उत् + मिष्—(अक०) नेत्रोन्मीलने (आँख खोलना) ; "उन्मिमेष तदा मुनिः" भागवतम् ;—विकासे ; प्रकाशे च । नि + मिष्—(अक०) नेत्र-निमीलने (आँख मीचना) ; "मत्स्यः

छसो न निमिषति" महाभा०। ※

मृश् स्पर्शे—छूना To touch—मृशति; म्रक्ष्यति, मर्क्ष्यति। प्रायशः उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है।

※ अभि + मृश्, अव + मृश्—स्पर्शे। आ + मृश्—स्पर्शे; आक्रमणे च। परा + मृश्—स्पर्शे; चिन्तने, विचारे; वधे च। वि + मृश्—विचारणे। ※

रुज् (रुजो) भञ्जने—तोड़ना To break—रुजति; रोक्ष्यति। "नदी कूलानि रुजति"।—(२) पीडने To pain; "तस्य धर्मरते रोगा न रुजन्ति प्रजामपि"; "महते रुजन्नपि गुणाय महान्" मा० ६. ७.।

लिख् अक्षरविन्यासे (लेखने)—लिखना To write—लिखति; लेखिष्यति, लिखिष्यति। लिखति पुस्तकं लेखकः।—(२) चित्रीकरणे To paint; "मृगमदतिलकं लिखति" गीतगो० ७.२२।—(३) घर्षणे To scratch; "न किञ्चिदूचे, चरणेन केवलं लिलेख वाष्पाकुललोचना भुवम्" मा० ८. १४.।

※ अभि + लिख्—चित्रीकरणे (तस्वीर खींचना)। आ + लिख्, वि + लिख्—चित्रीकरणे; घर्षणे च। उद् + लिख्—विदारणे; कथने च। ※

सृज् निर्माणे*—उत्पादन (पैदा) करना To create—सृजति;

* दिवादि आत्मनेपदीभी होता है; सृज्यते। "उपासनामेत्य पितुः स्म सृज्यते" नै० १. ३४।—[सम् + सृज्—मिलने; "संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः (विमातवायुः)" र० ५. ६९.]।

स्रक्ष्यति। "भूतानि कालः सृजति" महाभा०।—(२) त्यागे; "बाणमसृजद्वृषध्वजः" र० ११.४४; "बाष्पवृष्टिमिव हिमस्रुतिं ससर्ज" र० १६.४४.।

❀ अति+सृज्—दाने। उत्+सृज्, वि+सृज्—त्यागे। ❀

तुदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु।

कुच् सङ्कोचे—सुकड़ना, सिमटना To be contracted, shrink—कुचति; कुचिष्यति। प्रायशः 'सम्' उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है; सङ्कुचति; "सङ्कुचत्यरिनारीणां मुखं पङ्केरुहद्युति"।

त्रुट् भेदे—टूटना To be broken, fall asunder—त्रुट्यति, त्रुटति; त्रुटिष्यति। "त्रुटन्ति सर्वसन्देहास्त्रुट्यन्ति ग्रन्थयो हृदि"; "यावन्मम दन्ता न त्रुट्यन्ति, तावत् तव पाशं छिनद्मि" हितो०; "अयं ते बाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरः" (छिन्न इत्यर्थः) उत्तर० १.२९.।

मज्ज् (टुमस्जो) अवगाहने (सशिरस्क-स्नाने)—नहाना To bathe—मज्जति; मङ्क्ष्यति।—(२) जलान्तः-प्रवेशे (डूबना) To sink; मज्जति प्रस्तरो जले; "लज्जे! त्वं मज्ज सिन्धौ"।

❀ उत्+मज्ज्—उन्मज्जने। नि+मज्ज्—निमज्जने। ❀

लुठ् संश्लेषणे (सम्बन्धीभावे)*—लोटना To roll about, wallow, welter—लुठति; लुठिष्यति। "मणिर्लुठति पादेषु" हितो० २.६६; "लुठति न सा हिमकरकिरणेन" गीतगो० ७; "हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले" अमरुशतकम् १००; "गृहे गृहे

---

* 'लुठ् विचेष्टने (अङ्गपरिवर्त्तने)'—ऐसा-अर्थ करनेसे प्रयोग-सङ्गत हो।

पदय तगाङ्गगर्णा मुरे! सरणीस्थयो लुठन्ति" भामिनी० २. ९४.।

स्फुट् विकसने--खिलना To blossom—स्फुटति; स्फुटिष्यति।
स्फुटति पत्रकोरक।—(२) भेद (फटना) To burst or split open; "हा हा देवि! स्फुटति हृदयम्" उत्तर० ३. ३८.।

✤ प्र + स्फुट् + णिच्—निस्तुषीकरणे (फटकना); प्रस्फोटयति। ✤
स्फुर् सञ्चलने—हिलना, फरकना To vibrate, flutter—स्फुरति;
स्फुरिष्यति। स्फुरति चामरम्, "सव्यं नेत्र स्फुरति" मृच्छ०।—
(२) प्रकाशे To glitter, "ससर्पिमण्डलं स्फुरति" माघ० ११.३.।

अनुवाद करो—प्रातःकालमें नहाना चाहिये। विधाताने इस पृथ्वीको बनाया। इस पुष्पको ठाकुरजीके लिये (चतुर्थी) उत्सर्ग करेंगे (उत + सृज्)। उसकी समस्त सम्पत्तिको जलमें विसर्जन किया। राजा अन्त पुरमें घुसता है। तू मेरे पास (अन्तिके) बैठ। मुनिलोग कुशासनमें निद्रा लेते हैं (सम् + विश्)। रात्रिमें पद्म सङ्कुचित होता है। उसने इस कार्य्यका दोष नहीं विचारा (वि + मृश्)। लौकी (अलाबु--स्त्री०) समुद्रके जलमें डूब जाती है। लड़कोंने एक एक करके (एकैकशः) पाठशालामें प्रवेश किया।

तुदादि आत्मनेपदी धातु।

मृ (मृङ्) प्राणत्यागे (मरणे)—मरना To die.

(अकर्मक—म्रियते प्राणी।

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
उत्तमपुरुष	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
मध्यमपुरुष	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
उत्तमपुरुष	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
मध्यमपुरुष	अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
उत्तमपुरुष	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
मध्यमपुरुष	म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
उत्तमपुरुष	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि

लृट्।

('लृट्'-विभक्तिमे परस्मैपदी होता है।)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	मरिष्यसि	मरिष्यथः	मरिष्यथ
उत्तमपुरुष	मरिष्यामि	मरिष्यावः	मरिष्यामः

* * * *

तुदादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

जुष् (जुषी) सेवने (आश्रये, उपभोगे); प्रीतौ च (अकर्मक)—सेवन करना ; आनन्दित होना To attach oneself to, to resort to, to enjoy ; to be pleased or satisfied—जुषते ; जुषिष्यते । "पौलस्त्योऽजुषत शुचं विपन्नबन्धुः" भ० १७. ११२ ; "पीत्वोज्झितां राहुमुखेन चान्द्रीं न किं सुधां नाकजुषो जुषन्ते ?" राघवपाण्डवीयम् १. ४८. ।

दृ (दृङ्) आदरे—आदर करना To have regard for—'आ' उपसर्गके साथही इसका प्रयोग होता है—आद्रियते ; आदरिष्यते । धर्मम् आद्रियते बुधः ।

तुदादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

धृ (धृङ्) अवस्थितौ (जीवने)—रहना, जीता रहना To be or exist, to live, to survive—ध्रियते ; धरिष्यते । "ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम् ?" माघ० २. ३५. ।

पृ (पृङ्) व्यापारे—व्यापृत होना (मशगूल या मसरूफ़ होना) To be busy or active—"प्रायेणायं 'व्याङ्'-पूर्वः"—वि+आ = 'व्या'-उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है—व्याप्रियते ; व्यापरिष्यते । धर्मे व्याप्रियते सुधीः ।

⚘ वि+आ+पृ+णिच्—नियोजने, प्रवर्त्तने ; व्यापारयति । ⚘

(ओलजी) व्रीडायाम्—लजाना, शर्माना To be ashamed—लज्जते ; लज्जिष्यते । "लज्जते न रसना तव वाम्यात् ?" नै० ५. ११७. ।

विज् (ओविजी) भये; चलने च—डरना; विचलित होना To fear; to be agitated—'उत्' उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है—उद्विजते (उद्विग्न होता है, घबराता है); उद्विजिष्यते। मनो मे संसारात् उद्विजते। 'नहि लोकापवादेभ्यः सतामुद्विजते मनः'।

तुदादि उभयपदी धातु।

तुद् व्यथने—दुखाना To torment.

(सकर्मक—"तुदति मर्माणि वाक्शरैः"।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदति	तुदतः	तुदन्ति
मध्यमपुरुष	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उत्तमपुरुष	तुदामि	तुदावः	तुदामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु
मध्यमपुरुष	तुद	तुदतम्	तुदत
उत्तमपुरुष	तुदानि	तुदाव	तुदाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
मध्यमपुरुष	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उत्तमपुरुष	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
मध्यमपुरुष	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उत्तमपुरुष	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति
मध्यमपुरुष	तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ
उत्तमपुरुष	तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
मध्यमपुरुष	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उत्तमपुरुष	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
मध्यमपुरुष	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उत्तमपुरुष	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
मध्यमपुरुष	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उत्तमपुरुष	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
मध्यमपुरुष	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उत्तमपुरुष	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
मध्यमपुरुष	तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे
उत्तमपुरुष	तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तोत्स्यामहे

* * * *

तुदादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

क्षिप् प्रेरणे (क्षेपणे)—फेंकना To throw—क्षिपति, क्षिपते ; क्षेप्स्यति, क्षेप्स्यते । क्षिपति क्षिपते शरं योधः । *

⚜ अधि + क्षिप्—निन्दायाम्, तिरस्कारे । आ + क्षिप्—आकर्षणे ; निन्दायाम्, दूषणे च । उत् + क्षिप्—उत्तोलने (उठाना) । नि + क्षिप्—क्षेपणे ; अर्पणे, स्थापने च । परि + क्षिप्—वेष्टने । प्र + क्षिप्—क्षेपणे । वि + क्षिप्—विकिरणे (बिखेरना) । सम् + क्षिप्—अल्पीकरणे । ⚜

---

* जिसपर कुछ फेंका जाता है, उसमे सप्तमी वा चतुर्थी होती है ; यथा—"शिलां वा क्षेप्स्यते मयि" महाभा० ; "शतघ्नीं शत्रवेऽक्षिपत्" र० १२. ९५. ।

दिश् दाने ; आज्ञापने च—(१) देना ; (२) आज्ञा करना To give ; to order—दिशति, दिशते ; देक्ष्यति, देक्ष्यते । (१) "दिदेश कौत्साय समस्तमेव" र० ५. १० ; (२) "दिदेश यानाय निदेशकारिणः" नै० १. ६६. । कथनेऽपि ; धर्मं दिशति देशिकः ।

☞ अप + दिश्, वि + अप + दिश्—व्याजे (छल करना) ; कथने च । आ + दिश्—आज्ञायाम् ; "मार्गमादिश" । प्रति + आ + दिश्—निराकरणे, निवारणे । उद् + दिश्—अभिप्राये । उप + दिश्—हितोक्तौ ; कीर्त्तने च । निर् + दिश्—सूचने, कथने ; अङ्गुल्या निर्दिशति । प्र + दिश्—दाने ; निर्देशे च । सम् + दिश्—दाने ; वार्त्ताकथने च । ☜

नुद् (णुद्) प्रेरणे (क्षेपणे ; निरासे)—(१) चलाना ; (२) दूर करना To push or drive on ; to remove—नुदति, नुदते ; नोत्स्यति, नोत्स्यते । (१) नुदति वाजिनं सारथिः ; (२) 'पापं नुदति साधूनां दर्शनं क्षणमात्रतः' ।

☞ अप + नुद्—दूरीकरणे । वि + नुद् + णिच्—अपाकरणे (दूर करना) ; प्रीणने च (बहलाना) ; विनोदयति । ☜

भ्रस्ज् पाके (भर्जने)—भूनना To fry, roast—भृज्जति, भृज्जते ; भ्रक्ष्यति, भ्रक्ष्यते । भृज्जति भृज्जते मत्स्यं सूपकारः ।

मुच् (मुच्लृ) मोक्षणे (त्यागे)—छोड़ना To leave—मुञ्चति, मुञ्चते ; मोक्ष्यति, मोक्ष्यते । मुञ्चति मुञ्चते धनं दाता ।

☞ कर्मकर्त्तरि—मुच्यते, प्रमुच्यते (मुक्त होता है) ; "महापातकिनस्तपसैव मुच्यन्ते किल्बिषात् ततः" मनु० ११. २३९. । अव +

मुच्—उन्मोचने (खोलना); अवमुञ्चति वासांसि । आ + मुच्—परिधाने ; आभरणम् आमुञ्चति । उत् + मुच्—उन्मोचने । प्रति + मुच्—प्रत्यर्पणे ; परिधाने च । वि + मुच्—त्यागे ; "नादान् विमुञ्चति" महाभा० । ❦

लिप् लेपने—लीपना, पोतना To anoint, besmear—लिम्पति, लिम्पते ; लेप्स्यति, लेप्स्यते । लिम्पति लिम्पते चन्दनेन गात्रं सुखी । "लिम्पतीव तमोऽङ्गानि" मृच्छ० १. ३४. ।

❦ आ + लिप्, उप + लिप्, वि + लिप्—लेपने । ❦

लुप् छेदने (विनाशने)—लोप करना To break, destroy—लुम्पति, लुम्पते ; लोप्स्यति, लोप्स्यते । "अनुभवं वचसा सखि ! लुम्पसि" नै० ४. १०९. ।

❦ लुप्—कर्मकर्त्तरि—लुप्त होना ; लुप्यते ; "तस्य भागो न लुप्यते" मनु० ९. २११. । ❦

विद् (विद्लृ) लाभे—पाना To gain—विन्दति, विन्दते ; वेदिष्यति, वेदिष्यते, वेत्स्यति, वेत्स्यते । पुण्यात्मा विन्दते सुखम् ।

सिच् सेचने (आर्द्रीकरणे)—सींचना To sprinkle, to water—सिञ्चति, सिञ्चते ; सेक्ष्यति, सेक्ष्यते । सिञ्चति धरणीं वारिवाहः ।

❦ अभि + सिच्—सेचने ; राज्यादौ प्रतिष्ठापने च ; अभिषिञ्चति । ❦

तुदादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

मिल् सङ्गमे (मिलने)—मिलना (एकत्र होना, संयुक्त होना) To meet, assemble—मिलति, मिलते ; मेलिष्यति, मेलिष्यते ;

मिलिष्यति—इति सङ्क्षिप्तसारम् । मिलति मिलते लता वृक्षेण । "मिलन्ति प्रत्यहं यस्य वाजिवारणसम्पदः" ।

भ्वादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[तुदादिके बीचमें स्टार (*)-चिह्नित जो जो साधारण सूत्र हैं, भ्वादिगणीय धातुमेंभी उन सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२६७ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें, यम् और दाण्—यच्छ्, घ्रा—जिघ्र्, स्था—तिष्ठ्, ध्मा—धम्, पा—पिब्, गम्—गच्छ्, ऋ—ऋच्छ्, दृश्—पश्य् होता है ।

२६८ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें, ष्ठिव्—ष्ठीव्, गुह—गूह्, आ+चम्—आचाम्, सञ्ज्—सज्, स्वञ्ज्—स्वज्, दंश्—दश्, सद्—सीद्, और परस्मैपदमें क्रम्—क्राम् होता है ।

२६९ । चतुर्लकारमें भ्वादिगणीय धातुके उत्तर विहित 'अ' परे रहनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है ; यथा—(अन्त्यस्वर) जि+ति=जि+अ+ति=जे+अ+ति=जयति ; (उपधा लघुस्वर) शुच्+ति=शुच्+अ+ति=शोच्+अ+ति=शोचति ।

२७० । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें, स्रंस्—स्रंस्, भ्रंश्—भ्रंश्, कृप्—कल्प्, और शंस्—शंस् होता है ।

भ्वादि ।

अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

पत् (पतॢ) पतने*—गिरना To fall.

(पतति पत्रं वृक्षात् ।—(२) धर्मभ्रंशे ; "पलाण्डुं गृञ्जनञ्चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः" मनु० ५. १९. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पतति	पततः	पतन्ति
मध्यमपुरुष	पतसि	पतथः	पतथ
उत्तमपुरुष	पतामि	पतावः	पतामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पततु	पतताम्	पतन्तु
मध्यमपुरुष	पत	पततम्	पतत
उत्तमपुरुष	पतानि	पताव	पताम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपतत्	अपतताम्	अपतन्
मध्यमपुरुष	अपतः	अपततम्	अपतत
उत्तमपुरुष	अपतम्	अपताव	अपताम

---

* 'पतॢ गतौ' इति धातुपाठः ; पत्—जाना To go—सकर्मक ; यथा—[सः] पपात पथः" भा० ४. १८. (सः अर्जुनः पथः मार्गान् पपात जगाम इत्यर्थः) ।

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
मध्यमपुरुष	पतेः	पतेतम्	पतेत
उत्तमपुरुष	पतेयम्	पतेव	पतेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	पतिष्यति	पतिष्यतः	पतिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	पतिष्यसि	पतिष्यथः	पतिष्यथ
उत्तमपुरुष	पतिष्यामि	पतिष्यावः	पतिष्यामः

❀ अनु + पत्—अनुसरणे। अभि + पत्—अभिधावने; आक्रमणे च। आ + पत्—आगमने; उपस्थितौ च। उत् + पत्—उड्डयने (उड़ना)। नि + पत्—अधःपतने; उपस्थितौ च। प्र + नि + पत्—प्रणामे; प्रणिपतति। सम् + नि + पत्—मिलने। निर् + पत्—निर्गमे (निकलना); निष्पतति। ❀

हस् (हसे) हसने—हसना To laugh.

(मधुरं हसति शिशुः। उपहासे—दोषदर्शनपूर्वकहासे—ठट्ठा करना—तु सकर्मकः; हसन्ति साधवश्चौरम्।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसति	हसतः	हसन्ति
मध्यमपुरुष	हससि	हसथः	हसथ
उत्तमपुरुष	हसामि	हसावः	हसामः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसतु	हसताम्	हसन्तु
मध्यमपुरुष	हस	हसतम्	हसत
उत्तमपुरुष	हसानि	हसाव	हसाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
मध्यमपुरुष	अहसः	अहसतम्	अहसत
उत्तमपुरुष	अहसम्	अहसाव	अहसाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
मध्यमपुरुष	हसेः	हसेतम्	हसेत
उत्तमपुरुष	हसेयम्	हसेव	हसेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	हसिष्यसि	हसिष्यथः	हसिष्यथ
उत्तमपुरुष	हसिष्यामि	हसिष्यावः	हसिष्यामः

अव + हस्, उप + हस्--उपहासे । परि + हस्--परिहासे ।

भू सत्तायाम्—होना To be, become.

("सत्सङ्गाद्भवति हि साधुता खलानाम्" चाणक्यः ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यमपुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तमपुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भवतु	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुष	भव	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुष	भवानि	भवाव	भवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यमपुरुष	अभवः	अभवतम्	अभवत
उत्तमपुरुष	अभवम्	अभवाव	अभवाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
मध्यमपुरुष	भवेः	भवेतम्	भवेत
उत्तमपुरुष	भवेयम्	भवेव	भवेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उत्तमपुरुष	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

*। अनु+भू—बोधे । अभि+भू—पराजये । उत्+भू—उत्पत्तौ ।

परा + भू—पराभवे । परि + भू—अनादरे । प्र + भू—उत्पत्तौ ; सामर्थ्ये च (सकना)। वि + भू + णिच्—चिन्तायाम् ; ज्ञाने ; प्रकाशने च ; विभावयति । सम् + भू—सम्भावनायाम् (मुमकिन होना) ; उत्पत्तौ ; मिलने च । सम् + भू + णिच्—सम्मानने ; चिन्तने, विवेचने च ; "विलोचनं दक्षिण-मञ्जनेन सम्भाव्य" र० ७. ८. इत्यत्र 'सम्भाव्य अलङ्कृत्य' इत्यर्थः ।

स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ (अवस्थाने)—रहना, ठहरना To stay.

(तिष्ठति साधुर्धर्मे ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
मध्यमपुरुष	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उत्तमपुरुष	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
मध्यमपुरुष	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उत्तमपुरुष	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
मध्यमपुरुष	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उत्तमपुरुष	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उत्तमपुरुष	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
मध्यमपुरुष	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उत्तमपुरुष	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

❁ अधि + स्था—स्थितौ; पराभवे; प्रभुत्वे च—(सकर्मक); "आश्रमबहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति" उत्तर० ४.। अनु + स्था—करणे। अव + स्था—अवस्थितौ; आत्मनेपदी; अवतिष्ठते। प्रति + अव + स्था—विरोधे, आक्षेपे, शङ्कायाम्, प्रातिकूल्ये। आ + स्था—आश्रये; "संयमे यत्नमातिष्ठेत्" मनु० २.८८.। उत् + स्था—उत्थाने (उठना)। उप + स्था—उपस्थितौ (हाज़िर होना); आत्मनेपदी; उपतिष्ठते। प्र + स्था—प्रस्थाने (चले जाना); आत्मनेपदी; प्रतिष्ठते। सम् + स्था—अवस्थाने; आत्मनेपदी; सन्तिष्ठते। ❁

अनुवाद करो—आपकी पत्रिका प्राप्त होकर (अवाप्य) मैं सुखी हुआ। अब यदि वृष्टि हो, तो प्रचुर शस्य होगा। इनका मङ्गल हो। तुमलोग चिरजीवी हो। तुम दोनों भाई यहाँ रहो। वे क्या घरमें थे? जो लोग सर्वदा गुरुके पास रहते हैं, उनका कभी अमङ्गल नहीं होता। यहाँ और अधिक दिन नहीं रहूँगा। तू मिथ्यावादी होगा, तो नरकमें गिरेगा। आँधीमें (वात्या) वृक्षसे आम गिरते हैं। ऐसी आँधीसे सब फल गिर जायँगे। उसकी बात सुनकर (श्रुत्वा) सब हँस पड़े। नहुष

ऋषियोंके शापसे स्वर्गसे गिरा। अविश्वासी नहीं होना चाहिये। वह यदि चार दिन वहां रहे, तो उसका सब कार्य्य सफल होगा। दूसरेका दुःख देखकर (दृष्ट्वा) कभी हसना नहीं चाहिये। अन्धे और लङ्गड़ेका (द्वितीया) उपहास न करना। नारदको दूरसे देखकर अच्युत (कृष्ण) आसनसे उठे।

सकर्मक परस्मैपदी धातु।

गम् (गम्लृ) गतौ—जाना To go.

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
मध्यमपुरुष	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उत्तमपुरुष	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
मध्यमपुरुष	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उत्तमपुरुष	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
मध्यमपुरुष	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उत्तमपुरुष	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
उत्तमपुरुष	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उत्तमपुरुष	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

❀ गम् + णिच्—अवबोधने (समझाना); गमयति; "द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयत." (Two negatives make one affirmative)। अति + गम्—अतिक्रमे। अधि + गम्—प्राप्तौ; ज्ञाने च। अनु + गम्—अनुसरणे। अप + गम्—अपसरणे, दूरीभावे। अव + गम्—ज्ञाने। आ + गम्—आगमने; प्राप्तौ च। उप + आ + गम्—मिलने। उत् + गम्—उद्गमे। प्रति + उत् + गम्—प्रत्युद्गतौ, सम्मानार्थं पुरोगमने। उप + गम्—प्राप्तौ। अभि + उप + गम्—स्वीकारे। निर् + गम्—बहिर्गमने। परि + गम्—प्राप्तौ; ज्ञाने; वेष्टने च। सम् + गम्—मिलने; साधुः साधुभिः सह सङ्गच्छते; (२) योग्यतायाञ्च; तत्र सङ्गच्छते। ❀

पा पाने—पीना To drink.

(पिबति पयः पान्थः।)

लट्।

प्रथमपुरुष	पिबति	पिबतः	पिबन्ति
मध्यमपुरुष	पिबसि	पिबथः	पिबथ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	पिबामि	पिबावः	पिबामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
मध्यमपुरुष	पिब	पिबतम्	पिबत
उत्तमपुरुष	पिबानि	पिबाव	पिबाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
मध्यमपुरुष	अपिबः	अपिबतम्	अपिबत
उत्तमपुरुष	अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
मध्यमपुरुष	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
उत्तमपुरुष	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
मध्यमपुरुष	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उत्तमपुरुष	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

दृश् (दृशिर्) प्रेक्षणे (ज्ञाने ; साक्षात्कारे)—देखना To see.

(पश्यति चन्द्रं लोकः ; "आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः" चाणक्यः। "पशुः पश्यति गन्धेन, बुद्ध्या पश्यन्ति पण्डिताः।
राजा पश्यति कर्णाभ्यां, भूते पश्यन्ति बर्बराः॥")

१८

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
मध्यमपुरुष	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उत्तमपुरुष	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
मध्यमपुरुष	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
उत्तमपुरुष	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
मध्यमपुरुष	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
उत्तमपुरुष	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
मध्यमपुरुष	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
उत्तमपुरुष	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
मध्यमपुरुष	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उत्तमपुरुष	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

* अनु + दृश्—आलोकने (देखना); आलोचनायाञ्च । उप,

परि, प्र, सम् + दृश् + णिच्—प्रदर्शने (दिखलाना) ; उपदर्शयति &c. ❧

अनुवाद करो—बच्चा, तू जा, वहभी जाय, परन्तु मै नहीं जाऊंगा । वे कल पढ़नेको (पठितुम्) गये थे ; तू गया था क्या ? यदि श्याम आवे, तो मैभी जाऊंगा । पहले इसे देखो, पीछे जल पीना । शरीरपुष्टिके लिये घृत पान करना चाहिये । कभी मद्य नहीं पीना । प्रणिधानसे क्या देखते हो ? मै शीघ्र उस देशको देखूंगा । तू जल पीयेगा क्या ?

* * * *

भ्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अञ्च् (अनूचु) गतौ ; पूजने च—(१) जाना ; (२) पूजा (सम्मान) करना To go ; to worship (honour)—अञ्चति ; अञ्चिष्यति । (१) "स्वतन्त्रा कथमञ्चसि ?" भ० ४. २२ ; (२) "भीमोऽयं शिरसाऽञ्चति" वेणी० ९. २७. ।

अट् भ्रमणे—घूमना To wander—अटति ; अटिष्यति ।

महीमटति परिव्राट् ।

❧ परि + अट्—पर्य्यटने ; "तीर्थानि पर्य्यटस्व" महाभा० । ❧

अर्च् पूजायाम्—पूजा करना To adore—अर्चति ; अर्चिष्यति ।

"रत्नपुष्पोपहारेण च्छायामानर्च पादयोः" र० ४. ८४. ।

अर्ज् अर्जने—कमाना To earn—अर्जति ; अर्जिष्यति । "यदघमर्जति दाता" नै० ९. ८४. ।

अर्द् गतौ ; याचने ; पीडने च—(१)जाना ; (२)माङ्गना ; (३) सताना, मारना To move ; to beg ; to afflict—अर्दति ; अर्दिष्यति । (२) "शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि" र० ९. १७. ।

-अर्ह् योग्यत्वे ; पूजने च—(१) योग्य होना To deserve, merit; (२) पूजा करना—अर्हति ; अर्हिष्यति । (१) दण्डमर्हति दुर्वृत्तः ; (अक०) अर्हति विप्रो वेदं पठितुम् ।

'तुमुनन्त'-पदके साथ मध्यमपुरुषमें और कभी प्रथमपुरुषमें प्रयुक्त होनेसे, 'अर्ह्'-धातु—लट् अनुज्ञा, उपदेश, वा विनीत प्रार्थना सूचित करता है ; और अङ्गरेज़ीमें उसका अनुवाद 'Pray', 'deign', 'be pleased to', 'will be pleased to' द्वारा करना होता है : यथा—"क्षिणाण्वदान्यर्हसि सोढुमर्हन् !" र० ५. २५ (Pray wait &c) ; "नार्हति मे प्रणयं विहन्तुम्" र० २. ५८ ; "तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति" र० १. १०. (Will be pleased or be good enough to listen to it) ।

अव् रक्षणे ; प्रीणने च—(१) रक्षा करना ; (२) प्रीत करना (खुश करना) To protect ; to satisfy—अवति ; अविष्यति । (१) "अवतु वो गिरिसुता" ; (२) "न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी" र० १. ६५. ।

-इ गतौ—अयति ; एष्यति ।

** उत् + इ—उदये ; "उदयति विततोर्द्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् । वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥" माघ० ४. २० (अनेनैव श्लोकेन कविना 'घण्टामाघः' इति नाम लब्धमिति केचिद्वर्णयन्ति) ; "अप्युदयति मुञ्चामसनः पद्मिनीनाम्" ; "उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे" उद्भटः । **

उक्ष् सेचने—सींचना To wet, moisten—उक्षति ; उक्षिष्यति ।
उक्षति वृक्षं मेघः ।

⚜ अभि + उक्ष्, प्र + उक्ष्—समन्तात् वारिबिन्दुप्रक्षेपे (छिड़कना) ; "प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्" (यज्ञार्थं मन्त्रैः संस्कृतम् इत्यर्थः) मनु० ५. २७. । ⚜

ऋ गतौ ; प्राप्तौ च—(१) जाना ; (२) पाना To go; to obtain—
ऋच्छति ; अरिष्यति । (२) ऋच्छति धनं कृती ; "चण्डालपुक्कसानाञ्च ब्रह्महा योनिमृच्छति" मनु० १२. ५५. ।

⚜ ऋ + णिच्—(१) दाने ; (२) स्थापने च ; अर्पयति । (२) "अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः" र० ९. ७४. । ⚜

कष् हिंसायाम् To injure ; (२) घर्षणे To rub, scratch ; (३) परीक्षणे (निकषोपरि घर्षणेन स्वर्णस्य)—कसौटीमें घिसकर सुवर्णकी परीक्षा करना To test, rub on a touchstone (as gold) ;
"छद्हेम कषन्निवालसत् कषपाषाणनिभे नभस्तले" नै० २. ६९. ।

कस् गतौ—कसति ; कसिष्यति ।

⚜ वि + कस्—विकासे (खिलना और विस्तृत होना—अक०) ;
"विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्" मालती० १. २८. । वि + कस् + णिच्—To cause to expand—विकासयति ; "कोपकुसुमं व्यचीकसत्" माघ० १५. १२ ; "चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्" भर्तृ० । प्र + वि + कस्—प्रकाशे । निर् + कस् + णिच्—निःसारणे ; निष्कासयति । ⚜

काङ्क्ष् (काक्षि) वाञ्छायाम्—आकाङ्क्षा करना, चाहना To wish—

काङ्क्षति ; काङ्क्षिष्यति । मधुमतः काङ्क्षति वल्गीन् ।

⚜ आ + काङ्क्ष्—आकाङ्क्षायाम् । ⚜

कित् रोगापनयने (व्याधिप्रतीकारे)—इलाज करना To heal, cure—चिकित्सति ; चिकित्सिष्यति ।

⚜ वि + कित्—संशये । ⚜

कृष् आकर्षणे ; विलेखने च—(१) खींचना ; (२) जोतना To pull; to till—कर्षति, कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति । (१) कर्षन्ति तुरगा रथम् ; (२) इक्षुक्षेत्रं कर्षति कृषीवलः ।—(३) प्रापणे (ले जाना); द्विकर्मक ; कर्षति शाखां ग्रामम् ।

⚜ आ + कृष्, वि + कृष्—आकर्षणे । अप + कृष्—अपसारणे (हटाना), नाशने ; "धैर्यं शोकोऽपकर्षति" रामा० ; (२) न्यूनीकरणे च (घटाना) । उत् + कृष्—उत्तोलने ; उद्धरणे (निकाल लेना, छुड़ाना) ; आकर्षणे ; वर्द्धने च (बढ़ाना) । निर् + कृष्—बलाद्ग्रहणे, आहरणे । प्र + कृष्, उत् + कृष्—कर्मकर्त्तरि—आधिक्ये, वृद्धौ, श्रेष्ठतायाम् (अधिक होना, बढ़ना, श्रेष्ठ होना) ; प्रकृष्यते, उत्कृष्यते । वि + प्र + कृष्—दूरीकरणे । ⚜

क्रम् (क्रमु) पादविक्षेपे (गतौ)—कदम रखना, चलना To step, walk—क्रामति, क्राम्यति, क्रमते ; क्रमिष्यति ।—आक्रमणे च ; "कृष्णोरगो पदा क्रामसि पुच्छदेशे" महाभा० ।

⚜ अति + क्रम्—(१) उल्लङ्घने (पार होना) ; (२) अतिवाहने (काटना) ; (३) अत्यये च (गुज़रना—अक०) ; यथा—(२) आहारवेलां नातिक्रामेत् ; (३) "अतिक्रामति देवार्चन-

विधिवेला" काद०। वि+अति+क्रम्—उल्लङ्घने, भङ्गे (तोड़ना); "कृच्छ्रेष्वपि न मर्य्यादां व्यतिक्रमेत्" पञ्च० १.९१.। अप+क्रम्—अपसरणे (हटना)। आ+क्रम्—आक्रमणे। उत्+क्रम्—उद्गमने; अतिक्रमे च। उप+क्रम्, प्र+क्रम्—आरम्भे; आत्मनेपदी; उपक्रमते, प्रक्रमते। निर्+क्रम्—निर्गमने; निष्क्रामति। परा+क्रम्, वि+क्रम्—शौर्य्याविष्कारे (बहादुरी या हिम्मत दिखाना); "बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्" मनु० ७.१०६.। परि+क्रम्—इतस्ततः पादचारे (चलना फिरना)। सम्+क्रम्—प्रवेशे। ⚜

खाद् भक्षणे—खाना To eat—खादति; खादिष्यति। "खादति पृष्टमांसम्" (चुगली खाता है) हितो० १.८२.।

गद् भाषणे—कहना To say—गदति; गदिष्यति। "वेदान् गदति विस्पष्टम्"।

⚜ नि+गद्—कथने। ⚜

गुप् (गुपू) रक्षणे—रक्षा करना, बचाना To protect—गोपायति; गोप्स्यति, गोपिष्यति, गोपायिष्यति। "गोपायन्ति कुलस्त्रिय आत्मानम् आत्मना" महाभा०।

गै गाने (कीर्त्तने)—गाना To sing—गायति; गास्यति। गीतं गायति गायनः। "प्राणरक्षणाच्च न परं पुण्यजातं जगति गीयते जनेन" श्रीहर्षचरितम्।

⚜ उत्+गै—उच्चैर्गाने। परि+गै—कीर्त्तने। वि+गै—निन्दायाम्। ⚜

घृष् (घृषु) घर्षणे—घिसना To rub—घर्षति; घर्षिष्यति। घर्षति

चन्द्रनं लोकः।

घ्रा गन्धग्रहणे (आघ्राणे)—सूँघना To smell—जिघ्रति; घ्रास्यति। जिघ्रति पुष्पं लोकः। "दीपनिर्वाणगन्धञ्च न जिघ्रन्ति गतायुषः"।

☞ अव, आ, उप+घ्रा—आघ्राणे। ☞

चम् (चमु) भक्षणे—खाना; पीना To eat; to drink—चमति; चमिष्यति। "चचाम मधु माध्वीकम्" भ० १४. ९४.।

☞ आ+चम्—आचमने; आचामति। पाने—"मण्डम् आचामति मृगः" उत्तर० ४. १.। ☞

चर् गतौ (भ्रमणे); भक्षणे च—(१) विचरना; (२) खाना To travel; to eat, graze—चरति; चरिष्यति। (१) "नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति"; (२) तृणानि चरति।—(३) आचरणे; "शम्बूको नाम तपश्चरति" उत्तर०।

☞ अति+चर्—लङ्घने। अनु+चर्—अनुगमने; सेवायाञ्च। अभि+चर्—(१) अतिक्रमे; "पतिं या नाभिचरति" मनु० ९. १६६; (२) मारणे च; "श्येनेनाभिचरन्"। वि+अभि+चर्—अतिक्रमे; अन्यथाभावे च। आ+चर्—व्यवहारे; "जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्" मनु० २. ११०.। सम्+आ+चर्—अनुष्ठाने, करणे। उत्+चर्—उदये (उठना); मूत्रपुरीषोत्सर्गे; उच्चारणे च। उत्+चर्+णिच्—उच्चारणे; उच्चारयति। उप+चर्—पूजायाम्, सेवायाम्। परि+चर्—सेवायाम्। वि+चर्—भ्रमणे (डोलना)। वि+चर्+णिच्—मीमांसायाम्, निर्णये; विचारयति। सम्+चर्—गमने; करणकारकका प्रयोग रहनेसे

आत्मनेपदी—अश्वेन सञ्चरते । ⚜

चुम्ब् (चुबि) वक्त्रसंयोगे (चुम्बने)—चूमना To kiss—चुम्बति; चुम्बिष्यति । चुम्बति बालं माता ।

चूष् पाने—चूसना To suck up or out—चूषति । चूषत्याम्रं लोकः ।

जप् मानसे (हृदुच्चारे)—जप करना To repeat internally or mutter—जपति ; जपिष्यति । मन्त्रं जपति साधकः ।

⚜ उप + जप्—भेदे । ⚜

जल्प् कथने—कहना, बात करना To speak, talk—जल्पति ; जल्पिष्यति । "एकेन जल्पन्त्यनल्पाक्षरम्" पञ्च० १. १४७. ।

जि अभिभवे ; उत्कर्षप्राप्तौ च—(१) जीतना ; (२) जययुक्त होना (अक०) To conquer ; to be supreme or pre-eminent—जयति ; जेष्यति । (१) जयति शत्रुं बली ; (२) "जयति रघुवंशतिलकः" महाना० १. ३. ।*

⚜ निर् + जि—अभिभवे । परा + जि—पराजये ; आत्मनेपदी ; पराजयते । वि + जि—(१) पराभवे (सक०) ; (२) उत्कर्षप्राप्तौ च (अक०) ; आत्मनेपदी ; विजयते ; यथा—(१) "चक्षुर्मेचकमम्बुजं विजयते" विद्ध० १. ३३ ; (२) "भो राजन् ! विजयतां भवान्" शकु० ९. । ⚜

---

* "अनभिधानादस्मात् तुबन्त्वोः प्रयोगाभावः, किन्तु तयोः स्थाने तिबन्तौ इति । किञ्च तुपः स्थाने तातङ् दृश्यते, तथा—'भावगम्यलयः कोऽपि जयताद्वागगोचरः' इति ।" इति कविकल्पद्रुमटीकाकृद्दुर्गादासः ।

तक्ष् (तक्षू) तनूकरणे (कृशीकरणे)—छीलना, कतरना To pare, chop, cut off—तक्षति, तक्ष्णोति; तक्षिष्यति, तक्ष्यति। तक्षति तक्ष्णोति काष्ठं तक्षा।

तप् सन्तापे (दाहे; शोके)—सन्तापित करना (दुखाना—सक०); सन्तप्त होना (दुःख पाना—अक०) To burn, to afflict; to suffer pain—तपति; तप्स्यति। "तपति तनुगात्रि! मदनस्त्वाम्" शकु० ३. १७; "तपति न सा किसलयशयनेन" गीतगो० ७.। प्रकाशेऽपि—रविस्तपति ॥ "अर्जनार्थे आत्मनेपदं यक् च—तप्यते तपस्तापसः"—संक्षिप्तसारम्।

❀ अनु+तप्—कर्मकर्त्तरि—पश्चात्तापे (अक०); अनुतप्यते। परि+तप्—परितापे, व्यथायाम् (कर्मकर्त्तरि); "परितप्यते नोत्तमः परवृद्धिभिः" माघ० १६. २३.। सम्+तप्—सन्तापे (कर्मकर्त्तरि); "दिवाऽपि मयि निष्क्रान्ते सन्तप्येते गुरू मम" महाभा०। ❀

तॄ तरणे (अतिक्रमणे); प्लवने (जलोपरिस्थितौ) च—(१) पार होना; (२) तैरना (अक०) To cross; to float—तरति; तरिष्यति। (१) तरति नदीं भेलकेन पान्थः; "तरति सकलदुःखं वामनं भावयेद्यः"; (२) तरति शुष्ककाष्ठं जले।

❀ अति+तॄ—अतिक्रमे। अव+तॄ—अवरोहणे (उतरना)। उत्+तॄ, निर्+तॄ—अतिक्रमे; निस्तरति। प्र+तॄ+णिच्—वञ्चने (ठगना); प्रतारयति। वि+तॄ—दाने। सम्+तॄ—सन्तरणे (पैरना); अतिक्रमे च; "सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि" गीता. ४. ३६.। ❀

त्यज् त्यागे—छोड़ना To leave—त्यजति; त्यक्ष्यति। त्यजति दुष्टलोकं जनः।

⚜ परि+त्यज्, सम्+त्यज्—वर्जने। ⚜

दंश् (दन्श्) दंशने (दन्तव्यापारे)—डसना To bit—दशति; दङ्क्ष्यति। "पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः" र० १४. ४; दशति बिम्बफलं शुकशावकः।

दह् भस्मीकरणे (दाहे; सन्तापे)—(१) जलाना; (२) दुःख देना To burn; to torment—दहति; धक्ष्यति। (१) दहत्यग्निः काष्ठम्; (२) "आत्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति" शकु० ५.।

⚜ निर्+दह्—दाहे; प्रणाशे च; "एनो निर्दहन्त्याशु तपसा" मनु० ११. २४१.। ⚜

दा (दाण्) दाने—देना To give—यच्छति; दास्यति।

⚜ प्र+दा—प्रदाने। ⚜

द्रु गतौ (पलायने); द्रवीभावे च—(१) जाना, भागना; (२) पिघलना (अक०) To run, flow, fly; to melt—द्रवति; द्रोष्यति। (१) "नद्यः समुद्रं द्रवन्ति" गीता. ११. २८; "रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति" गीता. ११. ३६; (२) "द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः" उत्तर० ६. १२.।

⚜ अनु+द्रु—अनुसरणे। उप+द्रु—अभिमुखधावने, आक्रमणे। प्र+द्रु, वि+द्रु—पलायने। ⚜

धे (धेट्) पाने—पीना To drink—धयति; धास्यति। "न वारयेद्गां धयन्तीम्" मनु० ४. ५९.।

ध्मा शब्दे (शङ्खादिवादने) ; अग्निसंयोगे (अग्नेरुज्ज्वलीकरणे, अग्निफुत्कृतौ) च—फूँकना, धौंकना To blow (as a wind-instrument or a fire)—धमति ; ध्मास्यति । धमति शङ्खं जनः (सशब्दं करोति) ; "धमति स्वर्णं वणिक् (अग्निसंयुक्तं करोति); "को धमेच्छान्तञ्च पावकम् ?" महाभा० ।

❀ आ + ध्मा—स्फीतौ (फूलना) ; दर्पाध्मातः ; "आध्मातमुदरं भृशम्" सुश्रुत० । ❀

ध्यै चिन्तने—ध्यान करना To contemplate, meditate upon—ध्यायति ; ध्यास्यति । ध्यायति विष्णुं वैष्णवः ; "ध्यायत्यनिष्टं चेतसा" मनु० ९. २१. ।

❀ अनु + ध्यै—चिन्तायाम् ; अनुग्रहे च । नि + ध्यै—स्मरणे ; दर्शने च ; "चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः" माघ० १२. ४०. । ❀

नम् (णम्) नतौ (नमस्करणे ; नम्रीभावे च)—(१) नमस्कार करना (सक०) ; (२) झुकना(अक०) To salute; to bend—नमति ; नंस्यति । (१) नमति गुरुं लोकः ; (२) "नमन्ति फलिनो वृक्षाः" ।

❀ अव, आ + नम्—अवनतौ । उत् + नम्—उन्नतौ । उप + नम्—उपस्थितौ । परि + नम्—परिपाके, जीर्णीभावे—"शाखाभृतां परिणमन्ति न पल्लवानि" भा० ९. ३७ ; रूपान्तरीभावे च (तृतीयाके साथ)—"क्षीरं जलं वा स्वयमेव दधिहिमभावेन परिणमते" शारीरकभाष्यम् । वि + परि + नम्—विरूपावस्थायाम् । प्र + नम्—प्रणामे । ❀

निन्द् कुत्सायाम्—निन्दा करना To blame—निन्दति ; निन्दिष्यति ।

निन्दति दुष्टं लोकः ।

पठ् पाठे (कथने)—पढ़ना To read—पठति ; पठिष्यति । पठति श्लोकं धीरः ।

भण् कथने—कहना To say, speak—भणति ; भणिष्यति । "छिन्न-बन्धे मत्स्ये पलायिते, निर्विण्णो धीवरो भणति—धर्मो मे भविष्य-तीति" विक्रमो० ।

म्ना अभ्यासे (पौनःपुन्येनानुशीलने)—आवृत्ति करना, दुहराना To repeat (in the mind)—मनति ; म्नास्यति । मनति सन्ध्यां ब्राह्मणः ।

आ + म्ना—आवृत्तौ ; उक्तौ च ; "प्रायश्चित्त इव राजदण्डेऽप्ये-नसो निष्क्रयमामनन्ति धर्माचार्याः" महावीर० ४. ।

रक्ष् पालने (रक्षणे)—बचाना, हिफ़ाज़त करना To protect, take care of—रक्षति ; रक्षिष्यति । "आत्मानं सततं रक्षेत्" मनु० ७. २१७. ।

लप् कथने—कहना To speak—लपति ; लपिष्यति । "लपति स्निग्धया वाचा" ।

अप + लप्—अपह्नवे, अस्वीकारे (इनकार करना) । अभि + लप्—कथने । आ + लप्—आलापे (बातचीत करना) । प्र + लप्—प्रलापे, अनर्थकवाक्ये (बकना) । वि + लप्—विलापे (अफ़सोस करना) । सम् + लप्—मिथोभाषणे ।

लिङ्ग् (लिगि) गतौ—लिङ्गति ; लिङ्गिष्यति ।

आ + लिङ्ग्—आलिङ्गने (गले लगाना) To clasp.

वद् कथने—बोलना To say—वदति; वदिष्यति। "सत्यं वदति सर्वत्र"; "वद, प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते" कु० ९. ४४.।

ॐ वद्+णिच्—वादने (बजाना); वादयति; "वादयते मृदु वेणुम्" गीतगो० ६. ९.। अनु+वद्—अनुकरणे; पुनः कथने च। अप+वद्—निन्दायाम्। अभि+वद्+णिच्—अभिवादने, प्रणामे; "भगवन्! अभिवादये" विक्रमो० ९; "तात! प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते" उत्तर० ६.। परि+वद्—निन्दायाम्। प्रति+वद्—प्रतिवचने (जवाब देना)। वि+वद्—कलहे; आत्मनेपदी; विवदते। सम्+वद्—सादृश्ये। वि+सम्+वद्—वैलक्षण्ये, विरोधे। ॐ

वम् (टुवम्) उद्गिरणे (वमने)—उगलना To vomit—वमति, वमिष्यति। "फणी पीत्वा क्षीरं वमति गरलम्"।

ॐ उत्+वम्—निःसारणे, प्रकटने। ॐ

वाञ्छ् (वाछि) कामे—इच्छा करना To wish—वाञ्छति; वाञ्छिष्यति। "(धनुर्भृतस्तस्य) प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्" भा० १. १९.।

वृष् (वृषु) सेचने (वर्षणे)—बरसाना To rain or pour down—वर्षति; वर्षिष्यति। "वर्षतीवाञ्जनं नभः" मृच्छ० १. ३४; "काले वर्षन्तु मेघाः" (शक०)।

व्रज् गतौ—(१) जाना; (२) पाना To go; to attain—व्रजति; व्रजिष्यति। (१) "नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैः" मनु० ४. ६७;

"इयं व्रजति यामिनी, त्यज नरेन्द्र ! निद्रारसम्" विक्रमाङ्कदेवचरितम् ११. ७४ ; (२) "व्रजति शुचिपदं त्वयि प्रीतिमान्" भा० १८. २६ ; "मामेकं शरणं व्रज" गीता. १८. ६६. ।

⚜ अनु + व्रज्—अनुगमने ; समीपगतौ, आश्रये, सहवासे—"मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति" पञ्च० १. । परि + व्रज्—सन्न्यासपूर्वक-भ्रमणे । प्र + व्रज्—सर्वसङ्गत्याग-पूर्वक-चतुर्थाश्रमग्रहणे । प्र + व्रज् + णिच्—प्रवासने, निर्वासने ; "चतुर्दश समा रामं प्राव्राजयत" र० १२. ६. । ⚜

शंस् (शन्स) कथने ; स्तुतौ च—(१) कहना ; (२) प्रशंसा करना To tell ; to praise—शंसति ; शंसिष्यति । (१) "न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितम्" र० ३. ५ ; (२) "साधु साध्विति भूतानि शशंसुर्मारुतात्मजम्" रामा० ।

⚜ आ + शंस्—कथने । प्र + शंस्—प्रशंसायाम् । ⚜

शुच् शोके (पुत्रादेरदर्शनाद्दुःखानुभवे)—शोक करना, ग़म खाना To mourn—शोचति ; शोचिष्यति । "न शोचति सदाचारो यो मृतानपि बान्धवान्" ।

⚜ अनु + शुच्—अनुशोचने (अफ़सोस करना) ; "नष्टं मृतमतिक्रान्तं नानुशोचन्ति पण्डिताः" पञ्च० १. ३६३. । ⚜

ष्ठिव् (ष्ठिवु) निरासे (मुखेन श्लेष्मादेर्वमने)—थूकना, उगालना To spit , throw out—ष्ठीवति ; ष्ठेविष्यति । "पोतमिन्दुं ष्ठीवाम" भ० १२. १८. । दिवादिगणीय परस्मैपदीभी होता है ; ष्ठीव्यति ।

⚜ नि + ष्ठिव्—निष्ठीवने (थूकना) ; निक्षेपे च । ⚜

सिध् (षिधु) गत्याम्—जाना—सेधति ; सेधिष्यति ।

सिध् (षिधू) शासने ; माङ्गल्ये च—सेधति ; सेत्स्यति, सेधिष्यति ।

❀ नि + सिध्, प्रति + सिध्—निवारणे (रोकना) ; निषेधति, प्रतिषेधति । ❀

सृ गतौ—चलना To go, move—सरति (वेगगमने—धावति); सरिष्यति ।

❀ अनु + सृ—अनुगमने । अप + सृ—पलायने (हटना, सरकना) । अभि + सृ—सङ्केतस्थानगमने ; 'णिच्'-भी होता है । उत् + सृ + णिच्—दूरीकरणे ; उत्सारयति । उप + सृ—समीपगमने । निर् + सृ—निष्क्रमणे (निकलना) ; निःसरति । प्र + सृ, वि + सृ—व्याप्तौ । सम् + सृ—देहधारणे । ❀

सृप् (सृप्लृ) गतौ—सर्पति ; सर्प्स्यति, स्रप्स्यति ।

❀ अप + सृप्—अपसरणे । उत् + सृप्—उर्द्धगमने ; उल्लङ्घने च । उप + सृप्—समीपगमने । प्र + सृप्, वि + सृप्—गमने ; विस्तारे च (फैलना) । सम् + सृप्—सङ्क्रमणे, सञ्चारे । ❀

स्कन्द् (स्कन्दिर्) गतौ ; शोषणे च ।

❀ अव + स्कन्द्, आ + स्कन्द्—आक्रमणे । प्र + स्कन्द्—लम्फप्रदाने (कूदना) ; पतने च—"तस्य रेतः प्रचस्कन्द" महाभा० । स्कन्द् + णिच्—निःसारणे, विमोचने, पातने ; "एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्" मनु० २. १८०. । ❀

स्मृ चिन्तायाम् (स्मरणे)--याद करना To remember, call to mind--स्मरति ; स्मरिष्यति । हरिं स्मरति मुमूर्षुः ।

❀ वि+स्मृ—विस्मरणे (भूलना) । ❀

अनुवाद करो—नमस्यको नमस्कार करना। किसीको कटु वाक्य नहीं कहना। साधुलोग तीर्थ पर्य्यटन करते हैं। जो धर्मका (द्वितीया) आचरण करता है, छोटे बड़े सब उसका (द्वितीया) आदर करते हैं। पुत्र-शोकसे कौशल्यादेवीने विलाप किया था। शरणागतका (द्वितीया) परित्याग करना नहीं चाहिये। प्रातःकालमे प्रतिदिन (अनुदिनम्) अपना पाठ पढ़ना। ईश्वर हमारी (द्वितीया) रक्षा करेंगे। जननी पुत्रका मुख चुम्बन करती है। कभी किसीकी (द्वितीया) निन्दा करनी नहीं चाहिये। सज्जन सर्वदा गुणियोंकी (द्वितीया) प्रशंसा करते हैं। राजा दशरथने रामके लिये अत्यन्त शोक किया और अन्तमे वह मर गया।

भ्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु।

इङ्ग् (इगि) गतौ (चलने, कम्पने)—चलना, हिलना To move, shake—इङ्गति ; इङ्गिष्यति। "त्वया सृष्टमिदं विश्वं यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति" महाभा०। "यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते" गीता. ६. १९. इत्यत्र आत्मनेपदम् आर्षम्।

एज् (एजृ) कम्पने—काँपना, विचलित होना To tremble, stir—एजति ; एजिष्यति। "धृतराष्ट्रोऽयमेजति" महाभा०।

कूज् अव्यक्तशब्दे (कूजने)—चहचहाना To make an inarticulate sound, coo, warble—कूजति ; कूजिष्यति। कूजति कोकिलः ; "चुकूज कूले कलहंसमण्डली" नै० १. २७.।

क्रन्द् (क्रदि) रोदने—रोना To cry, weep—क्रन्दति ; क्रन्दिष्यति। "मा पितः क्रन्द मा तात" महाभा०।—(२) सकरुणाह्वाने च

(रोकर पुकारना—सक०) To call out piteously to any-one ; "क्रन्दत्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसुतान्" मार्कण्डेयपुराणम् ।

☙ आ + क्रन्द्—रोदने ; आह्वाने च । ❧

क्रीड् विहारे (खेलने)—खेलना To play—क्रीडति ; क्रीडिष्यति । क्रीडति बालः शिशुभिः ।

क्रुश् रोदने ; आह्वाने (चीत्कारे) च—(१) रोना ; (२) चिल्लाना To weep ; to cry out, yell, scream—क्रोशति ; क्रोक्ष्यति । (२) "एष क्रोशति दात्यूहः" रामा० ।

☙ आ + क्रुश्—(१) चीत्कारे ; (२) भर्त्सने च ; "शतं ब्राह्मण-माक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति" मनु० ८. २६७. । वि + क्रुश्—ची-त्कारे ; "आक्रोश विक्रोश लपाधिचण्डम्" मृच्छ० १. ४१. । ❧

क्वण् शब्दे (वीणादिरवे)—झङ्कारना To sound (indistinctly), jingle, tinkle—क्वणति ; क्वणिष्यति । "क्वणन्मणिनूपुरौ" ।

क्षर् सरणे ; मोचने च—(१) बहना, झरना, टपकना ; (२) बहाना, निकालना (सक०) To flow, trickle ; to emit—क्षरति ; क्षरिष्यति । (१) क्षरति क्षतजं क्षतात् ; (२) "स्रोतोभिस्त्रिदश-गजा मदं क्षरन्तः" मा० ७. ८. ।

खेल् (खेट्) क्रीडायाम्—खेलना To play—खेलति ; खेलिष्यति ।

"भास्वत्कन्या सैका धन्या
यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत् ॥" छन्दोमञ्जरी ।

गर्ज् शब्दे (गर्जने)—गरजना, गाजना To roar, growl ; to emit a deep and thundering sound, thunder—

गर्जति ; गर्जिष्यति। गर्जति सिंहः ; गर्जति वारिदपटली ; "गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः" ; "रणे न गर्जन्ति वृथा हि शूराः" रामा०।

गल् क्षरणे ; पतने च—(१) झरना ; (२) गिरना To ooze ; to drop or fall down—गलति ; गलिष्यति। (१) "स्वयं हाराकारा गलति जलधारा कुवलयात्" (२) "प्रतोदा जगलुः" भ० १४. ९९।—(३) नाशे To vanish ; "किं शास्त्रं ? श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदयः" भामिनी० १. ८४।

❦ निर् + गल्—निःसरणे ; निष्कर्षे च—इति निर्गलितोऽर्थः। वि + गल्—भ्रंशे। ❦

गुञ्ज् (गुजि) अव्यक्तशब्दे (गुञ्जने)—गुनगुनाना, भिनभिनाना To hum, buzz—गुञ्जति ; गुञ्जिष्यति। "अयि दलदरविन्द ! स्यन्दमानं मरन्दं तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गाः" भामिनी० १. ४।

ग्लै विषादे ; क्लमे च—उदास होना ; थकना To be dejected ; to be fatigued—ग्लायति ; ग्लास्यति। ग्लायति लोकः शोकात्।

चञ्च् (चञ्चु) चलने—चलना, हिलना To move, shake—चञ्चति। "चण्डि चञ्चन्ति वाताः" छन्दोमञ्जरी।

चल् कम्पने (अस्थैर्ये) ; गतौ च—(१) काँपना (अस्थिर होना), हिलना ; (२) जाना (सक०) To shake ; to go—चलति ; चलिष्यति। (१) "न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्" ;

(२) "चल सखि ! कुञ्जम्" गीतगो० ६. ११.।

❧ उत्+चल्—प्रस्थाने। प्र+चल्—गमने; कम्पे; प्रसिद्धौ च। वि+चल्—कम्पे; क्षोभे; भ्रंशे च। ❧

च्युत् (च्युतिर्) क्षरणे (स्खलने च)—चूना; गिरना To trickle; to slip—च्योतति; च्योतिष्यति।

जीव् प्राणधारणे (जीवने)—जीता रहना To live—जीवति; जीविष्यति। "त्वयि जीवति जीवामि"।—(२) जीविकानिर्वाहे (गुज़रान करना To subsist on); "स्वाहाराद् किञ्चिदुद्धृत्य ददाति, तेनासौ जीवति" हितो०।

"चौराः प्रमत्ते जीवन्ति, व्याधितेषु चिकित्सकाः।
प्रमदाः कामयानेषु, यजमानेषु याचकाः।
राजा विवदमानेषु, नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः॥" महाभा०।

❧ अनु+जीव्, उप+जीव्—आश्रये। उत्+जीव्—पुनर्जीवने। सम्+जीव्—जीवने। ❧

ज्वर् रोगे—रोगग्रस्त होना, बीमार होना; ज्वरयुक्त होना To be diseased; to be feverish—ज्वरति; ज्वरिष्यति। "एतस्मिन् भ्रान्तिकालेऽयं शरीरेषु ज्वरत्स्वयं। स्वयमेव ज्वरामीति मन्यते हि कुटुम्बिवत्॥" पञ्चदशी. ७. ३२.।

ज्वल् दीप्तौ (ज्वलने)—जलना To shine, blaze—ज्वलति; ज्वलिष्यति। ज्वलति वह्निः।—दाहे; "धिगिदमंशुकं ज्वलति" रत्ना० ४. १७.।

❧ उत्+ज्वल्, प्र+ज्वल्—दीप्तौ। ❧

दल् भेदे—फटना To crack—दलति; दलिष्यति। "दलति न सा हृदि विरहभरेण" गीतगो० ७. ३९. ।—(२) विकासे (खिलना) To bloom; "दलन्नवनीलोत्पलश्यामलं देहसौभाग्यम्" उत्तर० १.।

ध्वन् रवे—ध्वनि करना; बजना To sound—ध्वनति; ध्वनिष्यति। "अयं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः" भामिनी० १. ९९; ध्वनति मृदङ्गः।

नट् नर्त्तने—नाचना To dance—नटति।

❀ नट्+णिच्—नटयति; "तत् त्वां पुनः पलितवर्णकभाजमेनं नाट्येन केन नटयिष्यति दीर्घमायुः" (इत्यात्मानं प्रति कञ्चुकी-वाक्यम्) अनर्घ० ३. १८।

नद् (णद्) शब्दे—नाद करना To sound—नदति। नदति घण्टा। "नवाम्बुमत्ताः शिखिनो नदन्ति" घटकर्परः २.।

नन्द् (टुनदि) हर्षे—खुश होना To be glad—नन्दति; नन्दिष्यति। "ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीः" भा० ४. २.।

❀ अभि+नन्द्—सत्कारे; प्रशंसायाम्; अनुमोदने; कामनायाञ्च। आ+नन्द्—आनन्दे। प्रति+नन्द्—संवर्द्धने, सम्मानने। ❀

फल् निष्पत्तौ (पूर्त्तौ)—फलना, सफल होना To be fruitful—फलति; फलिष्यति। "भाग्यं फलति सर्वत्र"।—(२) निष्पादने (सक०) To accomplish; "फलन्ति विविधश्रेयांसि मन्त्रा-तयः" मुद्रा० २. १६; "वाल्मीकिः फलति स्म दिव्या गिरः" अनर्घ० १. ८.।

प्रति + फल्—प्रतिबिम्बने ।

फुल्ल् विकासे—फूलना To bloom, expand—फुल्लति । फुल्लति मल्लीकलिका ।

भ्रम् चलने (भ्रमणे)—घूमना To rove, ramble—भ्रमति ; भ्रमिष्यति । "भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा" मालती० १. २०. । क्वचित् सकर्मकोऽपि ; "दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस ! चापलेन" भर्तृ०; भिक्षां भ्रमति ।

उत् + भ्रम्—परिभ्रमणे ।

मील् निमेषे (सङ्कोचे)—मूँद जाना, सकुड़ना To be closed or shut (as eyes or flowers)—मीलति ; मीलिष्यति । मीलति चक्षुः (पक्ष्मभिरावृतं स्यात्) ; "मीलन्ति रिपुनारीणां मुखपद्मवनानि च" ।

उत् + मील्—उन्मेषे, विकासे । नि + मील्—मुद्रणे ।

मूर्च्छ् (मूर्च्छा) मोहे (ज्ञानरहितीभावे) ; वृद्धौ च—(१) बेहोश होना; (२) बढ़ना To faint or swoon ; to increase—मूर्च्छति ; मूर्च्छिष्यति । (१) मूर्च्छति रोगी ; (२) "मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य" र० १२. ५७. ।

म्लै कान्तिक्षये—मलिन होना To fade—म्लायति ; म्लास्यति । म्लायति चन्द्रो दिवसे । "धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता" श्रीहर्षचरितम् ।

यम् उपरमे (निवृत्तौ)—परहेज़ करना To abstain from—यच्छति ; यंस्यति । यच्छति पापात् साधुः ।—(२) निग्रहे च

(सक०) To control; "धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि" विवेकचूडामणिः ३७०.।

❀ आ + यम्—दीर्घीकरणे। उत् + यम्—उत्तोलने; उद्योगे च। उप + यम्—विवाहे; स्वीकारे च। सब आत्मनेपदी, यथा—आयच्छते, उद्यच्छते, उपयच्छते। नि + यम्—दमने, निवारणे, शासने, व्यवस्थापने। प्र + यम्—दाने। सम् + यम्—नियमने; बन्धने च।❀

रस् शब्दे—आवाज़ करना To roar; to sound—रसति; रसिष्यति। "करीव वन्यः परुषं ररास" र० १६. ७८; "राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः" वेणी० १. २९; "रसतु रसना" गीतगो० १०. ६.।

रुह् उद्भवे—उत्पन्न होना To grow—रोहति; रोक्ष्यति। "छिन्नोऽपि रोहति तरुः" भर्तृ०।

❀ रुह् + णिच्—रोपणे (रोपना, बोना); रोपयति। अधि + रुह्, आ + रुह्—आरोहणे (चढ़ना—सक०); "मूर्द्धानमधिरोहति" माघ० २. ४६; "सिंहासनमारुरोह" काद०। अव + रुह्—अवतरणे (उतरना)। प्र + रुह्, वि + रुह्, सम् + रुह्—उत्पत्तौ; "न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति" मृच्छ० ४. १७.। वि + रुह् + णिच्—व्रणप्रशमने (घाव आराम करना) To heal (as a wound); व्रणं विरोपयति।❀

लग् (लगे) सङ्गे—लगना To adhere or stick to—लगति; लगिष्यति। ओष्ठेऽधरो लगति; "हंसस्य पश्चाल्लगति स्म" नै० ३. ८.।

लड् विलासे (क्रीडायाम्)—खेलना To play, sport—लडति। ड-लयोरेकत्वस्मरणात्—ललति। "पनसफलानीव वानरा ललन्ति" मृच्छ० ८.८, "गजकलभा इव बन्धुला ललाम." मृच्छ० ४. २८.।

लस् दीप्तौ—चमकना To shine, glitter—लसति ; लसिष्यति। "मुक्ताहारेण लसता हसतीव स्तनद्वयम्" काव्यप्रकाशः १० ; "मण मसृणवाणि! करवाणि चरणद्वय सरसलसदलक्तकरागम्" गीतगो० १०. ७ ; "रौप्य लसद्विम्बमिवेन्दुबिम्बम्" नै० २२. ६३.।

❀ उत्+लस्—स्फुरणे। वि+लस्—प्रकाशे ; क्रीडायाञ्च। ❀

वल्ग् गतौ (चलने ; प्लुतगतौ)—(१) हिलना ; (२) कूदना, झपटना, सरपट जाना To move, shake ; to bounce, go by leaps, gallop—वल्गति ; वल्गिष्यति। (१) "वल्गद्गरीयः-स्तनकम्प्रकञ्चुकम्" माघ० १२. २० ; (२) "ववल्गुश्च पदातयः" भ० १४. ९ ; "वल्गु वल्गन्ति सूक्तयः" पञ्च० १. ६६ ; "विद्या-सद्मविनिर्गलत्कणमुषो वल्गन्ति चेत् पामराः" (सगर्व विचरन्ति इत्यर्थः) भामिनी० १ ७१.।—(३) नर्त्तने (नाचना) To dance, prance ; "द्वारे हेमविभूषणाश्च तुरगा वल्गन्ति यद् दर्पिताः" भर्तृ० ; "कबन्धाद्भूयो बिभ्ये वल्गतः सामिपाणेः" माघ० १८. ५३.।

वस् निवासे—बसना, रहना To reside, stay—वसति ; वत्स्यति। "वसति वने वनमाली" गीतगो० ५. ८ ; "वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि" मा० ८. ३७.।

❀ अधि+वस्, आ+वस्—वासे (सक०)। उप+वस्—

उपवासे, भोजननिवृत्तौ ; "एकादशीमुपवसन्ति निरम्बुभक्षाः" । नि+वस्—निवासे । निर्+वस्+णिच्—निर्वासने, नगराद्बहिष्करणे (निकाल देना) ; निर्वासयति । प्र+वस्—विदेशावस्थाने । प्र+वस्+णिच्, वि+वस्+णिच्—निर्वासने । प्रति+वस्—निवासे । ❦

वेल्ल् कम्पने—हिलना, चलना To shake, move about—वेल्लति ; वेल्लिष्यति । "उद्वेल्लन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः" उत्तर० २. २९. ।

श्च्युत् (श्च्युतिर्) क्षरणे—टपकना To trickle—श्च्योतति ; श्च्योतिष्यति । "मधुनो धाराः श्च्योतन्ति" उत्तर० ३. ३४. ।

सञ्ज् (षञ्ज्) सङ्गे (संश्लेषे)—चिपटना To stick or adhere to—सजति ; सङ्क्ष्यति । "सजति वपुषि वासः" ।

❦ अनु+सञ्ज्—सम्बन्धे ; आसक्तौ (कर्मकर्त्तरि) ; अनुषज्यते ; "धर्मपूते च मनसि नभसीव न जातु रजोऽनुषज्यते" दशकु० । अव+सञ्ज्, आ+सञ्ज्—योजने, स्थापने । प्र+सञ्ज्—आसक्तौ ; "प्रसजन्निन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति"; कर्मकर्त्तरि—प्रसङ्गे, सम्बन्धे—प्रसज्यते । ❦

सद् (षद्लृ) विषादे (आकुलीभावे)—उदास होना To be dejected or low-spirited—सीदति ; सत्स्यति । "सीदति राधा वासगृहे" गीतगो० ६. २. ।—उपवेशने ; नाशे ; क्लेशे ; क्लान्तौ च ।

❦ अव+सद्—श्रान्तौ ; विनाशे च । आ+सद्—सन्निकर्षे

(नजदीक आना)। उत्+सद्—नाशे। उत्+सद्+णिच्—उन्मूलने; उत्सादयति। उप+सद्—समीपगतौ। नि+सद्—उपवेशने; "उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी" विक्रमो० २.२३.। प्र+सद्—अनुग्रहे; प्रसन्नतायाम् (खुश होना); निर्मलीभावे च (साफ होना)। वि+सद्—विषादे; विषीदति। शुः

स्खल् सञ्चलने (स्खलने, भ्रंशे)—खिसलना, फिसलना, रपटना To stumble, slip—स्खलति; स्खलिष्यति। "स्खलति चरणं भूमौ" मृच्छ० ९ १३; स्खलति पत्रं वृक्षस्य।

स्रु क्षरणे—बहना, झरना To flow, ooze—स्रवति; स्रोष्यति। "न हि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रम्" रामा०।

स्वन् शब्दे—शब्द करना To sound; to hum (as a bee)—स्वनति। "पेचरः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः" अमरकोषः।

ह्रस् अल्पीभावे—घटना To become small or diminished or lessened—ह्रसति; ह्रसिष्यति। "आयुर्ह्रसति पादशः" मनु० १. ८३.।

अनुवाद करो—राजा दशरथ कैकेयीके उस कठोर वाक्यसे मूर्च्छित हुआ। इस वर्ष दुर्भिक्षके कारण हम अतिकष्टसे जीते हैं। सर्वदा साधुके सङ्गमें वास करना चाहिये। इस स्थानमें प्रतिदिन लड़के खेलते हैं। तुम्हारे व्यवहारसे वे सर्वदा सन्तप्त होते हैं। यहाँ बहुत आमके पेड़ उगे थे। मेरी बातसे वे हसेंगे, परन्तु मेरा चित्त उससे कुछभी विचलित नहीं होगा। मैं इस गांवमें और नहीं बसूंगा।

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

लभ् (डुलभष्) प्राप्तौ—पाना To gain.

(लभते धार्मिकः सुखम् ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	लभते	लभेते	लभन्ते
मध्यमपुरुष	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उत्तमपुरुष	लभे	लभावहे	लभामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
मध्यमपुरुष	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उत्तमपुरुष	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
मध्यमपुरुष	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उत्तमपुरुष	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
मध्यमपुरुष	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उत्तमपुरुष	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उत्तमपुरुष	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

❀ आ + लभ्—प्राप्तौ ; स्पर्शे ; हिंसायाञ्च । उप + आ + लभ्—भर्त्सने । उप + लभ्—प्राप्तौ ; अनुभवे ; ज्ञाने च । वि + प्र + लभ्—प्रतारणायाम् । ❀

* * * *

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

अय् गतौ—अयते ; अयिष्यते ।

❀ प्र, परा + अय्—पलायने (भागना) ; प्लायते, पलायते । ❀

ईक्ष् दर्शने—देखना To see—ईक्षते ; ईक्षिष्यते । ईक्षते चन्द्रं लोकः ।

—(२) पर्य्यालोचने (सोचना, विचारना) To consider ; "न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते" कु० ५. ८२. ।

❀ अप + ईक्ष्—अपेक्षायाम् (दहरना) । अव + ईक्ष्—परिदर्शने ; आलोचनायाञ्च । उप + ईक्ष्—अवज्ञायाम् । निर् + ईक्ष्—निरीक्षणे (देखना) । परि + ईक्ष्—परीक्षायाम् । प्र + ईक्ष्—दर्शने । उत् + प्र + ईक्ष्—उत्प्रेक्षणे, सम्भावने (क़ियास करना To guess) । प्रति + ईक्ष्—प्रतीक्षायाम् । वि + ईक्ष्—दर्शने । सम् + ईक्ष्—परिदर्शने ।

ऊह् वितर्के (अध्याहारे ; सम्भावने)—(सन्देहाद्विचारो वितर्कः)—विचार करना, अनुमान करना To conjecture, infer—ऊहते ; ऊहिष्यते । "ऊहते धर्मं धीरः" । "अनुक्तमप्यूहति

"पण्डितो जनः" पञ्च० १. ४४—इत्यत्र परस्मैपदं दृश्यते।

❀ अप + ऊह—अपनोदने; "हुङ्कारेणैव धनुषः स हि विघ्नानपोहति" शकु० ३. १.। ("उपसर्गादात्मनेपदं वेति वक्तव्यम्"—उपसर्गके योगसे विकल्पसे आत्मनेपदी होता है)। वि + अप + ऊह्—विनाशे; "आदित्यस्तमो व्यपोहति" महाभा०। प्रति + ऊह्—विघाते। वि + ऊह्—रचनायाम्, विन्यासे। सम् + ऊह्—समाहारे, एकत्रीकरणे। ❀

कत्थ् श्लाघायाम् (आत्मगुणाविष्करणे)—प्रशंसा करना; गर्व करना (अक०) To praise; to boast—कत्थते; कत्थिष्यते। "कत्थते गुणिनं गुणी"; "यः स्वप्नेनापि नात्मीयं गुणं कुत्रापि कत्थते"। "कृत्वा कत्थिष्यते न कः?" भ० १६. ४.।

❀ वि + कत्थ्—विकत्थने, श्लाघायाम्, निजगुणख्यापने (शेखी करना To vaunt)।

कम् (कमु) वाञ्छायाम्—कामना करना To long for, wish—कामयते; कामयिष्यते। "चेतोनलङ्कामयते मदीयम्" नै० ३. ६७.।

क्षम् (क्षमूष्) सहने (क्षमायाम्; शक्तौ च)—(१) सहना, क्षमा करना; (२) सकना (अक०) To forgive; to endure; to be competent or able (to do anything)—क्षमते; क्षमिष्यते, क्षंस्यते। (१) "क्षमस्व परमेश्वर!"; "नाज्ञाभङ्गकरान् राजा क्षमेत स्वसुतानपि" हितो० २. १०७; (२) "ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः?" माघ० १. ३८.।

गर्ह् कुत्सायाम्—निन्दा करना To blame, censure—गर्हते ; गर्हिष्यते ।

⁂ वि+गर्ह्—निन्दायाम् । ⁂

गाह् (गाहृ) विलोडने (प्रवेशे ; प्राप्तौ च)—(१) आलोडन करना ; (२) घुसना ; (३) प्राप्त होना To dive or plunge into ; to enter deeply into—गाहते ; गाहिष्यते, घाक्ष्यते । (१) "गाहन्तां महिषा निपानसलिलम्" शाकु० २. ४२ ; "गाहते शास्त्रमत्यर्थम्" ; (२) "कदाचित् काननं जगाहे" काद० ; (३) "मनस्तु मे संशयमेव गाहते" कु० ५. ४६. ।

⁂ अव+गाह्—निमज्जने, स्नाने ; प्रवेशे च ; "तमोऽपहन्त्रीं तमसां वगाह्य" र० १४. ७६. । वि+गाह्—निमज्जने ; प्रवेशे ; विलोडने च । ⁂

ग्रस् (ग्रसु) भक्षणे—खाना To swallow, devour—ग्रसते ; ग्रसिष्यते । "यावतो ग्रसते ग्रासान्" मनु० ३. १३३. ।—(२) आक्रमणे To seize ; to eclipse ; "हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्" माघ० २. ४९. ।

ढौक् (ढौकृ) गतौ—जाना To go, approach ; "श्रान्तं वने रात्रिचरी डुढौके" भ० २. २३. ।

⁂ ढौक्+णिच्—प्रापणे (ले जाना) ; "तन्मांसञ्चैव गोमायोस्तैः क्षणाद्राशु ढौकितम्" महाभा० । उप+ढौक्—उपढौकने, उपहारे (वखशना, नज़र करना) ; "एकैकं पशुमुपढौकयामः" पञ्च० १. । ⁂

त्र* (त्रैङ्) पालने (रक्षणे)—त्राण करना To protect, defend from—त्रायते ; त्रास्यते । "क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः" र० २. ५३. ।

❦ परि+त्रै—परित्राणे (रक्षणे) । ❦

दय् अनुकम्पायाम्—दया करना To pity—दयते ; दयिष्यते । दयते दीनं दयालुः ; "तेषां दयसे न कस्मात्?" भ० २. ३३ (अत्र कर्मणि षष्ठी) ।

नाथ् (नाथृ) याचने—प्रार्थना करना To beg—नाथते ; नाथिष्यते । "मोक्षाय नाथते मुनिः" ; "नाथसे किमु पतिं न भूभृतः?" मा० १३. ५९. । "सन्तुष्टमिष्टानि तमिष्टदेवं नाथन्ति के नाम न लोकनाथम्?" नै० ३. २५—इत्यत्र परस्मैपदमपि ।

पण् व्यवहारे (क्रयविक्रयरूपे वाणिज्ये)—ख़रीद व फ़रोख़्त करना To buy and sell—पणते ; पणिष्यते ।—द्यूतक्रीडायां ग्लहस्थापने (बाज़ी लगाना To bet or stake at play) ; जिस वस्तुका पण रखा जाता है, उसमे षष्ठी, और कहीं द्वितीयाभी होती है ; "प्राणानामपणिष्टासौ" भ० ८. १२१ ; "पणस्व कृष्णां पाञ्चालीम्" महाभा० ।

❦ वि+पण्—विक्रये ; "आभीरदेशे किल चन्द्रकान्तं त्रिभिर्वराटैर्विपणन्ति गोपाः" सुभाषितम् । ❦

बाध् (बाधृ) पीडने ; प्रतिबन्धे च—(१) दुख देना ; (२) रोकना

---

* शिष्टप्रयोगमे अदादिगणीय 'त्रा'-धातुभी है ; यथा—"त्राहि मां मधुसूदन !" ।

To torment ; to obstruct—बाधते ; बाधिष्यते। (१) "मां बाधते न हि तथा विपिनेषु वासः" महाना० ३. ३७ ; "न तथा बाधते स्कन्धो यथा 'बाधति' बाधते" ; (२) "वीराणां समयः स्नेहकर्म बाधते" उत्तर० ६. ११.।

❀ आ+बाध्—दमने। प्र+बाध्—परिपीडने। ❀

भाष् कथने—भाषण करना To speak—भाषते ; भाषिष्यते। द्विकर्मक—"तं वाक्यमिदं बभाषे"।

❀ अप+भाष्—निन्दायाम् ; "न केवलं यो महतोऽपभाषते, शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्" कु० ५. ८३.। आ+भाष्—आलापे, कथने। प्रति+भाष्—प्रत्युक्तौ। सम्+भाष्—सम्भाषणे। ❀

भिक्ष् याचने—माङ्गना To beg—भिक्षते ; भिक्षिष्यते। द्विकर्मक—भिक्षते दातारं धनं भिक्षुः।

रभ्—आ+रभ्—आरम्भे To begin—आरभते ; आरप्स्यते। शास्त्रं पठितुम् आरभते शिष्यः।

❀ परि+रभ्—आलिङ्गने। सम्+रभ्—कोपे। ❀

लोक् (लोकृ) दर्शने—देखना To behold—लोकते ; लोकिष्यते।

❀ अव+लोक्, आ+लोक्, वि+लोक्—दर्शने। ❀

वन्द् (वदि) अभिवादने ; स्तुतौ च—नमस्कार करना ; स्तव करना To salute ; to extol—वन्दते ; वन्दिष्यते। वन्दते गुरुं लोकः।

वेष्ट् वेष्टने—वेरना ; लपेटना To surround, envelop; to wind or twist round—वेष्टते।—णिजन्तभी इसी अर्थमे प्रयुक्त

होता है ; वेष्टयति ; "ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत । कर-वेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्त्वा व्यमोचयत् ॥" महाभा० ।

❀ णिजन्त आ + वेष्ट् और परि + वेष्ट् भी एतदर्थक। सम् + वेष्ट् + णिच्—तह् करना To fold ; "संवेष्टितप्रसारितपटन्यायेनैवानन्यत् कारणात् कार्य्यम्" शारीरकभाष्यम् । ❀

शङ्क् (शकि) संशये ; त्रासे च—(१) शङ्का करना, सन्देह करना ; (२) डरना (अक०) To doubt; to fear—शङ्कते ; शङ्किष्यते । (१) शङ्कते पुरुषत्वं स्थाणौ (स्थाणुर्वा पुरुषो वा इति संशयमारोपयती-त्यर्थः) ; (२) शङ्कते व्याघ्राज्जनः ।

❀ आ + शङ्क्—सन्देह । ❀

शंस् (शसि) इच्छायाम् ; आशिषि (इष्टार्थशंसने) च—(१) चाहना; (२) आशीर्वाद करना To hope for ; to bless—नित्यम् 'आङ्'-योगः—आ + शंस्—आशंसते ; आशंसिष्यते । (१) "मनो-रथाय नाशंसे" शकु० ७. १३ ; (२) "इत्याशशंसे करणैरबाह्यैः" र० १४. ५०. ।

शिक्ष् विद्याग्रहणे (शिक्षणे)—सीखना To learn—शिक्षते ; शिक्षि-ष्यते । "अशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवित्" र० ३. ३१. ।

श्लाघ् (श्लाघृ) कत्थने (प्रशंसायाम्)—सराहना To commend—श्लाघते ; श्लाघिष्यते । "श्लाघते गुणिनं गुणी" ।

"गुण-दोषौ बुधो गृह्णन् , इन्दु-क्ष्वेडाविवेश्वरः ।
शिरसा श्लाघते पूर्वं, परं कण्ठे नियच्छति ॥"

सह् (षह्) सहने ; क्षमायाञ्च—(१) सहना ; (२) क्षमा करना

To endure; to forgive—सहते; सहिष्यते। (१) सहते दुःखं सुजनः; (२) "अपराधमिमं ततः सहिष्ये" शाकु० ३.।—(३) शक्तौ (सकना); "सहतां च शास्त्रगम्य उपायः तत् (दुःखत्रयम्) उच्छेत्तुम्" साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी १.।

✤ उत्+सह्—उत्साहे, सामर्थ्यं (सकना) Expressed by 'can'—dare, venture; "तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे" कु० ६.६९.। ✤

सेव् आराधने; उपभोगे; आश्रये च—सेवा करना To worship; to enjoy; to resort to—सेवते; सेविष्यते। विष्णुं सेवते—सुखं सेवते—तीर्थं सेवते साधुः।

✤ आ+सेव्—उपभोगे। नि+सेव्—आश्रये; उपभोगे च; निषेवते। ✤

स्वञ्ज् (ष्वञ्ज्) आलिङ्गने—गले लगाना, बग़लगीरी करना To embrace—स्वजते; स्वङ्क्ष्यते। स्वजते तनयं माता।

✤ परि+स्वञ्ज्—आलिङ्गने; परिष्वजते। ✤

स्वद् (ष्वद्) आस्वादने (अनुभवे); रुचौ च—(१) चखना; (२) रुचना (अक०) To taste, relish; to be pleasant to the taste—स्वदते; स्वदिष्यते। (१) स्वदस्व हव्यानि; "स्वदते विविधं स्वादु"; (२) "अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा" नै० ३.९३.।

अनुवाद करो—कभी सत्कार्य्यमें बाधा मत डालो। सर्वान्तःकरणसे गुरुजनोंकी (द्वितीया) सेवा करूंगा। अपव्यवहारसे उनको पीड़ा देना उचित

नहीं । जो दुःखीपर दया करता है, ईश्वर उसका सहाय । सद्विषय बालकके पासभी सीखना । शिक्षक सर्वदा हमारा मङ्गल चाहते हैं । आज तुम्हारी परीक्षा करूंगा । दीनका (द्वितीया) त्राण करो, नहीं तो ईश्वर तुम्हारा (द्वितीया) त्राण नहीं करेंगे । साधुपुरुष जब जिस कार्य्यका (द्वितीया) आरम्भ करते हैं, प्राणान्तमेभी (प्राणात्ययेऽपि) उसे नहीं छोड़ते । मैं तेरे शत अपराध क्षमा करूंगा । पिता पुत्रका (द्वितीया) आलिङ्गन करता है । राम मेरी (द्वितीया) प्रतीक्षा कर रहा है ।

भ्वादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

ईह् वाञ्छायाम् ; चेष्टने च—(१) इच्छा करना ; सक० ; (२) यत्न करना, कोशिश करना To wish ; to endeavour—ईहते ; ईहिष्यते । (१) "ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्" गीता. १६. १२ ; (२) माधुर्य्यं मधुविन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते" भर्तृ० ।

❦ सम् + ईह्—"सर्वः स्वार्थं समीहते" माघ० २. ६९. । ❦

एध् वृद्धौ—बढ़ना To increase ; to prosper—एधते ; एधिष्यते । "हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते" मनु० ४. १७० ; "अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति । ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति ।।" मनु० ४. १७४. ।

कण्ठ् (कठि) शोके (उत्कण्ठायाम्, औत्सुक्ये)—शोक इह आध्यानम् (उत्कण्ठापूर्वकस्मरणम्)—उत्कण्ठित होना, उत्सुक होना To be anxious for, yearn, long for ; be eagerly desirous of, remember with regret—'उत्' उपसर्ग-

के साथ प्रयुक्त होता है—उत्कण्ठते ; उत्कण्ठिष्यते। "स्वगांय नोत्कण्ठते" विक्रमो० ३.४ ; "उत्कण्ठते च युष्मत्सन्निकर्षस्य" उत्तर० ६ ; "रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते"।

कम्प् (कपि) चलने (कम्पते)—काँपना To shake—कम्पते ; कम्पिष्यते। कम्पते वायुना वृक्षः।

अनु+कम्प्—दयायाम्। सम्+अनु+कम्प्—सानुग्रहे। उत्, प्र, वि+कम्प्—प्रकम्पते।

काश् (काशृ) दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना To shine—काशते ; काशिष्यते। काशते चन्द्रः।

प्र+काश्—प्रकाशे। प्र+काश्+णिच्—प्रकाशने (उजाला करना) ; प्रकाशयति ; "प्रकाशयति लोकं रविः" गीता. १३. ३३.। वि+काश्—विकाशे।

कृप् (कृपू) सामर्थ्य ; योग्यभावाद—(१) समर्थ होना ; (२) योग्य होना To serve, to be able; to be fit or adequate for—कल्पते ; कल्पिष्यते, कल्प्स्यते। (१) "सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ?" र० ५. १३ ; (२) "प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते" र० ८. ४१.।

अव+कृप्—औचित्ये। उप+कृप्—विन्यासे ; सम्पादनार्थाय। वि+कृप्—संशये।

गल्भ् धाष्ट्र्य (प्रगल्भतायाम्, औद्धत्ये, साहसे) उद्धत होना, साहसी होना To be bold or confident—गल्भते। प्रायः 'प्र' उपसर्ग के साथ प्रयुक्त होता है ; "न मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाका

प्रगल्भते कर्मणि टङ्किकायाः" विक्रमाङ्कदेवचरितम् १. १६; "अति हि नाम प्रगल्भसे" उत्तर० ५. ।—सामर्थ्ये ('सकना' इस अर्थमे) 'तुमुनन्त'-पदके साथ व्यवहृत होता है ।

घट् चेष्टायाम् (यत्ने); आपतने, निष्पत्तौ; योग्यतायाञ्च—(१) व्यापृत होना ; (२) आ पड़ना, सिद्ध होना ; (३) सम्भव होना, योग्य होना To be busy with or strive after ; to happen ; to be possible—घटते ; घटिष्यते । (१) घटते पठितुं शिष्यः ; (२) "कृत्यं घटेत सुहृदो यदि" मालती० १. ९ ; (३) "तथाऽपि पुंविशेषत्वाद्घटतेऽस्य नियन्तृता" पञ्च-दशी. ६. १०६. ।

❀ घट् + णिच्—संयोजने ; सम्पादने ; करणे ; नियोगे च ; घटयति । वि + घट्—विश्लेषे, भेदे । ❀

घूर्ण् भ्रमणे (घूर्णने)—घूमना To roll about, whirl—घूर्णते ; घूर्णिष्यते । तुदादि परस्मैपदीभी होता है—वोपदेवमते उभय-पदी । "नौर्घूर्णते चपलेव स्त्री" ; घूर्णते शिरः ; "घूर्णतीव मे मनः" महाभा० ।

❀ आ + घूर्ण्—चक्रवद्भ्रमणे । ❀

चेष्ट् यत्ने ; व्यापारे च—(१) यत्न करना ; (२) काममे लगे रहना To endeavour ; to be active—चेष्टते ; चेष्टिष्यते । (१) चेष्टते पठितुं शिष्यः ; "वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत" हितो० १. १८८; (२) "सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि" गीता. ३. ३३. । "तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले" इत्यत्र तु लुठनार्थः

(लोटना)।

❀ वि + चेष्ट्—लुठने, परिस्पन्दने, अङ्गपरिवर्त्तने। ❀

च्यु (च्युङ्) पतने (च्युतौ, भ्रंशे, क्षरणे)—खिसलना, गिरना, च्युत होना To slip—च्यवते ; च्यविष्यते। धर्मान्न च्यवेत।—नाशे ; "उत्पद्यन्ते च्यवन्ते" मनु० १२. ९६.।

❀ प्र + च्यु—भ्रंशे ; स्रावे च। ❀

जृम्भ् (जृभि) जृम्भणे (मुखविकाशे, पुष्पादीनां विकाशे च)—(१) जम्हाना ; (२) खिलना To yawn ; to expand—जृम्भते ; जृम्भिष्यते। (१) "जृम्भस्व सिंह ! दन्तांस्ते गणयिष्ये" शाकु०७ ; (२) "पङ्कजं जृम्भतेऽद्य" ऋतु० ३. २२.।—(३) वृद्धौ (बढ़ना) To increase ; "जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहतप्रसरं क्रोधज्योतिः" वेणी० १.।

❀ उत् + जृम्भ्—उदये ; विकाशे ; वृद्धौ च। वि + जृम्भ्—जृम्भणे ; व्याप्तौ च। ❀

डी (डीङ्) नभोगतौ (उड्डयने)—उड़ना To fly—डयते ; डयिष्यते। डयते पक्षी।.

❀ उत् + डी—उड्डयने। ❀

त्रप् (त्रपूष्) लज्जायाम्—लज्जित होना, शर्मिन्दा होना To be ashamed—त्रपते ; त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। "त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ" गङ्गालहरी. २८.।

❀ अप + त्रप्—लज्जायाम् ; "य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत" महाभा० ; "येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन

तुष्यति" महाभा० । ✤

त्वर् (ञित्वरा) वेगे—त्वरा करना, जल्दी करना To hasten—
त्वरते ; त्वरिष्यते । "भवान् सुहृदर्थे त्वरताम्" मालविका० २. ।

✤ त्वर् + णिच्—त्वरयति ; "दूतास्त्वरयन्ति माम्" रामा० । ✤

द्युत् दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना To shine—द्योतते ; द्योतिष्यते ।
द्योतते रविः ।

✤ उत् + द्युत्—औज्ज्वल्ये । वि + द्युत्—शोभायाम् । ✤

ध्वंस् (ध्वन्सु) नाशे ; भ्रंशे (अधःपतने) च—(१) नष्ट होना;
(२) स्खलित होना To perish ; to fall down—ध्वंसते ;
ध्वंसिष्यते । (१) "तमांसि ध्वंसन्ते" महावीर० १ ; (२)
"ध्वंसेत हृदयं सद्यः" भा० ११. ९७. ।

✤ अप + ध्वंस्—निन्दायाम् , तिरस्कारे ; " न चाप्यन्यमपध्वंसेत्
कदाचित् कोपसंयुतः" महाभा० । वि + ध्वंस्—निपाते, क्षये । ✤

प्याय् (ओप्यायी)—प्यै (प्यैङ्) वृद्धौ (स्फीतौ)—बढ़ना, फूलना
To increase, swell—प्यायते ; प्यायिष्यते ।

✤ आ + प्याय्, प्यै—स्फीतौ ; प्रीतौ च । आ + प्याय्, प्यै +
णिच्—वर्द्धने ; प्रीणने च ; आप्याययति । ✤

प्रथ् विख्यातौ—प्रसिद्ध होना To become famous—प्रथते ; प्रथि-
ष्यते । प्रथते गुणी ।—(२) विस्तारे (फैलना) To spread
abroad (as fame, rumour &c) ; "तथा यशोऽस्य
प्रथते" मनु० ११. १९. ।

प्लु (प्लुङ्) गतौ (लम्फे) ; सन्तरणे ; उत्तरणे च—(१) कूदना ;

(२) बहना, तैरना ; (३) पार होना (सक०) To leap, jump; to float; to cross (in a boat)—प्लवते; प्लोष्यते । (१) "मृगः पुप्लुवे" भ० ६. ४८ ; (२) "किं नामैतत्, अम्बुनि मज्जन्त्यलाबूनि, ग्रावाणः प्लवन्त इति ?" महावीर० १ ; (३) "पुप्लुवे सागरं नौकया" महाभा० ।

❀ प्लु + णिच्—प्लावने (डुबाना); प्लावयति । आ + प्लु—अवगाहने, स्नाने ; "सवासा जलमाप्लुत्य" मनु० ५. ७७. । उत + प्लु—उल्लम्फे (फाँदना) । उप + प्लु—उत्पीडने । परि + प्लु—चलने, चाञ्चल्ये । वि + प्लु—विपत्तौ ; विनाशे च । सम् + प्लु—वृद्धौ । ❀

भास् (भासृ) दीप्तौ (स्फुरणे, स्फुटीभावे, आविर्भावे च)—(१) चमकना ; (२) प्रकट होना To shine; to become clear or evident—भासते ; भासिष्यते । (१) "तावत् कामनृपातपत्रसुषमं बिम्बं बभासे विधोः" भामिनी० २.६७ ; (२) "त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते । मालती-शशभृल्लेखा कदलीनां कठोरता ?।।" चन्द्रालोकः ५.४२. । 'अव' और 'प्रति' उपसर्गके साथभी प्रयुक्त होता है ।

भ्रंश् (भ्रन्शु) अधःपतने—भ्रष्ट होना To fall or drop down—भ्रंशते ; भ्रंशिष्यते । "भ्रंशते दुरितं राष्ट्रे प्रजाभ्यो यत्प्रभावतः" ।

❀ परि, प्र + भ्रंश्—च्युतौ । ❀

भ्राज् (भ्राजृ, टुभ्राजृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—चमकना To shine—भ्राजते ; भ्राजिष्यते ।"विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती" रत्ना० १.२१.।

मुद् हर्षे—आनन्दित होना To rojoice—मोदते ; मोदिष्यते । मोदते धनी ।

❀ अनु + मुद्—अनुमोदने (पसन्द करना) । प्र + मुद्—हर्षे । ❀

यत (यती) यत्ने—प्रयत्न करना To attempt, strive—यतते ; यतिष्यते । यतते पठितुं शिष्यः ।

❀ आ + यत—वशीभावे (आयत्त होना, अधीन होना, निर्भर करना) ; सप्तमीके साथ ; "वयं त्वय्यायतामहे" महावीर० १. ४९. । प्र + यत्—प्रयत्ने । ❀

रम् (रमु) क्रीडायाम् (रमणे, आनन्दे ; आसक्तौ)—(१) खेलना ; (२) आनन्दित होना To sport ; to take delight in, to be gratified—रमते ; रंस्यते । (१) "रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनाम्" कु० १ . २९ ; (२) "लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनै-र्वञ्चितोऽसि" मेघ० २७. ।

❀ अभि, आ + रम्—आसक्तौ ; आरमति । उप + रम्—निवृत्तौ ; मरणे च ; उपरमति, ०ते । वि + रम्—निवृत्तौ ; विरमति । ❀

रुच् प्रीतौ ; प्रकाशे च—(१) रुचना ; (२) चमकना, शोभित होना To be agreeable ; to shine, look beautiful—रोचते ; रोचिष्यते । प्रीतिरिह अनुरागविशेषः । तत्र यस्यानुरागः, तस्य सम्प्रदानत्वम् । (१) रोचतेऽन्नं बुभुक्षवे ; "यदेव रोचते यस्मै, भवेत् तत् तस्य सुन्दरम्" हितो० २. ५० ; (२) "रुरुचिरे रुचिरेक्षणविभ्रमाः" माघ० ६. ४६. ।

❀ वि + रुच्—दीप्तौ । ❀

लम्ब् (लबि) अवस्रंसने (लम्बने)—लटकना To hang down, dangle—लम्बते ; लम्बिष्यते। "ऋषयो ह्यत्र लम्बन्ते" महाभा०।
❀ अव+लम्ब्—आश्रये। आ+लम्ब्—आश्रये ; आदाने च। वि+लम्ब्—विलम्बे। ❀

वल् वलने—जाना, चलना To go, to move, to turn to—वलते ; वलिष्यते। "अलिकदम्बकं वलतेऽभिमुखं तव" माघ० ६. ११ ; "हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्" गीतगो० ७.४०.। "त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती" गीतगो० ६. ३ ; "दृष्टिरन्यतो न वलति" काद०—इत्यादौ परस्मैपदमपि।

वृत (वृतु) वर्त्तने (स्थितौ, विद्यमानतायाम्)—रहना To exist, remain, stay—वर्त्तते ; वर्त्तिष्यते, वर्त्स्यति। "अत्र विषयेऽस्माकं महत् कुतूहलं वर्त्तते" पञ्च० १.।
❀ वृत्+णिच्—आजीविकायाम्, वृत्तिकरणे, प्राणधारणे (गुज़रान करना To live on, subsist) ; वर्त्तयति। "रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्त्तयन्" र० १२. २०.। क्वचित् आत्मनेपदमपि, यथा—"मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्त्तयते स्वयं हतैः" भा० २. १८.। अति+वृत्—अतिक्रमे, उल्लङ्घने (सक०)। अनु+वृत्—अनुसरणे (सक०)। अप+वृत्—प्रतिनिवृत्तौ (लौटना)। वि+अप+वृत्—निवृत्तौ। अभि+वृत्—अभिमुखगमने, आगमने (सक०)। आ+वृत्—आगमने। आ+वृत्+णिच्—दुग्धादिपाके (औटाना) ; आवृत्तौ (फेरना To repeat) च ; आवर्त्तयति। अप+आ+वृत्, उप+आ+वृत्, परा+वृत्, वि+आ+

वृत्—निवृत्तौ (लौटना)। नि+वृत्—निवृत्तौ। निर्+वृत्—निष्पत्तौ, समाप्तौ। प्र+वृत्—प्रवृत्तौ। वि+वृत्—घूर्णने, भ्रमणे। सम्+वृत—सत्तायाम् (होना); "स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी" र० ७. २२.। ✽

वृध् (वृधु) वृद्धौ—बढ़ना To increase—वर्द्धते; वर्द्धिष्यते, वर्त्स्यति। "वर्द्धते ते तपः" भ० ६. ६८.।

✽ सम्+वृध्+णिच्—वर्द्धने, प्रतिपालने; सम्मानने च; संवर्द्धयति। ✽

वेप् (टुवेपृ) कम्पने—कांपना To shudder, tremble—वेपते; वेपिष्यते। वेपते वायुना वृक्षः।

व्यथ् भये; चलने; दुःखानुभवे च—डरना; विचलित होना; दुःख पाना—To be agitated; to be afflicted, to be sorry—व्यथते; व्यथिष्यते। व्यथते लोकः (दुःखमनुभवति, कम्पते, बिभेति वा)।

शुभ् दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना To look beautiful or handsome—शोभते; शोभिष्यते। "सुष्ठु शोभसे एतेन विनयमाहात्म्येन" उत्तर० १; "सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते" मृच्छ० १. १०. (To appear to advantage).

श्वित् (श्विता) शौक्ल्ये—सफ़ेद होना To be white—श्वेतते। श्वेतते प्रासादः। "व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः" मालती० २. ९.। नै० १२. २२.।

स्पन्द् (स्पदि) किञ्चिच्चलने (ईषत्कम्पने, स्फुरणे)—कांपना, फड़फड़ाना

To throb, palpitate—स्पन्दते ; स्पन्दिष्यते । "स्पन्दते दक्षिणो भुजः" मृच्छ० ; "परपन्दे वामनयनं जानकी-जामदग्न्ययोः" महाना० १. २८. ।

'परि' उपसर्गके साथभी प्रयुक्त होता है ।

स्पर्ध् संघर्षे (पराभिभवेच्छायाम्)—स्पर्द्धा करना, बराबरी करना, झगड़ना To contend or vie with—स्पर्द्धते ; स्पर्द्धिष्यते । स्पर्द्धते बलिना मम बली ।

स्मि (ष्मिङ्) ईषद्धसने—मुस्कराना To smile, laugh (gently)—स्मयते ; स्मेष्यते । स्मयते वधूः । "स्मयमान वदनाम्बुजं स्मरामि" भामिनी० २. २७. ।

⚜ वि+स्मि—विस्मये (ताज्जुब करना, मुताज्जिब होना) । ⚜

स्यन्द् (स्यन्दू) स्रवणे (क्षरणे)—चूना, बहना To drop, trickle, flow—स्यन्दते ; स्यन्दिष्यते । अरविन्दात् मकरन्दः स्यन्दते ।

⚜ अभि+स्यन्द्—द्रवीभावे, क्षरणे ; "अभिष्यन्देत हृदयम्" उत्तर० । ⚜

स्रंस् (स्रन्सु) भ्रंशे (अधःपतने)—च्युत होना To fall down—स्रंसते ; स्रंसिष्यते । "गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्" गीता. १. ३०. ।

ह्लाद् (ह्लादी) हर्षे—हृष्ट होना To be glad or delighted—ह्लादते ; ह्लादिष्यते । "अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः" भा० ११. ८. । "धन्यानां विरजस्तमा भगवतो चर्य्येयमाह्लादते" (उल्लयति) अनर्घ० २. २९.—इत्यत्र सकर्मकः ।

अनुवाद करो—तुम्हारी उन्नतिसे मेरा मन हृष्ट होता है । व्याघ्रका

गर्जन सुनकर (श्रुत्वा) सभीका हृदय कांप उठता है। दरिद्र शिशुओंके उपकारके लिये सर्वदा यत्न करूंगा। पूर्व दिशामे चन्द्रमा शोभा पाता है,—यह देखकर (दृष्ट्वा) कौन आनन्दित नहीं होता? रामके कुव्यवहारसे श्याम नितान्त लज्जित हुआ है। कायमनोवाक्यसे प्रयत्न करो।

भ्वादि सकर्मक उभयपदी धातु।

☞ भ्वादि उभयपदी धातु परस्मैपदमे 'पच्'-धातु, और आत्मनेपदमे 'लभ्'-धातुके तुल्य।

खन् (खनु) अवदारणे (खनने)—खोदना To dig—खनति, खनते; खनिष्यति, खनिष्यते। "तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः"।

⚜ उत्+खन्—खनने; उत्पाटने, उन्मूलने च। नि+खन्—रोपणे, स्थापने, प्रवेशने (गाड़ना); "ऊनद्विवर्षं निखनेत्" याज्ञवल्क्यः। ⚜

गुह् (गुहू) संवरणे (आच्छादने, गोपने)—ढकना, छिपाना To cover, hide—गूहति, गूहते; गूहिष्यति, गूहिष्यते, घोक्ष्यति, घोक्ष्यते। "गुह्यञ्च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति" भर्त्तृहरिः।

⚜ उप+गुह्—आलिङ्गने। नि+गुह्—गोपने। ⚜

चाय् (चायृ) दर्शने (चाक्षुषज्ञाने)—देखना To observe, discern, see—चायति, चायते; चायिष्यति, चायिष्यते। "तं पर्वतीयाः प्रमदाश्चचायिरे" माघ० १२. ६१.।

⚜ नि+चाय्—दर्शने। ⚜

धाव् (धावु) शुद्धौ (क्षालने); द्रुतगमने च—(१) धोना; (२) दौड़ना (अक०)—To wash, cleanse; to run—धावति, धावते; धाविष्यति, धाविष्यते। (१) "दधावाक्षिस्ततश्चक्षुः सुग्रीवस्य विभी-

पगः" भ० १४. ९० ; (२) "धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः" शाकु० १. ८.।

❀ अनु + धाव्—पश्चाद्धावने ; अनुसन्धाने च। अभि + धाव्—अभिमुखगतौ। निर् + धाव्—मार्जने। ❀

धृ (धृञ्) धारणे—पकड़ना To hold—धरति, धरते ; धरिष्यति, धरिष्यते।

❀ अव + धृ + णिच्, अथवा चुरादि—निश्चये, निरूपणे ; अवधारयति। उत् + धृ—उद्धारे, मोचने। ❀

नी (णीञ्) प्रापणे (नयने)—ले जाना To carry, lead, take, convey—नयति, नयते ; नेष्यति, नेष्यते। द्विकर्मक—नयति नयते गां वनं गोपः (प्रापयतीत्यर्थः)। "मामपि तत्र नय" हितो०।—(२) अतिवाहने To pass (as time) ; "संविष्टः कुशशयने निशां निनाय" र० १. ९५.।

❀ अनु + नी—प्रार्थनायाम् ; प्रसादने च। अप + नी—अपसारणे। अभि + नी—अभिनये, अनुकरणे। आ + नी—आनयने। आ + नी + णिच्—मङ्गाना ; आनाययति। प्रति + आ + नी—प्रत्यानयने। उत् + नी—उत्क्षेपणे ; अनुमाने च। उप + नी—उपनयने ; "माणवकम् उपनयते" ; (२) प्रापणे च ; "आर्य्यस्यासनमुपनय" मृच्छ०। निर् + नी—अवधारणे। परि + नी—विवाहे। प्र + नी—रचनायाम् ; प्रापणे च। वि + नी—अपनयने ; शासने, शिक्षायाञ्च। ❀

पच् (डुपचष्) पाके (रन्धने)—पकाना To cook—पचति, पचते ; पक्ष्यति, पक्ष्यते। द्विकर्मक—पचति पचते तण्डुलान् ओदनं लोकः।

—(२) जीर्णीकरणे (परिपाक करना, हज़्म करना); "पचाम्यन्नं चतुर्विधम्" गीता. १५. १४. ।

⚜ कर्मकर्त्तरि—परिणामे, परिणतावस्थायाम्—पच्यते ; "सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम्" र० ११. ५० ; (२) विनाशोन्मुखीभावे ; "नरके पच्यते घोरे" । ⚜

भज् भागे ; सेवायाम् (अनुरागे ; आश्रये, स्वीकारे ; प्राप्तौ) च—(१) बाँटना ; (२) सेवा करना, भक्ति करना ; (३) आश्रय करना ; (४) प्राप्त होना To divide ; to worship ; to resort to ; to obtain, experience—भजति, भजते ; भक्ष्यति, भक्ष्यते । (१) "भ्रातरः समं भजेरन् पैतृकं रिक्थम्" मनु० ९. १०४ ; (२) हरिं भज ; (३) "शिलातलं भेजे" काद० ; "मातर्लक्ष्मि ! भजस्व कञ्चिदपरम्" भर्तृ० ३ ; (४) "अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते, कैव कथा शरीरिषु ?" र० ८. ४३. ।

⚜ वि + भज्—विभागे (हिस्सा करना) । ⚜

भृ (भृञ्) भरणे (पूरणे ; पोषणे, प्रतिपालने)—(१) भरना ; (२) पालन करना To fill ; to support—भरति, भरते ; भरिष्यति, भरिष्यते । (१) भरति कुम्भमद्भिर्जनः ; (२) "दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" हितो० १. १४.

यज् देवपूजायाम् (यागे); दाने च—(१) पूजा वा याग करना ; (२) देवताके उद्देशसे उत्सर्ग करना To worship with sacrifices ; to make an oblation to—यजति, यजते ; यक्ष्यति, यक्ष्यते । (१) यजति यजते विष्णुं सुधीः (पूजयतीत्यर्थः) ।

यागार्थमें तृतीयान्त यज्ञ-वाचक शब्दके साथ प्रयुक्त होता है ; "यजेत राजा क्रतुभिः" मनु० ७. ७९ ; "अश्वमेधेन यजेत" । (२) दान-गार्थमें द्वितीयान्त देवता वाचक और तृतीयान्त उत्सृष्टवस्तुवाचक शब्दके साथ प्रयुक्त होता है ; "पशुना रुद्रं यजते" (पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः) ; "अस्तिर्यजते पितृन्" महाना० ।

याच् (टुयाचृ) याचने (प्रार्थनायाम्)—याचना करना, माङ्गना To ask, solicit, implore—याचति, याचते ; याचिष्यति, याचिष्यते । द्विकर्मक—बलिं याचते वसुधाम् । याचति याचते नृपं विप्रः ; "पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः" र० ८. १२.।

लष् स्पृहायाम्—इच्छा करना, अभिलाष करना To desire or wish for—लषति, लषते ; लष्यति, लष्यते ; लषिष्यति, लषिष्यते । प्रायेण अयम् 'अभि' पूर्वकः—अभिलषति, अभिलष्यति । "तेन दत्तमभिलेषुरङ्गना मुखासवम्" र० १९. १२ ; "मानुषानभिलष्यन्ती" म० ४. २२.।

वप् (डुवप्) बीजसन्ताने ; तन्तुवपने ; मुण्डने च—(१) बीज बोना ; (२) बुनना ; (३) मुण्डाना To sow ; to weave ; to shave—वपति, वपते ; वप्स्यति, वप्स्यते । (१) "यादृशं वपते बीजं तादृशं लभते फलम्" ; (२) वपति तन्तुं तन्त्रवायः ; (३) वपति मस्तकं नापित. ।

नि+वप्, निर्+वप्—उत्सर्गे, दाने । प्रति+वप्—अनुवेधे (जड़ना) ; निखनने, विन्यासे च ।

वह् प्रापणे ; धारणे च—(१) ले जाना ; (२) धारण करना To carry ; to bear, support—वहति, वहते ; वक्ष्यति वक्ष्यते । (१) द्विकर्मक—वहति वहते भारं ग्रामं जनः (प्रापयतीत्यर्थः) ; (२) "न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति" मृच्छ० ४. १७. ।—(३) वायोर्गतौ (अक०) ; "मन्दं वहति मारुतः" रामा० ।—(४) स्यन्दने, स्रवणे, क्षरणे (अक०) ; "परोपकाराय वहन्ति नद्यः" ।

❧ अति + वह् + णिच्—अतिवाहने, यापने, अतिक्रमणे ; अतिवाहयति । अप + वह्—उत्सारणे ; निरासे च ; "अपोवाह वासोऽस्या मारुतः" महाभा०। अप + वह् + णिच्—अपसारणे ; अपवाहयति । आ + वह्—उत्पादने ; धारणे च । उत् + वह्—विवाहे ; धारणे च । निर् + वह्—निष्पत्तौ ; सम्पादने ; स्थितौ च—"सर्वथा सत्यवचने देहो न निर्वहेत्" भागवत-टीका ८. १९. ४१ ; "कारणमसदिति कथयन् वन्ध्यापुत्रेण निर्वहेत् कार्य्यम्" स्वात्मनिरूपणम् ७८. । प्र + वह्—वहने, प्रवाहे । वि + वह्—विवाहे । सम् + वह् + णिच्—संवाहने, अङ्गमर्दने Shampooing ; संवाहयति । ❧

वे (वेञ्) तन्तुसन्ताने (वस्त्रनिर्माणे)—बुनना To weave—वयति, वयते ; वास्यति, वास्यते । वयति वयते तन्त्रं तन्त्रवायः । "यशः-पटं वयति स्म तद्गुणैः" नै० १. १२. ।

❧ प्र + वे—वेधने, ग्रन्थने ; "शल्यप्रोतं सुनिपुत्रम्" र० ९. ७९. । ❧

शप् आक्रोशे (विरुद्धानुध्याने, शापे, गालिदाने, भर्त्सनायाम्) ; शपथकरणे च—(१) कोसना ; (२) सौगन्द खाना To curse,

scold, abuse; to swear—शपति, शपते; शप्स्यति, शप्स्यते। (१) "अशपद्भव मानुषीति ताम्" र० ८. ८० ; (२) "कृष्णाय शपते गोपी"। जिस आदमीके पास शपथ किया जाता है, उसमे चतुर्थी, और जिस पदार्थके नामसे शपथ किया जाता है, उसमे तृतीया होती है; "भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप! । यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्" रामा०।

❀ अभि+शप्—अभिशापे। ❀

श्रि (श्रिञ्) आश्रये; प्राप्तौ च—(१) आश्रय करना; (२) प्राप्त होना To resort to, have recourse to; to attain to—श्रयति, श्रयते; श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। (१) "यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्" हितो० १. १०९; (२) "परीता रक्षोभिः श्रयति विवशा कामपि दशाम्" भामिनी० १. ८३.।

❀ आ+श्रि-अवलम्बने (सहारा लेना)। सम्+श्रि-आश्रये।❀

हृ (हृञ्) हरणे (प्रापणे; स्तेये; नाशने च)—(१) ले जाना; (२) चोरी करना; (३) नष्ट करना To convey; to steal; to destroy—हरति, हरते; हरिष्यति, हरिष्यते। (१) द्विकर्मक—हरति हरते गां वनं गोपः; "सन्देशं मे हर" मेघ० ७; (२) "दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शङ्कया। मदीयपद्यरत्नानां मञ्जूषैषा मया कृता" भामिनी० ४. ४६; (३) "नापेक्षा न च दाक्षिण्यं न प्रीतिर्न च सङ्गतिः। तथाऽपि हरते तापं लोकानामुन्नतो घनः॥" भामिनी० १. ३८.।

⚜ हृ + णिच्—प्रापणे (किसीके द्वारा कुछ भेजना) ; नाशे, भ्रंशे, वियोगे (खोना To lose) ; पराजये (हराना) च ; हारयति । अनु + हृ—अनुकरणे । अप + हृ—अपहरणे (छीन लेना ; चुराना) । अभि + अव + हृ—अभ्यवहारे, भोजने । वि + अव + हृ—व्यवहारे । आ + हृ—आहरणे, आनयने । उत् + आ + हृ—दृष्टान्तोपन्यासे (नज़ीर देना) ; कथने च । वि + आ + हृ—व्याहारे, उक्तौ । सम् + आ + हृ—सङ्ग्रहे । उत् + हृ—उद्धारे (मोचने ; उन्मूलने च) । उप + हृ—अन्तिकप्रापणे (पास ले जाना) ; उपढौकने च (भेंट करना) । निर् + हृ—अपनयने ; प्रेतवहने च । परि + हृ—परित्यागे । प्र + हृ—प्रहारे, ताडने । वि + हृ—क्रीडायाम् । सम् + हृ—नाशने ; प्रत्याकर्षणे (समेटना) ; सङ्क्षेपे च । उप + सम् + हृ—उपसंहारे, समापने । ⚜

ह्वे (ह्वेञ्) स्पर्द्धायाम् (पराभिभवेच्छायाम्) ; आह्वाने च—(१) लड़ाई माङ्गना ; (२) पुकारना To challenge ; To call by name—ह्वयति ह्वयते मल्लो मल्लम् (अभिभवितुमिच्छति); (२) ह्वयति जनं लोकः (आह्वयतीत्यर्थः) ; "तां पार्वतीति नाम्ना जुहाव" कु० १. २६. ।

⚜ आ + ह्वे—आह्वाने To call, summon, invite—परस्मैपदी—पुत्रमाह्वयति ;—(२) स्पर्द्धायाम्—आत्मनेपदी—कृष्णश्चाणूरमाह्वयते । ⚜

भ्वादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

राज् (राजृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना To glitter,

appear splendid or beautiful—राजति, राजते ; राजिष्यति, राजिष्यते । "राजन् ! राजति वीरवैरिवनितावैधव्यदस्ते भुज" काव्यप्रकाशः १०. ।

॥ वि+राज्—शोभायाम् । निर्+राज्+णिच्—प्रकाशने, विभूषणे ; नीराजने, निर्मञ्छने च (आरती करना) ; नीराजयति ; "नीराजयन्ति भूपालाः पादपीठान्तभूतलम्" प्रबोध० २. ८. । *॥* अनुवाद करो—दिनमे दोपहरके समय धूपमे मत दौड़ो । साधुपुरुषके पास प्रार्थना निष्फल होनेभी अच्छी, तोभी कृपणके पास कुछभी नहीं माङ्गना । अपने गुणोंको छिपा रखो । सर्वान्तःकरणसे ईश्वरका (द्वितीया) -भजन करो । महातपा दुर्वासाने शकुन्तलाको अभिशाप दिया था । वर्षामे किसानलोग खेतमे बीज बोते हैं । इस पुस्तकको घरमे ले जाऊंगा । विपद्मे जिसका (द्वितीया) आश्रय करोगे, प्राणान्तमेभी उसके ऊपर कुभाव नहीं लाना ।

दिवादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमे यथासम्भव तुदादिके तार(*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२७१ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमे दिवादिगणीय धातुके उत्तर 'य' होता है ; यथा—दिव्+ति=दिव्+य+ति—

२७२ । * 'य' परे रहनेसे, दिव्—दीव्, सिव्—सीव्, दॄ—दीर्, जॄ—जीर्, व्यध्—विध्, और जन्—जा होता है । दीव्+य+ति=

दीव्यति ।

२७३ । 'य' परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमे शम्—शाम्, श्रम—श्राम्, भ्रम्—भ्राम्, क्षम्—क्षाम्, तम्—ताम्, दम्—दाम्, क्लम्—क्लाम्, मद्—माद्, भ्रन्श्—भ्रश्, और रन्ज्—रज् होता है ।

२७४ । चतुर्लकार परे रहनेसे, अन्त्य ओकारका लोप होता है ;—यथा—शो + य + ति = श्यति ।

दिवादि परस्मैपदी धातु ।

दिव् (दिवु) क्रीडायाम्—खेलना To play.

(अकर्मक—द्वितीयान्त अथवा तृतीयान्त 'अक्ष'-वाचक शब्दके साथ—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमपुरुष	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
मध्यमपुरुष	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उत्तमपुरुष	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
मध्यमपुरुष	दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत
उत्तमपुरुष	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
मध्यमपुरुष	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
मध्यमपुरुष	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उत्तमपुरुष	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ
उत्तमपुरुष	देविष्यामि	देविष्यावः	देविष्यामः

दिवादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

अस् (असु) क्षेपणे—फेंकना To cast—अस्यति ; असिष्यति । "तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रम्" र० १२. २३. ।—(२) अपनोदने ; "स्त्रीणामास श्रमम्" नलोदयः ४. ३६. ।

☞ अधि + अस्—आरोपे । अप + अस्—अपसारणे ; त्यागे च । अभि + अस्—अभ्यासे, आवृत्तौ, पुनरनुष्ठाने, मुहुः करणे । उत् + अस्, वि + उत् + अस्—निरासे, अपनयने । नि + अस्—निक्षेपे, स्थापने ; त्यागे च । वि + नि + अस्—स्थापने । उप + नि + अस्—प्रस्तावे । सम् + नि + अस्—सन्न्यासे ; "सन्दृश्य क्षणभङ्गुरं तदखिलं धन्यस्तु सन्न्यस्यति" भर्तृ० । निर् + अस्—दूरीकरणे । परि + अस्—विस्तृतौ ; क्षेपणे ; पातने च । वि + परि + अस्—विपर्य्यये । प्र + अस्—प्रक्षेपे । वि + अस्—अपनयने ; विभागे च ।

सम् + अस्—सङ्क्षेपे, समासे, संयोगे। ❀

इष् गतौ—इष्यति ; एषिष्यति।

❀ अनु + इष्—अन्वेषणे (ढूँढ़ना)। प्र + इष् + णिच्—प्रेषणे (भेजना) ; क्षेपणे च ; प्रेषयति। ❀

क्षम् (क्षमू) सहने (मर्षणे, क्षमायाम्)—क्षमा करना To forgive—क्षाम्यति ; क्षमिष्यति। क्षाम्यति दोषं साधुः।

गृध् (गृधु) लिप्सायाम् (आकाङ्क्षायाम्)—लालच करना To covet—गृध्यति ; गर्धिष्यति। गृध्यति धनं लुब्धः।

पुष् पोषणे (उपचये) ; पुष्टौ च—(१) पुष्ट करना, बढ़ाना ; (२) पुष्ट होना (अक०) To nourish, to enhance, to display ; to grow strong or fat—पुष्यति ; पोक्ष्यति। (१) "कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः" कु० ७. १८ ; "वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः" र० १६. ५८ ; "देहमपुष्यः सुरामिषैः" भ० १७. ७२.।

लुभ् आकाङ्क्षायाम् (लोभे)—लालच करना To covet—लुभ्यति ; लोभिष्यति। लुभ्यति धनं लुब्धः। परन्तु चतुर्थी और सप्तमीके साथ प्रयुक्त होता है ; "तथाऽपि रामो लुलुभे मृगाय" ; "धर्मे लुभ्यति यः सदा"।

व्यध् ताडने (पीडने, वेधने)—बींधना, चुभाना, छेदना To hurt, pierce—विध्यति ; व्यत्स्यति। विध्यति शत्रुं शूरः ; "विविधुस्तोमरैः" भ० १४. २४.।

❀ अनु + व्यध्—सम्पर्के ; व्यापने ; मन्थने च। अप + व्यध्—

निक्षेपे ; निरासे ; त्यागे ; प्रेरणे च । आ + व्यध्—क्षेपे, निःसारणे ; धारणे, परिधाने च । ❧

शा तीक्ष्णीकरणे—पैनाना To sharpen, whet—श्यति ; शाययति ।

❧ नि + शो—निशाने, तेजने, तीक्ष्णीकरणे । ❧

श्लिष् (श्लिषु) आलिङ्गने ; योगे च—(१) गले लगाना ; (२) संयुक्त होना (अक०) To embrace ; to adhere to—श्लिष्यति ; श्लेक्ष्यति । (१) श्लिष्यति वृक्षं लता ।

❧ आ + श्लिष्—आलिङ्गने ; योगे च । वि + श्लिष्—वियोगे । प्र + श्लिष्—वियोगे । सम् + श्लिष्—संयोगे । ❧

सिव् (षिवु) तन्तुविस्तारे (सीवने, तन्तुभिर्ग्रन्थने)—सीना To sew—सीव्यति ; सेविष्यति । सीव्यति वस्त्रं सौचिकः ।

सो (षो) नाशने—नष्ट करना To kill, destroy—स्यति ; मारयति । स्यति यमो जन्तून् ।

❧ अव + सो—अवसाने, समाप्तौ । अधि + अव + सो—अध्यवसाये (उत्साहे ; निश्चये च) । परि + अव + सो—पर्य्यवसाने; समाप्तौ, परिणामे । प्रति + अव + सो—प्रत्यवसाने, भोजने । वि + अव + सो—व्यवसाये, उद्यमे, चेष्टायाम् । अनु + वि + अव + सो—अनुव्यवसाये (बुद्धार्थस्य पुनर्बोधे) । ❧

दिवादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

कुप् कोपे—क्रुद्ध होना To be angry—कुप्यति ; कोपिष्यति । जिसपर क्रोध किया जाता है, उसमें प्रायशः चतुर्थी होती है ; कुप्यति माता शिशवे ; "कुप्यन्ति हितवादिने" काद० । किन्तु 'प्रति'-शब्द-

के योगसे द्वितीया, और 'उपरि'-शब्दके साथ षष्ठीभी होती है; "मां प्रति स कुपितः"; "कुपितश्चन्द्रगुप्तश्चाणक्यस्योपरि" मुद्रा० २.।

❦ प्र+कुप्—अतिकोपे; प्राबल्ये च—"दोषाः प्रकुप्यन्ति" सुश्रुत०। ❦

क्रुध् कोपे—रोष करना—क्रुध्यति; क्रोत्स्यति।

क्लम् (क्लमु) ग्लानौ (श्रमे)—क्लान्त होना, थकना To be fatigued or tired—क्लाम्यति; क्लमिष्यति। "कायः क्लाम्यति यस्य प्रहरतो रिपून्"।

क्लिद् (क्लिदू) आर्द्रीभावे—भीगना To become wet—क्लिद्यति; क्लेदिष्यति, क्लेत्स्यति। क्लिद्यति वस्त्रं पयसा।

क्षुभ् सञ्चलने* (क्षोभे, विकारे, उद्वेगे)—क्षुब्ध होना, विचलित होना, घबराना To shake, to be agitated or disturbed—क्षुभ्यति; क्षोभिष्यति। "महाह्रद इव क्षुभ्यन्" भ० ९. ११८.।

❦ प्र+क्षुभ्, सम्+क्षुभ्—सञ्चलने। वि+क्षुभ्+णिच्—विलोडने; विक्षोभयति। ❦

जॄ (जॄष्) वयोहानौ (जरायाम्, जीर्णीभावे, क्षये; विलये; परिपाके)—(१) जीर्ण होना, क्षीण होना; (२) नष्ट होना; (३) पचना To grow old, wear out, decay; to perish; to be dijested—जीर्य्यति; जरिष्यति, जरीष्यति; (१) "जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः। जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे,

---

* इसी अर्थमे 'क्षुभ्'-धातु भ्वादिगणीय आत्मनेपदीभी होता है; लट्—क्षोभते।

तृष्णैका तरुणायते ॥" पञ्च० ५. १६ ; (२) "सौहृदानि जीर्य्यन्ति कालेन" महाभा० ; (३) "उदरे चाजरद्रन्ये" भ० ११. १६०.।

तम् (तमु) ग्लानौ (खेदे, श्रान्तौ ; व्यथायाम् ; कृशीभावे)—(१) श्रान्त होना ; (२) परेशान होना, (३) मुरझाना To be exhausted or fatigued, to be distressed (in body or mind); to pine or waste away—ताम्यति ; तमिष्यति। (१) "ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत्" मालती० ९. ३१ ; (२) "प्रविशति मुहुः कुञ्जं, गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति" गीतगो० ५. १६ ; (३) "गाढोत्कण्ठा लुलितलुलितैरङ्गकैस्ताम्यतीति" मालती० १. १८.।

उत्+तम्—उत्कण्ठायाम्। सम्+तम्—ग्लानौ।

तुष् प्रीतौ—तुष्ट होना To be contented or satisfied with anything—तुष्यति ; तोक्ष्यति। "तुष्यन्ति ब्राह्मणा नित्यम्" ; तृतीयान्त पदके साथ—"रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा." भर्तृ०।

परि+तुष्, प्र+तुष्—परितोषे। सम्+तुष्—सन्तोषे।

तृप् तृप्तौ—तृप्त होना, राजी होना, To become satisfied—तृप्यति ; तर्पिष्यति, तर्प्स्यति, त्रप्स्यति। प्रायशः तृतीयाके साथ, परन्तु कहीं षष्ठी और सप्तमीके साथभी प्रयुक्त होता है ; "को न तृप्यति वित्तेन ?" हितो० २. १७३ ; "नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्" पञ्च० १. १४८ ; "तस्मिन् हि ततृपुर्देवास्तते यज्ञे" महाभा०।

परि+तृप्—सम्यक्तृप्तौ।

तृष् (ञितृष्) पिपासायाम् (तृष्णायाम्; आकाङ्क्षायाम्)—प्यासा होना

To be thirsty—तृप्यति; तर्पिष्यति। "क्षताश्च कपयोऽतृपन्" भ० १६. ९१.।

त्रस् (त्रसी) उद्वेगे (त्रासे)—डरना To fear, dread—त्रस्यति, त्रसति; त्रसिष्यति। "प्रमदवनात् त्रस्यति" काद०; "त्रसति कः सति नाश्रयबाधने?" नै० ४. १६.।

दम् (दमु) उपशमे (शान्तीभावे); शान्तीकरणे (शासने, दमने) च—(१) शान्त होना; (२) दबाना (सक०) To be calm or tranquil, to subdue—दाम्यति; दमिष्यति। (१) दाम्यति मुनिः; (२) "यमो दाम्यति राक्षसान्" भ० १८. २०.।

दुष् वैकृत्ये (अशुद्धीभावे, दोषे)—दोषयुक्त वा अशुद्ध होना To be bad or corrupted, to become impure or contaminated—दुष्यति; दोक्ष्यति। दुष्यति लोकः पापात्; "देवान् पितृंश्चार्चयित्वा खादन् मांसं न दुष्यति" मनु० ५. ३२.।

प्र+दुष्—व्यभिचारे।

दृप् गर्वे (दर्पे)—घमण्ड करना To be proud—दृप्यति; दर्पिष्यति, द्रप्स्यति, दर्प्स्यति। "स किल नात्मना दृप्यति" उत्तर० ९; "को न दृप्यति वित्तेन?" हितो० ३. १७३.।

दॄ विदारे—फटना To burst or break asunder, split open—दीर्यति; दरिष्यति, दरीष्यति। "हृदयं दीर्यतीव मे" महाभा०।

अव+दॄ+णिच्—अवदारणे, खनने; अवदारयति। वि+दॄ—विदारे; "वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे" र० १४. ३३.। वि+दॄ+

णिच्—विदारणे (फाड़ना) ; विदारयति । ※

द्रुह् जिघांसायाम् (अनिष्टचिन्तने, अपकारे)—बुराई चाहना, वैर करना To seek to hurt or injure, meditate mischief—द्रुह्यति ; द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति । जिसपर द्रोह किया जाता है, उसमें चतुर्थी होती है ; द्रुह्यति खलः साधवे ; "योऽन्वेति मां द्रुह्यति मह्यमेव साऽग्रेत्युपालम्भि तथाऽऽलिवर्गः" नै० ३. ७. ।

※ अभि + द्रुह्—अपकारे । ※

नश् (णश्) नाशे (क्षये, मरणे) ; अदर्शने (लुकायने ; पलायने) च— (१) नष्ट होना ; (२) अदृश्य होना, छिप जाना ; (३) भागना To be destroyed, perish ; to disappear ; to escape—नश्यति ; नशिष्यति, नङ्क्ष्यति । (१) "जीवनाशं ननाश च" भ० १४. ३१; (२) "भूतानि तस्य नश्यन्ति" हितो० १. २२६; (३) "नेशुर्भिया निशाचराः" भ० १४. ११२. ।

※ प्र + नश्—'नश्'-वत्; प्रणाशः ; प्रनष्टः । वि + नश्— विनाशे । ※

नृत् (नृती) नर्त्तने—नाचना To dance—नृत्यति ; नर्त्तिष्यति, नर्त्स्यति । "नृत्यति युवतिजनेन समं सखि !" गीतगो० १. ।

पुष्प् विकाशे—खिलना To open, bloom—पुष्प्यति ; पुष्पिष्यति । पुष्प्यति कुन्दकोरकम् ; शरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः ।

भ्रंश् (भ्रन्शु) अधःपतने—भ्रष्ट होना, च्युत होना To tumble ; to stray from—भ्रश्यति ; भ्रंशिष्यति । "भ्रश्यन्ति कर्णोत्पलग्रन्थयः" महाना० १. ३१ ; "संस्थानाभ्रश्यत स्वर्गफलाद्गुरुर्नः"

र० १४. १६. । प्रायशः पञ्चमीके साथ ।

❀ परि+भ्रंश्, प्र+भ्रंश्—च्युतौ, हानौ । ❀

भ्रम् (भ्रमु) चलने (भ्रमणे); भ्रान्तौ (अयथार्थज्ञाने) च—(१) घूमना; (२) चूकना To rove, move; to err—भ्राम्यति ; भ्रमिष्यति । (१) "सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने" भर्तृ० ; (२) "आभरणकारस्तु तालव्य इति बभ्राम" ।

मद् (मदी) हर्षे ; मत्ततायाञ्च—(१) आनन्दित होना ; (२) मतवाला होना To be glad or rejoiced; to be drunk or intoxicated—माद्यति ; मदिष्यति । (१) "सर्वलोकातिशायिन्या विभूत्या न च माद्यति" ; (२) "वीक्ष्य मद्यमितरा तु ममाद" माघ० १०. २७. ।

❀ उत्+मद्—उन्मादे, चित्तविकारे । प्र+मद्—प्रमादे, अनवधानतायाम् (ग़ाफ़िल होना) ; "न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः" मनु० २. २१७. । ❀

मुह् अविवेके (मोहे, ज्ञानरहितीभावे)—मुग्ध होना, विवेकरहित होना, संज्ञाहीन होना To be infatuated, to be perplexed or bewildered ; to faint, swoon—मुह्यति; मोहिष्यति, मोक्ष्यति । "आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः" हितो० १. १७१ ; "स शुश्रुवांस्तद्वचनं मुमोह" र० १. २०. ।

यस् (यसु) प्रयत्ने ; यस्यति ।

❀ आ+यस्—प्रयत्ने ; "दैन्यात्कुन्मुखदर्शनापलपनैः पिण्डार्थ-

मायम्यत सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः" मुद्रा० ३ १४ ; खेदे च—"आयस्यसि तपस्यन्ती" म० ६. ६९. । आ + यस् + णिच्—पीडने ; " आयासयति मां जलाभिलाषः " काद० । प्र + यस्—प्रयत्ने ; "पुनः पुन· प्रायसदुत्त्प्लवाय सः" नै० १. १२५. ।

राध् सिद्धौ (निष्पत्तौ)—निष्पन्न होना To be accomplished or finished—राध्यति ; रात्स्यति । राध्यत्योदन. ।

अप + राध्—अपराधे, अनिष्टाचरणे (कुसूर करना) ; व्यक्ति और वस्तु-वाचक शब्दकी षष्ठी तथा सप्तमीके साथ—"अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत. कण्वस्य" शाकु० ७, "यस्मिन् कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला" शाकु० ४ ; कहीं चतुर्थीके सायमी प्रयुक्त होता है—"न दूये, सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति" माघ० २. ११. । वि + राध्—अपकारे, द्रोहे । "क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत क· ?" माघ० २. ४३ ; "विराद्ध एवं भवता विराद्धा बहुधा च न" माघ० २. ४१. ।

शम् (शमु) उपशमे (शान्तभावे ; निवृत्तौ)—शान्त होना To be calm, quiet or tranquil, be appeased or pacified ; to cease—शाम्यति ; शमिष्यति। "शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जन " कु० २. ४० ; "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" मनु० २. ९४. ।

उप + शम्—'शम्'-वत् । नि + शम्—श्रवणे* । नि +

* "निशम्य शब्दान्" शकु० ५ २ ।

शम्+णिच्—श्रवणे* ; दर्शने च ; "निशमयति वचः" (शृणोतीत्यर्थः); दर्शने तु—"रूपं निशामयति"। "निशामय प्रियसखि!" मालती० ७.—इत्यत्र तु श्रवणार्थः। ✿

शुध् शौचे(शुद्धौ)—शुद्ध होना To become pure or purified—शुध्यति ; शोत्स्यति। "अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति" मनु० ५. १०९.।

✿ शुध्+णिच्—उन्मूलने ; ऋणोद्धारे ; अशुद्धिसंशोधने च ; शोधयति। परि+शुध्+णिच्—ऋणोद्धारे ; कण्टकाद्यपसारणे ; भ्रमादिसंशोधने च। वि+शुध्—शुद्धौ। ✿

शुष् शोषे (स्नेहरहितीभावे)—सूखना To be dried—शुष्यति ; शोक्ष्यति। शुष्यति धान्यमातपेन।

✿ परि, वि, सम्+शुष्—अतिशोषे। ✿

श्रम् (श्रमु) तपसि ; खेदे (श्रमे, क्लान्तौ ; दुःखे) च—(१) तपस्या करना ; (२) थकना ; दुखी होना To perform austerities ; to be wearied ; to be afflicted—श्राम्यति ; श्रमिष्यति। (१) "कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि?" कु० ५. ५० ; (२) "आतिथेयमनिवारितातिथिः कर्त्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्" माघ० १४. ३८ ; "यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्" मेघ० ९९.।

✿ परि+श्रम्—परिश्रमे। वि+श्रम्—विश्रामे। ✿

साध् निष्पत्तौ—निष्पन्न होना To be completed or accom-

---

* "प्रणयिनो निशमय्य स्वरम्" माघ० ६. १९.।

plished—साध्यति ; सात्स्यति । साध्यति घटः (निष्पन्नः स्यात् इत्यर्थः)।

❋ साध्+णिच्—सम्पादने ; प्राप्तौ ; पराजये ; वधे ; गमने च—"साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते" र० ११. ९१ ; साधयति । प्र+साध्+णिच्—अलङ्करणे ; कण्टकशोधने, वैरनिर्यातने च । ❋

सिध् (षिध्) संराद्धौ (निष्पत्तौ)—सिद्ध होना To be accomplished or fulfilled—सिध्यति ; सेत्स्यति । "उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः" हितो० ३६. ।

स्निह् (ष्णिह्) प्रीतौ (स्नेहे)—प्यार करना To feel or have affection for, love, be fond of—स्निह्यति ; स्नेहिष्यति, स्नेक्ष्यति । स्निह्यति बन्धुः । जिसपर स्नेह किया जाता है, उसमें सप्तमी होती है ; "किं नु खलु बालेऽस्मिन् औरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः ?" शकु० ७. ।

स्विद् (ञिष्विदा) गात्रप्रक्षरणे (घर्मच्युतौ)—पसीजना To sweat, perspire—स्विद्यति; स्वेत्स्यति । "न च स्विद्यति तस्याङ्गम्"।

हृष् हृष्टौ (आह्लादे)—खुश होना To rejoice, be delighted—हृष्यति ; हर्षिष्यति । हृष्यति लोकः सखाव् ।—(२) लोमहर्षे (बाल खड़ा होना) ; "हृष्यन्ति रोमकूपानि" महाभा० ।

दिवादि आत्मनेपदी धातु ।

मन् ज्ञाने (सम्भावने)—सोचना To think, believe, imagine.

(सकर्मक—"आत्मानं मन्यते बलिनं बली" भ० ६. २६ ; "त्वत्सम्भा-

वितमात्मानं बहु मन्यामहे वयम्" कु० ६. २०.—बहु मन्—श्लाघायाम्
To esteem highly. कथं भवान् मन्यते ?—आपका
मत क्या ? What is your opinion ?)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
मध्यमपुरुष	मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
उत्तमपुरुष	मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	मन्यताम्	मन्येताम्	मन्यन्ताम्
मध्यमपुरुष	मन्यस्व	मन्येथाम्	मन्यध्वम्
उत्तमपुरुष	मन्यै	मन्यावहै	मन्यामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अमन्यत	अमन्येताम्	अमन्यन्त
मध्यमपुरुष	अमन्यथाः	अमन्येथाम्	अमन्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अमन्ये	अमन्यावहि	अमन्यामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	मन्येत	मन्येयाताम्	मन्येरन्
मध्यमपुरुष	मन्येथाः	मन्येयाथाम्	मन्येध्वम्
उत्तमपुरुष	मन्येय	मन्येवहि	मन्येमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	मंस्यते	मंस्येते	मंस्यन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	मंस्यसे	मंस्येथे	मंस्यध्वे
उत्तमपुरुष	मंस्ये	मंस्यावहे	मंस्यामहे

अनु + मन्—अनुमतौ, आदेशे ; स्वीकारे—"देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते" मनु० ९. ९७.। अभि + मन्—चिन्तने, विचारणे, विवेचने ; इच्छायाञ्च । अव + मन्—अवज्ञायाम् । सम् + मन्—सम्मानने, पूजायाम् ।

जन् (जनी) प्रादुर्भावे (उत्पत्तौ)—उत्पन्न होना ; होना To be born or produced ; to become.

(अकर्मक—घटो जायते ; गोमयाद्वृश्चिको जायते । "अनिष्टादिष्ट-लाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा" हितो० १. ९. ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जायते	जायेते	जायन्ते
मध्यमपुरुष	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उत्तमपुरुष	जाये	जायावहे	जायामहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
मध्यमपुरुष	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उत्तमपुरुष	जायै	जायावहै	जायामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अजायेथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उत्तमपुरुष	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
मध्यमपुरुष	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उत्तमपुरुष	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे

❀ उत्पत्ति अर्थमे—अभि, उप, प्र, वि और सम् उपसर्गके साथ 'जन्'-धातु प्रयुक्त होता है । किन्तु 'प्र' और 'वि' उपसर्गके साथ सकर्मकभी कहीं होता है—'प्रसव करना' अर्थमे ; "प्रजायन्ते सुतान् नार्य्यः" । ❀

सू (षूङ्) प्रसवे (जनने, उत्पादने)—पैदा करना, जनना

To bring forth ; to produce.

(सकर्मक—सूयते पुत्रं नारी ; धर्मोऽर्थं सूयते ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सूयते	सूयेते	सूयन्ते
मध्यमपुरुष	सूयसे	सूयेथे	सूयध्वे

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	सूये	सूयावहे	सूयामहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	सूयताम्	सूयेताम्	सूयन्ताम्
मध्यमपुरुष	सूयस्व	सूयेथाम्	सूयध्वम्
उत्तमपुरुष	सूयै	सूयावहै	सूयामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	असूयत	असूयेताम्	असूयन्त
मध्यमपुरुष	असूयथाः	असूयेथाम्	असूयध्वम्
उत्तमपुरुष	असूये	असूयावहि	असूयामहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	सूयेत	सूयेयाताम्	सूयेरन्
मध्यमपुरुष	सूयेथाः	सूयेयाथाम्	सूयेध्वम्
उत्तमपुरुष	सूयेय	सूयेवहि	सूयेमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	सविष्यते	सविष्येते	सविष्यन्ते
	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
मध्यमपुरुष	सविष्यसे	सविष्येथे	सविष्यध्वे
	सोष्यसे	सोष्येथे	सोष्यध्वे
उत्तमपुरुष	सविष्ये	सविष्यावहे	सविष्यामहे
	सोष्ये	सोष्यावहे	सोष्यामहे

अनुवाद करो—तुमलोगोंने मेरे इन वस्त्रोंको सीया था क्या ? उन्होंने

यहाँ नृत्य किया था। ज्वरसे उसका शरीर जीर्ण हो गया। ध्रुवने विजन वनमे कृष्णकी (द्वितीया) आराधना की थी, इसलिये उसका मनोरथ सिद्ध हुआ। उस हरिणको वाणसे विद्ध मत करो। कुटिल मनुष्य अपना भाव हृदयमे पोषण करते हैं। प्रचण्ड आतपतापसे देहका रक्त शुष्क होता है। माता पुत्रको आलिङ्गन करती है।

* * * *

दिवादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु।

पद् गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना ; (२) पाना To go ; to attain—पद्यते ; पत्स्यते। (२) "ज्योतिषामाधिपत्यञ्च प्रभावञ्चाप्यपद्यत" महाभा०।

☙ अनु, अभि + पद्—प्राप्तौ। आ + पद्—प्राप्तौ ; विपत्प्राप्तौ च—"अर्थधर्मौ परित्यज्य यः काममनुवर्त्तते। एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा॥" रामा०। वि + आ + पद्—मरणे। वि + आ + पद् + णिच्—व्यापादने, हनने ; व्यापादयति। उत् + पद्—उत्पत्तौ। वि + उत् + पद्—व्युत्पत्तौ। उप + पद्—(१) योग्यतायाम् ; "मद्भावायोपपद्यते" (उपयुक्तो भवति) गीता. १३. १८ ; "नैतत् त्वय्युपपद्यते" (योग्यं न भवति) गीता. २. ३ ; (२) सम्भावने ; "पुत्रदौहित्रयोर्विशेषो नोपपद्यते" (न सम्भाव्यते) मनु० ९. १३९ ; (३) प्राप्तौ ; "उपपद्यस्व स्वकर्मोचितां गतिम्" दशकु० ; (४) सिद्धौ, सम्पन्नतायाम् ; "सर्वं सखे त्वय्युपपन्नमेतत्" (सिद्धम्) कु० ३. १२.। अभि + उप + पद्—अनुग्रहे। निर् + पद्—निष्पत्तौ, सिद्धौ। प्र + पद्—गतौ ; प्राप्तौ च ; "ये

यथा मां प्रपद्यन्ते" (समाश्रयन्ते) गीता. ४. ११. । प्रति+पद्—प्राप्तौ ; ज्ञाने ; अङ्गीकारे ; उत्पादाने च—"कथं प्रतिवचनमपि न प्रतिपद्यसे ?" मुद्रा० ६. । प्रति+पद्+णिच्—बोधने । वि+प्रति+पद्—विरोधे, विरुद्धज्ञाने ; संशये । वि+पद्—विपत्तौ ; मरणे च । सम्+पद्—सम्पन्नतायाम् (होना); "सम्पत्स्यते वः कामोऽयम्" कु० २. ५४ ; "सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः." (भविष्यन्ति) मेघ० ११ ; "साधोः शिक्षा गुणाय सम्पद्यते, नासाधोः (गुणम् उत्पादयति इत्यर्थः) पञ्च० १.—सदा चतुर्थी के साथ । सम्+पद्+णिच्—सम्पादने ; सम्पादयति । ✤

बुध् ज्ञाने ; जागरणे च—(१) समझना ; (२) जागना (अक०) To understand ; to wake up—बुध्यते ; भोत्स्यते । (१) बुध्यन्ते शास्त्रं सुधीः ; (२) "ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः" र० १०. ६. ।

✤ अनु+बुध्—स्मरणे ; ज्ञाने । अव+बुध्—ज्ञाने । उत्+बुध्—विकासे ; जागरणे च । नि+बुध्—ज्ञाने ; श्रवणे च ; भ्वादि परस्मैपदी—निबोधति । प्र+बुध्—जागरणे ; विकासे ; ज्ञाने च । प्रति, वि+बुध्—जागरणे । सम्+बुध्—ज्ञाने । ✤

दिवादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

खिद् दैन्ये (दीनभावे, उपतप्तभावे, दुःखानुभवे)—दुःख पाना, खिन्न होना To suffer pain or misery, to be depressed or exhausted—खिद्यते ; खेत्स्यते । "स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः" शकु० ५. ७ ; "स पुरुषो यः खिद्यते नेन्द्रियैः"

हितो० २. १३९.।

डी उड्डयने (नभोगमने)—उड़ना To fly—डीयते ; डयिष्यते।

दीप् (दीपी) दीप्तौ (उज्ज्वलीभावे, प्रकाशे, शोभायाम्, ज्वलने)—चमकना To shine, to burn or be lighted—दीप्यते ; दीपिष्यते। दीप्यते निशि चन्द्रमाः।

उत, प्र, सम्+दीप्—ज्वलने।

दू (दुङ्) उपतापे (खेदे)—दुःखित होना To be afflicted, to be sorry—दूयते ; दविष्यते। "दुर्जनोक्त्या न दूयते"।

प्री (प्रीङ्) प्रीतौ—प्रीत होना To be satisfied or pleased—प्रीयते ; प्रेष्यते। "प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः" माघ० १. १७.।

युज् समाधौ (चित्तवृत्तिनिरोधे); योग्यभावे च—(१) चित्तको एकाग्र करना ; (२) योग्य होना To concentrate the mind ; to be fit or right, be proper—युज्यते ; योक्ष्यते। (१) युज्यते योगी ; (२) शेषोक्त अर्थमे षष्ठी और सप्तमीके साथ प्रयुक्त होता है ; "या यस्य युज्यते भूमिका, तां खलु भावेन तथैव सर्वे वर्गाः पाठिताः" मालती० १ ; "त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते" हितो० १.।

युध् युद्धे (अभिभवेच्छायाम्)—लड़ाई करना To fight—युध्यते ; योत्स्यते। "तुण्डघातमयुध्यत" भ० ९. १०१.।

ली (लीङ्) श्लेषे (लीनभावे)—लीन होना (चिपटना ; छिपकर रहना, गायब होना ; गलना) To stick or adhere firmly to ; to lurk ; to disappear ; to melt away—

लीयते ; लेष्यते। लीयते चन्द्रः सूर्य्ये ; "(भृङ्गाङ्गनाः) लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव" रत्ना० १. २६.।

⁂ नि+ली—संश्लेषे ; निभृतावस्थाने (छिपना) च। वि+ली—नाशे ; द्रवीभावे (पिघलना) ; अवस्थाने च—"पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत" माघ० १. १२.। वि+ली+णिच्—द्रवीकरणे। ⁂

विद् सत्तायाम् (विद्यमानतायाम्)—रहना To be, exist—विद्यते ; वेत्स्यते। "अपापानां कुले जाते मयि पापं न विद्यते" मृच्छ० ९. ३७.।

⁂ निर्+विद्—आत्मावज्ञायाम् ; अनुतापे ; वैराग्ये च। ⁂

दिवादि सकर्मक उभयपदी धातु।

नह् (णह्) बन्धने—बांधना To tie, bind ; gird round—नह्यति, नह्यते ; नत्स्यति, नत्स्यते। "पूरावभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी" र० १६. ४१ ; "शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदुः" (व्याप्तेषु इत्यर्थः) कु० १. ५५.।

⁂ अपि+नह्—बन्धने ; आच्छादने च ; प्रायः अकारका लोप होता है ; "मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा" शकु० ७. २ ; "कवच पिनद्ध" भ० ३. ४७.। उत्+नह्—उद्यमस्य बन्धने। परि+नह्—वेष्टने। सम्+नह्—आच्छादने ; मिलने ; उद्योगे (आत्मनेपदी) च—"छेत्तुं वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते" भर्तृ०। ⁂

मृष् तितिक्षायाम् (क्षमायाम्)—सहना ; क्षमा करना To put up with ; to pardon—मृष्यति, मृष्यते ; मर्षिष्यति, मर्षिष्यते।

"वासन्ती—तत् किमिदमकार्य्यमनुष्ठितं देवेन ? रामः—लोको न मृष्यतीति" उत्तर० ३ ; "मृष्यन्तु लवस्य वालिशतां तातपादाः" उत्तर० ६. ।

दिवादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

क्लिश् उपतापे (क्लेशे)—क्लेश पाना To be afflicted—क्लिश्यति, क्लिश्यते ; क्लेशिष्यति, क्लेशिष्यते । वोपदेवमते—उभयपदी ; पाणिनिमते—आत्मनेपदी । "त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम्" मनु० ८. १६९. ।

रञ्ज् (रन्ज्) रागे (आसक्तौ ; रक्तीभावे च)—(१) अनुरक्त होना, मायल होना ; (२) लाल होना To be attached or devoted to ; to become red—रज्यति, रज्यते ; रङ्क्ष्यति, रङ्क्ष्यते । (१) "दैवानियं निषधराजरुचस्त्यजन्ती रूपादरज्यत नले न विदर्भसुभ्रूः" नै० १३. ३८ ; (२) "नेत्रे स्वयं रज्यतः" उत्तर० ५. ३९. ।

रञ्ज् + णिच्—लाक्षादिना रक्तीकरणे (रङ्गना) ; प्रसादने च (खुश् करना) ; रञ्जयति । अनु + रञ्ज्—अनुरागे । अप + रञ्ज्—विरागे । उप + रञ्ज्—उपरागे, राहुग्रासे । वि + रञ्ज्—विरागे ।

अनुवाद करो—विनोदिनीने दो सन्तानका (द्वितीया) प्रसव किया है । लक्ष्मणने इन्द्रजित्के साथ युद्ध किया था । वे पद-पदमे (प्रतिपदम्) विपन्न होते हैं । यह काम तीन दिनोंमे सम्पन्न हुआ था । जो इसे समझेगा, वह फल पायेगा । उसके परुष भाषणसे सब कोई दुःखित हुए । यदि वनमे व्याघ्र न रहे, तो जाओ । हम कभी उसके वचनसे खिन्न

नहीं होंगे । सब लोगोंने वक्ताके वाक्यका आशय अच्छे प्रकारसे नहीं समझा ।

स्वादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें २६८ । २६० । २६१ सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२७८ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें स्वादिगणीय धातुके उत्तर 'नु' आगम होता है ; यथा—सु + ति = सु + नु + ति—

२७६ । * सगुण (ति, सि, मि, तु, द्, स्, आनि, आव, आम, अम्, ऐ, आवहै, आमहै) विभक्ति परे रहनेसे, 'नु' और 'उ' इन दोनो आगमोंका गुण होता है ; यथा—सुनोति । उ—तन् + उ + ति = तनोति ।

२७७ । 'नु' परे रहनेसे, 'श्रु' के स्थानमें 'शृ', और 'धिव्' के स्थानमें 'धि' होता है ; यथा—श्रु + ति = श्रु + नु + ति = शृ + णु + ति = शृ + णो + ति = शृणोति ; धिव् + ति = धिव् + नु + ति = धि + नु + ति = धि + नो + ति = धिनोति ॥

२७८ । * विभक्तिका अगुण स्वरवर्ण परे रहनेसे, स्वरवर्णके परस्थित 'नु' और 'उ' आगमोंके उकारके स्थानमें 'व्', और व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'नु' के उकारके स्थानमें 'उव्' होता है ; यथा—(स्वर) श्रु + अन्ति = श्रु + नु + अन्ति = शृ + णु + अन्ति = शृ + ण् + व् + अन्ति = शृण्वन्ति । (व्यञ्जन) शक् + अन्ति = शक् + नु + अन्ति = शक् + न् + उव् + अन्ति = शक्नुवन्ति ।

२७९ । * 'व' और 'म' परे रहनेसे, 'नु' और 'उ' आगमोंके

उकारका विकल्पसे लोप होता है ; किन्तु 'नु' व्यञ्जनवर्णसे मिलित होनेसे नहीं होता ; यथा—(नु) श्रृणु + वः = श्रृण्वः, श्रृणुवः । (उ) तन् + उ + वः = तन्वः, तनुवः । व्यञ्जन—शक्नुवः ।

२८० । * सकार-भिन्न अन्य वर्णके परस्थित 'अन्ते,' 'अन्ताम्' और 'अन्त' विभक्तिके नकारका लोप होता है ; यथा—अश्नुव् + अन्ते = अश्नुव् + अते = अश्नुवते ।

स्वादि परस्मैपदी धातु ।

श्रु श्रवणे—सुनना To hear.

(सकर्मक—"मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्व-
त्प्रयाणानुरूपम्" मेघ० १३. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	श्रृणोति	श्रृणुतः	श्रृण्वन्ति
मध्यमपुरुष	श्रृणोषि	श्रृणुथः	श्रृणुथ
उत्तमपुरुष	श्रृणोमि	श्रृण्वः, श्रृणुवः	श्रृण्मः, श्रृणुमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	श्रृणोतु	श्रृणुताम्	श्रृण्वन्तु
मध्यमपुरुष	श्रृणु	श्रृणुतम्	श्रृणुत
उत्तमपुरुष	श्रृणवानि	श्रृणवाव	श्रृणवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अश्रृणोत्	अश्रृणुताम्	अश्रृण्वन्
मध्यमपुरुष	अश्रृणोः	अश्रृणुतम्	अश्रृणुत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अशृणवम्	अशृण्व, अशृणुव	अशृण्म, अशृणुम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
मध्यमपुरुष	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उत्तमपुरुष	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
मध्यमपुरुष	श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उत्तमपुरुष	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

** आ+श्रु, प्रति+श्रु—प्रतिज्ञायाम् । सम्+श्रु—अकर्मकात् आत्मनेपदम्; संशृणुते; "हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः" भा० १.५. । **

शक् (शक्लृ) सामर्थ्ये—सकना To be able.

(अकर्मक; 'तुमुन्'-अन्त क्रियापदके साथ प्रायशः प्रयुक्त होता है—भक्तः शक्नोति हरिं द्रष्टुम् । सकर्मक धातुके योगसे सकर्मक होता है; इदं वस्तु शक्यते; "शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुम्" र० २.४९; अन्यत्रापि—"शक्या मनसापि सुदूरोऽमराणाम्"—पम्याद्याः इत्यर्थः—नै० ६.९८ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
उत्तमपुरुष	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
मध्यमपुरुष	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उत्तमपुरुष	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
मध्यमपुरुष	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उत्तमपुरुष	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

विधिलिङ्—शक्नुयात् । लृट्—शक्ष्यति ।

अनुवाद करो—सबसमय गुरुजनोंका वाक्य सुनना । कभी अश्लील वाक्य सुनना नहीं चाहिये । मैंने प्रातःकालमे मेघका गर्जन सुना था । तू कोकिलकी मधुर ध्वनि नहीं सुनता है क्या ? राम श्याम दोनो भाई गान सुन रहे हैं ।

* * * *

स्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

आप् (आप्लृ) प्राप्तौ—पाना To obtain—आप्नोति ; आप्स्यति ।

ज्ञानात् कैवल्यमाप्नोति ।

☙ अव+आप्—प्राप्तौ, लाभे । प्र+आप्—प्राप्तौ ; उपगमने च—"जटायुः प्राप रावणम्" भ० ५. ९६ ; "प्रापदाश्रमम्" र०

१. ४९. । सम्+प्र+आप्—सम्प्राप्तौ । वि+आप्—व्याप्तौ । सम्+आप्—प्राप्तौ । सम्+आप्+णिच्—समापने, समाप्ति करणे ; समापयति । ❀

क्षि हिंसायाम् (नाशे)—नष्ट करना To destroy—क्षिणोति ; क्षेष्यति । "न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति" र० २. ४०. ।

❀ कर्मकर्त्तरि—क्षीयते (क्षीण होना) ; "प्रतिक्षणमयं कायः क्षीयमाणो न लक्ष्यते" हितो० ४. ६९ ; "प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते" पञ्च० २. ४. । ❀

दु (टुदु) उपतापने (पीड़ने)—दुखाना, सताना To torment, afflict—दुनोति ; दोष्यति । "वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः" कु० ३. २८. । "मन्मथेन दुनोमि" गीतगो० २. ९.—इत्यत्र अकर्मकः ।

धिन्व् (धिवि) प्रीणने—सन्तुष्ट करना To please, satisfy—धिनोति ; धिन्विष्यति । "धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्" भा० १. २२. ।

पृ प्रीणने—पृणोति ; परिष्यति । अतिथीन् पृणोति ।

हि प्रेरणे—प्रेरण करना ; निक्षेप करना To send forth, impel ; to throw or discharge—हिनोति ; हेष्यति । "गदा शक्रजिता जिघ्ये" भ० १४. ३६. ।

❀ प्र+हि—प्रेरणे (भेजना) ; निक्षेपे च । ❀

स्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

अश् (अशू) व्याप्तौ (पूरणे, आच्छादने ; प्राप्तौ)—(१) व्याप्त

करना ; (२) प्राप्त होना To pervade, fill completely ; to get, obtain.

((१) "क्ष्मातलं बलजलराशिरानशे" माघ० १७. ४६ ; (२) "अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते" हितो० १. ८४. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
मध्यमपुरुष	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
उत्तमपुरुष	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
मध्यमपुरुष	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
उत्तमपुरुष	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
मध्यमपुरुष	आश्नुथाः	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
उत्तमपुरुष	आश्नुवि	आश्नुवहि	आश्नुमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
मध्यमपुरुष	अश्नुवीथाः	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

लृट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अशिष्यते अदयते	अशिष्येते अदयेते	अशिष्यन्ते अदयन्ते
मध्यमपुरुष	अशिष्यसे अदयसे	अशिष्येथे अदयेथे	अशिष्यध्वे अदयध्वे
उत्तमपुरुष	अशिष्ये अदये	अशिष्यावहे अदयावहे	अशिष्यामहे अदयामहे

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु।

वृ (वृञ्) वरणे (प्रार्थनायाम्)—मनोनीत करना, पसन्द करना, चाहना To choose, select (as a boon).

("ववार रामस्य वनप्रयाणम्" भ० ३. ६;

"यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम्" र० ३. ६.१)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति
मध्यमपुरुष	वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ
उत्तमपुरुष	वृणोमि	वृण्वः, वृणुवः	वृण्मः, वृणुमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उत्तमपुरुष	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
मध्यमपुरुष	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
उत्तमपुरुष	अवृणवम्	अवृण्व,अवृणुव	अवृण्म,अवृणुम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
मध्यमपुरुष	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उत्तमपुरुष	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

लृट्—वरिष्यति, वरीष्यति ।

(आत्मनेपद)

लट् ।

प्रथमपुरुष	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
मध्यमपुरुष	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उत्तमपुरुष	वृण्वे	वृणुवहे	वृणुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्
मध्यमपुरुष	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उत्तमपुरुष	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
मध्यमपुरुष	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उत्तमपुरुष	अवृण्वि	अवृणुवहि	अवृणुमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
मध्यमपुरुष	वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उत्तमपुरुष	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

लृट्—वरिष्यते, वरीष्यते।

❀ अप + वृ, अप + आ + वृ—उन्मोचने, प्रकाशने । आ + वृ—गोपने; आच्छादने; रोधे च। प्र + आ + वृ—परिधाने। नि + वृ + णिच्—निवारणे; निवारयति । निर् + वृ—निर्वृतौ, सुखे, स्वस्थतायाम् । वि + वृ—व्याख्याने; प्रकाशने च । परि + वृ—वेष्टने। सम् + वृ—गोपने; निरोधे च। ❀

* * * *

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

चि (चिञ्) चयने (राशीकरणे, सङ्ग्रहणे)—चुनना, बटोरना, इकट्ठा करना To collect, gather, accumulate—चिनोति, चिनुते; चेष्यति, चेष्यते । द्विकर्मक—वृक्षं पुष्पं चिनोति ।

❀ कर्मकर्त्तरि—वृद्धौ (बढ़ना); चीयते; "राजहंस! तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते" काव्यप्रकाशः; "चीयते बालिश-

स्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः” मुद्रा० १. ३. । अप + चि—कर्मकर्त्तरि —हानौ, क्षये ; अपचीयते । अव + चि—चयने । आ + चि—सञ्चये, सञ्चहे ; व्याप्तौ, आच्छादने च । उत् + चि—सङ्ग्रहे । उप + चि—वर्द्धने (बढ़ाना) ; “यशःस्तोमानुच्चैरुपचिनु” अनर्घ० १. ३५;—कर्मकर्त्तरि—वृद्धौ ; उपचीयते ; “बलेनैव सहोपचीयते मदः” काद० । नि + चि—व्याप्तौ ; प्रधानतः ‘क्त’-प्रत्ययान्तही व्यवहृत होता है ; “शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलम्” शकु० ७. ११. । निर् + चि —निश्चये । परि + चि—ज्ञाने ; अभ्यासे च । प्र + चि—कर्मकर्त्तरि —वृद्धौ ; प्रचीयते । वि + चि—सञ्चये ; अन्वेषणे च—“विष्णुं विचिन्वन्ति योगिनो विमुक्तये” (ध्यायन्तीत्यर्थः) र० १०. २३. । सम् + चि—सञ्चये । ❦

धु (धुञ्), धू (धूञ्) कम्पने—हिलाना To shake—धुनोति, धुनुते ; धूनोति, धूनुते ; धु—अनिट्, धू—वेट् ; धोष्यति धोष्यते; धविष्यति धविष्यते । “धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं (वायुः)”। (२) अपनोदने ; “स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया” शकु० ७. २४. ।

❦ अव + धू—निरासे । आ + धू—ईषत्कम्पे । उत् + धू—उत्क्षेपे । निर् + धू, वि + धू—निरासे, नाशे । ❦

सु (षुञ्) सुरासन्धाने ; सोमादेः पीडने ; मन्थने ; स्नाने च—(१) मद्य चुआना ; (२) सोमलताप्रभृतिको निचोड़ना ; (३) मथना; (४) नहाना (अक०) To distil ; to press out or extract juice ; to churn ; to bathe—सुनोति, सुनुते ;

सोष्यति, सोष्यते।

⁂ अभि+सु—स्नाने; अभिषुणोति; "वारांश्चीनमिषुण्वते" अनर्घ: २. १९. । ⁂

स्तृ (स्तृञ्) आच्छादने—ढाँपना, बिछाना To spread, strew, cover—स्तृणोति, स्तृणुते; स्तरिष्यति, स्तरिष्यते। "शिरोभिर्मही तस्तार" र० ४. ६३.।

⁂ आ+स्तृ—विस्तारे (बिछाना)। परि+स्तृ—विस्तारे; आवरणे च। वि+स्तृ—विस्तारे। ⁂

अनुवाद करो—जो सर्वान्तःकरणसे प्रयत्न करता है, वह उपयुक्त फल पाता है। इस वर्ष वणिक्-लोगोंने वाणिज्यसे लक्ष रुपये प्राप्त किये हैं। परिश्रमका फल तुमने पाया, परन्तु उसने क्यों नहीं पाया? मनुष्य पूर्ण अध्यवसायसे क्या नहीं पा सकता? मेघ चारों दिशायें व्याप्त करता है। प्रबल झञ्झावातसे वृक्षसमूह कम्पित होते हैं। भक्तगण प्रातःकालमें उठकर (उत्थाय) पुष्प चयन करते हैं। परिमित और नियमित भोजनसे शरीरका स्वास्थ्य और बल बढते हैं। बाल्यकालसेही प्रतिदिन थोड़ी थोडी विद्या सञ्चय करना और उसके लिये (तदर्थम्) सद्गुरुका (द्वितीया) वरण करना चाहिये। शङ्का मत करो। मेरे साथ रामचन्द्रको प्रेरण करो। राक्षस हमें अत्यन्त सताते हैं। रामचन्द्र अवश्य राक्षसोंका (द्वितीया) संहार करनेमें (संहर्त्तुम्) समर्थ होगा।

तनादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमे २९८ । २६० । २६१ । २७६ । २७८ । २७९ । २८० सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२८१ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमे तनादिगणीय धातुके उत्तर 'उ' आगम होता है ; यथा—तन् + ति = तन् + उ + ति = तनोति ।

२८२ । सगुण विभक्ति परे रहनेसे, कृ—कर्, अन्यत्र 'कुर्' होता है ।

२८३ । व, म और य परे रहनेसे, 'कृ' धातुके उत्तर विहित 'उ' आगमका लोप होता है ।

तनादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

कृ (डुकृञ्) करणे—करना To do.

("तात ! किं न करवाण्यहम् ?" ; "सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्" भर्त्तृ० ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
मध्यमपुरुष	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उत्तमपुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
मध्यमपुरुष	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उत्तमपुरुष	करवाणि	करवाव	करवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
मध्यमपुरुष	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उत्तमपुरुष	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	कुर्य्यात्	कुर्य्याताम्	कुर्य्युः
मध्यमपुरुष	कुर्य्याः	कुर्य्यातम्	कुर्य्यात
उत्तमपुरुष	कुर्य्याम्	कुर्य्याव	कुर्य्याम

लृट्।

प्रथमपुरुष	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उत्तमपुरुष	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
मध्यमपुरुष	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उत्तमपुरुष	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
मध्यमपुरुष	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उत्तमपुरुष	करवै	करवावहै	करवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
मध्यमपुरुष	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उत्तमपुरुष	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
मध्यमपुरुष	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उत्तमपुरुष	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

❧ अलम् + कृ—भूषणे (सजाना) ; अलङ्करोति । उरी, उररी + कृ—स्वीकारे । पुरस् + कृ—पूजायाम् ; अग्रतः करणे च । तिरस् + कृ—भर्त्सने ; आच्छादने च । वहिस् + कृ—दूरीकरणे ; बहिष्करोति । सत् + कृ—आदरे । नमस् + कृ—नमस्कारे । सजूः + कृ—सहायीकरणे । अधि + कृ—स्वामित्वे ; नियोगे ; विषयीकरणे च । अनु + कृ—अनुकरणे । अप +

कृ—अपकारे; जिसका अपकार किया जाय, उसमें प्रायशः षष्ठी होती है; "किं तस्या मयाऽपकृतम् ?" पञ्च० ४; कहीं द्वितीया और सप्तमीभी होती है; "अथवा सैनिकाः केचिदपकुर्य्युर्युधिष्ठिरम्" महाभा०; "न परंपु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव" माघ० १६. ५२. । आ + कृ + णिच्—आह्वाने; आकारयति । अप + आ + कृ—अपसारणे । उप + आ + कृ—संस्कारपूर्वकवेदग्रहणे; संस्कारपूर्वकपशुहनने च; "सौमित्रे! गोसहस्रमुपाकुरु" रामा० । निर् + आ + कृ—निराकरणे, निरासे । वि + आ + कृ—व्याख्यायाम् । उप + कृ—उपकारे; प्रायशः षष्ठीके साथ; "न हि दीपौ परस्परस्योपकुरुत." शारीरकभाष्यम्; (२) करणे च; "किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ?" । परा + कृ—परिहरणे । परि + कृ—भूषणे; शोधने, निर्मलीकरणे च; परिष्करोति, पर्य्यस्करोत । वि + प्र + कृ—पीडने; "किं सत्त्वानि विप्रकरोषि ?" शकु० ७; (२) विकारप्रापणे च; "क्षमपरमवशं न विप्रकुर्य्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः ?" कु० ६. ९५. । प्रति + कृ—प्रतिकारे । वि + कृ—विकारे; "उपयन्नपयन् धर्मो विकरोति हि धर्मिणम्"; "चित्तं विकरोति कामः."; अकर्मक होनेसे आत्मनेपदी होता है; "हीनान्यनुपकर्त्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते (मित्राणि)" र० १७. ५८. (विरुद्धं चेष्टन्ते, अपकुर्वते इत्यर्थः)। सम् + कृ—अलङ्करणे; शोधने च; संस्करोति । सुट्

* * * *

तन् (तनु) विस्तारे (प्रसारणे)—तानना, पसारना, फैलाना To spread, stretch, extend—तनोति, तनुते; तनिष्यति, तनिष्यते । "तनोति रविरातपम्" कु० २. ३३. ।—(२) करणे, उत्पादने:

"त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम्" गीतगो० ४. ७ ; "पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः" र० ३. २५ ; (३) अनुष्ठाने, निष्पादने ; "नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां ततान" र० ३. ६९ : (४) रचने च ; "तनुते टीकाम्" ।

❧ अव + तन्—व्याप्तौ । आ + तन्—व्याप्तौ ; "आतेने वनगहनानि वाहिनी सा" भा० ७. २५ ; (२) उत्पादने ; "जडतामातनोति" उत्तर० ३. १२ ; (३) करणे ; "सपर्य्यामाततान" काद० । प्र + तन्—विस्तारे । वि + तन्—विस्तारे ; व्याप्तौ ; करणे ; उत्पादने ; रचने च । वि + तन् + णिच्—दीर्घीकरणे, विस्तारे ; वितानयति । सम् + तन्—विस्तारे । ❧

तनादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

मन् (मनु) बोधे—जानना, समझना To consider, regard, deem—मनुते ; मंस्यते । "मनुते मनुतुल्योऽसौ प्रजामात्मजवत् प्रभुः" ; "समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते" भर्त्तृ० ।

अनुवाद करो—सभी अपना अपना काम करो । उन्होंने इस कामको उत्तमरूपसे किया । भोजनके पश्चात् और रात्रिमे स्नान नहीं करना । जो लोग असत् कार्य्य करते हैं, वे अवश्य दुःख पाते हैं । तू कर, मै भी करूँ । वह करे तो करे, मै नहीं करूंगा । रामकी माताने मनोयोगसे गृहसंस्कार किया है । शिष्यगण गुरुका (द्वितीया) अनुकरण करते हैं । मै उसका प्रतिकार करूंगा । प्राणपणसे दूसरेका उपकार करना ।

क्र्यादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमे २६० । २६१ । २६३ । २८० सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२८४ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे क्र्यादिगणीय धातुके उत्तर 'ना' आगम होता है ; यथा—अश् + ति = अश्नाति ।

२८५ । 'अम्'-भिन्न विभक्तिका स्वरवर्ण परे, 'ना'—'न्' होता है ; यथा—अश् + अन्ति = अश् + ना + अन्ति = अश् + न् + अन्ति = अश्नन्ति ।

२८६ । 'ना' परे रहनेसे, धातुके उपधा नकारका लोप होता है ; यथा—मन्थ् + ति = मन्थ् + ना + ति = मथ्नाति ।

२८७ । अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'ना'—'नी' होता है ; यथा—अश् + ना + तः = अश्नीतः ।

२८८ । 'ना' परे रहनेसे, पू, लू, धू, गॄ, दॄ, वॄ और शॄ धातुका अन्त्य स्वर ह्रस्व होता है ; यथा—पू + ना + ति = पुनाति ।

२८९ । व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'ना'—'हि' के साथ मिलकर 'आन' होता है; यथा—अश् + हि = अश् + ना + हि = अश् + आन = अशान ।

२९० । 'ना' परे रहनेसे, ग्रह्—गृह्, और ज्ञा—जा होता है ; यथा—ग्रह् + ति = गृह्णाति ; ज्ञा + ति = जानाति ।

क्रयादि ।

सकर्मक उभयपदी धातु ।

क्री (डुक्रीञ्) क्रये (मूल्यदानेन द्रव्यग्रहणे)—
मोल लेना To buy.

(क्रीणाति क्रीणीते धान्यं धनेन लोकः ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमपुरुष	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
मध्यमपुरुष	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उत्तमपुरुष	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
मध्यमपुरुष	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उत्तमपुरुष	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
मध्यमपुरुष	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उत्तमपुरुष	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उत्तमपुरुष	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

लृट्—क्रेष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
मध्यमपुरुष	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उत्तमपुरुष	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
मध्यमपुरुष	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
मध्यमपुरुष	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
मध्यमपुरुष	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
मध्यमपुरुष	क्रेष्यसे	क्रेष्येथे	क्रेष्यध्वे
उत्तमपुरुष	क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे

✤ परि+क्री—क्रयविशेषे (किराया लेना To hire, purchase for a time)। वि+क्री—विक्रये ; विक्रीणीते ; 'विनिमय' (अदला बदला करना To barter, exchange) अर्थमे परस्मैपदी होता है ; "विक्रीणाति तिलैस्तिलान्" पञ्च० २. ७२. । ✤

ज्ञा बोधे (ज्ञाने)—जानना To know.

("आपत्सु मित्रं जानीयात्" हितो० १. ७४. । उपसर्गविहीन उभयपदी ; "जाने तपसो वीर्य्यम्" शकु० ३. २ ; "न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् !" मेघ० ६३ ; "सन्दर्भशुद्धिं गिरां जानीते जयदेव एव" गीतगो० १.४. ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जानाति	जानीतः	जानन्ति
मध्यमपुरुष	जानासि	जानीथः	जानीथ
उत्तमपुरुष	जानामि	जानीवः	जानीमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
मध्यमपुरुष	जानीहि	जानीतम्	जानीत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जानानि	जानाव	जानाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
मध्यमपुरुष	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उत्तमपुरुष	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
मध्यमपुरुष	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उत्तमपुरुष	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

लृट्।

प्रथमपुरुष	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
मध्यमपुरुष	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ
उत्तमपुरुष	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	जानीते	जानाते	जानते
मध्यमपुरुष	जानीपे	जानाये	जानीध्वे
उत्तमपुरुष	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
मध्यमपुरुष	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जानै	जानावहै	जानामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
मध्यमपुरुष	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उत्तमपुरुष	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
मध्यमपुरुष	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उत्तमपुरुष	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
मध्यमपुरुष	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उत्तमपुरुष	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

❀ अनु+ज्ञा—अनुमतौ ; "तदनुजानीहि मां गमनाय" उत्तर० २. । अनु+ज्ञा+णिच्—गमनाय आदेशग्रहणे, आमन्त्रणे, आप्रच्छने ; अनुज्ञापयति ; "स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येव मनो दधे" महाभा०। अभि+ज्ञा—अनुस्मृतौ ; ज्ञाने च। प्रति+अभि+ज्ञा—अनुस्मरणे। अव+ज्ञा—अनादरे, अवमाननायाम्। आ+ज्ञा—ज्ञाने। आ+ज्ञा+णिच्—आदेशे, शासने; विज्ञापने च। उप+ज्ञा—आद्यज्ञाने ; "पाणिनिना उपज्ञातं व्याकरणम्" (विनोपदेशेन ज्ञातम्)। परि+ज्ञा—परिज्ञाने, निश्चये। प्र+ज्ञा—सम्यग्बोधे, परिज्ञाने। प्रति+ज्ञा—प्रतिज्ञायाम् ;

आत्मनेपदी; "हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते" प्रसन्नराघवम् ४.। वि + ज्ञा—विशिष्टज्ञाने। वि + ज्ञा + णिच्—विज्ञापने; विज्ञापयति।

ग्रह उपादाने (ग्रहणे, स्वीकारे)—लेना

To take, accept.

("प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्" र० १. १८.।—(२) धारणे; "तं कण्ठे जग्राह" काद०; (३) वशीकरणे; "ग्रहीतुमार्य्यान् परिचर्य्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः" माघ० १. १७; (४) ज्ञाने; "मयाऽपि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम्" शकु० ६; "नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः" मनु० ८. २६; (५) आश्रये; "शास्त्रेदं न गृह्णीयात्"।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
मध्यमपुरुष	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उत्तमपुरुष	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
मध्यमपुरुष	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
मध्यमपुरुष	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उत्तमपुरुष	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
मध्यमपुरुष	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उत्तमपुरुष	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

लृट्—ग्रहीष्यति ।

(आत्मनेपद)

लट् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
मध्यमपुरुष	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
उत्तमपुरुष	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
मध्यमपुरुष	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
उत्तमपुरुष	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
उत्तमपुरुष	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
मध्यमपुरुष	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
उत्तमपुरुष	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
मध्यमपुरुष	ग्रहीष्यसे	ग्रहीष्येथे	ग्रहीष्यध्वे
उत्तमपुरुष	ग्रहीष्ये	ग्रहीष्यावहे	ग्रहीष्यामहे

ग्रह् + णिच्—शिक्षणे ; ग्राहयति । अनु + ग्रह्—अनुग्रहे ; "महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान्रिपूनपि" माघ० २. १०.। अव + ग्रह्—निग्रहे । उद् + ग्र + णिच्—उपन्यासे ; उद्ग्राहयति । उप + ग्रह्—परिग्रहे ; "अव्यवसायिन प्रमदेव वृद्धपति नेच्छत्युपग्रहीतुं लक्ष्मीः" हितो० । नि + ग्रह्—पीडने । परि + ग्रह्—आदाने, स्वीकारे । प्र + ग्रह्—प्रकर्षेण ग्रहणे । प्रति + ग्रह्—स्वीकारे ; आक्रमणे च । वि + ग्रह्—युद्धे, कलहे ; समस्तस्य पृथक्करणे च । सम् + ग्रह्—सङ्ग्रहे ।

* * * *

क्र्यादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

अश् भोजने—खाना To eat—अश्नाति ; अशिष्यति । अश्नात्वन्

बुभुक्षितः ।

❀ उप + अश्—उपभोगे; प्राप्तौ च । प्र,सम् + अश्—भोजने । ❀

कुष् निष्कर्षे (निःसारणे, बहिष्करणे)—फाड़के निकालना To tear, extract, pull or draw out—कुष्णाति; कोषिष्यति । "शिवाः कुष्णन्ति मांसानि" भ० १८. १२. ।

❀ निर् + कुष्—बहिर्निःसारणे, विदारणे; निष्कुष्णाति; निष्कोक्ष्यति, निष्कोषिष्यति । ❀

(क्लिशू) बाधने (पीडने)—दुख देना To torment, afflict, molest, distress—क्लिश्नाति; क्लेशिष्यति, क्लेक्ष्यति । "स क्लिश्नाति भुवनत्रयम्" कु० २. ४०. ।

गृ शब्दे (उक्तौ, उच्चारणे; स्तुतौ)—(१) कहना; (२) स्तव करना To speak, utter, relate; to praise, extol—गृणाति; गरिष्यति, गरीष्यति । (१) गृणाति वाक्यं लोकः; (२) "केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति" गीता. ११. २१. ।

ग्रन्थ् सन्दर्भे (ग्रन्थने; रचनायाम्)—(१) गूथना; (२) बनाना To tie or string together; to write, compose—ग्रथ्नाति; ग्रन्थिष्यति । (१) ग्रथ्नाति मालां मालिकः; "काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नन्ति मूढाः"; (२) "ग्रथ्नामि काव्यशशिनं विततार्थरश्मिम्" काव्यप्रकाशः १०. ।

❀ उद् + ग्रन्थ्—बन्धने । सम् + ग्रन्थ्—रचनायाम् । ❀

दृ विदारणे—फाड़ना To tear, rend, sunder—दृणाति; दरिष्यति, दरीष्यति । "दृणाति च रिपून् रणे" ।

❀ वि + दृ—विदारणे ; "स्तनं विददार कामः" अनर्घ० । ❀

पुष् पोषणे (भरणे ; वर्द्धने)—(१) पालना ; (२) बढ़ाना To nourish, maintain, support; to increase, augment—पुष्णाति ; पोषिष्यति । (१) "तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण" भर्तृ० ; (२) "पुपोष लावण्यमयान् विशेषान्" कु० १. २५. ।—(३) प्रकाशने, बोधने ; "न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्" कु० ३. ६३. ।

बन्ध् बन्धने—बांधना To bind, tie, fasten—बध्नाति ; भन्त्स्यति । "प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्" र० ७. ९. ।—(२) परिधाने ; "न हि चूडामणिः पादे प्रभवामीति बध्यते" पञ्च० १. ७८ ; (३) रचने ; "श्लोक एव त्वया बद्धः" रामा० ।

❀ अनु + बन्ध्—सम्बन्धे, अपरित्यागे, अनुवर्त्तने ; "सत्योऽयं जनप्रवादो यद्विपद्विपदं सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति" काद० । आ + बन्ध्—बन्धने ; करणे च—'आबद्धाञ्जलिः' । उत् + बन्ध्—गलरज्ज्वादिना ऊर्द्धबन्धने । नि + बन्ध्—बन्धने ; स्थिरीकरणे ; रचनायाञ्च । निर् + बन्ध्—आग्रहे । प्र + बन्ध्—रचनायाम् । प्रति + बन्ध्—व्याघाते, निरोधे ; "प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः" र० १. ८०. । सम् + बन्ध्—सम्बन्धे, संयोगे । ❀

मन्थ् विलोडने* (मन्थने ; संक्षोभे ; पीडने ; विनाशे)—(१) मथना; (२) हिलाना, विचलित करना ; सताना (३) विनष्ट करना

---

* 'मन्थ्' (मथि) धातु भ्वादि परस्मैपदीभी होता है ; मन्थति । 'मथ' (मथे) धातुभी होता है भ्वादि परस्मैपदी ; मथति ।

To churn; to agitate; to oppress, afflict; to destroy—मथ्नाति; मन्थिष्यति। (१) मथ्नाति दधि बल्लवी; द्विकर्मक—सुधां सागरं ममन्थुः; (२) "मां मथ्नातीव मन्मथः" महाभा०; "मन्मथो मां मथ्नन् निजनाम सान्वयं करोति" दश-कु०; (३) "मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्?" वेणी० १.१९.।

मुष् (मुषु) स्तेये (चौर्य्ये, लुण्ठने; अपाकरणे)—(१) चोरी करना; (२) दूर करना To steal, rob, plunder; to dispel—मुष्णाति; मोषिष्यति। (१) "मुषाण रत्नानि" माघ० १. ५१; द्विकर्मक—देवदत्तं शतं मुष्णाति; (२) "दैवं प्रज्ञां मुष्णाति" महाभा०; "विषयबाहुल्यं कालविप्रकर्षश्च नः स्मृतिं मुष्णाति" महावीर०।

मृद् क्षोदे (मर्दने; चूर्णीकरणे; विनाशने)—(१) मीड़ना, मलना; चूरना; (२) विनष्ट करना To rub, press, squeeze; to pound, pulverize; to destroy—मृद्नाति; मर्दिष्यति। (१) "मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्त्तनैः" वेणी० ५. ४०.; "मृद्नाति द्विषतां दर्पं यो भुजाभ्यां भुवः पतिः"; (२) "बलान्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः" र० १८. ५.।

❧ अभि, अव+मृद्—निष्पेषणे, पीडने, दलने, उच्छेदे। उप+मृद्—हनने, विनाशने। वि+मृद्—घर्षणे। सम्+मृद्—पीडने, सञ्चूर्णने। ❧

शॄ हिंसने (हनने; छेदने)—हिंसा करना, मारना; टुकड़ा करना To kill, destroy; to tear to pieces—शृणाति; शरि-

स्यति, शातिष्यति । "वनाश्रयाः यस्य मृगाः परिग्रहाः ? श्रणाति यस्तान् प्रसभेन तस्य ते" भा० १४. १३ ; "पशुमिव पशुः पर्वं-शास्त्रं श्रणातु" महावीर० ३. ३२. ।

स्तम्भ् (स्तन्भु) रोधने ; जडीकरणे च—(१) रोकना ; (२) निश्चल करना, बे-होश करना To stop, hinder, suppress; to stupefy, paralyze, benumb—स्तभ्नाति, स्तभ्नोति (स्वादि) ; स्तम्भिष्यति । (१) "कण्ठ: स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः" शाकु० ४. ६ ; (२) "प्राणा दध्वंसिरे, गात्रं तस्तम्भे च प्रिये हते" भा० १४. ६६. ।

✽ अव+स्तम्भ्—अवलम्बने ; निरोधे च । उत्+स्तम्भ्—धारणे, आश्रये । उप+स्तम्भ्—आश्रये । वि+स्तम्भ्—प्रतिबन्धे, निवारणे ; स्थापने ; धारणे च । सम्+स्तम्भ्—निरोधे ; स्थिरीकरणे च । ✽

क्र्यादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

धू (धूञ्) कम्पने—हिलाना To shake—धुनाति, धुनीते ; धोष्यति धोष्यते, धविष्यति धविष्यते । चूतं धुनाति वायुः ।

पू (पूञ्) शोधने (पवित्रीकरणे)—शुद्ध करना, पवित्र करना To purify, cleanse—पुनाति, पुनीते ; पविष्यति, पविष्यते । "जाह्नवी नः पुनातु" ; "भागीरथि ! पुनीहि माम्" ; "पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे" शाकु० १. ।

प्री (प्रीञ्) प्रीणने—प्रीत करना, खुश करना To satisfy—प्रीणाति, प्रीणीते ; प्रेष्यति, प्रेष्यते । "प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं

स पुत्रः" भट्टि० । "प्रभुः प्रीणातु विश्वभुक्"; "कच्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे ?" महाभा०—इत्यत्र अकर्मकोऽपि ।

वृ (वृञ्) वरणे—प्रार्थना करना To choose, ask for—वृणाति, वृणीते; वरिष्यति वरिष्यते, वरीष्यति वरीष्यते । "पुत्र ! वरं वृणीष्व" र० २. ६३. ।

लू (लूञ्) छेदने—काटना, लावनी करना To cut, sever, reap—लुनाति, लुनीते; लविष्यति, लविष्यते । "शरासनज्यामलुनाद्बिडौजसः" र० ३. ५९.; "लुनीहि नन्दनम्" माघ० १. ५१. ।

स्तृ (स्तृञ्) आच्छादने—ढांकना, बिछाना To cover, strew—स्तृणाति, स्तृणीते; स्तरिष्यति स्तरिष्यते, स्तरीष्यति स्तरीष्यते ।

अनुवाद करो—ग्वालेलोग सांझके समय दूध मथते हैं । दूसरेका द्रव्य नहीं चुराना । लड़के फूलसे माला गूथते हैं । रावणने त्रिभुवनको सताया था । माता दुग्धसे बालकका (द्वितीया) पोषण करती है । चरवाहे इस मैदानमे गायोंको बांधते हैं । बाज़ारमे (विपणि, आपणः) सब लोग द्रव्यादि क्रय करते हैं । यहां दूकानदारलोग (आपणिक, विपणिन्) सब द्रव्य बेचते हैं । धर्मशील पुत्र पिताको पवित्र करता है । मैं कभी भी सत्यमार्ग नहीं छोड़ूंगा,—उसने यह प्रतिज्ञा की थी । हमलोगोंको भोजनके लिये अनुज्ञा कीजिये । किसानलोग दात्र-द्वारा धान्य छेदन करते हैं । मलयपवन वृक्षको हिलाता है । असत् उपायसे उपार्जित वस्तु ग्रहण नहीं करना । धर्मके लिये सङ्कट करो ।

चुरादि।

क्रियाघटन-सूत्र।

२९१। चुरादिगणीय धातुके उत्तर स्वार्थमे 'णिच्' होता है; 'णिच्'-का 'इ' रहता है।

२९२। * 'णिच्' परे रहनेसे, धातुके उपधा अकार तथा अन्त्य-स्वरकी वृद्धि, और उपधा लघुस्वरका गुण होता है; यथा—(वृद्धि) वृ + इ = वारि; (गुण) चुर् + इ = चोरि।

२९३। *'णिच्' परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती अकारका लोप होता है; यथा—कथ + इ = कथि।

२९४। 'णिच्' परे रहनेसे, कृत्-कीर्त्, और कृप्—कल्प् होता है।

२९५। * णिजन्त, सनन्त, यङन्त और काम्यादि*-प्रत्ययान्त-की फिर 'धातु'-संज्ञा होती है, और चतुर्लकारमे भ्वादिगणीय धातुके तुल्य कार्य्य होता है; यथा—कथि + ति = कथि + अ + ति = कथे + अ + ति = कथयति।

चुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

भक्ष् अदने (भक्षणे)—खाना To eat.

(भक्षयति तण्डुलान् मूषिकः।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भक्षयति	भक्षयतः	भक्षयन्ति

* काम्य, क्य, क्यङ्, क्विप्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ
उत्तमपुरुष	भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
मध्यमपुरुष	भक्षय	भक्षयतम्	भक्षयत
उत्तमपुरुष	भक्षयाणि	भक्षयाव	भक्षयाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
मध्यमपुरुष	अभक्षयः	अभक्षयतम्	अभक्षयत
उत्तमपुरुष	अभक्षयम्	अभक्षयाव	अभक्षयाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयुः
मध्यमपुरुष	भक्षयेः	भक्षयेतम्	भक्षयेत
उत्तमपुरुष	भक्षयेयम्	भक्षयेव	भक्षयेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः	भक्षयिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	भक्षयिष्यसि	भक्षयिष्यथः	भक्षयिष्यथ
उत्तमपुरुष	भक्षयिष्यामि	भक्षयिष्यावः	भक्षयिष्यामः

* * * *

चुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अञ्च् (अञ्चु) विशेषणे (प्रकाशने, जनने, वर्द्धने)—प्रकाश करना, बढ़ाना

To manifest, produce, increase—अञ्चयति; अञ्चयिष्यति। "मुदमञ्चय" गीतगो० १०. ११.।

अर्च् पूजायाम्—पूजा करना, सम्मान करना To adore, worship, honour—अर्चयति। "दूरस्थो नार्चयेद्गुरुम्" मनु० २. २०२.।

☞ अभि और सम् उपसर्गके साथभी इसी अर्थमें प्रयुक्त होता है। ☜

अर्ज् अर्जने—कमाना To earn—अर्जयति।

☞ उप + अर्ज्—उपार्जने; "चिरकालोपार्जितः सुहृत्" हितो०। ☜

अर्ह् पूजायाम्—अर्हयति।

ईर् प्रेरणे, क्षेपणे; चालने; कथने च—(१) फेंकना; (२) हिलाना; (३) कहना To throw, cast; to move, shake; to utter, say—ईरयति। (१) "ऐरिरच्च महाद्रुमम्" भ० १९. ९२; (२) "वातेरितपल्लवाङ्गुलिभिः" शकु० १; (३) "न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता" र० ९. ८.।

☞ उत् + ईर्—उच्चारणे, उक्तौ; उत्क्षेपणे; प्रकाशने, उत्पादने च। अभि + उत् + ईर्—उक्तौ। प्र + ईर्—प्रेरणे। सम् + ईर्—विक्षेपणे; कथने च। ☜

कृत् संशब्दने (कीर्त्तने)—कथन करना mention, repeat, utter, declare—कीर्त्तयति। "कीर्त्तयन्ति च गोष्ठीषु यद्गुणानन्यपौगणाः"; "विप्रसेवैव शूद्रस्य प्रशस्तं कर्म कीर्त्यते" मनु०१०.१२३.।

कॢप् (कृप्) कल्पने (विन्यासे, रचनायाम्, निर्माणे; निरूपणे)—(१) सोचना; (२) तैयार करना; (३) निर्देश करना To consider, imagine; to prepare; to compose; to

settle—कल्पयति। (१) "मत्सरस्तु मे विपरीतं कल्पयति" मुद्रा० ७; (२) "शयनमस्याकल्पयम्" काद० ; "इदं शास्त्रमकल्पयत्" मनु० १. १०२; (३) "आसनं कल्पयामास" महाभा०।

❧ अव + क्लृप्—सम्भावनायाम्। उप + क्लृप्—विन्यासे, आयोजने। परि + क्लृप्—करणे; निश्चये च। प्र + क्लृप्—उद्भावने; निरूपणे च। वि + क्लृप्—संशये। सम् + क्लृप्—सङ्कल्पे, मानसक्रियायाम्, इच्छायाम्। ❧

क्षल् शोधने (क्षालने)—धोना To wash, purify—क्षालयति। "क्षालयामि तव पादपङ्कजे" महाना० ३. ४९.।

❧ प्र + क्षल्, वि + क्षल्—प्रक्षालने। ❧

खण्ड् (खडि) भेदने (भञ्जने, खण्डने, छेदने; विनाशे)—(१) टुकड़ा करना, काटना; (२) नष्ट करना To break to pieces, cut; to destroy—खण्डयति। (१) "खण्डं खण्डमखण्डयद्-बाहुसहस्रम्" महाना० २. ४; (२) "रजनीचरनाथेन खण्डिते तिमिरे निशि" हितो०।

गर्ह् कुत्सायाम्—निन्दा करना To blame—गर्हयति। "विषमां हि दशां प्राप्य दैवं गर्हयते नरः" हितो० ४. ३.—इत्यत्र आत्मनेपदमपि। "तं विगर्हन्ति साधवः" मनु० ९. ६८. (भ्वादि० उभयपदी)।

गुप् गोपने—छिपाना To conceal—गोपयति। "वित्तं न गोपयति यस्तु वनीयकेभ्यः"।

घट् संघाते (योजनायाम्)—जोड़ना To join, unite—घाटयति।

घाटयति कवाट द्वारि जनः (संयोजयतीत्यर्थः) ।

❀ उत्+घट्—उद्घाटने (खोलना) ; "मञ्जूषां यन्त्रैरुद्घाटयामास" ; "कपाटमुद्घाटयामि" मृच्छ० ३. । ❀

घट्ट चालने—हिलाना To shake—घट्टयति ।

❀ आ+घट्ट—आघाते । वि+घट्ट—अभिघाते । सम्+घट्ट—सङ्घर्षे । ❀

घुष् (घुषिर्) विशब्दने (कथने, आविष्करणे, घोषणायाम्) ढण्ढोरा करना, मुहूरत देना, मनादी करना To cry or proclaim aloud, announce or declare publicly—घोषयति । "इति घोषयतीव डिण्डिमः" हितो० २. ८४ ; "चमूस्य जयमघोषयत्" र० ९. १०. ।

❀ आ, वि+घुष्—घोषणायाम् । प्र+उत्+घुष्—निनादने ।❀

चट् भेदने—चाटयति ।

❀ उत्+चट्—उच्चाटने, अपसारणे ; "उच्चाटनीयः करतालिकानां दानादिदानीं भवतीभिरेषः ?" नै० ३. ७. । ❀

चर्च् अध्ययने (अनुशीलने)—चर्चा करना To peruse, study repeatedly—चर्चयति । चर्चयति वेदं विप्रः ।—अनुलेपने ; "चन्दनचर्चितनीलकलेवर०" गीतगो० १. ४०. ।

चर्व् अदने (चर्वणे)—चबाना To chew, eat, browse—चर्वयति, चर्वति । चर्वयति चर्वति तण्डुलं बालकः ; "रथं वक्त्रे निक्षिप्य दशनैश्चर्वयति" सप्तशती ।

चिन्त (चिति) स्मृत्याम् (चिन्तायाम्)—चिन्ता करना, गौर करना To

think, reflect—चिन्तयति। "चिन्तय तावत् केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छामः" शकु० २.।—उद्भावने To devise; "कोऽप्युपायश्चिन्त्यताम्" हितो० १.।

❦ परि, वि, सम्+चिन्त्—अत्यन्तचिन्तायाम्, ध्याने, स्मरणे। ❦

चुद् प्रेरणे (क्षेपणे; चालने; नियोगे; प्रश्ने च)—(१) फेंकना; (२) चलाना; (३) नियुक्त करना; (४) पूछना, शङ्का करना To throw; to drive on; to prompt, impel; to ask, to adduce as an argument or objection—चोदयति। (१) "शरैर्मन्मथचोदितैः" महाभा०; (२) "चोदयाश्वान्" शकु० १; (३) "तान् वधे मातुरचोदयत्" महाभा०; "चोदयामास तं, सभा वै क्रियतामिति" महाभा०; (४) "शिष्यान् समानीयाचार्योऽर्थमचोदयत्" महाभा०।

❦ प्र+चुद्, सम्+चुद्—प्रेरणे;—कथने च; परिवेषयेत प्रयतो गुणान् सर्वान् प्रचोदयन्" मनु० ३. २२८; "सञ्चोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम्" रामा०। ❦

चुर् स्तेये (चौर्ये)—चोरी करना To steal—चोरयति। चोरयति धनं चोरः; "अचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्" माघ० १. १६.।

चूर्ण् पेषणे (चूर्णीकरणे)—चूरना To pulverize, pound—चूर्णयति। "चूर्णयत्यरिमण्डलं यः"।

छद् अपवारणे (आच्छादने, गोपने)—ढकना, छिपाना To cover hide, conceal, veil—उभयपदी; छादयति, छादयते; छदति, छदते। छादयति छादयते दिशं मेघः।

ॐ अव, आ, प्र+छद्—आच्छादने, संवरणे, गोपने । सम्+छद्—आच्छादने, व्यापने । ॐ

छन्द्—ॐ उप+छन्द्—प्रलोभने ; प्रार्थनायाञ्च—उपच्छन्दयति । ॐ

जस् हिंसायाम् ; ताडने च—जासयति ।

ॐ उत्+जस्—उन्मूलने To kill, destroy, extirpate—उज्जासयति । पर्यायेऽ साथ; निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम्" माघ० १. ३७. । ॐ

टङ्क (टकि) बन्धने—टांकना To tie, fasten ; to stitch—टङ्कयति ।

ॐ उत्+टङ्क—उल्लेखे ; सर्वेऽपि धातवोऽत्र सार्था उट्टङ्किताः । ॐ

तड् आघाते (ताडने)—मारना, पीटना To beat, strike—ताडयति । "लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्" चाणक्यः ।—वादने ; "अताडयन् मृदङ्गांश्च" म० १७. ७. ।

तप् दाहे (उष्णीकरणे ; व्यथनेच)—(१) गर्म करना ; (२) पीड़ा देना To heat ; to torment—तापयति । (१) "न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया" हितो० १. ८७ ; मृशं तापितः कन्दर्पेण" गीतगो० २१. २२. ।

तर्क् वितर्के (विचारे, ऊहे, संशये)—गुमान करना, विचार करना, अनुमान करना To conjecture, infer, suspect—तर्कयति । "त्वं तावत् कतमां तर्कयसि ?" शकु० ६ ; "वृक्षसेचनादश्रमवर्ती परिश्रान्तां तर्कयामि" शकु० १ ; "(पातुं) त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः" मेघ० ६१. ।

❀ प्र, वि+तर्क्—वितर्के।❀

तिज् निशाने (तीक्ष्णीकरणे)—तेज़ करना, पैनाना To sharpen, whet—तेजयति। "कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरः" र० ९.३९.।

❀ उत्+तिज्—उद्दीपने, प्रोत्साहने, व्यग्रकरणे ; तीक्ष्णीकरणे च।❀

तुल् उन्माने (परिमाणे)—तोलना To weigh, measure—तोलयति। तोलयति काञ्चनं वणिक्।—उत्थापने ; "कैलासे तुलिते" महावीर० ९. ३७.।

❀ उत्+तुल्—उत्तोलने, उर्द्ध्वनयने। ❀

दुल् उत्क्षेपे—दुलाना, झुलाना To swing, shake to and fro—दोलयति। "तं दोलयति मुदा सहृदाली"।

धृ धारणे ; गृहीतापरिशोधने च—(१) धारण करना ; (२) धारना To *hold, sustain ; to assume ; to put on (clothes,* ornaments &c); to owe anything to a person—धारयति। (१) "धारयन् मस्करिव्रतम्" भ० ९. ६३ ; (२) "तस्मै तस्य वा धनं धारयसि"।

पट् विदारणे (छेदने)—चीरना, फाड़ना ; तोड़ना To split, tear up ; to break—पाटयति। "कश्चिन्मध्यात् पाटयामास दन्ती" माघ० १८. ५१.। "अन्यासु भित्तिषु मया निशि पाटितासु" मृच्छ० ३. १४.।

❀ उत्+पट्—उत्पाटने, उन्मूलने (उखाड़ना)। ❀

पाल् रक्षणे (पालने)—पालना To protect, nourish—पालयति। अपत्यवत् पालयति प्रजा नृपः।

पीड् बाधने (पीडने, क्लेशदाने)—दुखाना To pain, torment—पीडयति। पीडयति शत्रुं लोकः।—मर्दने च (दाबना); "लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्" भर्तृ०।

✱ उत्+पीड्—सङ्घर्षे; उत्सारणे, नोदने; पीडने च। उप+पीड्—संश्लेषे; पीडने च। नि+पीड्—पीडने; धारणे; आलिङ्गने च। निर्+पीड्—निष्पीडणे, आर्द्रवस्त्रादेर्निर्जलीकरणे (निचोड़ना)। ✱

पुष् धारणे (पोषणे)—पोषण करना To nourish, bring up, maintain—पोषयति। "परपिण्डेनात्मानं पोषयामि" हितो०।

पूज् पूजायाम् (सम्माने, प्रशंसायाम्)—पूजा करना To worship, revere—पूजयति। "राजानं पूजयति" रघु० १.।

पूर् आप्यायने (पूरणे)—पूर्ण करना To fill; to fulfil, satisfy—पूरयति। "पूरय मधुरिपुकामम्" गीतगो० ९. १४.।

भू चिन्तायाम्; शोधने; मिश्रणे; उत्पादने; वर्द्धने च—(१) चिन्ता करना; (२) शुद्ध करना; (३) मिलाना; (४) पैदा करना; (५) बढ़ाना To think or reflect, consider; to purify; to mingle or mix; to produce; to foster, cherish—भावयति। (१) "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्" मोहमुद्गरः; (२) 'तपसा भावितात्मानो शान्तं विन्दन्ति निश्चितम्'; (४) "भूतानि भावयति जनयति वर्द्धयतीति वा भूतभावनः" विष्णुसहस्रनामभाष्यम्; (५) "देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥"

गीता ३. ११.।

भूष् अलङ्करणे (भूषणे)—सिङ्गारना To adorn—भूषयति। "शुचि भूषयति श्रुतं वपुः, प्रशमस्तस्य भवत्यलङ्क्रिया" भा० २. ३२.।

मण्ड् (मडि) भूषायाम्—भूषित करना To adorn, decorate—मण्डयति। मण्डयति हारो जनम्।

मान् पूजायाम् (सम्मानने)—सम्मान करना To honour, respect—मानयति। "मान्यान् मानय" भर्तृ०।

मार्ग् अन्वेषणे (प्रतिसन्धाने)—ढूँढ़ना To seek for—मार्गयति, मार्गति। मार्गयति मार्गति गुणं गुणी।

मार्ज्, मृज् (मृजू) शोधने (मार्जने; दूरीकरणे)—मलना; हटाना To purify, cleanse; to wipe—मार्जयति। "यो मार्जयति साम्राज्यश्रियश्चापल्यवाच्यताम्"।

मृष् तितिक्षायाम् (क्षमायाम्)—क्षमा करना To endure; to pardon, excuse—उभयपदी; मर्षयति, मर्षयते। "आर्य्य! मर्षय मर्षय" वेणी० १.।

मोक्ष् मोचने—मुक्त करना; छोड़ना, फेंकना To release; to cast—मोक्षयति। "त्वां शापान्मोक्षयिष्यति" महाभा०; "सङ्ख्येषु मोक्षयति यश्च शरं मनुष्ये"।

यत् परिभवे (ताडने); अलङ्करणे च—यातयति।

❀ निर्+यत—प्रत्यर्पणे (फेर देना To return); प्रतिदाने, वैरशुद्धौ च (बदला लेना To requite, repay, retaliate)—"रामलक्ष्मणयोर्वैरं स्वयं निर्यातयामि वै" रामा०। ❀

यन्त्र् (यत्रि) यन्त्रने (नियमने)—रोकना, अटकाना, दबाना To restrain, curb, check—यन्त्रयति । "स्नेहकारण्ययन्त्रित" महाभा० ।

✤ नि+यन्त्र्—'यन्त्र्' वत् । ✤

लक्ष् दर्शने (ज्ञाने), अङ्कने (चिह्नीकरणे) च—(१) देखना, (२) चिह्नित करना To perceive, to apprehend, to mark—उभयपदी, लक्षयति, लक्षयते । लक्षयति लक्षयते घटं लोक (पश्यति, चिह्नयुक्तं करोति वा इत्यर्थ), "चरितान्यस्य लक्षय" महाभा० ।

✤ आ+लक्ष्—आलोचन, ज्ञाने च । उप+लक्ष्—ज्ञाने, अनुमने, विशेषणे—"केदारैरुपलक्षित", लक्षणया बोधने च—"काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यादौ दध्युपघातकर्तृत्वेन श्वादिरुपलक्ष्यते" । सम्+लक्ष्—सम्यग्दृष्टौ, परीक्षायाम् । ✤

लङ्घ् (लघि) लङ्घने (अतिक्रमणे)—लांघना, पार होना To leap or pass over—लङ्घयति । "गिरिमलङ्घयत्" र० ४ ५२, "यशो भवद्गुरुर्लङ्घयितु ममोद्यत" र० ३ ४८ । भ्वादिगणीय उभयपदीभी होता है, लङ्घति, लङ्घते, "लङ्घते स्म मुनिरेव विमानान्" नै० ६ ४ ।

✤ उद्, वि+लङ्घ्—उल्लङ्घने । ✤

लड् उपसेवायाम् (अत्यन्तपालने, लालने)—लाड करना To caress, fondle—लाडयति । लालयति । "लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणा. । तस्मात् पुत्रञ्च शिष्यञ्च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥" चाणक्य ।

⚜ उप + लड्—"वालकमुपलालयन्" शकु० ७. । ⚜

लोक् (लोकृ) दर्शने—देखना To behold—लोकयति ।

⚜ अव, आ, वि + लोक्—दर्शने । ⚜

लोच् (लोचृ)—⚜ आ + लोच्, परि + आ + लोच्—चिन्तने, विचारणे, निरूपणे । ⚜

वच् परिभाषणे (वाचने, पाठे)—बांचना To read, peruse—वाचयति । "नानादेशसमुद्भूतां वाचयत्यखिलां लिपिम्" ।

वण्ट् (वटि) विभाजने (वण्टने)—बांटना To divide—वण्टयति । पक्षे—भ्वादि परस्मैपदी—वण्टति । "वण्टयन्ति नृपा रत्नं, विप्रा वण्टन्ति हाटकम्" ।

वृ वारणे—रोकना To prevent—वारयति । यवेभ्यो गां वारयति; "प्रविशन्तं न कश्चिद्वारयत्" ।

⚜ अप + वृ—आच्छादने, गोपने । ⚜

वृज् (वृजी) वर्जने (त्यागे)—छोड़ना To shun, give up, abandon—वर्जयति । "वर्जयेदसतां सङ्गम्" ।

⚜ अप + वृज्—त्यागे; दाने; छेदने च । आ + वृज्—आनमने; दाने; प्रसादने च । वि + वृज्—परित्यागे । ⚜

शिष् असर्वोपयोगे (पारशेषीकरणे)—बचाना, छोड़ देना, बाकी रखना To leave as a remainder, spare—शेषयति, शेषति । शेषयति शेषति यशोराशिं लोकः (अवशिष्टं करोतीत्यर्थः) ।

⚜ अव + शिष्, परि + शिष्—अवशेषे । वि + शिष्—अतिशायने, अतिक्रमे, पराभवे, तिरस्कारे । निर् + शिष्—शून्यीकरणे,

उन्मूलने, उत्पादने, विलोपने । ❀

श्रण् दाने To give away, bestow—पायेगायं 'वि'पूर्वः—विश्राणयति । "विश्राणयति यः श्रीमान् विप्रेभ्यो विपुलं वसु" ।

सद्—❀ आ+सद्—प्राप्तौ ; गमने (सन्निकर्षे) च—पाना ; जाना To obtain, to go to, approach—आसादयति । "आसादयति विद्यानां पारम्" ; "नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति" । ❀

सान्त्व् समाश्वासने (सान्त्वनायाम्)—समझा देना To soothe, comfort—सान्त्वयति । सान्त्वयति शोकार्त्तं दयालुः ।

सूद्—❀ नि+सूद्—हिंसने To kill—निसूदयति, निषूदयति । ❀

स्फुट् भेदने—फोड़ना To burst or rend asunder, split—स्फोटयति ।

❀ आ+स्फुट्—बाहुताडने ; "बाहू चास्फोटयच्छनैः" महाभा० । ❀

स्वद् आस्वादने (रसोपादाने)—चखना To taste—स्वादयति । स्वादयति क्षीरं लोकः ।

❀ आ+स्वद्—आस्वादने, अनुभवे । ❀

चुरादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

कुत्स् अवक्षेपे (निन्दायाम्)—निन्दा करना To abuse—कुत्सयते । "पूजयेदशनं नित्यमद्याचैतदकुत्सयन्" मनु० २. ५४.—इत्यत्र परस्मैपदी, आर्षग्रन्थेषु पदनियमाभावात् ।

चित् ज्ञाने—जानाना To know—चेतयते* । "कादम्बरीरसभरेण

* ज्ञानार्थमें 'चित्' (चिती) धातु भ्वादिगणीय परस्मैपदीभी होता

समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्" कादम्बरी।

तन्त्र् कुटुम्बधारणे (धारणे, पोषणे)—To support, maintain (as a family)—तन्त्रयते।—शासने, नियमने; "प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा" शकु० ५. ५.।

तर्ज् भर्त्सने—डांटना, झिड़कना To scold; to threaten—तर्जयते। बहुशः परस्मैपदमेभी महाकविप्रयोग दीखता है; "सखी-मङ्गुल्या तर्जयति" शकु० १; "अहिताननिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः" र० ४. २८.।

भर्त्स् भर्त्सने (धमकाना)—भर्त्सयते। परस्मैपदी—वोपदेवः।

भल्—❦ नि + भल्—दर्शने—निभालयते। परस्मैपदी अपि। ❦

मन्त्र् (मत्रि) गुप्तभाषणे (मन्त्रणायाम्)—सलाह करना To consult—मन्त्रयते।। "हृत् तस्य यां मन्त्रयते" नै० ३. १०७.। क्वचित् परस्मैपदीभी होता है; "किमेकाकिनी मन्त्रयसि?" शकु० ६; "हला! सङ्गीतशालापरिसरेऽवलोकिताद्वितीया त्वं किं मन्त्रयन्त्यासीः?" मालती० २.।

❦ अनु, अभि + मन्त्र्—अभिमन्त्रणे, मन्त्रकरणकसंस्करणे। आ + मन्त्र्—कथने; प्रस्थानानुमतिप्रार्थने; सम्बोधने; निमन्त्रणे च। नि + मन्त्र्—निमन्त्रणे। ❦

वञ्च् (वञ्चु) विप्रलम्भे (प्रतारणे, वञ्चनायाम्)—धोका देना,

है; यथा—चेतति; चेतिष्यति। "अविद्यानिद्रयाऽऽक्रान्ते जगत्येकः स चेतति" (जागर्त्ति, प्रबुध्यते इत्यर्थः); "गर्भवासस्थितं रेतश्चेतति" (चैतन्ययुक्तं भवतीत्यर्थः) पञ्चदशी. ६. १४७; "चिचेत रामस्तत् कृच्छ्रम्"।

ठगना To cheat, deceive—वञ्चयते। "त्वमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम्" गीतगो० ८. ७.। परस्मैपदीमी होता है; "(वन्यनं) वञ्चयन् प्रणयिनीरवाप सः" र. १९. १७.।

सकर्मक अदन्त चुरादि धातु।

अङ्क लक्षणे (चिह्नीकरणे)—चिह्नित करना, निशान करना To mark—अङ्कयति। अङ्कापयति। "अङ्कयामास वस्त्रान्" महाभा०।

अर्थ याचने—माङ्गना To beg, ask, solicit—आत्मनेपदी; अर्थयते। द्विकर्मक—"त्वामिममर्थमर्थयते" दशकु०; "वैर्ण्यं गत्वाऽर्थयस्व धनम्" महाभा०।

अभि + अर्थ, प्र + अर्थ—प्रार्थनायाम्। सम् + अर्थ—चिन्तने; दृढीकरणे, प्रमाणीकरणे च।

अवधीर अवज्ञायाम्—अनादर करना To disregard—अवधीरयति। "अवधीरयति साधुमसाधुः"।

ल्यप्—अवधीर्य्य; "हितवचनमवधीर्य्य" हितो०; "इतीव धारामवधीर्य्य" नै० १. ७२.।

आन्दोल दोलने—झुलाना, हिलाना To swing, to shake—आन्दोलयति। "मन्दमारुतान्दोलिता लतेव" दशकु०।

कथ वाक्यप्रबन्धे (कथने, वर्णने)—कहना To tell, relate—कथयति। प्रायशः चतुर्थ्यन्त व्यक्तिवाचक शब्दके साथ; "राममिन्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूव सः" र० ११. ३७.।

कर्ण भेदने।—आ + कर्ण—श्रवणे; आकर्णयति।

कल गतौ; सङ्ख्यायाम् (गणनायाम्) च—कलयति। "कलिः काम-

धेनुः" ।—(१) धारणे, ग्रहणे To hold, bear, assume, put on; "म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्" गीतगो० १. ; "कलयति हि हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मीम्" मालती० १. २२ ; "कलय वलयश्रेणीं पाणौ" गीतगो० १२. २६. ।—(२) गणनायाम् To count, reckon; "कालः कलयतामहम्" गीता. १०. ३०. ।—(३) करणे To make; "सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कलयति" भर्तृ० ; "मधुमिलितमधुपकुलकलितरावे (केलिसद्ने)" गीतगो० ११. १९. ।—(४) ज्ञाने To know; "कलयन्नपि सव्यथोऽवतस्थे" माघ० ९. ८३ ; "रुपा निषिद्धालिजनां यदैनां छायाद्वितीयां कलयाञ्चकार" नै० ३. १२. ।—(५) चिन्तने, विचारणे To think, consider; "व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम्" गीतगो० ४. ७ ; "कलयामि मणिभूषणं वहुदूषणम्" गीतगो० ७. ७. ।—(६) निर्माणे To form; "मरकतशकलकलितकलधौतलिपेः" गीतगो० ८. ४. ।

❀ आ + कल—बोधे ; बन्धने ; आक्रमणे, ग्रहणे, अधिकारे च । परि + कल—ज्ञाने । सम् + कल—सङ्कलने (योजने ; सङ्ग्रहे च) To add or sum up. । वि + अव + कल—व्यवकलने, वियोजने To subtract or deduct. ❀

क्षप क्षेपणे (दूरीकरणे ; अतिवाहने)—(१) दूर करना ; (२) काटना, गवाना To cast; to remove; to pass—क्षपयति । (२) "पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्" स्मृतिः ।

गण सङ्ख्याने (गणनायाम् ; विचारे, ज्ञाने)—गिनना To count,

number; to consider—गणयति। "लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती" कु० ६. ८४; "पावकस्य महिमा स गण्यते, कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः" र० ११. ७५.।

⁂ वि + गण—ज्ञाने; निश्चये। अव + गण—अवज्ञायाम्। ⁂

गवेष मार्गणे (अन्वेषणे, अनुसन्धाने)—ढूँढना To seek—गवेषयति। गवेषयति गुणं गुणी; "तस्मादेष यतः प्राप्तस्तत्रैवान्यो गवेष्यताम्" कथासरित्सागरः। "गवेषमाणं महिषीकुलं जलम्" ऋतु० १. २१.—इत्यत्र भ्वादिगणीय आत्मनेपदी।

गुण अभ्यासे (गुणने, पूरणे; 'आम्रेडने' इति मल्लिनाथः—माघ० २.७८.) गुण करना, ज़र्ब करना To multiply—गुणयति। "हन्ति. पूर्त्तिश्च गुणने" इति शब्दविदः।

चित्र चित्रीकरणे (आलेख्यकरणे)—तस्वीर या शबीह् खींचना To paint—चित्रयति। चित्रयति प्रतिमां लोकः। "वाग्देवताचरित-चित्रितचित्तसद्मा" (अलङ्कृत) गीतगो० १. २; "क्रौञ्चपदालीचित्रिततीरा" छन्दोमञ्जरी।

दण्ड दण्डनिपातने—दण्ड देना, डाण्डना To punish—दण्डयति। दण्डापयति। दण्डयति अपराधिनं राजा। द्विकर्मक—"तान् सहस्रञ्च दण्डयेत्" मनु० ९. २३४; "अनृतन्तु वदन् दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम्" मनु० ८ ३६.। "कौटसाक्ष्यं कुर्वाणान् दण्डयित्वा प्रवासयेत्" मनु० ८. ३६.।

पार कर्मसमाप्तौ (शक्तौ)—सकना To be able—पारयति। "न खलु मातापितरौ भर्त्तृवियोगदुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयत." शकु० ६.

"अधिकं न हि पारयामि वक्तुम्" भामिनी० २. ५९.।

मह पूजायाम् To honour, worship—महयति। "गोक्षारं न निधीनां महयन्ति महेश्वरं विबुधाः"; "स्त्री पुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्" कु० ६. १२.।

मिश्र सम्पर्के (मिश्रणे, संयोजने)—मिलाना To mix—मिश्रयति। मिश्रयति घृतेनान्नं लोकः; "वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः" शकु० १. २६.।

मूत्र प्रस्रावे—पेशाब करना To make water—मूत्रयति। "तिष्ठन् मूत्रयति" महाभा०।

मृग अन्वेषणे—ढूँढ़ना To search for—आत्मनेपदी; मृगयते। "रामो मृगं मृगयते वनवीथिकासु" महाना० ३. ९६.।

रच रचनायाम् (प्रणयने, निर्माणे, करणे)—रचना, तैयार करना To prepare; to make; to compose—रचयति। "रचयति शयनं सचकितनयनम्" गीतगो० ५. १०; "मौलौ वा रचयाञ्जलिम्" वेणी० ३. ४२; "अश्वघाटीं जगन्नाथो विश्वहृद्यामरीरचत्"; "रचयति चिकुरे कुरवककुसुमम्" (विन्यस्यति) गीतगो० ७. २३; "विरचितानुरूपवेशः" र० ९. ७६.।

रस आस्वादने—चखना To taste, relish—रसयति। रसयति मधु द्विरेफः; "मृद्वीका रसिता" भामिनी० ४. १४.।

रह त्यागे—छोड़ना To quit, abandon—रहयति। रहयति शोकं धीरः; "रहयत्यापदुपेतमायतिः" भा० २. १४.।

रूप रूपकरणे—बनाना To form—रूपयति। रूपयति प्रतिमां शिल्पी।

—(४) अभिनये (नाट्येन प्रकाशने—नाटकमें दिखलाना) To represent on the stage; "शकुन्तला वीडां रूपयति" शकु०४.।

❀ नि + रूप—निरूपणे (निर्णये, निश्चये ; दर्शने ; विवरणे, स्वरूपकथने च)। ❀

वर ईप्सायाम्—वरण करना, पसन्द करना To ask for, choose, seek to get—वरयति। "कन्या वरयते रूपम्"।

वर्ण शुक्लादिवर्णकरणे (रञ्जने) ; वर्णने ; स्तुतौ च—(१) रङ्गना ; (२) वर्णन करना ; (३) स्तुति करना To colour ; to describe ; to praise—वर्णयति। (१) प्रतिमां वर्णयति ; (२) कथां वर्णयति ; (३) हरिं वर्णयति।

❀ निर् + वर्ण—दर्शने। ❀

वास उपसेवायाम् (गुणान्तराधाने, सुरभीकरणे)—सुगन्धित करना, सुन्दर करना To scent, perfume—वासयति। वासयति वस्त्रं चन्दनः ; "छेदे चन्दनतरुर्वासयति मुखं कुठारस्य" हितो०।

❀ अधि + वास—'वास'-वत्। ❀

विडम्ब अनुकरणे (सदृशीकरणे) ; वञ्चने च—(१) अनुकरण करना, नकल करना ; (२) ठगना To imitate, copy, resemble ; to cheat ; to ridicule—विडम्बयति। (१) "(तं) क्रतुर्विडम्बयामास, न पुनः प्राप तच्छ्रियम्" र० ४. १७ ; (२) "एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते" शकु० २.।

वीज व्यजने (वायुसञ्चालने)—पङ्खा झलना To fan—वीजयति। सख्यौ शकुन्तलां वीजयतः ; "वीज्यते स हि संसुप्तश्चामरैः"

कु० २. ४२.।

व्यय वित्तसमुत्सर्गे (धनव्यये)—व्यय करना, खर्च करना, To expend—व्यययति। "बहु व्यययति द्रव्यम्"।

शील अभ्यासे (अनुशीलने)—अभ्यास करना To practise repeatedly, study—शीलयति। "शीलयन्ति यतयः सुशीलताम्" भा० १३. ४३.।—(२) परिधाने; "शीलय नीलनिचोलम्" गीतगो० ५. ११.।—आश्रयणे, गमने; "यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम्" गीतगो० ७. ४; "स्मेरानना सपदि शीलय सौधमौलिम्" भामिनी० २. ४.।

श्लथ दौर्बल्ये (शिथिलीकरणे)—शिथिल (ढीला) करना To slacken, loosen, relax—श्लथयति। "परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा" गङ्गालहरी. ३७.।

सभाज पूजने (सत्कारे); प्रीणने च—सम्मान करना; आनन्दित करना To salute, greet, pay respects, congratulate; to please, gratify—सभाजयति। "स्नेहात् सभाजयितुमेत्य" उत्तर० १. ७; "सुचरितनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुमागता इति तर्कयामि" शकु० ५.।—अलङ्करणे; "वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियैव सभाजयन्" उत्तर० ४. १९.।

सूच व्यक्तीकरणे—सूचित करना, प्रकाश करना, ज़ाहिर करना To indicate, reveal—सूचयति। "त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं (गन्धः)" मृच्छ० १. ३५; "मन्त्रो गुप्तद्वारो न सूच्यते" र० १७. ५०.।

स्तेन चौर्य्ये—चोरी करना To steal—स्तेनयति ।

"वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।

तां तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥" मनु० ४. २५६. ।

स्पृह इच्छायाम्—चाहना To wish, long for—स्पृहयति । चतुर्थी के साथ; पुष्पेभ्यः स्पृहयति; "न मैथिलेयः स्पृहयाम्बभूव भर्त्रे दिवो, नाप्यलकेश्वराय" र० १६. ४२. ।

अनुवाद करो—कभी अपरिमित भोजन नहीं करना। कोई द्रव्य एकाकी भोजन नहीं करना। तू अब खा, मैं उसके साथ बात करूँ। आज शिक्षक हमलोगोंको नीतिवाक्य कहेंगे। किसीके साथ झूठ मत कहो। आपने मुझे क्या कहा? किसीका द्रव्य चुराना नहीं चाहिये। रामदास एक एक करके (एकैकशः) रुपया गिनता है। रातमें दही नहीं खाना। किसीकी (द्वितीया) अवज्ञा मत करो। वह जितना कमाता है, सभी व्यय करता है। इन फलोंको बाँट दो। सबका गुण कीर्त्तन करो। वे दुखीको तसल्ली देते थे। दुष्ट लोग जहाँ तहाँ सभीका दोष कीर्त्तन करते हैं। वाल्मीकिजीने सुललित पद्योंमें रामचन्द्रका चरित्र समग्र वर्णन किया है। साधुलोग सर्वदा सद्विषयकी (द्वितीया) आलोचना करते हैं।

रुधादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें २६० । २६१ सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२९६ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें रुधादिगणीय धातुके अन्त्यस्वरके पश्चात् 'न्' होता है; यथा—रुध् + ति = रुन्ध् + ति—

२९७। सगुण विभक्ति परे रहनेसे, 'नृ'के स्थानमे स्वरान्त 'न' होता है; यथा—रुनृध्+ति=रुणध् (१०० (क) सूत्र)+ति—

२९८। * धकारसे परे 'त' अथवा 'थ' रहनेसे, दोनो मिलकर 'द्ध' होता है; यथा—रुणध्+ति=रुणद्धि।

२९९। * एक वर्गके तीन वर्ण एकत्र होनेसे, मध्यम वर्णका लोप होता है; यथा—रुनृध्+तः=रु (नृद्ध)=रुन्धः।

३००। * 'स' परे रहनेसे, 'द्' और 'ध्'के स्थानमे 'त्' होता है; यथा—रुणध्+सि=रुणत्सि।

३०१। * व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'हि'—'धि' होता है; यथा—रुध्+हि=रुनृध्+धि=रुनृद्† +धि=रुन्धि (२९९ सू०)।

३०२। * व्यञ्जनवर्णके परस्थित लङ् का 'द्' और सकारका लोप होता है; यथा—अ+रुणध्+द्=अरुणध्=अरुणत् (२६० सू०)।

३०३। * लङ्के सकारका लोप होनेसे, धातुके 'द्' और 'ध्'के स्थानमे विकल्पसे रेफ होता है; यथा—अरुणत्, अरुणः।

३०४। * 'च' अथवा 'ज'—परस्थित तकारमे मिलकर 'क्त', और थकारमे मिलकर 'क्थ' होता है; यथा—भुज्+ते=भुनृज्+ते=भुन्+क्ते=भुङ्क्ते।

३०५। * च, छ, ज, श, ष, ह और घ—परस्थित दन्त्य सकारमे मिलकर 'क्ष' होता है; यथा—भुनृज्+से=भुङ्क्षे।

३०६। * 'ध' परे रहनेसे, 'च' और 'ज'के स्थानमे 'ग' होता है,

---

† एक वर्गके दो चतुर्थ वर्ण एकत्र होनेसे, आदिका वर्ण तृतीय वर्ण होता है।

और विराममे अर्थात् कोई वर्ण परे न रहनेसे अन्तस्थित 'च्' और 'ज्' के स्थानमे 'क्' होता है ; यथा—भुनज् + ध्वे = भुनग्ध्वे = भुङ्ग्ध्वे ; भुज् + द् = अभुनक् ।

३०७ । चतुर्थवर्ण परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे 'हिनस'के स्थानमे 'हिंस्' होता है ; यथा—हिनस् + नि = हिनस्ति ।

३०८ । * 'ध' परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती 'स' के स्थानमे 'द' होता है, अथवा सकारका लोप होता है ; यथा—हिनस् + हि = हिनस् + धि = हिनद् + धि = हिन्धि ।

३०९ । ति, सि, मि, तु, द्, स्—इन विभक्तियोंके परे रहनेसे, 'तृह' धातुका 'न्'—'ने' होता है ; यथा—तृह् + ति = तृनह् + ति = तृणेह् + ति—

३१० । य, र, ल, व, ह, ञ, ण, न, म भिन्न व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'ह'के स्थानमे 'ढ' होता है ; यथा—तृणेह् + ति = तृणेढ् + ति—

३११ । * टवर्ग और मूर्द्धन्य षकारके परस्थित तवर्गके स्थानमे टवर्ग होता है ; परन्तु 'ढ'के परस्थित 'त' और 'थ' के स्थानमे 'ढ' होता है ; यथा—तृणेढ् + ति = तृणेढ् + ढि—

३१२ । 'ढ' परे रहनेसे, पूर्व ढकारका लोप होता है, और ऋ भिन्न उपधा स्वर दीर्घ होता है ; यथा—तृणेढ् + ढि = तृणेढि । तृह् + तः = तृनह् + तः = तृनढ् + तः = तृनढ्ढः = तृण्ढः । (दीर्घ) मुह् + क्त = मूढ ।

३१३ । * कोई वर्ण परे न रहनेसे, धातुके छ, श, ष और ह के स्थानमे 'ट' अथवा 'ड' होता है ; और 'ध' परे रहनेसे, 'ड' होता है ;

यथा—अतृणेह्=अतृणेट् अथवा अतृणेड्।

३१४। * वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स परे रहनेसे, श, ष, स, ह भिन्न 'धुट्'-वर्णके स्थानमे प्रथमवर्ण होता है; यथा—छिद्+ति=छिनत्ति।

रुधादि।

सकर्मक परस्मैपदी धातु।

भञ्ज् (भन्जो) आमर्दने (भङ्क्ते)—तोड़ना To break.

("भनक्त्युपवनं कपिः" भ० ९. २; "भनज्मि सर्वमर्यादाः" ६. ३८.।—पराभवे; "क्षत्राणि रामः परिभूय रामात् क्षत्राद्यथाऽभज्यत स द्विजेन्द्रः" नै० २२. १३३.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
मध्यमपुरुष	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
उत्तमपुरुष	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
मध्यमपुरुष	भङ्ग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त
उत्तमपुरुष	भनजानि	भनजाव	भनजाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
उत्तमपुरुष	अभनज्म्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
मध्यमपुरुष	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
उत्तमपुरुष	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम

लृट्—भङ्क्ष्यति, भङ्क्ष्यतः, भङ्क्ष्यन्ति ।

हिंस् (हिसि) हिंसायाम्—मार डालना, नष्ट करना

To kill, destroy completely.

("हिनस्ति दुष्कृतं सूनृता वाक्" ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हिनस्ति	हिंस्तः	हिंसन्ति
मध्यमपुरुष	हिनस्सि	हिंस्थः	हिंस्थ
उत्तमपुरुष	हिनस्मि	हिंस्वः	हिंस्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	हिनस्तु	हिंस्ताम्	हिंसन्तु
मध्यमपुरुष	हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त
उत्तमपुरुष	हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अहिनः	अहिंस्ताम्	अहिंसन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अहिनः	अहिंस्तम्	अहिंस्त
उत्तमपुरुष	अहिनसम्	अहिंस्व	अहिंस्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्युः
मध्यमपुरुष	हिंस्याः	हिंस्यातम्	हिंस्यात
उत्तमपुरुष	हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम

लृट्— हिंसिष्यति, हिंसिष्यतः, हिंसिष्यन्ति ।

पिष् (पिष्लृ) सञ्चूर्णने (पेषणे)—पीसना To pound, grind, crush—पिनष्टि ; पेक्ष्यति । पिनष्टि लोको गोधूमम् ।

शिष् (शिष्लृ) अवशेषे ; विशेषणे (विशेषकरणे) च—(१) बाक़ी रखना ; (२) विशेष करना, इमतियाज़ करना, तमीज़ करना, फ़र्क़ करना To leave as a remainder ; to distinguish or discriminate from others—शिनष्टि; शेक्ष्यति ।

❀ शिष्—कर्मकर्त्तरि—बाक़ी रहना; शिष्यते ; "तेषामेकः शिष्यते, अन्ये लुप्यन्ते" । अव + शिष्—कर्मकर्त्तरि ; "यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते" गीता. ७. २. । वि + शिष्—वर्द्धने ;—कर्मकर्त्तरि ; अतिशये (बिह्तर होना, अफ़ज़ल होना) ; "मौनात् सत्यं विशिष्यते" मनु० २. ८३ ; "सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते" मनु० ४. २३३. । परि + शिष्—अवशेषे । ❀

तृह, हिंसायाम् (वधे)—To kill, hurt, injure.

("तृणे तृणेढि ज्वलनः खलु ज्वलन् क्रमात् करीष-

द्रुमखाण्डमण्डलम् ॥" नै० ९. १९१.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तृणेढि	तृण्ढः	तृंहन्ति
मध्यमपुरुष	तृणेक्षि	तृण्ढः	तृण्ढ
उत्तमपुरुष	तृणेह्मि	तृंह्वः	तृंह्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	तृणेढु	तृण्ढाम्	तृंहन्तु
मध्यमपुरुष	तृण्ढि	तृण्ढम्	तृण्ढ
उत्तमपुरुष	तृणहानि	तृणहाव	तृणहाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अतृणेट्	अतृण्ढाम्	अतृंहन्
मध्यमपुरुष	अतृणेट्	अतृण्ढम्	अतृण्ढ
उत्तमपुरुष	अतृणहम्	अतृंह्व	अतृंह्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	तृंह्यात्	तृंह्याताम्	तृंह्युः
मध्यमपुरुष	तृंह्याः	तृंह्यातम्	तृंह्यात
उत्तमपुरुष	तृंह्याम्	तृंह्याव	तृंह्याम

लृट्—तर्हिष्यति, तर्क्ष्यति।

अञ्ज् (अञ्जू) म्रक्षणे (लेपने); व्यक्तीकरणे च—(१) लेपन करना, तेल लगाना; (२) प्रकाश करना To anoint; to show—अनक्ति। (१) "अनक्ति गात्रं तैलेन जनः"; (२) मा नाञ्जी

राक्षसीर्माया:" भ. ९. ४९. ।

❦ अञ्ज् + णिच्—अञ्जन लगाना ; अञ्जयति; "नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे, न चाभ्यक्तामनावृताम् (पश्येद्भार्य्यां द्विजोत्तमः)" मनु० ४. ४४. । अभि + अञ्ज्—अभ्यङ्गे, तैलादिमर्दने । वि + अञ्ज्—व्यक्तौ, प्रकाशने । अभि + वि + अञ्ज्—अभिव्यक्तौ; प्रकटने । ❦

रुधादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

रुध् (रुधिर्) आवरणे (रोधे)—रुद्ध करना, रोकना

To obstruct, oppose ; to besiege.

("इदं रुणद्धि मां पद्ममन्तःकूजितषट्पदम्" विक्रमो०. ४. २१ ; "रुन्धन्तु* वारणघटा नगरं मदीयाः" मुद्रा० ४. १७. ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति
मध्यमपुरुष	रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध
उत्तमपुरुष	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु
मध्यमपुरुष	रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध
उत्तमपुरुष	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

---

* 'रोत्स्यन्ति' इति पाठान्तरम् ।

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्
मध्यमपुरुष	अरुणत्, अरुणः	अरुन्धम्	अरुन्ध
उत्तमपुरुष	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
मध्यमपुरुष	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उत्तमपुरुष	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

लृट्—रोत्स्यति, रोत्स्यतः, रोत्स्यन्ति ।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
मध्यमपुरुष	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
उत्तमपुरुष	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
मध्यमपुरुष	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
उत्तमपुरुष	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
मध्यमपुरुष	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
मध्यमपुरुष	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उत्तमपुरुष	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

लृट्—रोत्स्यते, रोत्स्येते, रोत्स्यन्ते ।

❧ अनु + रुध्—दिवादिगणीय आत्मनेपदी—अनुवर्त्तने ; अनुरुध्यते ; "सद्वृत्तिमनुरुध्यन्तां भवन्तः" महावीर० २ ; "हन्त तिर्य्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते" उत्तर० ३ ; "वात्सल्यमनुरुध्यन्ते महात्मानः" महावीर० ६ ; "मद्वचनमनुरुध्यते वा भवान् ?" काद० । अव + रुध्—अवरोधे । उप + रुध्—निर्बन्धे ; प्रतिबन्धे ; अवरोधे To besiege ; आच्छादने च । नि + रुध्—निरोधे, नियमने । प्रति + रुध्—प्रतिरोधे । वि + रुध्—कर्मकर्त्तरि—विरोधे (अनैक्ये ; कलहे च) ; विरुध्यते । सम् + रुध्—प्रतिबन्धे ; संयमने च । ❧

भुज् पालने To rule, govern ; to protect.

(भुनक्ति पृथिवीं राजा ।)

(परस्मैपदी)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति
मध्यमपुरुष	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
मध्यमपुरुष	भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उत्तमपुरुष	भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
मध्यमपुरुष	अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उत्तमपुरुष	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

विधिलिङ्—भुञ्ज्यात्, भुञ्ज्याताम्, भुञ्ज्युः ।

लृट्—भोक्ष्यति, भोक्ष्यतः, भोक्ष्यन्ति ।

भुज् अभ्यवहारे (भोजने); उपभोगे (अनुभवे) च-
(१) खाना; (२) भोग करना To eat;
to enjoy; to suffer.

((१) "शयनस्थो न भुञ्जीत" मनु० ४. ७४; (२) "अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्" मनु० ३. ११८;
"वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते"।)

(आत्मनेपदी)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उत्तमपुरुष	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
मध्यमपुरुष	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
मध्यमपुरुष	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
मध्यमपुरुष	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उत्तमपुरुष	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

लृट्—भोक्ष्यते, भोक्ष्येते, भोक्ष्यन्ते।

⚜ उप + भुज्—उपभोगे। परि, सम् + भुज्—सम्भोगे। ⚜

छिद् (छिदिर्) द्वैधीकरणे (छेदने ; नाशने)—(१) काटना ; (२) नष्ट करना To cut ; to destroy.

((१) "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि" गीता. २. २३ ;

(२) "तृष्णां छिन्धि" भर्तृ०।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
मध्यमपुरुष	छिनत्सि	छिन्थः	छिन्थ
उत्तमपुरुष	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
मध्यमपुरुष	छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त
उत्तमपुरुष	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
मध्यमपुरुष	अच्छिनत्, अच्छिनः	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उत्तमपुरुष	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

विधिलिङ्—छिन्द्यात्, छिन्द्याताम्, छिन्द्युः।

लृट्—छेत्स्यति, छेत्स्यतः, छेत्स्यन्ति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
मध्यमपुरुष	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्ध्वे
उत्तमपुरुष	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
मध्यमपुरुष	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्ध्वम्
उत्तमपुरुष	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
मध्यमपुरुष	अच्छिन्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
मध्यमपुरुष	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उत्तमपुरुष	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

लृट्—छेत्स्यते, छेत्स्येते, छेत्स्यन्ते ।

❀ आ+छिद्—आक्रम्य ग्रहणे (छीन लेना); छेदने च । उत्+छिद्—उन्मूलने । परि+छिद्—इयत्तया अवधारणे, निर्णये । वि+छिद्—छेदे, विभागे । ❀

* * * *

भिद् (भिदिर्) विदारणे (भङ्गे, विच्छेदे)—तोड़ना, भेद करना To break, pierce—भिनत्ति, भिन्ते; भेत्स्यति, भेत्स्यते । भिनत्ति भिन्ते कूलं नदी; "तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा?" मुद्रा० २. ३३. ।

❀ कर्मकर्त्तरि—भिन्न होना ; भिद्यते ; "पैशुन्याद्भिद्यते स्नेहः" पञ्च० १. १११. (नश्यति इत्यर्थः) ; "षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः" (प्रकाशते इत्यर्थः) पञ्च० १. १०८.। उत्+भिद्—कर्मकर्त्तरि—उद्गमे, प्रकाशे ; "अद्यापि पक्षावपि नोद्भिद्येते" काद०। निर्+भिद्—भेदने ; प्रकाशने च। प्रति+भिद्—भर्त्सने। सम्+भिद्—मिश्रणे, संश्लेषे। ❀

युज् (युजिर्) योगे (मज्ञतौ)—संयुक्त करना, मिलाना, जोड़ना To join, unite—युनक्ति, युङ्क्ते ; योक्ष्यति, योक्ष्यते। युनक्ति युङ्क्ते घृतेनान्नं लोकः। "यम युनज्मि कालेन" भ० ६. ३७।

❀ 'उत्' और स्वरान्त उपसर्गके योगसे आत्मनेपदी होता है। अनु+युज्—प्रश्ने ; अनुयुङ्क्ते। अभि+युज्—उद्योगे ; आक्रमणे ; अपराधयोजने च ; अभियुङ्क्ते। आ+युज्—संयमने ; आयुङ्क्ते। उत्+युज्—उद्योगे ; उद्युङ्क्ते। उप+युज्—प्रयोगे ; सेवने ; उपभोगे च ; उपयुङ्क्ते। नि+युज्—नियोगे, प्रेरणे, आदेशे ; नियुङ्क्ते। नि+युज्+णिच्—नियोगे ; नियोजयति। प्र+युज्—प्रयोगे ; निर्देशे च ; प्रयुङ्क्ते। वि+युज्—त्यागे ; वियोजने च ; वियुङ्क्ते। सम्+युज्—संयोजने। ❀

रिच् (रिचिर्) विरेचने (शून्यीकरणे)—सूना करना, खाली करना To empty, evacuate, clear—रिणक्ति, रिङ्क्ते ; रेक्ष्यति, रेक्ष्यते। "रिणच्मि जलधेस्तोयम्" भ० ६. ३६ ; "तिमिररिच्यमानं पूर्वदिङ्मुखमालोकयमग्रं दृश्यते" विक्रमो० ३.।

❀ अति+रिच्, वि+अति+रिच्, उत्+रिच्—कर्मकर्त्तरि—

अतिशये ; पञ्चमीके साथ ; "अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते" हितो० ४. १३९ ; "स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते" र० १०. ३० ; "ममैवोद्रिच्यते जन्म—तव जन्मनः" महाभा० । ❦

विच् (विचिर्) पृथक्करणे—अलग करना To separate, discriminate—विनक्ति, विङ्क्ते ; वेक्ष्यति, वेक्ष्यते । वोपदेवमते—ह्वादिगणीयभी होता है ; वेवेक्ति, वेविक्ते ।

❦ वि + विच्—पृथक्करणे ; विचारणे, निर्णये च । ❦

अनुवाद करो—राजा विद्रोहियोंको रुद्ध करता है । अशोकवनमे सीताको अवरुद्ध किया था । राम और लक्ष्मण दोनो भाइयोंने तीन बाणोसे खर-दूषणका मस्तक छेदन किया था । यदि फल चाहो, तो पुष्प मत तोड़ो । नौकरलोग कुठारसे लकड़ी फाड़ते हैं । आदमी आलस्यके कारण दुःख भोगता है । बार-बार भोजन करना नहीं चाहिये । तुम्हारे पुत्रको असत्-सङ्गसे वियुक्त करो । वहां तीन आदमी भेजो । उस कार्य्यमे निरर्थक आदमी नियुक्त मत करो ।

अदादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमे तुदादि और रुधादिके ष्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य यथासम्भव होगा ।]

३१५ । 'अद्'-धातु लङ्के 'द्' और 'स्' मे मिलकर यथाक्रम 'आदत्' और 'आदः' होता है ; यथा—अद् + द् = आदत् ; अद् + स् = आदः ।

३१६ । * शकार, छ और च्छ—परस्थित 'त' और थकारमे मिल-

का यथाक्रम 'ष्ट' और 'ष्ट' होता है ; यथा—वश् + ति = वष्टि ।

३१७। * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, 'वश्'के स्थानमें 'उश्' होता है; यथा—वश् + थः = उष्टः ।

३१८। * य, व और म भिन्न अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'हन्' धातुके नकारका लोप होता है ; और अन्ति, अन्तु तथा अन् परे रहनेसे, 'हन्'के स्थानमें 'घ्न' होता है ; यथा—हन् + तः = हतः ; हन् + अन्ति = घ्नन्ति । हन् + यात् = हन्यात् ; हन् + वः = हन्वः ; हन् + मः = हन्मः ।

३१९। * 'हि'के साथ मिलकर हन्—जहि, अस्—एधि, और शास्—शाधि होता है ; यथा—हन् + हि = जहि ; अस् + हि = एधि ; शास् + हि = शाधि ।

३२०। विधिलिङ्, और लट् लोट्की अगुण विभक्ति परे रहनेसे, 'अस्' धातुके अकारका लोप होता है ; और लट्का 'सि' परे रहनेसे, 'अस्' धातुके सकारका लोप होता है ; यथा—अस् + यात् = स्यात् ; अस् + तः = स्तः ; अस् + ताम् = स्ताम् ; अस् + सि = असि ।

३२१। लङ्के 'द्' और 'स्' परे रहनेसे, 'अस्' धातुके उत्तर 'ई' होता है ; यथा—अस् + द् = आसीत् ; अस् + स् = आसीः ।

३२२। * सगुण लट् आदि चार विभक्ति परे रहनेसे, अदादि और ह्वादिगणीय धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है ; यथा—द्विष् + ति = द्वेष्टि (३११ सूत्रानुसार 'त'के स्थानमें 'ट') ।

३२३। * द्विष्, विद् और आकारान्त धातुके परस्थित 'अन्' विकल्पसे 'उस्' होता है ; यथा—द्विष् + अन् = अद्विषुः, अद्विषन् ।

३२४ । * अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'शास्'के स्थानमे 'शिष्' होता है ; यथा—शास्+तः=शिष्+तः=शिष्टः ।

३२५ । * अभ्यस्त धातुके† परस्थित 'अन्'—'उस्' होता है ; 'उस्' परे अन्त्यस्वरका गुण होता है, और 'अन्ति' तथा 'अन्तु'के नकारका लोप होता है ; यथा—शास्+अन्=अशासुः ; शास्+अन्ति=शासति ।

३२६ । * लङ्का 'द्' परे रहनेसे, धातुके अन्त्य 'स्'के स्थानमे 'त्', और 'स्' परे रहनेसे, विकल्पसे 'त्' होता है ; यथा—चकास्+द्=अचकात् ।

३२७ । * सगुण विभक्ति परे रहनेसे, 'मृज्'के स्थानमे 'मार्ज्' होता है ; और विभक्तिका अगुण स्वर परे, विकल्पसे 'मार्ज्' होता है ; यथा—मृज्+ति=मार्ज्+ति—

३२८ । * त, थ, ध परे रहनेसे, मृज्, सृज्, यज् और असृज् धातुके 'ज्'के स्थानमे मूर्द्धन्य 'ष्' होता है ; यथा—मार्ज्+ति=मार्ष्टि ; मृज्+तः=मृष्टः ; मृज्+हि=मृज्+धि (३०१ सू०)=मृष्+धि=मृड्+धि (३१३ सू०)=मृड्ढि (३११ सू०)।

३२९ । अन्तस्थित 'मृज्' धातुके 'ज्'के स्थानमे 'ट्' अथवा 'ड्' होता है ; यथा—मृज्+द्=अमार्ज्=अमार्ट् अमार्ड् ।

३३० । लट्, लोट्, लङ् विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् और जक्ष् धातुके उत्तर 'इ' होता है ; और 'द्' 'स्'

---

† द्विरुक्त धातु, और जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, चकास्, शास् धातुकी 'अभ्यस्त'-संज्ञा होती है ।

परे 'ई' अथवा 'अ' होता है ; यथा—रुद् + ति = रोदिति (३२२सू०) रुद् + द् = अरोदीत्, अरोदत् ।

३३१ । ति, सि, मि, तु, द्, स् परे रहनेसे, 'ब्रू' धातुके उत्तर 'ई' होता है ; और वह 'ई' परे रहनेसे, गुण होता है ; यथा—ब्रू + ति = ब्रवीति ।

३३२ । * अगुण स्वर परे रहनसे, धातुके इवर्णके स्थानमे 'इय्', और उवर्णके स्थानमे 'उव्' होता है : यथा—अधि + इ + आते = अधि + इय् + आते = अधीयाते ; ब्रू + अन्ति = ब्रुवन्ति ।

३३३ । ऐ, आवहै, आमहै परे रहनेसे, 'सू' धातुके 'ऊ'के स्थानमे 'उव्' होता है ; यथा—सू + ऐ = सुवै ।

३३४ । * दुहादि धातुका 'ह' परस्थित 'त', 'थ' और धकारमे मिलकर 'ग्ध' होता है ; और 'स' 'ध्व' परे रहनेसे, अथवा कोई वर्ण परे न रहनेसे, आदिस्थित 'द'के स्थानमे 'ध', और अन्तस्थित 'ह'के स्थानमे 'क' होता है ; यथा—दुह् + ति = दोग्धि ; दुह् + सि = धोक्षि ; दुह् + द् = अदोह् = अधोक् ।

३३५ । चतुर्लकारमे 'शी' धातुका गुण होता है ; और 'अन्ते,' 'अन्ताम्', 'अन्त' विभक्ति परे रहनेसे, 'शी' धातुके उत्तर 'र' होता है ; यथा—शी + ते = शेते ; शी + अन्ते = शेरते (२८० सू०) ।

३३६ । त, थ, ध, स परे रहनेसे, 'चक्ष्'के स्थानमे 'चष्' होता है ; यथा—चक्ष् + ते = चष्टे ।

३३७ । लट्, लोट्, लङ्के 'स' 'ध' परे रहनेमे, 'ईश्' और 'ईड्' धातुके उत्तर 'इ' होता है ; यथा—ईश् + से = ईशिषे ; ईड् +

से=ईडिषे।

३३८। * अगुण व्यञ्जनवर्ण परे, 'दरिद्रा' धातुके 'आ' के स्थानमे 'इ' होता है; और 'अम्' भिन्न विभक्तिका स्वर परे रहनेसे, 'दरिद्रा' धातुके आकारका लोप होता है; यथा—दरिद्रा+तः=दरिद्रितः; दरिद्रा+अन्ति=दरिद्रति।

३३९। अगुण स्वर परे रहनेसे, 'इण्' धातुके 'इ'के स्थानमे 'य्' होता है; यथा—इ+अन्ति=यन्ति।

३४०। ति, सि, मि, तु, द्, स् परे रहनेसे, 'रु' और 'स्तु' धातुके उत्तर विकल्पसे 'ई' होता है, और 'ई' परे गुण होता है; पक्षे वृद्धि होती है; यथा—रु+ति=रवीति, रौति।

अदादि।

सकर्मक परस्मैपदी धातु।

अद् भक्षणे—खाना To eat

(फलगत्ति विहङ्गमः।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
मध्यमपुरुष	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उत्तमपुरुष	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अद्धि	अत्तम्	अत्त
उत्तमपुरुष	अदानि	अदाव	अदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आदत्	आत्ताम्	आदन्
मध्यमपुरुष	आदः	आत्तम्	आत्त
उत्तमपुरुष	आदम्	आद्व	आद्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
मध्यमपुरुष	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उत्तमपुरुष	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लृट्--अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति ।

हन् हिंसायाम् (प्रहारे, ताडने ; त्यागे च)—(१) वध करना, विनष्ट करना ; (२) मारना, पीटना ; (३) छोड़ना To kill, destroy ; to strike, beat ; to abandon.

((१) मृगं घ्नन्ति मृगाविधः ; (२) "निशितेन कुम्भे जघान" र० ९. ६० ; (३) "मा धर्मं जहि" महाभा० ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
मध्यमपुरुष	हसि	हथः	हथ
उत्तमपुरुष	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
मध्यमपुरुष	जहि	हतम्	हत
उत्तमपुरुष	हनानि	हनाव	हनाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
मध्यमपुरुष	अहन्	अहतम्	अहत
उत्तमपुरुष	अहनम्	अहन्व	अहन्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
मध्यमपुरुष	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उत्तमपुरुष	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लृट् —हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति।

❀ अप + हन्—ध्वंसने, दूरीकरणे। अभि + हन्—आघाते, प्रहारे; वादने च। अव + हन्—कण्डने। आ + हन्—आघाते, प्रहारे; वादने च;—अपना कोई अङ्ग-प्रत्यङ्ग कर्म होनेसे 'आ + हन्' आत्मनेपदी होता है; "आहते स्वं वक्षः"। वि + आ + हन्—व्याघाते, प्रतिबन्धे। उप + हन्—प्रहारे; नाशने च। नि + हन्—विनाशे; आघाते; वादने च। वि + हन्—विनाशे; प्रतिबन्धे च। सम् + हन्—सङ्घाते, योगे। ❀

द्विष् अप्रीतौ (द्वेषे, निन्दायाम्, विरोधे)—द्वेष करना, वैर करना, नफ़रत करना To hate,

, dislike, be hostile towards.

(धातुपाठे—उभयपदी। "द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्" कु० ५. ७५.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	द्वेष्टि	द्विष्टः	द्विषन्ति
मध्यमपुरुष	द्वेक्षि	द्विष्ठः	द्विष्ठ
उत्तमपुरुष	द्वेष्मि	द्विष्वः	द्विष्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	द्वेष्टु	द्विष्टाम्	द्विषन्तु
मध्यमपुरुष	द्विड्ढि	द्विष्टम्	द्विष्ट
उत्तमपुरुष	द्वेषाणि	द्वेषाव	द्वेषाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अद्वेट्	अद्विष्टाम्	अद्विषुः, अद्विषन्
मध्यमपुरुष	अद्वेट्	अद्विष्टम्	अद्विष्ट
उत्तमपुरुष	अद्वेषम्	अद्विष्व	अद्विष्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	द्विष्यात्	द्विष्याताम्	द्विष्युः
मध्यमपुरुष	द्विष्याः	द्विष्यातम्	द्विष्यात
उत्तमपुरुष	द्विष्याम्	द्विष्याव	द्विष्याम

लृट्—द्वेक्ष्यति, द्वेक्ष्यतः, द्वेक्ष्यन्ति।

शास् (शासु) अनुशासने (उपदेशे; शासने; आज्ञायाम्)—

(१) शिक्षा देना; (२) पालन करना, हुकूमत करना; (३) आदेश करना To teach; to rule, govern; to order.

((१) द्विकर्मक—"माणवकं धर्मं शास्ति"; "स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्" भा० १. ५; (२) "राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास" र० १४. ८५; (३) "शाधि नः करवाम किम्" कु० ६. २४.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शास्ति	शिष्टः	शासति
मध्यमपुरुष	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ
उत्तमपुरुष	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
मध्यमपुरुष	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उत्तमपुरुष	शासानि	शासाव	शासाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
मध्यमपुरुष	अशात्, अशाः	अशिष्टम्	अशिष्ट
उत्तमपुरुष	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	शिष्या	शिष्यातम्	शिष्यात
उत्तमपुरुष	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

लृट्—शासिष्यति, शासिष्यत , शासिष्यन्ति।

❀ अनु+शास्—उपदेशे, आदेश दण्डने च। प्र+शास्—'शास' वत्। ❀

मृज् (मृजू) शुद्धीकरणे (मार्जने)—साफ करना, पोंछना To wipe or wash off, cleanse.

("त्वदलवान् ममार्ज" माघ० ३ ७९, "दोषप्रवा दममृजन्" माघ० ५, २८,।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मार्ष्टि	मृष्ट	मृजन्ति, मार्जन्ति
मध्यमपुरुष	मार्क्षि	मृष्ट	मृष्ट
उत्तमपुरुष	मार्ज्मि	मृज्व	मृज्म

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मार्ष्टु	मृष्टाम्	मृजन्तु, मार्जन्तु
मध्यमपुरुष	मृड्ढि	मृष्टम्	मृष्ट
उत्तमपुरुष	मार्जानि	मार्जाव	मार्जाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अमार्ट्	अमृष्टाम्	अमृजन, अमार्जन्
मध्यमपुरुष	अमार्ट्	अमृष्टम्	अमृष्ट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अमार्जम्	अमृज्व	अमृज्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	मृज्यात्	मृज्याताम्	मृज्युः
मध्यमपुरुष	मृज्याः	मृज्यातम्	मृज्यात
उत्तमपुरुष	मृज्याम्	मृज्याव	मृज्याम

लृट्—मार्जिष्यति मार्क्ष्यति, मार्जिष्यतः
मार्क्ष्यतः, मार्जिष्यन्ति मार्क्ष्यन्ति।

वश् इच्छायाम्—कामना करना To desire, long for.

("निःस्वो वष्टि शतं, शती दशशतम्" शान्तिशतकम्;
"अमी हि वीर्य्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्य-
मुशन्ति देवाः" कु० ३. १९. ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वष्टि	उष्टः	उशन्ति
मध्यमपुरुष	वक्षि	उष्ठः	उष्ठ
उत्तमपुरुष	वश्मि	उश्वः	उश्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	वष्टु	उष्टाम्	उशन्तु
मध्यमपुरुष	उड्ढि	उष्टम्	उष्ट
उत्तमपुरुष	वशानि	वशाव	वशाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवट्	औष्टाम्	औशन्
मध्यमपुरुष	अवट्	औष्टम्	औष्ट
उत्तमपुरुष	अवशम्	औश्व	औश्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	उश्यात्	उश्याताम्	उश्युः
मध्यमपुरुष	उश्याः	उश्यातम्	उश्यात
उत्तमपुरुष	उश्याम्	उश्याव	उश्याम

लृट्—वशिष्यति।

वच् परिभाषणे (कथने)—कहना To say, speak.

("हितं मितञ्च यो वक्ति"।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वक्ति	वक्तः	* * †
मध्यमपुरुष	वक्षि	वक्थः	वक्थ
उत्तमपुरुष	वच्मि	वच्वः	वच्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	वक्तु	वक्ताम्	वचन्तु
मध्यमपुरुष	वग्धि	वक्तम्	वक्त
उत्तमपुरुष	वचानि	वचाव	वचाम

† अयम् 'अन्ति'-परो न प्रयुज्यते ; बहुवचनपर इत्यन्ये।

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवक्	अवक्ताम्	अवचन्
मध्यमपुरुष	अवक्	अवक्तम्	अवक्त
उत्तमपुरुष	अवचम्	अवच्व	अवच्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	वच्यात्	वच्याताम्	वच्युः
मध्यमपुरुष	वच्याः	वच्यातम्	वच्यात
उत्तमपुरुष	वच्याम्	वच्याव	वच्याम

लृट्—वक्ष्यति, वक्ष्यतः, वक्ष्यन्ति।

❀ निर्+वच्—निरुक्तौ, व्याख्यायाम्। प्र+वच्—कथने, वर्णने। प्रति+वच्—प्रतिवचने। ❀

विद् ज्ञाने—जानना To know.*

("विद्धि व्याधिव्यालग्रस्तम्

लोकं शोकहतञ्च समस्तम्।" मोहमुद्गरः।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति

* "सत्तायां विद्यते, ज्ञाने वेत्ति, विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ, श्यन्-लुक्-श्नम्-शेष्विदं क्रमात्॥"
"वेत्ति सर्वाणि शास्त्राणि, गर्वस्तस्य न विद्यते।
विन्ते धर्मं सदा सद्भिः, तेषु पूजाञ्च विन्दति॥"

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
उत्तमपुरुष	वेद्मि	विद्वः	विद्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
मध्यमपुरुष	विद्धि	वित्तम्	वित्त
उत्तमपुरुष	वेदानि	वेदाव	वेदाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः,अविदन्
मध्यमपुरुष	अवेत्, अवेः	अवित्तम्	अवित्त
उत्तमपुरुष	अवेदम्	अविद्व	अविद्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
मध्यमपुरुष	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
उत्तमपुरुष	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

लृट्—वेदिष्यति, वेदिष्यतः, वेदिष्यन्ति।

विद् धातुके लट् और लोट्में और एकप्रकार रूप होते हैं; यथा—

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेद	विदतुः	विदुः
मध्यमपुरुष	वेत्थ	विदथुः	विद
उत्तमपुरुष	वेद	विद्व	विद्म

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विदाङ्करोतु	विदाङ्कुरुताम्	विदाङ्कुर्वन्तु
मध्यमपुरुष	विदाङ्कुरु	विदाङ्कुरुतम्	विदाङ्कुरुत
उत्तमपुरुष	विदाङ्करवाणि	विदाङ्करवाव	विदाङ्करवाम

❀ आ + विद् + णिच्—आवेदने, ज्ञापने ; आवेदयति । नि + विद् + णिच्—निवेदने, ज्ञापने ; उत्सर्गे च । ❀

इ (इण्) गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना ; (२) पाना To go to, come to or near ; to obtain, attain to.

((१) "शशिनं पुनरेति शर्वरी" र० ८. ५६ ; (२) "निर्बुद्धिः क्षयमेति" मृच्छ० १. १४. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	एति	इतः	यन्ति
मध्यमपुरुष	एषि	इथः	इथ
उत्तमपुरुष	एमि	इवः	इमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	एतु	इताम्	यन्तु
मध्यमपुरुष	इहि	इतम्	इत
उत्तमपुरुष	अयानि	अयाव	अयाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	ऐत्	ऐताम्	आयन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	ऐः	ऐतम्	ऐत
उत्तमपुरुष	आयम्	ऐव	ऐम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	इयात्	इयाताम्	इयुः
मध्यमपुरुष	इयाः	इयातम्	इयात
उत्तमपुरुष	इयाम्	इयाव	इयाम

लृट्—एष्यति, एष्यतः, एष्यन्ति।

❀ अति + इ, वि + अति + इ—अतिक्रमे। अनु + इ—अनुगमने; अन्वये च। अप + इ—अपगमे, क्षये। वि + अप + इ—व्यपगमे, निवृत्तौ। अभि + इ—अभिमुखगतौ; प्राप्तौ च। अव + इ—ज्ञाने। सम् + अव + इ—समवाये, मिलने (मेलने वा), संयोगे। आ + इ—आगमने, प्राप्तौ; ऐति। उत् + इ—उदये, उद्गमने, उद्गमे। अभि + उत् + इ—उदये; उन्नतौ च। उप + इ—समीपगमने; प्राप्तौ च। अभि + उप + इ—उपस्थितौ; स्वीकारे च। परा + इ—पलायने; प्राप्तौ च। परि + इ—प्रदक्षिणीकरणे; वेष्टने च। वि + परि + इ—विपर्य्यये, वैपरीत्ये, अन्यथाभावे। प्र + इ—परलोकगतौ, मरणे। अभि + प्र + इ—अभिप्राये, आशये (इच्छा करना, इरादा करना, मक़सद रखना)। प्रति + इ—प्रतीतौ, ज्ञाने, विश्वासे; प्रतिगमने च। ❀

अनुवाद करो—देखो, एक हरिण निविष्टचित्तसे घास खा रहा है। निरपराध जन्तुओंका (द्वितीया) हनन करना नहीं चाहिये। व्यर्थ मुझे मत मारो। असुर स्वभावसेही देवताओंके प्रति द्वेष करते हैं। दुष्टका

(द्वितीया) शासन करो। विडाल भोजनके पश्चात् मुख मार्जन करता है। जो आत्माका तत्त्व अच्छे प्रकारसे जानता है, वह अनायास मुक्त होता है। आत्मज्ञानकोही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ जानना। आओ, चलें।

अदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु।

अस् सत्तायाम् (विद्यमानतायाम्, स्थितौ)—रहना

To be, exist.

("नास्त्यगतिर्मनोरथानाम्" विक्रमो०।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यमपुरुष	असि	स्थः	स्थ
उत्तमपुरुष	अस्मि	स्वः	स्मः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
मध्यमपुरुष	एधि	स्तम्	स्त
उत्तमपुरुष	असानि	असाव	असाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
मध्यमपुरुष	आसीः	आस्तम्	आस्त
उत्तमपुरुष	आसम्	आस्व	आस्म

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यात्	स्याताम्	स्युः
मध्यमपुरुष	स्याः	स्यातम्	स्यात
उत्तमपुरुष	स्याम्	स्याव	स्याम

लृट्—भविष्यति।

रुदादि* ।

रुद् (रुदिर्) अश्रुविमोचने (रोदने)—रोना

To cry, weep, lament.

(अश्रुविमोचनमात्रेऽकर्मकः—रोदिति लोकः शोकात्। आह्वानविशिष्ट-रोदने तु सकर्मक.—"नामग्राहमरोदीत् सा भ्रातरौ" भ० ५. ९.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
मध्यमपुरुष	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उत्तमपुरुष	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु

* रोदितिः स्वपितिश्चैव श्वसितिः प्राणितिस्तथा।
जक्षितिश्चैव विज्ञेयो रुदादि पञ्चको गण ॥

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उत्तमपुरुष	रोदानि	रोदाव	रोदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अरोदीत् अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
मध्यमपुरुष	अरोदीः अरोदः	अरुदितत्	अरुदित
उत्तमपुरुष	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
मध्यमपुरुष	रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
उत्तमपुरुष	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

लृट्—रोदिष्यति, रोदिष्यतः, रोदिष्यन्ति ।

स्वप् (ञिष्वप्) शयने (निद्रायाम्)—सोना To sleep.

("गुणानामेव दौरात्म्याद्धुरि धुर्यो नियुज्यते । असञ्जातकिणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गडिः ॥" काव्यप्रकाशः १०. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
मध्यमपुरुष	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
मध्यमपुरुष	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उत्तमपुरुष	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अस्वपीत् / अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
मध्यमपुरुष	अस्वपीः / अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
उत्तमपुरुष	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
मध्यमपुरुष	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उत्तमपुरुष	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

लृट्—स्वप्स्यति, स्वप्स्यतः, स्वप्स्यन्ति।

श्वस् प्राणने (श्वासे ; जीवने)—दम लेना ; जीना To breathe, respire, draw breath ; to live.

("क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।" र० ८. ८७.।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	श्वसिति	श्वसितः	श्वसन्ति
मध्यमपुरुष	श्वसिषि	श्वसिथः	श्वसिथ
उत्तमपुरुष	श्वसिमि	श्वसिवः	श्वसिमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	श्वसितु	श्वसिताम्	श्वसन्तु
मध्यमपुरुष	श्वसिहि	श्वसितम्	श्वसित
उत्तमपुरुष	श्वसानि	श्वसाव	श्वसाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अश्वसीत्, अश्वसत्	अश्वसिताम्	अश्वसन्
मध्यमपुरुष	अश्वसीः, अश्वसः	अश्वसितम्	अश्वसित
उत्तमपुरुष	अश्वसम्	अश्वसिव	अश्वसिम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	श्वस्यात्	श्वस्याताम्	श्वस्युः
मध्यमपुरुष	श्वस्याः	श्वस्यातम्	श्वस्यात
उत्तमपुरुष	श्वस्याम्	श्वस्याव	श्वस्याम

लृट्—श्वसिष्यति, श्वसिष्यतः, श्वसिष्यन्ति ।

❀ आ + श्वस्, सम् + आ + श्वस्—आश्वासे, सान्त्वनायाम् ।

उद्+श्वस्—उच्छ्वासे (बहिर्मुखश्वासे ; अन्तर्मुखश्वासे इत्यन्ये)। नि+श्वस्, निर्+श्वस्—निश्वासे (अन्तर्मुखश्वासे ; बहिर्मुखश्वासे इत्यन्ये)। वि+श्वस्—विश्वासे ; प्रायः सप्तमीके साथ ; "पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी ?" नै० ५. ११०.। ❀

प्र+अन्—प्राणने (श्वासत्यागे ; जीवने)—साँस छोड़ना ; जीता रहना To respire ; to live, be alive.

("कथमसौ क्षीणा क्षणं प्राणिति ?" गीतगो० ४. २१.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	प्राणिति	प्राणतः	प्राणन्ति
मध्यमपुरुष	प्राणिषि	प्राणिथः	प्राणिथ
उत्तमपुरुष	प्राणिमि	प्राणिवः	प्राणिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	प्राणितु	प्राणिताम्	प्राणन्तु
मध्यमपुरुष	प्राणिहि	प्राणितम्	प्राणित
उत्तमपुरुष	प्राणानि	प्राणाव	प्राणाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	प्राणीत्, प्राणत्	प्राणिताम्	प्राणन्
मध्यमपुरुष	प्राणीः, प्राणः	प्राणितम्	प्राणित
उत्तमपुरुष	प्राणम्	प्राणिव	प्राणिम

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	प्राण्यात्	प्राण्याताम्	प्राण्युः
मध्यमपुरुष	प्राण्याः	प्राण्यातम्	प्राण्यात
उत्तमपुरुष	प्राण्याम्	प्राण्याव	प्राण्याम

लृट्—प्राणिष्यति, प्राणिष्यतः, प्राणिष्यन्ति ।

जक्षादि ।*

जक्ष् भक्षणे—खाना To eat.

(सकर्मक—"जक्षिमोऽनपराधेऽपि नरान्" भ० ४. ३९. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जक्षिति	जक्षितः	जक्षति
मध्यमपुरुष	जक्षिषि	जक्षिथः	जक्षिथ
उत्तमपुरुष	जक्षिमि	जक्षिवः	जक्षिमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जक्षितु	जक्षिताम्	जक्षतु
मध्यमपुरुष	जक्षिहि	जक्षितम्	जक्षित
उत्तमपुरुष	जक्षाणि	जक्षाव	जक्षाम

---

* जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, चकास्, शास् ।

जक्ष जागृ दरिद्रा च चकास्तिः शास्तिरेव च ।

दीधी वेवी च विज्ञेयो जक्षादिः सप्तको गणः ॥

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजक्षीत् अजक्षत्	अजक्षिताम्	अजक्षुः
मध्यमपुरुष	अजक्षीः अजक्षः	अजक्षितम्	अजक्षित
उत्तमपुरुष	अजक्षम्	अजक्षिव	अजक्षिम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	जक्ष्यात्	जक्ष्याताम्	जक्ष्युः
मध्यमपुरुष	जक्ष्याः	जक्ष्यातम्	जक्ष्यात
उत्तमपुरुष	जक्ष्याम्	जक्ष्याव	जक्ष्याम

लृट्—जक्षिष्यति।

जागृ निद्राक्षये (जागरणे)—जागना To be awake.

("दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति, दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः" मनु० ७. १८. ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जागर्त्ति	जागृतः	जाग्रति
मध्यमपुरुष	जागर्षि	जागृथः	जागृथ
उत्तमपुरुष	जागर्मि	जागृवः	जागृमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जागर्त्तु	जागृताम्	जाग्रतु
मध्यमपुरुष	जागृहि	जागृतम्	जागृत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जागराणि	जागराव	जागराम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अजागः	अजागृताम्	अजागरुः
मध्यमपुरुष	अजागः	अजागृतम्	अजागृत
उत्तमपुरुष	अजागरम्	अजागृव	अजागृम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	जागृयात्	जागृयाताम्	जागृयुः
मध्यमपुरुष	जागृयाः	जागृयातम्	जागृयात
उत्तमपुरुष	जागृयाम्	जागृयाव	जागृयाम

लृट्—जागरिष्यति ।

चकास् (चकासृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—चमकना

To shine, be bright.

("गण्डश्चण्डि ! चकास्ति नीलनलिनीश्रीमोचनं लोचनम्"
गीतगो० १०. १४ ; "चकास्ति योग्येन हि
योग्यसङ्गमः" नै० ६. ९६. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकास्ति	चकास्तः	चकासति
मध्यमपुरुष	चकास्सि	चकास्थः	चकास्थ
उत्तमपुरुष	चकास्मि	चकास्वः	चकास्मः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकास्तु	चकास्ताम्	चकासतु
मध्यमपुरुष	चकाधि, चकाद्धि	चकास्तम्	चकास्त
उत्तमपुरुष	चकासानि	चकासाव	चकासाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अचकात्	अचकास्ताम्	अचकासुः
मध्यमपुरुष	अचकात्, अचकाः	अचकास्तम्	अचकास्त
उत्तमपुरुष	अचकासम्	अचकास्व	अचकास्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	चकास्यात्	चकास्याताम्	चकास्युः
मध्यमपुरुष	चकास्याः	चकास्यातम्	चकास्यात
उत्तमपुरुष	चकास्याम्	चकास्याव	चकास्याम

लृट्—चकासिष्यति।

अदादि आकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु।

पा रक्षणे (पालने)—रक्षा करना To protect.

("अधर्मान्मां पाहि" महाभा०।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पाति	पातः	पान्ति
मध्यमपुरुष	पासि	पाथः	पाथ
उत्तमपुरुष	पामि	पावः	पामः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पातु	पाताम्	पान्तु
मध्यमपुरुष	पाहि	पातम्	पात
उत्तमपुरुष	पानि	पाव	पाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपात्	अपाताम्	अपुः, अपान्
मध्यमपुरुष	अपाः	अपातम्	अपात
उत्तमपुरुष	अपाम्	अपाव	अपाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पायात्	पायाताम्	पायुः
मध्यमपुरुष	पायाः	पायातम्	पायात
उत्तमपुरुष	पायाम्	पायाव	पायाम

लृट्—पास्यति ।

⚜ प्रति + पा + णिच्—(१) प्रतिपालने, रक्षणे ; (२) प्रतीक्षायाञ्च ; प्रतिपालयति ; "अन्यासक्तो देवः, तदवसरं प्रतिपालयामि" शकु० ५ ; "प्रतिपालय माम्, यावदुपसर्पामि" वेणी० ६. । ⚜

* * * *

ख्या कथने—कहना To tell, declare—ख्याति ; ख्यास्यति ।

"ख्याति साधुः कथां हरेः" ।

⚜ ख्या + णिच्, अभि + ख्या + णिच्—ख्यापने, विज्ञापने, प्रकाशने ; ख्यापयति । आ + ख्या—कथने, वर्णने । उप + आ + ख्या—

वर्णने । प्रति + आ + ख्या—निराकरणे ; अस्वीकारे । वि + आ + ख्या—व्याख्यायाम्, विवरणे । सम् + ख्या—गणनायाम् । ❀

मा माने (परिमाणे)—नापना To measure—माति ; मास्यति । माति भूमिं नरेन्द्र राजा । "न माति मानिनो यस्य यशस्त्रिभुवनोदरे" ; "तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः" माघ० १. २३.—इत्यादिषु अन्तर्भावार्थं अकर्मकः ; न माति—न परिमाण गच्छति, अतिरिच्यते इत्यर्थः (नहीं समाता Is not contained or comprised in, does not find room or space in) ।

❀ अनु + मा—अनुमाने । उप + मा—उपमाने । निर् + मा—निर्माणे ; "निर्माति यः पर्वणि पूर्णमिन्दुम्" नै० ३. ३२. । परि + मा—परिमाणे ; "उदरं परिमाति मुष्टिना" नै० २. ३९. । प्र + मा—प्रमायाम्, निश्चयज्ञाने । ❀

या गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना ; (२) पाना To go; to attain to—याति ; यास्यति । (१) "ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्" र० ३ २५ ; (२) "सुखात् तु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृत स जीवति" मृच्छ० १. १०. ।

❀ या + णिच्—अतिवाहने, क्षपणे ; यापयति । अति + या—अतिक्रमे । अनु + या—अनुवर्त्तने ; अनुकरणे, सादृश्ये ; सहगमने च । अप + या—पलायने । अभि + या—समीपगमने ; आक्रमणे च । आ + या—आगमने ; प्राप्तौ च । उत् + या—उत्थाने, उन्नतौ ; उत्पत्तौ च । प्रति + उत् + या—प्रत्युद्गमने, सम्मानार्थं पुरोगमने ।

प्र + या—प्रयाणे, गमने, प्रस्थाने । ⚜

रा दाने—देना To bestow—राति ; रास्यति । "न राति रोगिणेऽपथ्यं वाञ्छतेऽपि भिषक्तमः" ।

ला आदाने (ग्रहणे)—लेना To take, receive—लाति ; लास्यति । "लुलुः खड्गान्" भ० १४. ९२. ।

अदादि आकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

द्रा पलायने—भागना To run away—द्राति ; द्रास्यति ।

⚜ नि + द्रा—निद्रायाम् । ⚜

भा दीप्तौ (शोभायाम् ; प्रकाशे)—चमकना ; ज़ाहिर होना To shine; to seem, appear—भाति ; भास्यति । "तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः" उद्भटः ; "बुभुक्षितं न प्रति भाति किञ्चित्" महाभा० ।

⚜ आ + भा, प्रति + भा—शोभायाम् ; स्फुरणे, प्रकाशे, अवभासे च । ⚜

वा गतौ (वायोर्गतौ)—हवा चलना To blow—वाति ; वास्यति । वाति वायुः ।

⚜ निर् + वा—निर्वाणे (शीतलतायाम्, शान्तौ, निर्वृतौ) ; "निरवात् कृशानुः" राघवपाण्डवीयम् ८. ४२ ; "तस्य वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ" माघ० १. ६५. । निर् + वा + णिच्—निर्वापणे (ठण्डा करना, बुझाना) ; निर्वापयति । ⚜

स्ना शौचे (स्नाने)—नहाना To bathe—स्नाति ; स्नास्यति । "स्नाति गङ्गाजलैर्नित्यम्" ; "मृगतृष्णाम्भसि स्नातः" ।

दरिद्रा दुर्गतौ (क्लेशेनावस्थाने, अकिञ्चनीभावे)—दरिद्र होना To be poor or needy—(लट्) दरिद्राति, दरिद्रितः, दरिद्रति; (लोट्) दरिद्रातु, दरिद्रिताम्, दरिद्रतु; (लङ्) अदरिद्रात्, अदरिद्रिताम्, अदरिद्रुः; (लृट्) दरिद्रिष्यति। "उपर्य्युपरि पश्यन्तः सर्वं एव दरिद्रति" हितो० २. २.।

अदादि उकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु।

णु (णु) स्तुतौ—स्तव करना, प्रशंसा करना
To praise, extol.
("सास्वती तन्मिथुनं नुनाव" कु० ७. ९०.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	नौति	नुतः	नुवन्ति
मध्यमपुरुष	नौषि	नुथः	नुथ
उत्तमपुरुष	नौमि	नुवः	नुमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	नौतु	नुताम्	नुवन्तु
मध्यमपुरुष	नुहि	नुतम्	नुत
उत्तमपुरुष	नवानि	नवाव	नवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अनौत्	अनुताम्	अनुवन्
मध्यमपुरुष	अनौः	अनुतम्	अनुत
उत्तमपुरुष	अनवम्	अनुव	अनुम

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	नुयात्	नुयाताम्	नुयुः
मध्यमपुरुष	नुयाः	नुयातम्	नुयात
उत्तमपुरुष	नुयाम्	नुयाव	नुयाम

लृट्—नविष्यति, नोष्यति ।

अदादि उकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

क्षु (टुक्षु) शब्दे (क्षुते)—छींकना To sneeze—क्षौति ; क्षविष्यति । क्षौति कफी ।

रु शब्दे (रवे)—आवाज़ करना To sound; to hum (as bees)—रौति रवीति, रुतः रुवीतः, रुवन्ति ; रविष्यति रोष्यति । "कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्" हितो० १. ८२. ।

अदादि सकर्मक आत्मनेपदी ।

'अधि'-पूर्वक इ (अधीङ्) अध्ययने—पढ़ना

To read, study.

(अध्यापकाद्व्याकरणमधीते ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधीते	अधीयाते	अधीयते
मध्यमपुरुष	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उत्तमपुरुष	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
मध्यमपुरुष	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उत्तमपुरुष	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
मध्यमपुरुष	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उत्तमपुरुष	अध्ययि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
मध्यमपुरुष	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उत्तमपुरुष	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
मध्यमपुरुष	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उत्तमपुरुष	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

सू (षूङ्) प्रसवे (जनने, उत्पादने)—जनना, पैदा करना To bring forth, produce.

(विहलता पल्लवं सूते ; "कीर्त्तिं सूते सूनृता वाक्"।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सूते	सुवाते	सुवते
मध्यमपुरुष	सूषे	सुवाथे	सूध्वे
उत्तमपुरुष	सुवे	सूवहे	सूमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	सूताम्	सुवाताम्	सुवताम्
मध्यमपुरुष	सूष्व	सुवाथाम्	सूध्वम्
उत्तमपुरुष	सुवै	सुवावहै	सुवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	असूत	असुवाताम्	असुवत
मध्यमपुरुष	असूथाः	असुवाथाम्	असूध्वम्
उत्तमपुरुष	असुवि	असूवहि	असूमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्
मध्यमपुरुष	सुवीथाः	सुवीयाथाम्	सुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	सुवीय	सुवीवहि	सुवीमहि

लृट्—सविष्यते, सोष्यते ।

अनुवाद करो—सुख दुःख निरन्तर जाता आता है । नदीके तटमे वृक्षावली शोभा पाती है । मै तुझे विपदूसे रक्षा करूंगा । उस दिन मैने गङ्गामे स्नान किया था । जो सबके मङ्गलकी (द्वितीया) कामना करते हैं, सर्वान्तःकरणसे उनकी (द्वितीया) प्रशंसा करनी चाहिये । भक्तगण

भक्तिभरसे महामायाकी स्तुति करते हैं। गङ्गादेवीने महात्मा भीष्मको (द्वितीया) प्रसन्न किया था। उनके अनुग्रहसे हम जीते हैं। दूतके मुखसे सीताका जनापवाद सुनकर (श्रुत्वा) रामने दीर्घ निश्वास छोड़ा। लड़के! तुमलोग कलह मत करो।

चक्ष् (चक्षिङ्) कथने—कहना To speak, tell.

(प्रायेणायम् 'आङ्'-पूर्वः—आचष्टे धर्मं धीरः।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चष्टे	चक्षाते	चक्षते
मध्यमपुरुष	चक्षे	चक्षाथे	चड्ढ्वे
उत्तमपुरुष	चक्षे	चक्ष्वहे	चक्ष्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	चष्टाम्	चक्षाताम्	चक्षताम्
मध्यमपुरुष	चक्ष्व	चक्षाथाम्	चड्ढ्वम्
उत्तमपुरुष	चक्षै	चक्षावहै	चक्षामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अचष्ट	अचक्षाताम्	अचक्षत
मध्यमपुरुष	अचष्ठाः	अचक्षाथाम्	अचड्ढ्वम्
उत्तमपुरुष	अचक्षि	अचक्ष्वहि	अचक्ष्महि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	चक्षीत	चक्षीयाताम्	चक्षीरन्
मध्यमपुरुष	चक्षीथाः	चक्षीयाथाम्	चक्षीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	चक्षीय	चक्षीवहि	चक्षीमहि

लृट्—ख्यास्यति, ख्यास्यते ; क्शास्यति, क्शास्यते ।

प्रति + आ + चक्ष्—प्रत्याख्याने, अस्वीकारे । वि + आ + चक्ष्—व्याख्याने, विवरणे । प्र, परि + चक्ष्—कीर्त्तने, कथने ।

*　　*　　*　　*

ईड् स्तुतौ—स्तव करना To praise—(लट्) ईट्टे, ईडाते, ईडते ; ईडिषे, ईडाथे, ईडिध्वे ; ईडे, ईडिवहे, ईडिमहे । (लृट्) ईडिष्यते । "तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे" शङ्करः ।

ईश् ऐश्वर्य्ये (प्रभुतायाम्)—प्रभु होना, प्रभुत्व करना, हुकूमत करना To rule, be master of, govern, command—(लट्) ईष्टे, ईशाते, ईशते ; ईशिषे, ईशाथे, ईशिध्वे ; ईशे, ईश्वहे, ईश्महे । (लङ्) ऐष्ट, ऐशाताम्, ऐशत ; ऐष्ठाः, ऐशाथाम्, ऐशिध्वम् ; ऐशि, ऐश्वहि, ऐश्महि । (विधि) ईशीत । (लृट्) ईशिष्यते । प्रायः षष्ठीके साथ प्रयुक्त होता है ; "नायं गात्राणामीष्टे" काद० ; "अर्थानामीशिषे त्वं, वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम्" भर्त्तृ० ।—(२) सामर्थ्ये (सकना) ; "माधुर्य्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम्" र० १८. १३ ; "न तव सोढुमीशे" र० १४. ३८ ; "कमिवेशते रमयितुं न गुणाः ?" भा० ६. २४. ।

वस् आच्छादने (परिधाने)—पहरना To put on—वस्ते, वसाते, वसते ; वस्से, वसाथे, वध्वे ; वसे, वस्वहे, वस्महे । वसिष्यते । "वसने परिधूसरे वसाना" शकु० ७. २१. ।

आङ्+शास् (शाङ) इच्छायाम्; आशिषि (इष्टार्थाशंसने) च—(१) चाहना; (२) आशीर्वाद करना To desire; to bless, pronounce or give a blessing—(लट्) आशास्ते, आशासाते, आशासते; आशास्से, आशासाथे, आशाध्वे; आशासे, आशास्वहे, आशास्महे। (लृट्) आशासिष्यते। (१) कुतस्तस्य विजयादन्यत्, यस्य भगवान् पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ?" वेणी० ६; (२) "किमन्यदाशास्महे ? केवलं वीरप्रसवा भूयाः" उत्तर० १.।

(ह्नुङ्) अपनयने (अपह्नवे, गोपने;—चौर्य्यं इति बोपदेवः)—(१) दूर करना; अपहरण करना; (२) छिपाना To take away, deprive (one) of; to conceal, hide—ह्नुते, ह्नुवाते, ह्नुवते; ह्नोष्यते। प्रायेण 'अप'-पूर्वकः, 'नि'-पूर्वकश्चायं प्रयुज्यते।

अप+ह्नु—अपलापे, अस्वीकारे, गोपने। नि+ह्नु—गोपने।

अदादि अकर्मक आत्मनेपदी।

आस् उपवेशने (वासे; स्थितौ; सत्तायाम्)—
(१) बैठना; (२) रहना To sit; to dwell; to remain; to exist.
((१) आस्ते सिंहासने नृपः; (२) "यत्रास्मै रोचते, तत्रायमास्ताम्" काद०; "जगन्ति यस्यां सविकाशमासत" माघ० १. २३; आकाशमास्ते।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	आस्ते	आसाते	आसते
मध्यमपुरुष	आस्से	आसाथे	आद्ध्वे, आध्वे
उत्तमपुरुष	आसे	आस्वहे	आस्महे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
मध्यमपुरुष	आस्स्व	आसाथाम्	आद्ध्वम्, आध्वम्
उत्तमपुरुष	आसै	आसावहै	आसामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आस्त	आसाताम्	आसत
मध्यमपुरुष	आस्थाः	आसाथाम्	आद्ध्वम्, आध्वम्
उत्तमपुरुष	आसि	आस्वहि	आस्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
मध्यमपुरुष	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उत्तमपुरुष	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लृट्—आसिष्यते, आसिष्येते, आसिष्यन्ते ।

❀ अधि + आस्—उपवेशने ; अधिवासे, अधिष्ठाने च ; सकर्मक । अनु + आस्—पश्चादुपवेशने ; उपासनायाञ्च ; सकर्मक । उत् + आस्—उदासीनतायाम्, उपेक्षायाम् । उप + आस्—समीपोपवेशने ; उपासनायाम् ; अनुष्ठाने च—"अग्निहोत्रमुपासते" मनु० ११. ४२. । परि +

दय+आम्–सेवायाम्।

शी (शीङ्) स्वप्ने (शयने)—सोना

To lie down, sleep.

("किं निःशङ्कं शेषे ?
शेषे वयसः समागतो मृत्युः।
अथवा सुखं शयीथा
निकटे जागर्त्ति जाह्नवी जननी ॥"
भामिनी० ४. ३०।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शेते	शयाते	शेरते
मध्यमपुरुष	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उत्तमपुरुष	शये	शेवहे	शेमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
मध्यमपुरुष	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उत्तमपुरुष	शयै	शयावहै	शयामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
मध्यमपुरुष	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उत्तमपुरुष	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
मध्यमपुरुष	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उत्तमपुरुष	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

लृट्—शयिष्यते, शयिष्येते, शयिष्यन्ते ।

❀ अति + शी—अतिक्रमे, अतिवर्त्तने ; सकर्मक । अधि + शी—अधिष्ठाने (सक०) । अनु + शी—अनुशये, अनुतापे (सक०) । सम् + शी—संशये । ❀

अदादि सकर्मक उभयपदी ।

स्तु (ष्टुञ्) स्तुतौ (प्रशंसायाम्)—स्तव करना

To praise, extol, glorify.

("किं निन्दाम्यथवा स्तवानि कथय क्षीरार्णव !
त्वामहम्" भामिनी० १. ४०. ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्तौति, स्तवीति	स्तुतः	स्तुवन्ति
मध्यमपुरुष	स्तौषि, स्तवीषि	स्तुथः	स्तुथ
उत्तमपुरुष	स्तौमि, स्तवीमि	स्तुवः	स्तुमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्तौतु, स्तवीतु	स्तुताम्	स्तुवन्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
उत्तमपुरुष	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अस्तौत्, अस्तवीत्	अस्तुताम्	अस्तुवन्
मध्यमपुरुष	अस्तौः, अस्तवीः	अस्तुतम्	अस्तुत
उत्तमपुरुष	अस्तवम्	अस्तुव	अस्तुम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयुः
मध्यमपुरुष	स्तुयाः	स्तुयातम्	स्तुयात
उत्तमपुरुष	स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम

लृट्—स्तोष्यति ।

(आत्मनेपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्तुते	स्तुवाते	स्तुवते
मध्यमपुरुष	स्तुषे	स्तुवाथे	स्तुध्वे
उत्तमपुरुष	स्तुवे	स्तुवहे	स्तुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्तुताम्	स्तुवाताम्	स्तुवताम्
मध्यमपुरुष	स्तुष्व	स्तुवाथाम्	स्तुध्वम्
उत्तमपुरुष	स्तवै	स्तवावहै	स्तवामहै

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्तुत	अस्तुवाताम्	अस्तुवत
मध्यमपुरुष	अस्तुथाः	अस्तुवाथाम्	अस्तुध्वम्
उत्तमपुरुष	अस्तुवि	अस्तुवहि	अस्तुमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	स्तुवीत	स्तुवीयाताम्	स्तुवीरन्
मध्यमपुरुष	स्तुवीथाः	स्तुवीयाथाम्	स्तुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	स्तुवीय	स्तुवीवहि	स्तुवीमहि

लृट्—स्तोस्यते, स्तोष्येते, स्तोष्यन्ते ।

❀ प्र+स्तु—प्रस्तावे, प्रारम्भे । ❀

ब्रू (ब्रूञ्) कथने—बोलना To tell ; to declare.

("ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजो-

पयोगिताम् ।" नै० २. ४८. ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

प्रथमपुरुष	ब्रवीति, आह*	ब्रूतः, आहतुः	ब्रुवन्ति, आहुः
मध्यमपुरुष	ब्रवीषि, आत्थ	ब्रूथः, आहथुः	ब्रूथ
उत्तमपुरुष	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

* शिष्टप्रयोगमे 'आह'-पद अतीतकालमे प्रयुक्त होता है ; यथा—"अथाह वर्णी" (आह—उवाच इत्यर्थः) कु० ५. ६५.—अत्र टीकायाम् "आहेति भूतार्थे 'लट्'-प्रयोगो भ्रान्तिमूल इत्याह वामनः" इति मल्लिनाथः ।

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
मध्यमपुरुष	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत
उत्तमपुरुष	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
मध्यमपुरुष	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उत्तमपुरुष	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
मध्यमपुरुष	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उत्तमपुरुष	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

लृट्—वक्ष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
मध्यमपुरुष	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उत्तमपुरुष	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
मध्यमपुरुष	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
मध्यमपुरुष	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उत्तमपुरुष	अब्रवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
मध्यमपुरुष	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

लृट्—वक्ष्यते ।

दुह् प्रपूरणे (दोहने, निष्कासने)—(१) दोहना, निकालना ; (२) पूर्ण करना To milk or squeeze out, extract ; to yield or grant (any desired object).

((१) द्विकर्मक—"पयो घटोध्नीरपि गा दुहन्ति" भ० १२. ७३ ; "रत्नानि धरित्रीं दुदुहुः" कु० १. २ ; (२) "कामान् दुग्धे सूनृता वाक्" ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध
उत्तमपुरुष	दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु
मध्यमपुरुष	दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध
उत्तमपुरुष	दोहानि	दोहाव	दोहाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अधोक्	अदुग्धाम्	अदुहन्
मध्यमपुरुष	अधोक्	अदुग्धम्	अदुग्ध
उत्तमपुरुष	अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म

विधिलिङ्—दुह्यात्। लृट्—धोक्ष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दुग्धे	दुहाते	दुहते
मध्यमपुरुष	धुक्षे	दुहाथे	धुग्ध्वे
उत्तमपुरुष	दुहे	दुह्वहे	दुह्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	दुग्धाम्	दुहाताम्	दुहताम्
मध्यमपुरुष	धुक्ष्व	दुहाथाम्	धुग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	दोहै	दोहावहै	दोहामहै

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अदुग्ध	अदुहाताम्	अदुहत
मध्यमपुरुष	अदुग्धाः	अदुहाथाम्	अधुग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अदुहि	अदुह्वहि	अदुह्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	दुहीत	दुहीयाताम्	दुहीरन्
मध्यमपुरुष	दुहीथाः	दुहीयाथाम्	दुहीध्वम्
उत्तमपुरुष	दुहीय	दुहीवहि	दुहीमहि

लृट्—धोक्ष्यते ।

दिह् लेपने ; उपचये (वृद्धौ ; वृद्धिकरणे) च—(१) लीपना ; (२) बढ़ना (अक०) ; बढ़ाना To anoint, smear ; to increase—देग्धि, दिग्धे ; धेक्ष्यति, धेक्ष्यते । (१) देग्धि सौधं सुधया लेपकः ; (२) देग्धि दिग्धे देहः (प्रतिदिनमुपचितः स्यात्) ।

सम्+दिह्—सन्देहे, संशये ।

लिह् आस्वादने (लेहने)—चाटना To taste, to lick.

("पिण्डमुत्सृज्य करं लेढि" इति न्यायः ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	लेढि	लीढः	लिहन्ति
मध्यमपुरुष	लेक्षि	लीढः	लीढ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	लेह्मि	लिह्वः	लिह्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु
मध्यमपुरुष	लीढि	लीढम्	लीढ
उत्तमपुरुष	लेहानि	लेहाव	लेहाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अलेट्	अलीढाम्	अलिहन्
मध्यमपुरुष	अलेट्	अलीढम्	अलीढ
उत्तमपुरुष	अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म

विधिलिङ्—लिह्यात्। लृट्—लेक्ष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	लीढे	लिहाते	लिहते
मध्यमपुरुष	लिक्षे	लिहाथे	लीढ्वे
उत्तमपुरुष	लिहे	लिह्वहे	लिह्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	लीढाम्	लिहाताम्	लिहताम्
मध्यमपुरुष	लिक्ष्व	लिहाथाम्	लीढ्वम्
उत्तमपुरुष	लेहै	लेहावहै	लेहामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अलीढ	अलिहाताम्	अलिहत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अलीढाः	अलिह्वाथाम्	अलीढ्वम्
उत्तमपुरुष	अलिहि	अलिह्वहि	अलिह्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	लिहीत	लिहीयाताम्	लिहीरन्
मध्यमपुरुष	लिहीथाः	लिहीयाथाम्	लिहीध्वम्
उत्तमपुरुष	लिहीय	लिहीवहि	लिहीमहि

लृट्—लेक्ष्यते ।

अनुवाद करो—विपद् सम्पद्मे ईश्वर सर्वदा रक्षा करता है, और वह सबके पाप-पुण्यकी (द्वितीया) संख्या करता है । दक्षिणसे मलय-पवन आता है । मेरे शरीरमे आनन्द नहीं समाता । वृक्षकी शाखामे चिड़ियां रव करती थीं । आओ, हमलोग ईश्वरकी (द्वितीया) स्तुति करें ।

ह्वादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमे यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोंके स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

३४१ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमे ह्वादिगणीय धातु अभ्यस्त (द्विरुक्त) होता है ; और अभ्यस्त होकर, हु—जुहु, भी—बिभी, भृ—बिभृ, हा—जहा, ह्री—जिह्री, दा—ददा, धा—दधा, निज्—नेनिज् और विज्—वेविज् होता है; यथा—हु + ति = जुहु + ति = जुहोति (३२२सू०) ।

३४२। अगुण स्वर परे रहनेसे, 'हु' धातुके उकारके स्थानमे 'व्' होता है; और 'हु' धातुके परस्थित 'हि' के स्थानमे 'धि' होता है; यथा—जुहु + अन्ति = जुह्वति (३२९ सू०); जुहु + हि = जुहुधि।

३४३। लट् आदिका अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, परस्मैपदी अभ्यस्त 'हा' और 'भी' धातुके अन्तमे विकल्पसे 'इ' होता है; यथा—बिभी + तः = बिभितः, (पक्षे) बिभीतः; जहा + तः = जहितः, (पक्षे)—

३४४। अगुण स्वर परे रहनेसे, अभ्यस्त आकारान्त धातुके आकारका लोप होता है; और व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, आकारके स्थानमे 'ई' होता है; परन्तु 'दा' और 'धा' धातुका आ—ई नहीं होता; यथा—जहीतः; (अगुण स्वर) जहा + अन्ति = जहति।

३४५। * अगुण स्वर परे रहनेसे, अनेकस्वरविशिष्ट धातुके 'इ' 'ई' के स्थानमे 'य्' होता है; यथा—बिभी + अन्ति = बिभ्यति; जिह्री + अन्ति = जिह्रियति (३३२ सूत्रानुसार 'इय्')।

३४६। विधिलिङ्का 'य' परे रहनेसे, परस्मैपदी 'हा' धातुके अन्त्य आकारका लोप होता है; और 'हि' परे हा—जहा, जहि तथा जही होता है।

३४७। स, ध, त और थ परे रहनेसे, दधा—धद्, और ददा—दद् होता है; और 'हि' परे रहनेसे, ददा—दे, और दधा—धे होता है; यथा—दधा + ते = धत्ते; ददा + ते = दत्ते; दधा + हि = धेहि; ददा + हि = देहि।

३४८। लट्-आदिका सगुण स्वर परे रहनेसे, अभ्यस्त (द्विरुक्त) धातुकी उपधाका गुण नहीं होता; यथा—नेनिज् + आनि = नेनिजानि।

२४९। चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमे मा—मिमा, और आत्मनेपदी हा—जिहा होता है।

ह्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

हु दाने (प्रक्षेपे, वैधे आधारे देवतोद्देश्यकहविस्त्यागे, होमे)—हवन करना To offer or present (as an oblation to fire), sacrifice.

(जुहोति घृतमग्नौ कृष्णाय होता ; "जटाधरः सन् जुहुधीह पावकम्" भा० १. ४४.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति
मध्यमपुरुष	जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ
उत्तमपुरुष	जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
मध्यमपुरुष	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
उत्तमपुरुष	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः
मध्यमपुरुष	अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत
उत्तमपुरुष	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
मध्यमपुरुष	जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात
उत्तमपुरुष	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम

लृट्—होष्यति।

हा (ओहाक्) त्यागे—छोड़ना To leave, abandon.

("मूढ़ ! जहीहि धनागमतृष्णाम्" मोहमुद्गरः ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जहाति	जहितः, जहीतः	जहति
मध्यमपुरुष	जहासि	जहिथः	जहिथ
उत्तमपुरुष	जहामि	जहिवः	जहिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जहातु	जहिताम्	जहतु
मध्यमपुरुष	जहिहि जहीहि जहाहि	जहितम्	जहित
उत्तमपुरुष	जहानि	जहाव	जहाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजहात्	अजहिताम्	अजहुः
मध्यमपुरुष	अजहाः	अजहितम्	अजहित

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अजहाम्	अजहिव	अजहिम

विधिलिङ्—जह्यात् । लृट्—हास्यति ।

❦ कर्मकर्त्तरि—न्यूनीभावे ; हीयते ; "हीयते हि मतिस्तात ! हीनैः सह समागमात्" हितो० ४२. । ❦

ह्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

भी (ञिभी) भये—डरना To fear, to be afraid of.

("मृत्योर्बिभेषि किं बाल ! न स भीतं विमुञ्चति" ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभेति	बिभीतः*	बिभ्यति
मध्यमपुरुष	बिभेषि	बिभीथः	बिभीथ
उत्तमपुरुष	बिभेमि	बिभीवः	बिभीमः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
मध्यमपुरुष	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
उत्तमपुरुष	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभयुः
मध्यमपुरुष	अबिभेः	अबिभीतम्	अबिभीत

* अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'भी'-धातुके इकारके स्थानमें विकल्पसे ह्रस्व इकार होता है ; यथा—बिभीतः, बिभितः ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अविभयम्	अविभीव	अविभीम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
मध्यमपुरुष	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
उत्तमपुरुष	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम

लृट्—भेष्यति।

ह्री लज्जायाम्—शर्मिन्दा होना To blush, to be ashamed.

(स्वयम् अथवा पञ्चमी षष्ठीके साथ प्रयुक्त होता है ; "जिह्रेम्यार्य्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्" शकु० ७ ; 'जिह्रेति नीचसङ्गेभ्यः'; "अन्योन्यस्यापि जिह्रीमः, किं पुनः सहवासिनाम्" मा० ११. ८८.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति
मध्यमपुरुष	जिह्रेषि	जिह्रीथः	जिह्रीथ
उत्तमपुरुष	जिह्रेमि	जिह्रीवः	जिह्रीमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु
मध्यमपुरुष	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत
उत्तमपुरुष	जिह्रयाणि	जिह्रयाव	जिह्रयाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजिहेत्	अजिहीताम्	अजिहयुः
मध्यमपुरुष	अजिहेः	अजिहीतम्	अजिहीत
उत्तमपुरुष	अजिहयम्	अजिहीव	अजिहीम

विधिलिङ्—जिहीयात्। लृट्—हेष्यति।

ह्रादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु।

मा माने—मापना, नापना To measure.

("न्यधित मिमान इवावनि पदानि" माघ० ७. १२ ;

"पुरः सखीनाममिमीत लोचने" कु० ५.५१. ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मिमीते	मिमाते	मिमते
मध्यमपुरुष	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
उत्तमपुरुष	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
मध्यमपुरुष	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
उत्तमपुरुष	मिमै	मिमावहै	मिमामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
मध्यमपुरुष	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
मध्यमपुरुष	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
उत्तमपुरुष	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि

लृट्—मास्यते।

❁ अनु+मा—अनुमाने ; "अलिङ्गां प्रकृतिं त्वाहुर्लिङ्गैरनुमिमीमहे" महाभा०। उप+मा—उपमाने। निर्+मा—निर्माणे ; "सृष्टिस्थिति-विलयमजः स्वेच्छया निर्मिमीते" महाना० १. १.। परि+मा—परि-माणे। प्र+मा—निश्चयज्ञाने ; "न परोपहितं न च स्वतः प्रमिमीतेऽनुभवादृतेऽल्पधी." माघ० १६. ४०.। ❁

हा (ओहाङ्) गतौ—जाना To go, move.

("जिहीते सज्जनाश्रयम्"।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिहीते	जिहाते	जिहते
मध्यमपुरुष	जिहीषे	जिहाथे	जिहीध्वे
उत्तमपुरुष	जिहे	जिहीवहे	जिहीमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	जिहीताम्	जिहाताम्	जिहताम्
मध्यमपुरुष	जिहीष्व	जिहाथाम्	जिहीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जिहै	जिहावहै	जिहामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजिहीत	अजिहाताम्	अजिहत
मध्यमपुरुष	अजिहीथाः	अजिहाथाम्	अजिहीध्वम्
उत्तमपुरुष	अजिहि	अजिहीवहि	अजिहीमहि

विधिलिङ—जिहीत, जिहीयाताम्, जिहीरन्।

लृट्—हास्यते।

⚜ उप+हा—आगमने; उपाजिहीथा न महीतलं यदि" माघ० १.३७.। उत्+हा—उदये; "उज्जिहीते हिमांशुः" महाना० ४.३९; अपगमे च; "उज्जिहानजीविताम्" मालती० १०.। ⚜

ह्वादि सकर्मक उभयपदी धातु।

भृ (डुभृञ्) धारणे; पोषणे च—(१) धारण करना; (२) पोषण करना To bear; to maintain.

((१) "कूर्मो बिभर्त्ति धरणीं खलु पृष्ठकेन" चौरपञ्चाशिका. ५०;. (२) साध्वीं भार्य्यां बिभृयात्" मनु० ९. ९९.।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभर्त्ति	बिभृतः	बिभ्रति
मध्यमपुरुष	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ
उत्तमपुरुष	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभर्त्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु
मध्यमपुरुष	बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत
उत्तमपुरुष	बिभराणि	बिभराव	बिभराम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः
मध्यमपुरुष	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत
उत्तमपुरुष	अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम

विधिलिङ्—बिभृयात्, बिभृयाताम्, बिभृयुः।

लृट्—भरिष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
मध्यमपुरुष	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उत्तमपुरुष	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
मध्यमपुरुष	बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
उत्तमपुरुष	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
मध्यमपुरुष	अबिभृथाः	अबिभ्राथाम्	अबिभृध्वम्
उत्तमपुरुष	अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

विधिलिङ्—बिभ्रीत, बिभ्रीयाताम्, बिभ्रीरन्।

लृट्—भरिष्यते।

समृ+भृ—सञ्चये, संग्रहे ; निष्पादने ; उत्पादने च।

दा (डुदाञ्) दाने—देना To give.

("अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ" र० ४. ५८ ;

"कथमस्य स्तनं दास्ये ?" हरिवंशम्।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददाति	दत्तः	ददति
मध्यमपुरुष	ददासि	दत्थः	दत्थ
उत्तमपुरुष	ददामि	दद्वः	दद्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	ददातु	दत्ताम्	ददतु
मध्यमपुरुष	देहि	दत्तम्	दत्त
उत्तमपुरुष	ददानि	ददाव	ददाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
मध्यमपुरुष	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उत्तमपुरुष	अददाम्	अदद्व	अदद्म

विधिलिङ्—दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः।

लृट्—दास्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दत्ते	ददाते	ददते
मध्यमपुरुष	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उत्तमपुरुष	ददे	दद्वहे	दद्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
मध्यमपुरुष	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	ददै	ददावहै	ददामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अदत्त	अददाताम्	अददत
मध्यमपुरुष	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधिलिङ्—ददीत, ददीयाताम्, ददीरन्।

लृट्—दास्यते।

❀ आ+दा, उप+आ+दा—ग्रहणे, स्वीकरणे ; आत्मनेपदी। वि+आ+दा—व्यादाने, प्रसारणे। प्र+दा—प्रदाने। सम्+प्र+दा—सम्प्रदाने, समन्त्रकत्यागे। ❀

धा (डुधाञ्) (१) धारणे ; (२) पोषणे च To hold up, sustain ; to maintain.

((१) "शिरसि मसीपटलं दधाति दीपः" भामिनी० १. ७४ ; (२) "सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्" र० १. २६. ।—(३) स्थापने To put, place ; "विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्" महाभा० ; "धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते" मालती० ३. १२ ; "धर्मे दध्यान्मनः" मनु० १२. २३ ;—(४) दाने To bestow anything upon one ; "धुर्य्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव ! प्रसीद" मालती० १.९. ।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दधाति	धत्तः	दधति
मध्यमपुरुष	दधासि	धत्थः	धत्थ
उत्तमपुरुष	दधामि	दध्वः	दध्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	दधातु	धत्ताम्	दधतु
मध्यमपुरुष	धेहि	धत्तम्	धत्त

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	दधानि	दधाव	दधाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः
मध्यमपुरुष	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उत्तमपुरुष	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

विधिलिङ्—दध्यात्, दध्याताम्, दध्युः।

लृट्—धास्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	धत्ते	दधाते	दधते
मध्यमपुरुष	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उत्तमपुरुष	दधे	दध्वहे	दध्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
मध्यमपुरुष	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	दधै	दधावहै	दधामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
मध्यमपुरुष	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

विधिलिङ्—दधीत, दधीयाताम्, दधीरन् ।

लृट्—धास्यते ।

☞ अन्तर्+धा—अभ्यन्तरीकरणे, स्वीकरणे; "विश्वम्भरे देवि! मामन्तर्धातुमर्हसि" र० १९. ८१; आवरणे, आच्छादने; "पितुरन्तर्दधे कीर्त्तिं शीलवृत्तिसमाधिभिः" महाभा०; अन्तर्धाने च (छिप जाना, गायब होना, पोशीदा होना—अक०)—आत्मनेपदी (पञ्चमीके साथ); —कर्मकर्त्तरि; अन्तर्धीयते; "इषुभिर्व्यतिसर्पद्भिरादित्योऽन्तरधीयत" महाभा०; "रात्रिरादित्योदयेऽन्तर्धीयते" निरुक्तम्। तिरस्+धा—अन्तर्धाने। पुरस्+धा—पुरस्करणे, अग्रतः स्थापने। श्रत्+धा—श्रद्धायाम्, विश्वासे (द्वितीयान्त वस्तुके साथ); "कः श्रद्धास्यति भूतार्थम्?" मृच्छ० ३. २४.। अपि+धा—आच्छादने। अभि+धा—आख्याने, कथने। अव+धा—स्थापने; प्रणिधाने, मनःसंयोगे च; आत्मनेपदी। वि+अव+धा—व्यवधाने, अन्तरे। आ+धा—स्थापने; धारणे; अर्पणे; उत्पादने च। सम्+आ+धा—एकाग्रीकरणे; सिद्धान्ते, विरोधभञ्जने; प्रतिकारे च। उप+धा—स्थापने; उपधानीकरणे; प्रयोगे; अर्पणे च। नि+धा—स्थापने, न्यासे। प्र+नि+धा—स्थापने, अर्पणे; प्रसारणे च। सम्+नि+धा—स्थापने;—कर्मकर्त्तरि—उपस्थितौ; सन्निधीयते। परि+धा—परिधाने। वि+धा—करणे, अनुष्ठाने। अनु+वि+धा—अनुवर्त्तने। प्रति+वि+धा—प्रतिकारे। सम्+धा—संयोजने; मिलने, सौहार्दस्थापने; आरोपणे (वाणादीनां धनुषि); उत्पादने च। अति+सम्+धा—वञ्चने, प्रतारणे। अनु+सम्+धा—अन्वेषणे; चिन्तने, विचारणे; अनुसरणे च। अभि+सम्+धा—उद्देशे, अभिप्राये; वञ्चना-

याम्; वशीकरणे च। ✿

* * * *

निज् (णिजिर्) शौचे (निर्मलीकरणे)—धोना To wash, cleanse, purify—(लट्) नेनेक्ति, निनिक्तः, नेनिजति; नेनिक्ते, नेनिजाते, नेनिजते। (लोट्) नेनेक्तु; हि—नेनिग्धि; आनि—नेनिजानि। (लङ्) अनेनेक्, अनेनिक्ताम्, अनेनिजुः; अम्—अनेनिजम्; अनेनिक्त। (विधिलिङ्) नेनिज्यात्; नेनिजीत। (लृट्) नेक्ष्यति, नेक्ष्यते।

✿ अव+निज्—अवनेजने, प्रक्षालने। निर्+निज्—निर्णेजने, शोधने। ✿

विज् (विजिर्) पृथक्करणे—अलग करना To separate—इसके रूप 'निज्'-धातुवत्।

विष् (विष्लृ) व्याप्तौ—व्याप्त होना, फैलना To pervade—(लट्) वेवेष्टि, वेविष्टः, वेविषति; वेविष्टे। (हि) वेविड्ढि। (लङ्) अवेवेट्, अवेविष्टाम्, अवेविषुः; अम्—अवेविषम्; अवेविष्ट। (विधिलिङ्) वेविष्यात्; वेविषीत। (लृट्) वेक्ष्यति, वेक्ष्यते।

✿ परि+विष्+णिच्—परिवेषणे, अन्नाद्युपसमर्पणे (परोसना); वेष्टने च; परिवेषयति। ✿

अनुवाद करो—देवतालोग घृत भक्षण करते हैं। घृतसे अग्निमें हवन करो। ब्राह्मणोंको प्रतिदिन होम करना चाहिये। छोटे बड़े सब कोई दुष्टसे डरते हैं। देवतालोग असुरोंसे बड़े डरते थे। असत् कर्मका (द्वितीया) त्याग करो। मुझे दो वस्त्र दीजिये। उन्होंने मुझे ऐसा कहा है। अब कपड़े पहनो।

शत्रुके साथ सन्धि नहीं करना। अनन्तर वे अन्तर्हित हो गये। गुरु और शास्त्रके वाक्यमे श्रद्धा करनी चाहिये।

※ एक कालकी क्रिया समझानेसे, प्रथम, मध्यम, उत्तम— इन तीन पुरुषोंके बीचमे इसी क्रमसे परवर्त्ती पुरुषके अनुसार क्रियाका पुरुष, और समष्टि-सङ्ख्याके अनुसार क्रियाका वचन होगा; अर्थात् कर्त्ता—प्रथम और मध्यम पुरुष होनेसे मध्यम पुरुषके अनुसार, कर्त्ता—प्रथम और उत्तम पुरुष होनेसे उत्तम पुरुषके अनुसार, और कर्त्ता—प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष होनेसे उत्तम पुरुषके अनुसार क्रिया होगी; यथा—(वह और तू जाओ) स त्वञ्च यातम्; (वह और मै जायें) स च अहञ्च यावः; (वह, तू और मै जायें) स त्वम् अहञ्च यामः।

कर्त्ता व्यस्तरूपसे अर्थात् अनियमसे विन्यस्त होनेपरभी इसी नियमानुसार क्रिया होगी; यथा—(तू और वह जाओ) त्वं स च यातम्; (मै और तू जायें) अहञ्च त्वञ्च यावः; (मै, तू और वह जायें) अहं त्वं स च यामः।*

---

* पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पदका एकही विशेषण होनेसे, वह पुंलिङ्ग होता है; और उनमे एकके अथवा दोनोंके साथ क्लीवलिङ्ग पद रहनेसे, उनका विशेषण क्लीवलिङ्ग होता है। यथा—महान्तौ वृक्षः शाखा च; महान्तो वृक्षः शाखा प्रशाखाश्च; महती वृक्षः पत्रञ्च; महान्ति वृक्षः शाखा पत्रञ्च। वृक्षः शाखा च पतितौ; वृक्षः फलञ्च पतिते; वृक्षः शाखा फलञ्च पतितानि।

क्लीवलिङ्गके स्थलमे विकल्पसे एकवचनान्त होता है। यथा—महत् वृक्षः पत्रञ्च; महत् वृक्षः शाखा पत्रञ्च।

अनुवाद करो—तू और मैं चन्द्र देखते हैं। राम, श्याम और मैं जायेंगे। तुम और वे क्यों नहीं आये? मैं, तू और वह कभी झूठ नहीं कहेंगे। तुम और वे काम क्यों नहीं करते? वे और हम खा चुके हैं।

☞ एक क्रिया और काल समझानेमे, हिन्दीमे व्यवहृत 'वा', 'अथवा', 'या' (or, either—or, neither—nor)—इन अव्ययोंके योगसे क्रियाके पास जो कर्त्ता रहता है, उसीके अनुसार क्रियाके पुरुष और वचन होते हैं, यथा—(तू या मैं जाऊंगा) त्वम् अहं वा यास्यामि; (तुम अथवा वे जायँ) यूयं ते वा यान्तु; (वे अथवा तू गया था) ते त्वं वा अगच्छः।

अनुवाद करो—लड़के या शिक्षक जानता है। उस पुस्तकको मैं अथवा तू पढ़। मेरे पढ़नेका व्यय पिता या भ्राता देता था। उसने, नहीं तो तूने, मेरी हानि की है। इस वचको मैं अथवा तू पढ़ेगा। इस बात-से तू या वह हँसा है।
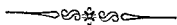
शिष्टप्रयोगमें अन्तिम पद वा निकटवर्त्ति पदके अनुसारभी विशेषण वा क्रियापदके लिङ्ग वचन होते हैं; यथा—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"; "स्त्रियो धन मुनी याती"; "विषादप्यमृतं ग्राह्यम्, अमेध्यादपि काञ्चनम्। नीचादप्युत्तमा विद्या, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥" "यस्य वीर्य्येण कृतिनो वयञ्च भुवनानि च" उत्तर० १. ३२ (भुवनानि कृतीनि); "कामश्च ...गुणो नवयौवनञ्च" मालती० १. ३५.।

विषय-सूची ।

विषय-सूची ।

विषय-सूची ।

विषय-सूची ।

विषय-सूची ।

विषय सूची ।

पाठ-परिशुद्धि ।

पृष्ठ २८ पंक्ति ८ मे—'खिद्यंस्तटतरुः'के स्थानमे 'म्लायंस्तटतरुः' पढ़ना ।

पृ० ४३ पं० ७ के नीचे पढ़ना—'विश्लेप करो—राम उवाच, अत एव, देव ऋपिः ।'

पृ० १०२ पं० १७ (च) मे पढ़ना—'कोटि'-शब्दभी स्त्रीलिङ्ग ।

पृ० १८२ पं० ९ मे पढ़ना—'(पूज्य अध्यापक कहां ?) क तत्रभवान् अध्यापकः ? ।'

पृ० २०३ पं० १ के नीचे पढ़ना—'यहांसे Hence—इतः ।'

पृ० २०७ पं० ८ मे—'अच्छे तौरसे' पढ़ना ।

पृ० २१६ पं० ९ मे—'बुद्धि'-शब्दके पश्चात् 'देवी'-शब्द पढ़ना ।

पृ० २२४ पं० ३ मे पढ़ना—'क्रियामे प्रथमपुरुषकी विभक्ति होती है ।'

पृ० २२६ पं० १ मे पढ़ना—'सकर्मक धातु कर्त्तृवाच्य तथा कर्मवाच्यमे ।'

पाठ परिशुद्धि ।

पृ० २७१ पं० ७ के पश्चात् ('गम् गतौ' के नीचे) पढ़ना—("सर्वे गत्यर्थाः प्राप्त्यर्था ज्ञानार्थाश्च"। "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" हितो० ।—प्राप्तौ, यथा—तृप्तिं गच्छति, विषादं गच्छति ।)

पृ० २७२ प० १२ में 'उप + आ + गम्' के पश्चात् निम्नलिखित अंश छूट गया ; सो ठीक करके पढ़ना—
'उप + आ + गम्—प्राप्तौ । प्रति + आ + गम्—प्रत्यावर्त्तने (लौटना) । सम् + आ + गम्—मिलने ।'

पृ० ३२३ पं० १९ में पढ़ना—'ह्वयति, ह्वयते ; ह्वास्यति, ह्वास्यते । (१) ह्वयति ह्वयते मल्लो मल्लम् ।'

पृ० ३४२ पं० १७ मे—'बुध्यते शास्त्रं सुधीः' पढ़ना ।

पृ० ३७२ पं० १३ मे—'सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति' पढ़ना ।

पृ० ५५६ पं० २२ मे—'म० ८. १६.' पढ़ना ।

पृ० ५६४ पं० ३—'णिजन्त धातु' यह शीर्षक ५३९ सूत्रके ऊपर होना चाहिये ।

पृ० ५६७ पं० १७ मे—'अगुग थ' के स्थानमें 'अगुग य' पढ़ना ।

पृ० ६१३ पं० १२ मे—'जिससे' के स्थानमें 'जिसमें' पढ़ना ।

पृ० ६२६ प० १० मे—'एकेन ऊना गणिता दशग्रहाः' के स्थानमें 'ऊना' स्त्रीकेन मता दशग्रहा.' पढ़ना ।

पृ० ६४३ प० १२—'तृतीयाप्रतिषेधः' इत्यादि टिप्पनीस्थविषय टिप्पनी-विभाजक 'लाइन' के नीचे आना चाहिये ।

पृ० ७०६ पं० १९ मे—'र० १४.३३' पढ़ना ।

पृ० ११२ 'हेडिं'—'सर्वनाम स्त्रीलिङ्ग शब्द' पढ़ना ।

इट्-विधान।

३५०। लट्, लोट्, लङ् और य भिन्न व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'इट्' होता है; 'ट्' नहीं रहता। जिन धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है, उनको 'सेट् धातु' कहते हैं।

३५१। दरिद्रादि (१)-भिन्न आकारान्त, इवर्णान्त, उकारान्त, ऋकारान्त धातु, और शकादि (२) व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता। जिन धातुओंके उत्तर 'इट्' नहीं होता, उन्हें 'अनिट् धातु' कहते हैं।

३५२। स्वृ, चाय्, स्फाय्, प्याय्, सू (अदादि), सू (दिवादि), धू, रधादि (३) धातु, ऊकार-इत् (४) धातु, और रु, द्रु, स्नु, नु धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है। इनको 'वेट् धातु' कहते हैं। यथा—रध्+स्यति=रधिष्यति, रत्स्यति।

नीचे आकारान्त-आदि-क्रमसे अनिट्

धातु लिखे जाते हैं—

दरिद्रादि। (१)

आकारान्त—'दरिद्रा'-भिन्न सब।

आकारान्ता अदरिद्रा अनिटः परिकीर्त्तिताः।

इकारान्त—श्रि और श्वि भिन्न सब।

श्रि-श्वि-भिन्ना इकारान्ताश्चानिटः कथिता बुधैः।

ईकारान्त—डी शी दीधी वेवी भिन्न सब।

डी-शी-वेवी-दीधी-भिन्ना ईकारान्तास्तथाऽनिटः।

उकारान्त—यु रु नु-स्नु क्षु क्ष्णु ऊर्णु भिन्न सब।

वर्जयित्वा यु-रु नु स्नु क्षु-क्ष्णु ऊर्णुञ्च सप्तमम्।

अनिटः स्युरुकारान्ताः।

ऋकारान्त—वृ और जागृ भिन्न सब।

ऋकारान्ता वृ-जागृभ्यां विना सर्वेऽनिटो मताः।

शकादि। (२)

कान्त—केवल शक् धातु।

कान्तेषु शक एवानिट्।

चान्त—पच् मुच् रिच् वच् विच् सिच्।

चान्तेषु पच्-मुच-रिचो वच् विचौ सिच एव च।

अनिटः षट् परिज्ञेयाः।

छान्त—केवल प्रच्छ् धातु।

प्रच्छश्छान्तेष्वनिट् स्मृतः।

जान्त—त्यज् निज् भज् मस्ज् भुज् भ्रस्ज् मस्ज् मृज्

यज् युज् रञ्ज् रुज् विज् सञ्ज् सृज् स्वञ्ज्।

त्यजो निजो भजो मस्जो भुज-भ्रस्जौ मसज-मृज्-यजः।

युजो रञ्जो रुज विजौ सृज्-सञ्जौ स्वञ्ज एव च।

षोडशैतान् जकारान्तान् जानीयादिड्विवर्जितान्॥

दान्त—अद् क्षुद् खिद् छिद् तुद् नुद् पद् भिद् विद्*

विन्द्† शद् सद् स्कन्द् स्विद् हद्।

अद- क्षुदः खिदश्चैव छिद्-तुदौ नुद्-पदौ भिदः।

---

* दिवादि।

† व्याघ्रभूत्यादिमतेऽयं सेट्, चान्द्रादिमतेऽनिट्।

विदो विन्दः शद-सदौ स्कन्द-स्विद-हदास्तथा ।

दकारान्तेषु विज्ञेया इमे पञ्चदशानिटः ॥

धान्त—क्रुध् क्षुध् बुध् बन्ध् युध् राध् रुध् व्यध् शुध् साध् सिध् * ।

क्रुधः क्षुधो बुधो बन्धो युधो राधो रुधो व्यधः ।

शुधः साधः सिधश्चेति धान्तेष्वेकादशानिटः ॥

नान्त—मन् और हन् धातु ।

अनिटौ मन्-हनौ नान्ते ।

पान्त—आप् क्षिप् छुप् तप् तिप् तृप् त्रप् दृप् लिप् लुप् वप् शप् सृप् स्वप् ।

आपः क्षिपश्छुपश्चैव तप्-तिप्-तृप्-त्रप्-दृपो लिपः ।

लुप्-वप्-शप्-सृप्-स्वपः पान्तेष्वनिटः स्युश्चतुर्दश ॥

भान्त—यभ् रभ् लभ् ।

यभ्-रभ्-लभो भकारान्तेष्वनिटो गदितास्त्रयः ॥

मान्त—गम् नम् यम् रम् ।

गम्-नमौ यम्-रमौ चेति मकारान्तेष्विमेऽनिटः ।

शान्त—क्रुश् दन्श् दिश् दृश् मृश् रिश् रुश् लिश् विश् स्पृश् ।

क्रुश्-दन्श-दिश्-दृशश्चैव मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विशस्तथा ।

स्पृशश्चेति शकारान्तेष्वनिटः कीर्त्तिता दश ॥

षान्त—कृष् तुष् त्विष् दुष् द्विष् पिष् पुष् † मृष् विष् शिष् शुष् श्लिष् ।

कृष्-तुष्-त्विष्-दुष्-द्विषश्चैव पिष्-पुष्-मृष्-विष्-शिषस्तथा ।

---

* दिवादि ।

† दिवादि पुष् । क्रयादि पुष् सेट् ।

शुप्-दिपौ चेति कथ्यन्ते पान्तेषु द्वादशानिटः ॥

सान्त—घस् और वस् धातु ।

अनिटौ घस् वसौ सान्ते ।

हान्त—दह् दिह् दुह् नह् मिह् रह् लिह् वह् ।

दहो दिहो दुहश्चैव नहो मिह-रहौ लिहः ।

वहश्चेति हकारान्तेष्वनिटोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥

रधादि । (३)

रध् तृप् दृप् द्रुह् नश् मुह् स्निह् स्नुह् ।

रध्यतिस्तृप्य-दृप्यौ च द्रुह्यतिर्नश्यतिस्तथा ।

मुह्यतिः स्निह्यतिः स्नुह्यो रधादावष्ट धातवः ॥

ऊकार-इत् (ऊदित्) धातु । (४)

मृज्, सिध्, तृप्, दृप्, क्षम्, गुह्, मुह्, अश् (स्वादि), गाह्, तृह्, क्लिश्, क्लृप् (कृप्), स्निह्, नश्, द्रुह् इत्यादि ।

लट् ।

[यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोंके स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

३९३ । * लृट्, लृङ् और लुट् विभक्ति परे रहनेसे, धातुके अन्त्य-स्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है ; यथा—भू + स्यति = भवि-ष्यति ; (ज्ञानार्थ) विद् + लृट् = वेदिष्यति ; कथि—कथयिष्यति ।

३९४ । * 'स्य' परे रहनेसे, ऋकारान्त धातु और हन् धातुके उत्तर 'इट्' होता है ; और वृत्, क्लृप् (कृप्)-प्रभृति धातुके उत्तर

परस्मैपदके 'स्य' परे 'इट्' नहीं होता, किन्तु आत्मनेपदमे नित्य, अन्यत्र विकल्पसे होता है ; यथा—(कृ) करिष्यति ; (हन्) हनिष्यति ; (वृत्) वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते ।

३९५ । * लृट्, लृङ् परे रहनेसे, नृत्, छृद्, चृत्, कृत् और तृद् धातुके उत्तर, और आशीर्लिङ्के आत्मनेपदमे नृत्-आदि, वृ तथा ऋकारान्त धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है ; यथा—(नृत्) नर्त्तिष्यति, नर्त्स्यति ।

३९६ । * 'स' परे रहनेसे, परस्मैपदमे गम् धातुके उत्तर 'इट्' होता है ; आत्मनेपदके योग्य होनेसे विकल्पसे होता है ; यथा—गमिष्यति ।

३९७ । * चतुर्लकार परे रहनेसे अकर्त्तृवाच्यमे, और लृट्-आदि विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे समस्त वाच्यमे, एकारान्त, ऐकारान्त तथा ओकारान्त धातु आकारान्त होता है ; यथा—(धे) धास्यति ; (गै) गास्यति ; (शो) शास्यति ।

३९८ । * उक्त विषयमे ब्रू—वच्, अस्—भू, चक्ष्—क्शा अथवा ख्या† होता है ; यथा—ब्रू + स्यति = वक्ष्यति (३०९ सू०) ; (अस्) भविष्यति ; (चक्ष्) क्शास्यति, क्शास्यते ; ख्यास्यति, ख्यास्यते ।

३९९ । * स्वरवर्ण परे गुह्—गूह् होता है ; यथा—गुह् + स्यति = गूहिष्यति (३९२ सू०) । सर्वत्र क्लृप् (कृप्)—कल्प् होता है ; केवल 'कृपण'-प्रभृति स्थानमे नहीं होता ; यथा—कल्प्स्यते ।

३६० । * 'स' परे रहनेसे, 'भ' के स्थानमे 'प', और वध्, वन्ध्, बुध् धातुके 'ब' के स्थानमे 'भ' होता है ; गुह् और गाह् धातुके 'ग' के

---

† अन, उस्, अस् परे नहीं होता। क्शा और ख्या उभयपदी ।

स्थानमें 'घ' होता है ; यथा—(लभ्) लप्स्यते ; (बुध्) भोत्स्यते ; (गुह्) घोक्ष्यति ।

३६१ । * कुटादि† धातुके उत्तर गुण नहीं होता ; परन्तु लिट्का सगुण 'अ' और ण-इत् (णित्) प्रत्यय परे रहनेसे होता है ; यथा—(कुट्) कुटिष्यति ।

३६२ । * चतुर्लकार-भिन्न सगुण विभक्तिमें भ्रस्ज् के स्थानमें—भर्ज् और भ्रज् होते हैं ; यथा—भ्रस्ज् + स्यति = भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति (३०९ सू०) ।

३६३ । * लुट्-आदि विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, दरिद्रा धातुका 'आ' लुप्त होता है ; परन्तु सन्, अक, अन परे रहनेमें नहीं होता ; लुङ् परे विकल्पसे लोप होता है ; यथा—दरिद्रा + स्यति = दरिद्रिष्यति ।

३६४ । ग्रह् धातुके उत्तर विहित 'इट्' दीर्घ होता है ; और वृ तथा ॠकारान्त धातुके उत्तर विहित 'इट्' विकल्पसे दीर्घ होता है ; किन्तु लिट् और आशीर्लिङ्में नहीं होता ; यथा—(ग्रह्) ग्रहीष्यति ; (तॄ) तरीष्यति, तरिष्यति ।

३६५ । * सगुण झुट्-वर्ग परे रहनेसे, तृप्, मृश्, स्पृश्, तृप्, दृप् और सृप् धातुके 'ऋ' के स्थानमें विकल्पसे 'र' होता है ; दृश् और सृज् धातुके 'ऋ' के स्थानमें नित्य 'र' होता है ; यथा—(तृप्) त्रप्स्यति, तर्प्स्यति ; (दृश्) द्रक्ष्यति ।

३६६ । * 'स' परे रहनेसे, 'स्' के स्थानमें 'त्' होता है ; यथा—

---

† कुटादि—कुट्, पुट्, लुठ्, स्फुट्, स्फुर्, स्फुल्, त्रुट्, विज् इत्यादि । मिल् और लिख् धातु विकल्पसे कुटादि ।

(वस्) वत्स्यति।

३६७। ※ 'स' और 'त' परे रहनेसे, नश् और मस्ज् धातुके अकारके पश्चात् अनुस्वार होता है; यथा—(नश्) नङ्क्ष्यति; (मस्ज्) मङ्क्ष्यति।

लृङ्।

[लृट्-विभक्तिमे धातुके जिसप्रकार रूप होते हैं, लृङ्-विभक्तिमेभी उसीप्रकार रूप होंगे; केवल अधिक २६१ और २६३ सूत्रोंका कार्य्य होगा; यथा—(भू) अभविष्यत्; (विद्—अदादि) अवेदिष्यत्।]

कृ धातु।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
मध्यमपुरुष	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
उत्तमपुरुष	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
मध्यमपुरुष	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि

३६८। लृङ्-विभक्ति परे रहनेसे, 'अधि'-पूर्वक 'इ' धातुके स्थानमे विकल्पसे 'गी' होता है; यथा—अधि+इ+स्यत=अध्यगीष्यत†;

---

† 'गी' का गुण नहीं होता।

(पक्षे) अध्यैष्यत ।

अनुवाद करो—उसका धन होता, तो मुझे देता । विद्या रहती, तो श्यामका (द्वितीया) सब कोई आदर करते । ज्ञान होता, तो सुख होता । मैं भक्त होता, तो ईश्वरकी कृपा पाता । सामर्थ्य रहता, तो अभी इस कामको करता ।

लुट् ।

[इस प्रकरणमें यथासम्भव पूर्व पूर्व स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

३६९ । * 'त' परे रहनेसे, मृ, स्तु, शुच्, सह्, रिष्, रुष्, लुभ्, अश् और इष् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है ; यथा—(मृ) मरिता, मर्त्ता ; (स्तु) स्तविता, स्तोता इत्यादि ।

३७० । * सह् और वह् धातुका 'ह्' परस्थित तकारमें मिलकर 'ढ' होता है, और पूर्वस्थित अकारके स्थानमें ओकार होता है ; यथा—सह्+ता=सहिता, (पक्षे) सोढा ; वह्+ता=वोढा ।

३७१ । 'भ'—परस्थित 'त' अथवा 'थ'में मिलकर 'ब्ध' होता है ; यथा—लभ्+ता=लब्धा ।

परस्मैपदी—भू धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भविता	भवितारौ	भवितारः
मध्यमपुरुष	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उत्तमपुरुष	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

आत्मनेपदी—शी धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमपुरुष	शयिता	शयितारौ	शयितारः
मध्यमपुरुष	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उत्तमपुरुष	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

कृ—कर्त्ता ।
भृ—भरिता, भर्त्ता ।
तृ—तरीता, तरिता (३६४ सू०) ।
जि—जेता ।
नी—नेता ।
श्रु—श्रोता ।
गै—गाता (३९७ सू०) ।
अधि+इ—अध्येता ।
क्लृप् (कृप्)—कल्प्ता† ।
ग्रह्—ग्रहीता (३६४ सू०) ।
चल्—चलिता ।
त्यज्—त्यक्ता ।
दह्—दग्धा (३३४ सू०) ।

दृश्—द्रष्टा (३१६।३६९ सू०) ।
नश्—नंष्टा, नशिता (३९२ सू०) ।
प्रच्छ्—प्रष्टा (३१६ सू०) ।
गम्—गन्ता ।
मन्—मन्ता ।
हन्—हन्ता ।
वच्—वक्ता (३०४ सू०) ।
लभ्—लब्धा।
वस्—वस्ता ।
रुध्—रोद्धा (२९८ सू०) ।
शक्—शक्ता ।
भ्रस्ज्—भर्ष्टा, भ्रष्टा (३६२ सू०) ।
मस्ज्—मंक्ता ।
दरिद्रा—दरिद्रिता (३६३ सू०) ।

दिवादि विद्—वेत्ता ; अदादि विद्—वेदिता ।

सृज्—स्रष्टा । या—याता । दा—दाता । सह्—सहिता, सोढा । वह्—वोढा ।

---

† लुट्के परस्मैपदमे क्लृप् (कृप्)-धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता ।

अनुवाद करो—कल राम राजा होगा। परसों तुम्हारे घर जाऊंगा। तू शीघ्र इसका फल पायेगा। राजा शत्रुओंके साथ युद्ध करेगा। वे तुझे किसी कार्य्यमें नियुक्त करेंगे। तू अवश्य युद्धमें शत्रुओंको जीतेगा।

आशीर्लिङ्—परस्मैपद।

३७२। * आशीर्लिङ्के परस्मैपदमें दा, धा, धे, पा, मा, हा और गै धातुके अन्तमें 'ए' होता है; यथा—दा + यात = देयात्; (धा) धेयात्, (पा) पेयात्; (मा) मेयात्; (हा) हेयात्; (गै) गेयात्।

३७३। * अगुण 'य' परे रहनेसे, अन्त्य 'इ' और 'उ' दीर्घ होते हैं; यथा—(जि) जीयात्; (श्रु) श्रूयात्।

३७४। * संयुक्तवर्णादि आकारान्त धातुका 'आ' विकल्पसे 'ए' होता है, परन्तु स्था धातुके अन्तमें नित्य 'ए' होता है; यथा—(घ्रा) घ्रेयात्, घ्रायात्, (स्था) स्थेयात्।

३७५। * अगुण 'य' परे रहनेसे, ह्रस्व ऋ—'रि' होता है; यथा—(कृ) क्रियात्।

३७६। * अगुण 'य' और लिट्की अगुण विभक्ति परे रहनेसे, संयुक्त-वर्णादि ऋकारान्त धातु, और ऋ, जागृ धातुका गुण होता है; यथा—(स्मृ) स्मर्य्यात्, (ऋ) अर्य्यात्; (जागृ) जागर्य्यात्।

३७७। * अगुण 'य' वा प्रत्यय परे रहनेसे, धातुके 'ॠ' के स्थानमें 'ईर्' होता है; यदि वह 'ॠ' ओष्ठ्यवर्णमें युक्त हो, तो 'ऊर्' होता है; यथा—(कॄ) कीर्य्यात्; (पॄ) पूर्य्यात्।

३७८। * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, ग्रह्—गृह्, प्रच्छ्—

पृच्छ्, व्यध्—विध्, यज्—इज् और ह्वे—हु होता है; यथा—
(ग्रह्) गृह्यात्; (प्रच्छ्) पृच्छ्यात्; (व्यध्) विध्यात्; (यज्)
इज्यात्; (ह्वे) हूयात् (३७३ सू०) । किन्तु लिट् परे प्रच्छ्—पृच्छ्
नहीं होता ।

३७९ । * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, वद्—उद्, वच्—
उच्, वप्—उप्, वस्—उस्, वह्—उह् और स्वप्—सुप् होता है; यथा—
(वद्) उद्यात्; (वच्) उच्यात्; (वप्) उप्यात्; (वस्)
उष्यात्; (वह्) उह्यात्; (स्वप्) सुप्यात् ।

३८० । * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, निन्दादि† -भिन्न
धातुके उपधा नकारका लोप होता है; यथा—दन्श्+यात्=दश्यात्;
(शन्स्) शस्यात् ।

भू धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
मध्यमपुरुष	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उत्तमपुरुष	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

आशीर्लिङ्—आत्मनेपद ।

३८१ । आशीर्लिङ्के आत्मनेपदमे धातुके अन्त्यस्वर और उपधा
लघुस्वरका गुण होता है; यथा—(शी) शयिषीष्ट; (द्युत्) द्योतिषीष्ट ।

---

† निन्दादि—निन्द्, चिन्त्, कम्प्, लङ्घ्, वन्द्, काङ्क्ष्, वण्ट्, मन्त्र्
इत्यादि ।

३८२। आशीर्लिङ्का आत्मनेपद परे रहनेसे, अनिट् धातुके अन्तस्थित ऋकारका और उपधा लघुस्वरका गुण नहीं होता ; यथा— (कृ) कृषीष्ट ; (भुज्) भुक्षीष्ट (३०६ सू०)। (वृ) वरिषीष्ट, वृषीष्ट।

३८३। * अकार आकार-भिन्न स्वरके परवर्त्ती लुङ्, लिट् और आशीर्लिङ्के 'ध' के स्थानमे 'ढ' होता है ; यथा—कृ+सीध्वम्= कृषीढ्वम्। परन्तु 'इट्'-युक्त ह, य, व, र और लकारके परस्थित 'ध' विकल्पसे 'ढ' होता है ; यथा—(सेव्) सेविषीढ्वम्, सेविषीध्वम्।

मृ धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	मृषीरन्
मध्यमपुरुष	मृषीष्ठाः	मृषीयास्थाम्	मृषीढ्वम्
उत्तमपुरुष	मृषीय	मृषीवहि	मृषीमहि

शी धातु ।

प्रथमपुरुष	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
मध्यमपुरुष	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीढ्वम्, शयिषीध्वम्
उत्तमपुरुष	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

सेव् धातु ।

प्रथमपुरुष	सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्
मध्यमपुरुष	सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीढ्वम्, सेविषीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि

अनुवाद करो—उस दुःखिनीका एकमात्र पुत्र रामजीवन दीर्घकाल जीता रहे। ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करे। आप मुझे आशीर्वाद करें, जिससे मैं कृतकार्य्य हो सकूँ। दरिद्रोंका दुःख दूर हो (अप+इ)। पिपासार्त्त जल पान करे। छात्रलोग सर्वदा गुरुके आज्ञानुवर्त्ती हों।

लिट्।

[इस प्रकरणमे यथासम्भव पूर्व पूर्व स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा।]

३८४। लिट्का व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, सेट् अनिट् समस्त धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है।

३८५। द्रु, श्रु, स्रु, स्तु, कृ, भृ, सृ धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता।

३८६। 'थ' परे रहनेसे, दृश्, सृज्, स्वरान्त और अनिट् अकारवान् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है; केवल स्वरान्त व्ये और अकारवान् अद् धातुके उत्तर नित्य 'इट्' होता है।

३८७। 'थ' परे रहनेसे, ऋकारान्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता। ऋ, वृ, स्कृ धातुके उत्तर नित्य, और स्तृ धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है।

३८८। लिट्-विभक्ति परे रहनेसे, धातु अभ्यस्त (द्विरुक्त) होता है; यथा—नम्+अ=नम् नम्+अ—

३८९। अभ्यस्तधातुके पूर्वभागके आदिस्वरके पश्चात् जो वर्ण रहता है, उसका लोप होता है; यथा—नम् नम्+अ=ननम्+अ—

३९० । लिट्के प्रथमपुरुषके एकवचनका 'अ' परे रहनेसे, धातुका उपधा अकार और अन्त्यस्वर वृद्धि प्राप्त होता है ; यथा—ननाम ।

३९१ । लिट्के उत्तमपुरुषके एकवचनका 'अ' परे रहनेसे, धातुके उपधा अकारकी विकल्पसे वृद्धि होती है, और अन्त्यस्वरभी गुण व वृद्धि दोनोही प्राप्त होता है ; यथा—ननम् + अ = ननाम, ननम ।

३९२ । सगुण लिट्-विभक्ति परे रहनेसे, अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है ; परन्तु वृद्धिकी सम्भावना रहनेसे नहीं होता ; यथा—विद् + अ = विद् विद् + अ = विविद् + अ = विवेद ।

३९३ । * धातु अभ्यस्त होनेसे, पूर्वभागके क, ख, च, छ के स्थानमे—'च' ; ग, घ, ज, झ, ह के स्थानमे—'ज' ; ट, ठ के स्थानमे—'ट' ; ड, ढ के स्थानमे—'ड' ; त, थ के स्थानमे—'त' ; द, ध के स्थान-मे—'द' ; प, फ के स्थानमे—'प' ; ब, भ के स्थानमे—'ब' ; दीर्घके स्थानमे—ह्रस्व ; और ऋ, ॠ के स्थानमे—'अ' होता है ; यथा—कुप् + अ = कुप् कुप् + अ = कुकुप् + अ = चुकोप ।

३९४ । * अभ्यस्त धातुके पूर्वभागमे संयुक्तवर्ण रहनेसे, अन्त्य व्यञ्जनवर्णका लोप होता है ; यथा—क्रम् + अ = क्रम् क्रम् + अ = कक्रम् + अ = चक्राम ।

३९५ । * अभ्यस्त धातुके पूर्वभागमे स्क, स्ख, श्च, श्च, ष्ट, ष्ठ, स्त, स्थ, स्प, स्फ रहनेसे, आदिवर्णका लोप होता है ; यथा—स्खल् + अ = स्खल् स्खल् + अ = खस्खल् + अ = चस्खाल ।

३९६ । लिट्के प्रथम और उत्तम पुरुषका 'अ' परे रहनेसे, आकारान्त धातुका 'आ' परस्थित अकारमे मिलकर 'औ' होता है ; यथा—

स्था + अ = तस्था + अ = तस्थौ ।

३९७। अनिट् 'थ'-भिन्न लिट् परे रहनेसे, आकारान्त धातुके आकारका लोप होता है ; यथा—तस्थिथ, (अनिट् 'थ') तस्थाथ ।

३९८। ※ असमानस्वरवर्ण परे रहनेसे, अभ्यस्त धातुके पूर्वभाग-स्थित उ, ऊ के स्थानमे—'उव्' ; और इ, ई के स्थानमे—'इय्' होता है ; यथा—उप्+अ = उप् उप्+अ = उ उप्+अ = उ ओप्+अ = उव् ओप्+अ = उवोप ; इ+अ = इ इ+अ = इ ऐ+अ = इय् ऐ+अ = इयाय ।

३९९। लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर भू—बभूव्, चि—चिकि और चिचि, जि—जिगि, और हि—जिघि होता है ; यथा—(भू) बभूव ; (चि) चिकाय, चिचाय ; (जि) जिगाय ; (हि) जिघाय ।

४००। प्रथम और उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ'-भिन्न सगुण अगुण समस्त लिट् परे रहनेसे, दीर्घ 'ॠ' और संयुक्तवर्णमे मिलित ह्रस्व 'ऋ' का गुण होता है ; यथा—कॄ+थ = चकॄ+इ+थ = चकरिथ ; स्मृ+थ = सस्मृ+थ = सस्मर्थ ।

४०१। लिट्का अगुण स्वर परे रहनेसे, ऋकारान्त धातुके 'ऋ' के स्थानमे 'र्' होता है ; यथा—कृ+अतुः = चकृ+अतुः = चक्रतुः ।

४०२। अगुण लिट् परे रहनेसे, इदित (निन्द्-प्रभृति) और पूजार्थ 'अञ्च्'-भिन्न धातुका उपधा 'न' विकल्पसे लुप्त होता है ; यथा—दन्श्+अतुः = ददशतुः, ददंशतुः । (निन्द्) निनिन्दतुः ।

४०३। स्वादिगणीय अश् धातु, ऋकारादि धातु, और जिसके अन्तमे संयुक्तवर्ण रहे ऐसे अकारादि धातुके पूर्वभागके स्थानमे 'आन्'

होता है; यथा—(अश्) आनशे: (ऋत्) आनर्त्त, आनृततुः; (अर्च्) आनर्च, आनर्चतुः, आनर्चुः।

४०४। लिट् विभक्ति परे रहनेसे, अभ्यस्त व्यथादि धातुके पूर्वभागके स्वरयुक्त 'य' के स्थानमे 'इ' होता है; यथा—व्यथ् + ए = व्यथ् व्यथ् + ए = विव्यथे; व्यध् + अ = विव्याध; व्यच् + अ = विव्याच; द्युत् + ए = दिद्युते।

४०५। लिट्-विभक्ति परे रहनेसे, व्ये धातुका 'ए'—'आ' नहीं होता, और पूर्वभागके स्वरयुक्त 'य' के स्थानमे 'इ' होता है; यथा—व्ये + अ = विव्याय।

४०६। सगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर यज्—इयज्, और अगुण लिट् परे 'ईज्' होता है; यथा—यज् + अ = इयाज; यज् + अतुः = ईजतुः।

(३७८ सूत्रानुसार) ग्रह् + अतुः = गृह् + अतुः = गृह् गृह् + अतुः = जगृहतु'; किन्तु—(प्रच्छ्) पप्रच्छतुः।

४०७। सगुण लिट् परे, अभ्यस्त वपादि*धातुके पूर्वभागके स्वरयुक्त 'व' के स्थानमे 'उ' होता है; और अगुण लिट् परे, पूर्वभाग तथा परभाग उभयत्र 'व' के स्थानमे 'उ' होता है; यथा—सगुण—वप् + अ = वप् वप् + अ = ववप् + अ = उवाप; (वस्) उवास; (वह्) उवाह; (वद्) उवाद; (ब्रू और वच्) उवाच। अगुण—वप् + अतुः = ववप् + अतुः = ऊपतु'; (वस्) ऊषतुः; (वह्) ऊहतुः; (वद्) ऊदतुः; (ब्रू और

* वपादि—वपो वहो वसश्चैव वचो वद-श्वी तथा।
एते वयश्च कथिता विपाश्चिद्भिर्वपादयः॥

वच्) ऊचतुः ।

४०८ । लिट् परे रहनेसे, 'वे' धातुके स्थानमे विकल्पसे 'वय्' होता है ; और अगुण लिट् परे, 'वे' धातुके स्थानमे 'ऊव्' और 'ऊय्' होते हैं ; यथा—वे + अ = वय् + अ = ववय् + अ = उवाय ; (अगुण) वे + अतुः = ऊवतुः, ऊयतुः । (विकल्पपक्षमे) वे + अ = ववौ ; वे + अतुः = ववतुः ।

४०९ । लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर 'दे'—दिगि, प्याय्—पिपी, ह्वे—जुहु, श्वि—शुशु और शिश्वि होता है ; यथा—दे + ए = दिग्ये ; प्याय् + ए = पिप्ये ; ह्वे + अ = जुहाव ; ह्वे + अतुः = जुहुवतुः ; श्वि + अ = शुशाव, शिश्वाय ; श्वि + अतुः = शुशुवतुः, शिश्वियतुः ; श्वि + थ = शुशविथ, शिश्वयिथ ।

४१० । सगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर स्वप्—सुष्वप् ; और अगुण लिट् परे, 'सुषुप्' होता है ; यथा—स्वप् + अ = सुष्वाप ; स्वप् + अतुः = सुषुपतुः ; (थ) सुष्वपिथ, सुषुप्थ ।

४११ । लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर हन्—जघन् ; अद्—जघस् और आद् होता है ; यथा—हन् + अ = जघान ; अद् + अ = जघास, आद ।

४१२ । अगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर गम्—जग्म्, खन्—चख्न्, जन्—जज्ञ्, घस्—जक्ष्, और हन्—जघ्न् होता है ; यथा—गम् + अतुः = जग्मतुः ; (खन्) चख्नतुः ; (अद्) जक्षतुः , आदतुः ; (हन्) जघ्नतुः ; जन् + ए = जज्ञे ।

४१३ । अनिट् 'थ' परे रहनेसे, दृश् और सृज् धातुके ऋकारके स्थानमे 'र' होता है ; और कृपादि धातुके 'ऋ' के स्थानमे विकल्पसे 'र'

होता है ; यथा—दृश् + थ = दर्दशिथ, दद्रष्ठ ; (दृप्) चर्करपिथ, चत्रष्ठ, चकर्ष ; (तृप्) तर्तर्पिथ, तत्रप्थ, ततर्प्थ ; (दृप्) दर्दर्पिथ, दद्रप्थ, ददर्प्थ ; (मृश्) मर्मर्शिथ, मम्रष्ठ, ममर्ष्ठ ; (सृप्) सर्सर्पिथ, सत्रप्थ, ससर्प्थ।

४१४। आदि और अन्तमे संयुक्तव्यन्जनवर्ण न रहनेसे, बीचमे अकार-युक्त अभ्यस्त धातुके उत्तर प्रथम और उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ' भिन्न लिट् परे, पूर्वभागका लोप होता है, और परभागके अकारके स्थानमे एकार होता है ; यथा—चल् + अ = चचाल ; (अतुः) चेलतुः ; (थ) चेलिथ।

४१५। जिन अभ्यस्त धातुओंका पूर्वभाग रुपान्तरित होता है, उन सब धातुओंका और अन्तःस्थ-वकारादि धातुका पूर्वसूत्रानुसार कार्य्य नहीं होता ; यथा—(गद्) जगाद, जगदतुः, जगदुः ; (वज्) ववाज, ववजतुः। (नन्द्) ननन्द, ननन्दतुः।

४१६। प्रथम और उत्तम पुरुषके 'अ'-भिन्न लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर तॄ—तेर्, फल्—फेल्, भज्—भेज्, और त्रप्—त्रेप् होता है ; यथा—तॄ + अ = ततार ; (अतुः) तेरतुः। फल् + अ = पफाल ; (अतुः) फेलतुः। भज् + अ = बभाज ; (अतुः) भेजतुः। त्रप् + ए = त्रेपे।

४१७। प्रथम और उत्तम पुरुषके 'अ'-भिन्न लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर राज्—रेज् और रराज् ; भ्रम्—भ्रेम् और बभ्रम् ; वम्—वेम् और ववम् होते हैं ; यथा—राज् + अ = रराज ; (अतुः) रेजतुः, रराजतुः। भ्रम् + अ = बभ्राम ; (अतुः) भ्रेमतुः, बभ्रमतुः। वम् + अ =

ववाम; (अतुः) वेमतुः, ववमतुः।

४१८। लिट् परे, 'अधि'-पूर्वक 'इ' धातुके स्थानमे—'गा', और अज् धातुके स्थानमे—'वी' होता है; पश्चात् अभ्यस्त होता है; यथा—अधि+इ+ए=अधिजगे; अज्+अ=विवाय।

४१९। लिट् परे रहनेसे, दय्, अय्, आस्, अनेकस्वरविशिष्ट धातु और आकार-भिन्न-गुरुस्वरादि धातुके उत्तर 'आम्' होता है; 'आम्' परे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है; और 'आम्'-अन्त धातुके उत्तर कृ, भू, अस् धातुकी लिट्-विभक्तिका रूप होता है; यथा—(दय्) दयाम्बभूव, दयामास, दयाञ्चकार; अनेकस्वर—(कारि) कारयाम्बभूव, कारयामास, कारयाञ्चकार; गुरुस्वरादि—(ईह्) ईहाम्बभूव, ईहामास, ईहाञ्चक्रे। *

४२०। लिट् परे रहनेसे, हु, भी, ह्री, भृ, जागृ, दरिद्रा, काश्, कास् और उष् धातुके उत्तर विकल्पसे 'आम्'† होता है; 'आम्' परे, धातुका गुण होता है; यथा—(हु) जुहवाम्बभूव, जुहवामास, जुहवाञ्चकार; (पक्षे) जुहाव। (भी) बिभयाम्बभूव; (पक्षे) बिभाय। (ह्री) जिह्रयाम्बभूव; (पक्षे) जिह्राय। (भृ) बिभराम्बभूव; (पक्षे) बभार। (जागृ) जागराम्बभूव; (पक्षे) जजागार। (दरिद्रा) दरिद्राम्बभूव; (पक्षे) ददरिद्रौ—'ददरिद्र' इति केचित्। (काश्)

---

* कर्त्तृवाच्यमे 'आम्'-अन्त धातुके उत्तर प्रयुक्त 'भू' और 'अस्' परस्मैपदी रहते हैं। परस्मैपदी धातुके उत्तर 'कृ' परस्मैपदी, आत्मनेपदी धातुके उत्तर आत्मनेपदी, और उभयपदी धातुके उत्तर उभयपदी होता है।

† 'आम्' परे, हु, भी, ह्री, भृ धातुका अभ्यस्त-कार्य्य होता है।

काशाम्बभूव; (पक्षे) चकाशे। (कास्) कासाम्बभूव; (पक्षे) चकासे। (उष्) ओषाम्बभूव; (पक्षे) उवोष।

४२१। लिट् परे रहनेसे, अदादि विद् धातुके उत्तर विकल्पसे 'आम्' होता है; 'आम्' अवशिष्ट रहता है; यथा—विद्+अ=विदाम्बभूव, विदाञ्चकार, विदामास। विकल्पपक्षके रूप पश्चात् दिखलाये जायेंगे।

(लिट्-रूप)

परस्मैपदी।

पा धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पपौ	पपतुः	पपुः
मध्यमपुरुष	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
उत्तमपुरुष	पपौ	पपिव	पपिम

स्था धातु।

प्रथमपुरुष	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
मध्यमपुरुष	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उत्तमपुरुष	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

इ धातु।

प्रथमपुरुष	इयाय	ईयतुः	ईयुः
मध्यमपुरुष	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
उत्तमपुरुष	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम

जि धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
मध्यमपुरुष	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
उत्तमपुरुष	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

श्रु धातु।

प्रथमपुरुष	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
मध्यमपुरुष	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव
उत्तमपुरुष	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

भू धातु।

प्रथमपुरुष	वभूव	वभूवतुः	वभूवुः
मध्यमपुरुष	वभूविथ	वभूवथुः	वभूव
उत्तमपुरुष	वभूव	वभूविव	वभूविम

सृ धातु।

प्रथमपुरुष	ससार	सस्रतुः	सस्रुः
मध्यमपुरुष	ससर्थ	सस्रथुः	सस्र
उत्तमपुरुष	ससार, ससर	सस्रव	सस्रम

स्मृ धातु।

प्रथमपुरुष	सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः
मध्यमपुरुष	सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर
उत्तमपुरुष	सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

कृ धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
मध्यमपुरुष	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उत्तमपुरुष	चकार	चकृव	चकृम

प्रच्छ् धातु ।

प्रथमपुरुष	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
मध्यमपुरुष	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
उत्तमपुरुष	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

दृश् धातु ।

प्रथमपुरुष	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
मध्यमपुरुष	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
उत्तमपुरुष	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

सृज् धातु ।

प्रथमपुरुष	ससर्ज	ससृजतुः	ससृजुः
मध्यमपुरुष	ससर्जिथ, सस्रष्ठ	ससृजथुः	ससृज
उत्तमपुरुष	ससर्ज	ससृजिव	ससृजिम

त्यज् धातु ।

प्रथमपुरुष	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
मध्यमपुरुष	तत्यजिथ, तत्यक्थ	तत्यजथुः	तत्यज
उत्तमपुरुष	तत्याज, तत्यज	तत्यजिव	तत्यजिम

गम् धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
मध्यमपुरुष	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म
उत्तमपुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

हन् धातु।

प्रथमपुरुष	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
मध्यमपुरुष	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उत्तमपुरुष	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

वस् धातु।

प्रथमपुरुष	उवास	ऊषतुः	ऊषुः
मध्यमपुरुष	उवसिथ, उवस्थ	ऊषथुः	ऊष
उत्तमपुरुष	उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम

हस् धातु।

प्रथमपुरुष	जहास	जहसतुः	जहसुः
मध्यमपुरुष	जहसिथ	जहसथुः	जहस
उत्तमपुरुष	जहास, जहस	जहसिव	जहसिम

पत् धातु।

प्रथमपुरुष	पपात	पेततुः	पेतुः
मध्यमपुरुष	पेतिथ	पेतथुः	पेत
उत्तमपुरुष	पपात पपत	पेतिव	पेतिम

इष् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इयेष	ईषतुः	ईषुः
मध्यमपुरुष	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
उत्तमपुरुष	इयेष	ईषिव	ईषिम

प्र + आप् धातु ।

प्रथमपुरुष	प्राप	प्रापतुः	प्रापुः
मध्यमपुरुष	प्रापिथ	प्रापथुः	प्राप
उत्तमपुरुष	प्राप	प्रापिव	प्रापिम

रुद् धातु ।

प्रथमपुरुष	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
मध्यमपुरुष	रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद
उत्तमपुरुष	रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

विद् धातु ।

प्रथमपुरुष	विवेद	विविदतुः	विविदुः
मध्यमपुरुष	विवेदिथ	विविदथुः	विविद
उत्तमपुरुष	विवेद	विविदिव	विविदिम

मृज् धातु ।

प्रथमपुरुष	ममार्ज	ममार्जतुः (३२७ सू०) ममृजतुः	ममार्जुः मममृजुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	ममार्जिथ ममार्ष्ठ	ममार्जथुः ममृजथुः	ममार्ज ममृज
उत्तमपुरुष	ममार्ज	ममार्जिव ममृजिव	ममार्जिम ममृजिम

आत्मनेपदी।

अधि+इ धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
मध्यमपुरुष	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिढ्वे
उत्तमपुरुष	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

त्रप् धातु।

प्रथमपुरुष	त्रेपे	त्रेपाते	त्रेपिरे
मध्यमपुरुष	त्रेपिषे	त्रेपाथे	त्रेपिढ्वे
उत्तमपुरुष	त्रेपे	त्रेपिवहे	त्रेपिमहे

लभ् धातु।

प्रथमपुरुष	लेभे	लेभाते	लेभिरे
मध्यमपुरुष	लेभिषे	लेभाथे	लेभिढ्वे
उत्तमपुरुष	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

उभयपदी ।

दा धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददौ	ददतुः	ददुः
मध्यमपुरुष	ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद
उत्तमपुरुष	ददौ	ददिव	ददिम

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददे	ददाते	ददिरे
मध्यमपुरुष	ददिषे	ददाथे	ददिढ्वे
उत्तमपुरुष	ददे	ददिवहे	ददिमहे

ज्ञा धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
मध्यमपुरुष	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ
उत्तमपुरुष	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
मध्यमपुरुष	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिढ्वे
उत्तमपुरुष	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

नी धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	निनाय	निन्यतुः	निन्युः
मध्यमपुरुष	निनयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य
उत्तमपुरुष	निनाय	निन्यिव	निन्यिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
मध्यमपुरुष	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिढ्वे
उत्तमपुरुष	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

कृ धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
मध्यमपुरुष	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उत्तमपुरुष	चकार, चकर	चकृव	चकृम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
मध्यमपुरुष	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उत्तमपुरुष	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

हृ धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	जहार	जह्रतुः	जह्रुः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
मध्यमपुरुष	जहर्थ	जहथुः	जह
उत्तमपुरुष	जहार, जहर	जहिव	जहिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	जह्रे	जहाते	जह्रिरे
मध्यमपुरुष	जह्रिषे	जहाथे	जह्रिढ्वे (ध्वे)
उत्तमपुरुष	जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे

ग्रह् धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
मध्यमपुरुष	जगृहिथ	जगृहथुः	जगृह
उत्तमपुरुष	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
मध्यमपुरुष	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिढ्वे (ध्वे)
उत्तमपुरुष	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

ब्रू धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	उवाच	ऊचतुः	ऊचुः
मध्यमपुरुष	उवचिथ,उवक्थ	ऊचथुः	ऊच
उत्तमपुरुष	उवाच	ऊचिव	ऊचिम

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
मध्यमपुरुष	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिढ्वे
उत्तमपुरुष	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

भक्षयामास्।

प्रथमपुरुष	भक्षयामास	भक्षयामासतुः	भक्षयामासुः
मध्यमपुरुष	भक्षयामासिथ	भक्षयामासथुः	भक्षयामास
उत्तमपुरुष	भक्षयामास	भक्षयामासिव	भक्षयामासिम

भक्षयाम्भू।

प्रथमपुरुष	भक्षयाम्बभूव	भक्षयाम्बभूवतुः	भक्षयाम्बभूवुः
मध्यमपुरुष	भक्षयाम्बभूविथ	भक्षयाम्बभूवथुः	भक्षयाम्बभूव
उत्तमपुरुष	भक्षयाम्बभूव	भक्षयाम्बभूविव	भक्षयाम्बभूविम

भक्षयाङ्कृ।

प्रथमपुरुष	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चक्रतुः	भक्षयाञ्चक्रुः
मध्यमपुरुष	भक्षयाञ्चकर्थ	भक्षयाञ्चक्रथुः	भक्षयाञ्चक्र
उत्तमपुरुष	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चकृव	भक्षयाञ्चकृम

* * * *

आकारान्त-प्रभृति-क्रमसे कई प्रचलित धातुओंके 'अ, अतुस्; थ', और आत्मनेपदमे 'ए; से' विभक्तियोंके रूप नीचे लिखे जाते हैं। इन विभक्तियोंके रूप जाननेसे अवशिष्ट रूप अनायास समझे जा सकते।

ख्या—चख्यौ, चख्यतुः; चख्यिथ चख्याथ।

घ्रा—जघ्रौ, जघ्रतुः ; जघ्रिथ जघ्राथ ।

ध्मा—दध्मौ, दध्मतुः ; दध्मिथ दध्माथ ।

म्ना—मम्नौ, मम्नतुः ; मम्निथ मम्नाथ ।

स्ना—सस्नौ, सस्नतुः ; सस्निथ सस्नाथ ।

हा—जहौ, जहतुः ; जहिथ जहाथ ।

मा, या, वा—'हा'-धातुवत्।

धा—'दा'-धातुके तुल्य ।

चि—चिकाय चिचाय, चिक्यतुः चिच्यतुः ; चिकयिथ चिकेथ, चिचयिथ चिचेथ । चिक्ये चिच्ये ।

स्मि—सिष्मिये ; सिष्मियिषे ।

क्री—चिक्राय, चिक्रियतुः ; चिक्रयिथ चिक्रेथ । चिक्रिये ; चिक्रियिषे ।

भी—बिभयाम्बभूव, बिभयामास, बिभयाञ्चकार ; बिभयाम्बभूवतुः इत्यादि ; बिभयाम्बभूविथ इत्यादि । (पक्षे) बिभाय, बिभ्यतुः ; बिभयिथ, बिभेथ ।

शी—शिश्ये ; शिश्यिषे ।

दु—दुदाव, दुदुवतुः ; दुदविथ ।

रु—रुराव, रुरुवतुः ; रुरविथ ।

हु—जुहवाम्बभूव इत्यादि ; जुहवाम्बभूविथ इत्यादि । (पक्षे) जुहाव ; जुहविथ जुहोथ ।

सू—सुषुवे ; सुषुविषे । (तुदादि) सुषाव, सुषुवतुः ; सुषविथ ।

जागृ—जजागार, जजागरतुः ; जजागरिथ । (पक्षे) जागरामास इत्यादि ।

द—दद्रे; दद्रिषे।

ध—दधार, दध्रतुः; दधर्थ। दध्रे; दध्रिषे।

भृ—(भ्वादि) बभार, बभ्रतुः; बभर्थ। बभ्रे; बभृषे। (ह्वादि) बिभराम्बभूव; (पक्षे) बभार। ('ए'-विभक्तिमें) बिभराम्बभूव, बिभरामास, बिभराञ्चक्रे; (पक्षे) बभ्रे।

मृ—ममार, मम्रतुः; ममर्थ; मम्रिव। (परस्मैपद होता है)।

वृ—ववार, वव्रतुः; ववरिथ; ववृव। वव्रे; ववृषे।

स्तृ—तस्तार, तस्तरतुः; तस्तर्थ; तस्तरिव। तस्तरे; तस्त्रिषे।

तॄ—ततार, तेरतुः, तेरुः; तेरिथ।

दॄ—ददार, ददरतुः दद्रतुः; ददरिथ।

ह्वे—जुहाव, जुहुवतुः; जुहविथ जुहोथ।

गै—जगौ, जगतुः; जगिथ जगाथ।

त्रै—तत्रे; तत्रिषे।

ध्यै—दध्यौ, दध्यतुः; दध्यिथ दध्याथ।

तर्क्—तर्कयामास इत्यादि; तर्कयामासतुः इत्यादि; तर्कयामासिथ।

लोक्—लुलोके; लुलोकिषे।

शक्—शशाक, शेकतुः; शेकिथ शशक्थ।

शङ्क्—शशङ्के; शशङ्किषे।

लिख्—लिलेख, लिलिखतुः; लिलेखिथ।

लङ्घ्—ललङ्घ, ललङ्घतुः; ललङ्घिथ। (उपवासार्थे) ललङ्घे; ललङ्घिषे।

श्लाघ्—शश्लाघे; शश्लाघिषे।

पच्—पपाच, पेचतुः; पेचिथ पपक्थ। पेचे; पेचिषे।

मुच्—मुमोच, मुमुचतुः ; मुमोचिथ । मुमुचे ; मुमुचिषे ।

याच्—ययाच, ययाचतुः ; ययाचिथ । ययाचे ; ययाचिषे ।

शुच्—शुशोच, शुशुचतु ; शुशोचिथ ।

सिच्—सिषेच, सिषिचतुः ; सिषेचिथ । सिषिचे ; सिषिचिषे ।

भञ्ज्—बभञ्ज, बभजतुः बभञ्जतुः ; बभञ्जिथ बभङ्क्थ ।

भुज्—बुभोज, बुभुजतु. ; बुभोजिथ । बुभुजे ; बुभुजिषे ।

मज्ज्—ममज्ज, ममज्जतु: ; ममज्जिथ ममङ्क्थ ।

यज्—इयाज, ईजतुः ; इयजिथ इयष्ठ । ईजे ; ईजिषे ।

युज्—युयोज, युयुजतुः ; युयोजिथ । युयुजे ; युयुजिषे ।

रञ्ज्—ररञ्ज, ररजतुः ररञ्जतुः ; ररञ्जिथ ररङ्क्थ । ररजे ररञ्जे ।

सञ्ज्—ससञ्ज, ससजतुः ससञ्जतुः ; ससञ्जिथ ससङ्क्थ ।

घट्—जघटे ; जघटिषे ।

वेष्ट्—वेवेष्टे ; वेवेष्टिषे ।

पठ्—पपाठ, पेठतुः ; पेठिथ ।

क्रीड्—चिक्रीड, चिक्रीडतुः ; चिक्रीडिथ ।

कृत्—चकर्त्त, चकृततुः ; चकर्त्तिथ ।

नृत्—ननर्त्त, ननृततुः ; ननर्त्तिथ ।

यत्—येते ; येतिषे ।

वृत्—ववृते ; ववृतिषे ।

व्यथ्—विव्यथे ; विव्यथिषे ।

क्रन्द्—चक्रन्द, चक्रन्दतु: ; चक्रन्दिथ ।

खाद्—चखाद, चखादतुः ; चखादिथ ।

छिद्—चिच्छेद, चिच्छिदतुः ; चिच्छेदिथ ।

पद्—पेदे ; पेदिषे ।

वद्—उवाद, ऊदतुः ; उवदिथ ।

विद्—(दिवादि) विविदे ; विविदिषे ।

सद्—ससाद, सेदतुः ; सेदिथ ससत्थ ।

स्पन्द्—पस्पन्दे ; पस्पन्दिषे ।

क्रुध्—चुक्रोध, चुक्रुधतुः ; चुक्रोधिथ ।

बन्ध्—बबन्ध, बबधतुः बबन्धतुः ; बबन्धिथ बबन्ध ।

बाध्—बबाधे ; बबाधिषे ।

बुध्—बुबोध, बुबुधतुः ; बुबोधिथ । (दिवादि) बुबुधे ; बुबुधिषे ।

रुध्—'बुध्'-धातुवत् ।

युध्—युयुधे ; युयुधिषे ।

वृध्—ववृधे ; ववृधिषे ।

व्यध्—विव्याध, विविधतुः ; विव्यधित विव्यद्ध ।

सिध्—सिषेध, सिषिधतुः ; सिषेधिथ सिषेद्ध । (गति और निष्प-त्यर्थमे 'इट्' नित्य) ।

जन्—जज्ञे ; जज्ञिषे ।

मन्—मेने ; मेनिषे ।

क्षिप्—चिक्षेप, चिक्षिपतुः ; चिक्षेपिथ । चिक्षिपे ; चिक्षिपिषे ।

गुप्—गोपायाञ्चकार इत्यादि ; गोपायाम्बभूवतुः इत्यादि ; गोपायाम्बभूविथ । (पक्षे) जुगोप, जुगुपतुः ; जुगोपिथ जुगोप्थ ।

तप्—तताप, तेपतुः ; तेपिथ ततप्थ ।

तृप्—ततर्प, ततृपतुः ; ततर्पिथ तत्रप्थ ततर्प्थ।

दृप्—'तृप्'-धातुवत्।

दीप्—दिदीपे ; दिदीपिषे।

लुप्—लुलोप, लुलुपतुः ; लुलोपिथ। लुलुपे।

वप्—उवाप, ऊपतुः ; उवपिथ उवप्थ।

वेप्—वेवेपे ; वेवेपिषे।

शप्—शशाप, शेपतुः ; शेपिथ शशप्थ। शेपे ; शेपिषे।

स्वप्—सुष्वाप, सुषुपतुः ; सुष्वपिथ सुष्वप्थ।

लम्ब्—ललम्बे ; ललम्बिषे।

क्षुभ्—चुक्षोभ, चुक्षुभतुः ; चुक्षोभिथ। चुक्षुभे ; चुक्षुभिषे।

रभ्—रेभे ; रेभिषे।

लभ्—'रभ्'-धातुवत्।

शुभ्—शुशुभे ; शुशुभिषे।

कम्—कामयाम्बभूव, कामयामास, कामयाञ्चक्रे ; कामयाम्बभूविथ, कामयामासिथ, कामयाञ्चकृषे। (पक्षे) चकमे ; चकमिषे।

क्रम्—चक्राम, चक्रमतुः ; चक्रमिथ।

नम्—ननाम, नेमतुः ; नेमिथ ननन्थ।

भ्रम्—बभ्राम, भ्रेमतुः बभ्रमतुः ; भ्रेमिथ बभ्रमिथ।

वम्—'भ्रम्'-धातुवत्।

यम्—ययाम, येमतुः ; येमिथ ययन्थ।

रम्—रेमे ; रेमिषे।

शम्—शशाम, शेमतुः ; शेमिथ।

श्रम्—शश्राम, शश्रमतुः ; शश्रमिथ।

चर्—चचार, चेरतुः ; चेरिथ।

त्वर्—तत्वरे ; तत्वरिषे।

पूर्—पुपूरे ; पुपूरिषे।

स्फुर्—पुस्फोर, पुस्फुरतुः ; पुस्फोरिथ।

चल्—चचाल, चेलतुः ; चेलिथ।

ज्वल्—जज्वाल, जज्वलतुः ; जज्वलिथ।

जीव्—जिजीव, जिजीवतुः ; जिजीविथ।

दिव्—दिदेव, दिदिवतुः ; दिदेविथ।

धाव्—दधाव, दधावतुः ; दधाविथ।

सेव्—सिषेवे ; सिषेविषे।

अश्—आनशे ; आनशिषे आनक्षे ; आनशिढ्वे आनड्ढ्वे।

काश्—काशाम्बभूव, काशामास, काशाञ्चक्रे ; काशाम्बभूविथ, काशामासिथ, काशाञ्चकृषे। (पक्षे) चकाशे ; चकाशिषे।

क्लिश्—चिक्लेश, चिक्लिशतुः ; चिक्लेशिथ चिक्लेष्ठ।

दन्श्—ददंश, ददंशतु ददशतुः ; ददंशिथ ददशिथ ददंष्ठ।

दिश्—दिदेश, दिदिशतुः ; दिदेशिथ। दिदिशे ; दिदिशिषे।

नश्—ननाश, नेशतुः ; नेशिथ ननंष्ठ ; नेशिव नेश्व।

भ्रन्श्—बभ्रंश, बभ्रशतुः बभ्रंशतुः ; बभ्रंशिथ।

विश्—विवेश, विविशतुः ; विवेशिथ।

स्पृश्—पस्पर्श, पस्पृशतुः ; पस्पर्शिथ।

ईक्ष्—ईक्षाम्बभूव, ईक्षामास, ईक्षाञ्चक्रे ; ईक्षाम्बभूविथ, ईक्षामासिथ,

ईक्षाञ्चकृषे ।

काङ्क्ष्—चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षतुः ; चकाङ्क्षिथ ।

चक्ष्—चख्यौ ; चख्ये चचक्षे ।

कृष्—चकर्ष, चकृषतुः ; चकर्षिथ ।

घृष्—जघर्ष, जघृषतुः ; जघर्षिथ ।

तुष्—तुतोष, तुतुषतुः ; तुतोषिथ ।

दुष्—'तुष्'-धातुवत् ।

द्विष्—दिद्वेष, दिद्विषतुः ; दिद्वेषिथ । दिद्विषे ।

पिष्—पिपेष, पिपिषतुः ; पिपेषिथ ।

पुष्—'पिष्'-धातुवत् ।

भाष्—बभाषे ; बभाषिषे ।

मृष्—ममर्ष, ममृषतुः ; ममर्षिथ । (दिवादि—उभयपदी) ममृषे ; ममृषिषे ।

रक्ष्—ररक्ष, ररक्षतुः ; ररक्षिथ ।

शुष्—शुशोष, शुशुषतुः ; शुशोषिथ ।

श्लिष्—शिश्लेष, शिश्लिषतुः ; शिश्लेषिथ ।

हृष्—जहर्ष, जहृषतुः ; जहर्षिथ ।

अस्—बभूव इत्यादि । (दिवादि) आस, आसतुः आसिथ ।

आस्—आसाम्बभूव, आसामास, आसाञ्चक्रे ; आसाम्बभूविथ, आसामासिथ, आसाञ्चकृषे ।

वस्—(अदादि) ववसे ; ववसिषे ।

शन्स्—शशंस, शशंसतुः ; शशंसिथ ।

शास्—शशास, शशासतुः ; शशासिथ ।

गाह्—जगाहे ; जगाहिषे जघाक्षे ।

दह्—ददाह, देहतुः ; देहिथ ददग्ध ।

दुह्—दुदोह, दुदुहतुः ; दुदोहिथ । दुदुहे ; दुदुहिषे ।

मुह्—मुमोह, मुमुहतुः ; मुमोहिथ ।

रुह्—रुरोह, रुरुहतुः ; रुरोहिथ । रुरुहे ; रुरुहिषे ।

लिह्—लिलेह, लिलिहतुः । लिलिहे ; लिलिहिषे ।

वह्—उवाह, ऊहतुः ; उवहिथ उवोढ । ऊहे, ऊहिषे ।

सह्—सेहे ; सेहिषे ।

अनुवाद करो—भीमने दुर्योधनका ऊरु भग्न किया था । हमने कभी उसे नहीं खाया । उसने ज्वराक्रान्त होकर (सन्) भर्त्सना की थी । प्राचीन कालमे छात्रलोग प्राणपणसे गुरुका वाक्य पालन करते थे । व्यास-देवजी महाभारतका वृत्तान्त जानते थे । भीमने दुःशासनका रक्त पान किया था । राम और लक्ष्मण पिताकी आज्ञासे वनमे गये थे । लक्ष्मणने इन्द्रजित्को मारा था । वानर किष्किन्ध्यामे रहते थे । शिविने दूसरे-के लिये प्राण दान किया था । देवताओंने असुरोंके भयसे विष्णुका स्तव किया था ।

लुङ् ।

[इस प्रकरणमे २५७, २६०, २६१, २६३, २८०, २९८, २९९, ३००, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३१४, ३१६, ३२४, ३२५, ३२७, ३२८, ३३४ सूत्र, और इट्विधान, आशीर्लिङ् तथा अन्यान्य प्रकरणके स्टार(*)-चिन्हित सूत्रोंका यथासम्भव कार्य्य होगा ।]

४२२ । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'सि' (सिच्) होता है ; इकार इत, 'स्' रहता है ; यथा—भू + द् = अभू (२६१ सू०) + स् + द्—

४२३ । परस्मैपदकी विभक्ति परे रहनेसे, भू, स्था, दा, धा, (पानार्थ) पा और इ धातुके उत्तर विहित 'सि' का लोप होता है ; यथा-अभूद् = अभूत् (२६० सू०) ; (ताम्) अभूताम् ।

४२४ । लुङ्-विभक्तिका स्वरवर्ण परे रहनेसे, भू—भूव् होता है ; यथा—भू + अन् = अभूवन् ।

४२५ । 'सि' के परस्थित 'अन्'—'उस्' होता है ; 'उस्' परे आकारान्त धातुका आकार लुप्त होता है ; यथा—स्था + अन् = अस्था + स् + अन् = अस्था + उस् = अस्थुः ।

४२६ । आत्मनेपदमें स्था, दा और धा धातुका 'आ'—'इ' होता है ; यथा—दा + त = अदा + स् + त = अदित (४३१ सू०) ; (ताम्) अदिषाताम् ।

४२७ । लुङ् परे रहनेसे, 'इ'—'गा' होता है ; यथा—इ + द् = अगा + स् + द् = अगात् ; (ताम्) अगाताम् ; (अन्) अगुः ।

४२८ । परस्मैपदकी विभक्ति परे रहनेसे, घ्रा, धे, छो, शो और सो धातुके उत्तर विहित 'सि' का विकल्पसे लोप होता है ; यथा—घ्रा + द् = अघ्रा + स् + द् = अघ्रात् ; (पक्षे) अघ्रा + स् + द्—

४२९ । लुङ्के 'द्' और 'स्' परे रहनेसे, धातुके उत्तर विहित 'सि' के पश्चात् 'ई' (ईट्) होता है ; यथा—अघ्रा + स् + ई + द् = अघ्रासीत् ।

४३० । द्, स् भिन्न विभक्तिमें परस्मैपदी आकारान्त धातुके उत्तर

विहित 'सि' के पूर्वमे 'स्' और 'इट्' होते हैं; यथा—ज्ञा + ताम् = अज्ञा + स् + ताम् = अज्ञा + स् + इ + स् + ताम् = अज्ञासिष्टाम्।

४३१। त, थ, ध परे रहनेसे, ह्रस्वस्वर तथा वर्गके पञ्चमवर्ण और य, र, ल, व भिन्न व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'सि' का लोप होता है; और 'ई' परे रहनेसे, 'इट्' के परस्थित 'सि' का लोप होता है; यथा—कृ + त = अकृ + स् + त = अकृत; (आताम्) अकृपाताम्; (अन्त) अकृपत (२८० सू०)।

४३२। 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमे स्वरान्त धातुके अन्त्यस्वर, और अनिट् व्यञ्जनान्त धातुके उपधा लघुस्वरकी वृद्धि होती है; किन्तु णिजन्त धातु, श्वि और जागृ धातुका गुण होता है; यथा—नु + द् = अनु + स् + द् = अनु + इ + स् + ई + द् = अनौ + इ + ई + द् = अनावीत्, (पक्षे) अनौपीत्। श्वि + द् = अश्वि + स् + द् = अश्वि + इ + स् + ई + द् = अश्वे + इ + ई + द् = अश्वयीत्।

४३३। लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, परस्मैपदमे उपधा लघुस्वरका, और आत्मनेपदमे अन्त्यस्वर तथा उपधा लघुस्वरका गुण होता है; यथा—सिध् + द् = असिध् + स् + ई + द् = असिध् + इ + स् + ई + द् = असेधीत्; (पक्षे) असिध् + स् + ई + द् = असैत्सीत् (३००सू०)। (आत्मनेपदमे) शी + त = अशी + इ + स् + त = अशयिष्ट; द्युत् + त = अद्योतिष्ट।

४३४। 'सि' परे रहनेसे, आत्मनेपदमे अनिट् ऋकारान्त धातुका गुण नहीं होता; यथा—कृ + आताम् = अकृ + स् + आताम् = अकृपाताम्।

४३५। 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमे व्रज्, वद्, 'अर्'-अन्त और

'अल्'-अन्त धातुके उपधा अकारको वृद्धि होती है ; यथा—व्रज्+द्= अव्रज्+स्+द्=अव्रज्+इ+स्+ई+द्=अव्राजीत् ; (ताम्) अव्राजिष्टाम् । वद्+द्=अवादीत् ; (ताम्) अवादिष्टाम् । चर्+ द्=अचारीत् ; (ताम्) अचारिष्टाम् । चल्+द्=अचालीत् ; (ताम्) अचालिष्टाम् ।

४३६ । 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमे व्यञ्जनादि अर्थात् जिसके आदिमे व्यञ्जनवर्ण रहे ऐसे सेट् धातुका उपधा अकार विकल्पसे वृद्धि प्राप्त होता है ; किन्तु हान्त, मान्त, यान्त, क्षण्, श्वस्, वध् और एकार-इत (एदित्) धातुका नहीं होता ; यथा—गद्+द्=अगादीत्, अगदीत् । (हान्त) चह्+द्=अचहीत् ; (मान्त) क्रम्+द्=अक्रमीत् ; (यान्त) ह्यें+द्=अह्यर्यीत् ; क्षण्+द्=अक्षणीत् ; श्वस्+द्= अश्वसीत् ; वध्+स्=अवधीत् ; हन्+द्=अवधीत् (लुङ् परे हन्— वध् होता है) ; (एकार-इत् *) हस्+द्=अहसीत् ।

४३७ । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, परस्मैपदमे यम्, रम्, नम् धातुके उत्तर विहित 'सि' के पूर्वमे 'स्' और 'इट्' होते हैं ; यथा—यम्+ द्=अयम्+स्+इ+स्+ई+द्=अयंसीत् (६३ सू०) ; (ताम्) अयंसिष्टाम् । नम्+द्=अनंसीत् ; (ताम्) अनंसिष्टाम् । रम्+द्= अरंसीत् ; (ताम्) अरंसिष्टाम् ।

४३८ । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, (अध्ययनार्थ) अधि+इ धातुके स्थानमे विकल्पसे 'गी' होता है ; यथा—अधि+इ+त=अध्यगीष्ट ; (पक्षे) अध्यैष्ट ।

---

* एकार-इत् धातु—कद्, चट्, चत्, रग्, लग्, हस् इत्यादि ।

४३९। लुङ्-विभक्तिका परस्मैपद परे रहनेसे, शास्, ऌकार-इत्,* द्युतादि† और पुपादि‡ धातुके उत्तर 'ङ' (अङ्) होता है; 'अ' अवशिष्ट रहता है; यथा—शास्+द्=अशिषत् (लुङ्मे शास्—शिष् होता है); (ऌकार-इत्) गम्+द्=अगमत्; (द्युत्) अद्युतत् (लुङ्-विभक्तिमे द्युत् उभयपदी), (आत्मनेपदमे) अद्योतिष्ट; (पुष्) अपुषत्।

४४०। लुङ्-विभक्तिका परस्मैपद परे रहनेसे, 'जॄ'-प्रभृति§ और 'इर्'-इत्‖ धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है; यथा—जॄ+द्=अजरत्, (पक्षे) अजारीत् ('ङ' परे, जॄ—जर् होता है)। ('इर्'-इत्) च्युत्+द्=अच्युतत्, (पक्षे) अच्योतीत्; भिद्+द्=अभिदत्, (पक्षे) अभैत्सीत्, (ताम्) अभिदताम्, अभैत्ताम्, (अन्) अभिदन्, अभैत्सुः।

---

* ऌकार-इत् (ऌदित्) धातु—गम्, नश्, आप्, घस्, पत्, पिष्, शद्, सृप् इत्यादि।

† द्युतादि—द्युत्, श्वित्, स्विद् (भ्वादि), रुच्, शुध्, शुभ्, क्षुभ् (भ्वादि), ध्वंस्, भ्रंश् (भ्वादि), वृत, वृध्, स्यन्द्, कृप् (क्लृप्), लुठ् इत्यादि। लुङ् परे, द्युतादि उभयपदी।

‡ पुपादि—पुष्, तुष्, शुष्, शक्, श्लिष्, दुष्, क्षुध्, क्रुध्, स्विद्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, स्निह्, क्षम्, क्लम्, मद्, श्रम्, तम्, शम्, दम्, जस्, कुप्, लुप्, लुभ्, सिच् इत्यादि।

§ ज्रादि—जॄ, श्वि, स्तन्भ् इत्यादि।

‖ 'इर्'-इत् धातु—श्च्युत्, स्कन्द्, रिच्, विच्, रुज्, रुद्, विज् युज् (रुधादि), भिद्, निज्, दृश्, दुह्, च्युत्, शुप् इत्यादि।

४४१ । कर्त्तृवाच्यमे लुङ्-विभक्तिमे, (अदादि) वच्, (दिवादि) अस्, ख्या और लिप्, सिच्, ह्वे धातुके उत्तर 'ङ' होता है ; और आत्मनेपदमे लिपादि धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है ।

४४२ । लुङ्-विभक्तिमे श्रि, स्रु, द्रु और कम् धातुके उत्तर 'अङ्' होता है ; श्वि और धेट् धातुके उत्तर विकल्पसे 'अङ्' (चङ्) होता है ; 'अ' अवशिष्ट रहता है ।

४४३ । 'ङ' परे रहनेसे, नश्—विकल्पसे नेश्, वच् और ब्रू—वोच्, अस्—अस्थ्, ख्या—ख्य्, ह्वे—ह्व्, पत्—पप्त्, अद्—घस् होता है ; यथा—नश् + द् = अनेशत्, अनशत् ; (वच् और ब्रू) अवोचत् ; (अस्) आस्थत् ; (ख्या) अख्यत् ; (ह्वे) अह्वत् ; (पत्) अपप्तत् ; (अद्) अघसत्।

(आत्मनेपदमे लिपादि) लिप् + त = अलिपत, अलिप्त ; (सिच्) असिचत, असिक्त ; (ह्वे) अह्वत, अह्वास्त ।

४४४ । 'अङ्' परे रहनेसे, द्रु—दुद्रुव्, स्रु—सुस्रुव्, श्रि—शिश्रिय्, कम्—चीकम् और चकम् होता है ; यथा—(द्रु) अदुद्रुवत् ; (स्रु) असुस्रुवत् ; (श्रि) अशिश्रियत् ; (कम्) अचीकमत्, अचकमत् ।

४४५ । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, सृ और ऋ धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है ; 'ङ' परे गुण होता है ; यथा—सृ + द् = असरत्, असार्षीत् ; (ऋ) आरत्, आर्षीत ।

४४६ । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, दृश् धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है ; 'ङ' परे गुण होता है ; यथा—दृश् + द् = अदर्शत् ।

४४७ । 'सि' परे रहनेसे, दृश्—द्राश्, और सृज्—स्राज् होता है ; यथा—दृश् + द् = अद्राक्षीत् (३०९ सू०) ; (सृज्) अस्राक्षीत् ।

४४८। लुङ् परे दुहादि* धातुके उत्तर 'स' (क्स) होता है; 'स' परे गुण, इट् कुछभी नहीं होता; और आत्मनेपदमे दुह्, गुह्, दिह्, लिह् धातुके उत्तर विकल्पसे 'स' होता है; यथा—दुह्+द्= अदुह्+स+द्=अधुक्षत् (३०५ और ३३४ सू०); (आत्मनेपदमे) दुह्+त=अदुह्+स+त=अधुक्षत, अदुग्ध; (अन्त) अधुक्षन्त।

४४९। लुङ् परे रहनेसे, कृप्, मृप्, स्पृश्, दिश्, द्विप्, त्विप् और आलिङ्गनार्थ श्लिप् धातुके उत्तर विकल्पसे 'स' होता है; यथा—कृप्+द्=अकृप्+स+द्=अकृक्षत्।

४५०। 'सि' परे रहनेसे, कृप्—क्राप्, मृश्—म्राश्, तृप्—त्राप्, दृप्—द्राप्, सृप्—स्राप् और स्पृश्—स्प्राश् होता है—विकल्पसे; यथा—(कृप्) अक्राक्षीत्; (पक्षे) अकार्क्षीत् (४३२ सू०)।

४५१। लुङ्के आत्मनेपदके 'त' और 'थास्' परे, तनादि धातुके उत्तर 'सि' का विकल्पसे लोप होता है; और लोप होनेसे नकार लुप्त होता है; यथा—तन्+त=अतत, अतनिष्ट; (थास्) अतथाः, अतनिष्ठाः।

४५२। लुङ्के आत्मनेपदका 'त' परे रहनेसे, पद् धातुके उत्तर 'इण्' होता है; 'इण्' का 'ण्' इत्, 'इ' रहता है; और उस 'इण्' के परस्थित 'त' लुप्त होता है; यथा—पद्+त=अपद्+इ+त=अपादि; (ताम्) अपत्साताम्।

४५३। 'त' परे रहनेसे, प्याय्, ताय्, दीप्, पूर्, जन् और बुध्

---

* उपधामे इकार और उकार रहे ऐसे अनिट् दुह्, मिह् प्रभृति—हान्त धातु।

धातुके उत्तर विकल्पसे 'इण्' होता है; यथा—प्याय्+त=अप्यायि, अप्यायिष्ट; बुध्+त=अबोधि*, अबुद्ध; (ताम्) अभुत्साताम्; (अन्त) अभुत्सत।

(लुङ्-रूप)

परस्मैपदी।

भू धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
मध्यमपुरुष	अभूः	अभूतम्	अभूत
उत्तमपुरुष	अभूवम्	अभूव	अभूम

श्रु धातु।

प्रथमपुरुष	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
मध्यमपुरुष	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उत्तमपुरुष	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

तॄ धातु।

प्रथमपुरुष	अतारीत्	अतारिष्टाम्	अतारिषुः
मध्यमपुरुष	अतारीः	अतारिष्टम्	अतारिष्ट
उत्तमपुरुष	अतारिषम्	अतारिष्व	अतारिष्म

वद् धातु।

प्रथमपुरुष	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः

* 'इण्' परे बुध्—बोध् होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उत्तमपुरुष	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

वस् धातु।

प्रथमपुरुष	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः
मध्यमपुरुष	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
उत्तमपुरुष	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म

रुद् धातु।

प्रथमपुरुष	अरुदत् अरोदीत्	अरुदताम् अरोदिष्टाम्	अरुदन् अरोदिषुः
मध्यमपुरुष	अरुदः अरोदीः	अरुदतम् अरोदिष्टम्	अरुदत अरोदिष्ट
उत्तमपुरुष	अरुदम् अरोदिषम्	अरुदाव अरोदिष्व	अरुदाम अरोदिष्म

गम् धातु।

प्रथमपुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
मध्यमपुरुष	अगमः	अगमतम्	अगमत
उत्तमपुरुष	अगमम्	अगमाव	अगमाम

क्रम् धातु।

प्रथमपुरुष	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषुः
मध्यमपुरुष	अक्रमीः	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उत्तमपुरुष	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म

नम् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
मध्यमपुरुष	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
उत्तमपुरुष	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

दृश् धातु ।

प्रथमपुरुष	अदर्शत् अद्राक्षीत्	अदर्शताम् अद्राष्टाम्	अदर्शन् अद्राक्षुः
मध्यमपुरुष	अदर्शः अद्राक्षीः	अदर्शतम् अद्राष्टम्	अदर्शत अद्राष्ट
उत्तमपुरुष	अदर्शम् अद्राक्षम्	अदर्शाव अद्राक्ष्व	अदर्शाम अद्राक्ष्म

स्पृश् धातु ।

प्रथमपुरुष	अस्पृक्षत् अस्प्राक्षीत् अस्पार्क्षीत्	अस्पृक्षताम् अस्प्राष्टाम् अस्पार्ष्टाम्	अस्पृक्षन् अस्प्राक्षुः अस्पार्क्षुः
मध्यमपुरुष	अस्पृक्षः अस्प्राक्षीः अस्पार्क्षीः	अस्पृक्षतम् अस्प्राष्टम् अस्पार्ष्टम्	अस्पृक्षत अस्प्राष्ट अस्पार्ष्ट
उत्तमपुरुष	अस्पृक्षम् अस्प्राक्षम् अस्पार्क्षम्	अस्पृक्षाव अस्प्राक्ष्व अस्पार्क्ष्व	अस्पृक्षाम अस्प्राक्ष्म अस्पार्क्ष्म

आत्मनेपदी।

शी धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
मध्यमपुरुष	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम् (ध्वम्)
उत्तमपुरुष	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

सेव् धातु।

प्रथमपुरुष	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
मध्यमपुरुष	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम् (ध्वम्)
उत्तमपुरुष	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

जन् धातु।

प्रथमपुरुष	अजनि / अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
मध्यमपुरुष	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्
उत्तमपुरुष	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

पद् धातु।

प्रथमपुरुष	अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
मध्यमपुरुष	अपत्थाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

अधि+इ धातु।

प्रथमपुरुष	अध्यगीष्ट / अध्यैष्ट	अध्यगीषाताम् / अध्यैषाताम्	अध्यगीषत / अध्यैषत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अध्यगीष्ठाः अध्यैष्ठाः	अध्यगीषाथाम् अध्यैषाथाम्	अध्यगीढ्वम् अध्यैढ्वम्
उत्तमपुरुष	अध्यगीषि अध्यैषि	अध्यगीष्वहि अध्यैष्वहि	अध्यगीष्महि अध्यैष्महि।

उभयपदी।

दा धातु।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अदात्	अदाताम्	अदुः
मध्यमपुरुष	अदाः	अदातम्	अदात
उत्तमपुरुष	अदाम्	अदाव	अदाम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
मध्यमपुरुष	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
उत्तमपुरुष	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

ज्ञा धातु।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
मध्यमपुरुष	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उत्तमपुरुष	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
मध्यमपुरुष	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उत्तमपुरुष	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

कृ धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
मध्यमपुरुष	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उत्तमपुरुष	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
मध्यमपुरुष	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उत्तमपुरुष	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

भिद् धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अभिदत् अभैत्सीत्	अभिदताम् अभैत्ताम्	अभिदन् अभैत्सुः
मध्यमपुरुष	अभिदः अभैत्सीः	अभिदतम् अभैत्तम्	अभिदत अभैत्त
उत्तमपुरुष	अभिदम् अभैत्स्वम्	अभिदाव अभैत्स्व	अभिदाम अभैत्स्म

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभित्त	अभित्साताम्	अभित्सत
मध्यमपुरुष	अभित्थाः	अभित्साथाम्	अभिद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अभित्सि	अभित्स्वहि	अभित्स्महि

दुह् धातु।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्
मध्यमपुरुष	अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत
उत्तमपुरुष	अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अधुक्षत / अदुग्ध	अधुक्षाताम्	अधुक्षत
मध्यमपुरुष	अधुक्षथाः / अदुग्धाः	अधुक्षाथाम्	अधुक्षध्वम् / अधुग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अधुक्षि	अधुक्षावहि / अदुह्वहि	अधुक्षामहि / अदुह्महि

* * *

आकारान्त-प्रभृति-क्रमसे कई प्रचलित धातुओंके लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन, द्विवचन, बहुवचनके रूप दिखलाये जाते हैं। इनके जाननेसेही अवशिष्ट पद सुगम होंगे।

घ्रा—अघ्रात् अघ्रासीत्, अघ्राताम् अघ्रासिष्टाम्, अघ्रुः अघ्रासिषुः।

पा—अपात्; (रक्षार्थमें) अपासीत् ।

भा—अभासीत्, अभासिष्टाम्, अभासिषुः ।

या, हा—'भा'-धातुवत् ।

इ—अगात्, अगाताम्, अगुः ।

जि—अजैषीत्, अजैष्टाम्, अजैषुः ।

क्री—अक्रैषीत्, अक्रैष्टाम्, अक्रैषुः । अक्रेष्ट, अक्रेषाताम्, अक्रेषत ।

नी—'क्री'-धातुवत् ।

भी—'जि'-धातुवत् ।*

स्तु—अस्तावीत् अस्तौषीत्, अस्ताविष्टाम् अस्तौष्टाम्, अस्ताविषुः अस्तौषुः । अस्तोष्ट ।

हु—'श्रु'-धातुवत् ।

पू—अपावीत्, अपाविष्टाम्, अपाविषुः । अपविष्ट ।

सू—असविष्ट असोष्ट, असविषाताम् असोषाताम् ।

जागृ—अजागरीत्, अजागरिष्टाम्, अजागरिषुः ।

मृ—अमृत, अमृषाताम्, अमृषत ।

वृ—अवारीत्, अवारिष्टाम्, अवारिषुः । अवृत अवरिष्ट अवरीष्ट, अवृषाताम् अवरिषाताम् अवरीषाताम् ।

स्मृ—अस्मार्षीत्, अस्मार्ष्टाम्, अस्मार्षुः ।

हृ—अहार्षीत् । अहृत ।

कॄ—अकारीत्, अकारिष्टाम्, अकारिषुः ।

जॄ—अजरत् अजारीत्, अजरताम् अजारिष्टाम्, अजरन् अजारिषुः ।

---

* 'मा'-शब्दके योगसे—मा भैः, मा भैषीः—ये दो पद होते हैं ।

दृ—'कृ'-धातुवत्।

गै—अगासीत्, अगासिष्टाम्, अगासिषुः।

त्रै—अत्रास्त, अत्रासाताम्।

शक्—अशकत्, अशकताम्, अशकन्।

शङ्क्—अशङ्किष्ट, अशङ्किषाताम्।

लिख्—अलेखीत्, अलेखिष्टाम्, अलेखिषुः।

श्लाघ्—अश्लाघिष्ट, अश्लाघिषाताम्।

पच्—अपाक्षीत्, अपाक्ताम्, अपाक्षुः। अपक्त, अपक्षाताम्।

मुच्—अमुचत्, अमुचताम्, अमुचन्। अमुक्त, अमुक्षाताम्।

याच्—अयाचीत्, अयाचिष्टाम्, अयाचिषुः। अयाचिष्ट।

वच् और ब्रू—अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्।

शुच् (भ्वादि)—अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः।

सिच्—असिचत्, असिचताम्, असिचन्। असिचत असिक्त, असिचेताम् असिक्षाताम्, असिचन्त असिक्षत।

प्रच्छ्—अप्राक्षीत्, अप्राष्टाम्, अप्राक्षुः।

अर्ज्—आर्जीत्, आर्जिष्टाम्, आर्जिषुः।

त्यज्—अत्याक्षीत्, अत्याक्ताम्, अत्याक्षुः।

भञ्ज्—अभाङ्क्षीत्, अभाङ्क्ताम्, अभाङ्क्षुः।

भुज्—अभौक्षीत्, अभौक्ताम्, अभौक्षुः। अभुक्त, अभुक्षाताम्।

मज्ज्—अमाङ्क्षीत्, अमाङ्क्ताम्, अमाङ्क्षुः।

युज्—अयुजत् अयौक्षीत्, अयुजताम् अयौक्ताम्, अयुजन् अयौक्षुः।
अयुक्त, अयुक्षाताम्, अयुक्षत।

राज्—अराजीत्, अराजिष्टाम्, अराजिषुः। अराजिष्ट।

लस्ज्—अलज्जिष्ट, अलज्जिषाताम्।

सृज्—अस्राक्षीत्, अस्राष्टाम्, अस्राक्षुः।

घट्—अघटिष्ट, अघटिषाताम्, अघटिषत।

चेष्ट्—अचेष्टिष्ट, अचेष्टिषाताम्, अचेष्टिषत।

वेष्ट्—'चेष्ट्'-धातुवत्।

पठ्—अपाठीत् अपठीत्, अपाठिष्टाम् अपठिष्टाम्।

क्रीड्—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम्, अक्रीडिषुः।

कृत्—अकर्त्तीत्, अकर्त्तिष्टाम्, अकर्त्तिषुः।

नृत्—अनर्त्तीत्, अनर्त्तिष्टाम्, अनर्त्तिषुः।

पत्—अपप्तत्, अपप्तताम्, अपप्तन्।

यत्—अयतिष्ट, अयतिषाताम्, अयतिषत।

वृत्—अवृतत्, अवृतताम्, अवृतन्। अवर्त्तिष्ट, अवर्त्तिषाताम्।

अद्—अघसत्, अघसताम्, अघसन्।

क्रन्द्—अक्रन्दीत्, अक्रन्दिष्टाम्, अक्रन्दिषुः।

खाद्—अखादीत्, अखादिष्टाम्, अखादिषुः।

छिद्—'भिद्'-धातुवत्।

विद्—अवेदीत्, अवेदिष्टाम्, अवेदिषुः। (दिवादि) अवित्त, अवित्साताम्। (तुदादि) अविदत्; अवेदिष्ट अवित्त।

क्रुध्—अक्रुधत्, अक्रुधताम्, अक्रुधन्।

बन्ध्—अभान्त्सीत्, अबान्धाम्, अभान्त्सुः।

बुध्—(भ्वादि) अबुधत् अबोधीत्; अबोधिष्ट। (दिवादि) अबो-

वि अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत ।

युध्—अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत ।

वृध्—अवृधत्, अवृधताम्, अवृधन् । अवर्द्धिष्ट, अवर्द्धिषाताम् ।

व्यध्—अव्यात्सीत्, अव्यात्ताम्, अव्यात्सुः ।

जन्—अजनि अजनिष्ट, अजनिषाताम्, अजनिषत ।

मन्—अमंस्त, अमंसाताम्, अमंसत ।

हन्—अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः ।

आप्—आपत्, आपताम्, आपन् ।

क्षिप्—अक्षैप्सीत्, अक्षैप्ताम्, अक्षैप्सुः ; अक्षिप्त, अक्षिप्साताम्, अक्षिप्सत ।

तप्—अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः ।

दीप्—अदीपि अदीपिष्ट, अदीपिषाताम्, अदीपिषत ।

लुप्—अलुपत्, अलुपताम्, अलुपन् । अलुप्त, अलुप्साताम्, अलुप्सत ।

लभ्—अलब्ध, अलप्साताम्, अलप्सत ।

शुभ्—अशुभत्, अशुभताम्, अशुभन् ; अशोभिष्ट, अशोभिषाताम्, अशोभिषत ।

क्षम्—(दिवादि) अक्षमत् अक्षमीत् । (भ्वादि) अक्षमिष्ट अक्षंस्त ।

भ्रम्—(भ्वादि) अभ्रमत् अभ्रमीत्; (दिवादि) अभ्रमीत् ।

यम्—अयंसीत्, अयंसिष्टाम्, अयंसिषुः ।

रम्—अरंस्त, अरंसाताम्, अरंसत ।

शम्—अशमत् । ('अशमत् अशमीत्' इति वोपदेवः ।)

श्रम्—अश्रमत् ।

चर्—अचारीत्, अचारिष्टाम्, अचारिषुः ।

त्वर्—अत्वरिष्ट, अत्वरिषाताम् ।

पूर्—अपूरि अपूरिष्ट, अपूरिषाताम् ।

स्फुर्—अस्फुरीत्, अस्फुरिष्टाम्, अस्फुरिषुः ।

ज्वल्—अज्वालीत्, अज्वालिष्टाम्, अज्वालिषुः ।

जीव्—अजीवीत्, अजीविष्टाम्, अजीविषुः ।

दिव्—अदेवीत्, अदेविष्टाम्, अदेविषुः ।

धाव्—अधावीत्, अधाविष्टाम्, अधाविषुः । अधाविष्ट, अधाविषाताम्, अधाविषत ।

अश्—आशिष्ट आष्ट, आशिषाताम् आक्षाताम्, आशिषत आक्षत । (क्र्यादि) आशीत्, आशिष्टाम् ।

दन्श्—अदाङ्क्षीत्, अदांष्टाम्, अदाङ्क्षुः ।

दिश्—अदिक्षत्, अदिक्षताम्, अदिक्षन् । अदिक्षत, अदिक्षाताम् ।

विश्—अविक्षत्, अविक्षताम्, अविक्षन् ।

इष्—ऐषीत्, ऐषिष्टाम्, ऐषिषुः ।

ईक्ष्—ऐक्षिष्ट, ऐक्षिषाताम्, ऐक्षिषत ।

काङ्क्ष्—अकाङ्क्षीत्, अकाङ्क्षिष्टाम्, अकाङ्क्षिषुः ।

कृष्—'स्पृश्'-धातुवत् ।

तुष्—अतुषत्, अतुषताम्, अतुषन् ।

पुष्, शिष्—'तुष्'-धातुवत् ।

द्विष्—अद्विक्षत्, अद्विक्षताम्, अद्विक्षन् । अद्विक्षत, अद्विक्षाताम्,

अद्विक्षन्त।

भाष्—अभाषिष्ट, अभाषिषाताम्, अभाषिषत।

मृष्—(भ्वादि) अमर्षीत्। (दिवादि) अमृषन्, अमृषताम्, अमृषन्; अमर्षिष्ट, अमर्षिषाताम्, अमर्षिषत।

रक्ष्—अरक्षीत, अरक्षिष्टाम्, अरक्षिषुः।

वृष्—अवर्षीत्, अवर्षिष्टाम्, अवर्षिषुः।

अस्—(अदादि) 'भू'-धातुवत्। (दिवादि) आस्थन्, आस्थताम्, आस्थन्।

आस्—आसिष्ट, आसिषाताम्, आसिषत।

वस्—(अदादि) अवसिष्ट, अवसिषाताम्, अवसिषत।

शंस्—अशंसीत्, अशंसिष्टाम्, अशंसिषुः।

शास्—अशिषत्, अशिषताम् अशिषन्।

श्वस्—अश्वसीत्, अश्वसिष्टाम्, अश्वसिषुः।

हस्—अहसीत्, अहसिष्टाम्, अहसिषुः।

हिंस्—अहिंसीत्, अहिंसिष्टाम्, अहिंसिषुः।

गाह्—अगाहिष्ट अगाढ, अगाहिषाताम् अघाक्षाताम्, अगाहिषत अघाक्षत।

ग्रह्—अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्, अग्रहीषुः। अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम्, अग्रहीषत।

दह्—अधाक्षीत्, अदाग्धाम्, अधाक्षुः।

रुह्—अरुक्षत्।

वह्—अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षुः। अवोढ, अवक्षाताम्, अवक्षत।

※अङ्गरेजी 'Present perfect', 'past' or 'past perfect' इनके वीचमे जिस किसीका संस्कृतमे अनुवाद करना हो, उसीमे लङ्, लुङ् अथवा लिट् विभक्तिका प्रयोग करना होगा ; अर्थात् इन तीनोके वीचमे जहाँ जिसके प्रयोगसे सुननेमे अच्छा लगता, वहाँ उसीका प्रयोग करना चाहिये । यद्यपि पूर्वकालमे 'लङ्—ह्यस्तनी, लुङ्—अद्यतनी, और लिट्—परोक्ष'—ऐसे विशिष्ट नामोसे इनका अभिधान हुआ था, तथाऽपि साहित्यादिग्रन्थोंमे उसका व्यभिचार दृष्ट होनेसे, सम्प्रति तद्विषयक कोई निर्दिष्ट नियम नहीं किया जा सकता । यथा—

(1) I have done my duty—अहमकरवं मदीयं कृत्यम् ।

(2) I did my duty—मत्कार्य्यमहमकार्षम् ।

(3) He had done his duty before I came—प्रागेव ममाभ्यागमात् स तत्कर्त्तव्यं चकार ।

प्रत्ययान्त धातु ।

णिच्, सन्, यङ् प्रभृति प्रत्ययोंसे कई धातु निष्पन्न होते हैं, उनको 'प्रत्ययान्त धातु' कहते हैं । प्रत्ययान्त धातु भ्वादिगणीयमे गण्य होते हैं (केवल 'यङ्लुगन्त धातु' अदादिगणीयके तुल्य) । प्रत्ययान्त धातुके वीचमे कई एकको 'नामधातु' कहते हैं ; विशेष विशेष अर्थमे नाम अर्थात् शब्दके उत्तर 'क्य, क्यङ्' प्रभृति प्रत्यय-द्वारा वे निष्पन्न होते हैं ।

णिजन्त धातु (Causative verb)।

४५४ । 'प्रेरण'-अर्थमे धातुके उत्तर 'णिच्' होता है । एक

कर्त्ताके अन्य कर्त्ताको कार्य्यमे नियुक्त करनेका नाम 'प्रेरण' । 'णिच्' का 'इ' रहता है । 'णिच्'-प्रत्यय करके जो धातु निष्पन्न होता है, उसको 'णिजन्त धातु' कहते हैं । णिजन्त धातु उभयपदी । यथा—(कर्त्तुं प्रेरयति=कराता है) कारयति ।

चि+इ=चायि (२९२ सू०)—चाययति ; नी+इ=नायि—नाययति ; कृ और कॄ=कारि—कारयति ; श्रु+इ=श्रावि—श्रावयति ; भू+इ=भावि—भावयति । (उपधा 'अ') वद्+इ=वादि—वादयति । (उपधा 'उ') नुद्+इ=नोदि—नोदयति ; (उपधा 'इ') लिख्+इ=लेखि—लेखयति ; सिध्+इ=सेधि—सेधयति* ; (उपधा 'ऋ') दृश्+इ=दर्शि—दर्शयति । (उपधा 'आ') खाद्+इ=खादि—खादयति ; (उपधा 'ई') जीव्+इ=जीवि—जीवयति ।

इत्-कार्य्य ।

४५५ । प्रकृति, आगम और प्रत्ययके जो जो वर्ण नहीं रहते, उन्हें 'इत्' कहते हैं ; यथा—'णिच्' के 'ण्' और 'च्' इत् ।

इसे 'इत्' के विशेष विशेष कार्य्य हैं, सो प्रदर्शित किये जाते हैं—

(१) उ—'उ' इत् (उदित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' होता है ; यथा—बुद्धि+मतु=बुद्धिमत्—बुद्धिमती ।

(२) ऋ—'ऋ'-इत् (ऋदित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' होता है ; यथा—रुद्+शतृ=रुदत्—रुदती ।

(३) क—'क'-इत् (कित्) होनेसे, गुण नहीं होता ; यथा—

* दिवादि 'सिध्'-धातुके स्थानमे विकल्पसे 'साध्' होता है ।

बुध् + क्ति = बुद्धिः ; कृ + क्त = कृत ।

यज्, व्यध् और व्ये धातुके स्वरसहित 'य' के स्थानमे 'इ' होता है ; यथा—यज् + क्त = इष्ट ।

वच्, वद्, वप्, वश्, (भ्वादि) वस्, वह्, वे, श्वि, स्वप् और ह्वे धातुके स्वरसहित 'व' के स्थानमे 'उ' होता है ; यथा—वच् + क्त = उक्त ।

ग्रह्, प्रच्छ् और भ्रस्ज् धातुके स्वरसहित 'र' के स्थानमे 'ऋ' होता है ; यथा—ग्रह् + क्त = गृहीत* ।

शास्-धातुके स्थानमे 'शिष्' होता है ; यथा—शास् + क्त = शिष्ट ।

(४) ख—'ख'-इत् (खित्) होनेसे, स्वरान्त उपपदके उत्तर अर्थात् धातु और तत्पूर्ववर्त्ती शब्दके बीचमे 'म्' आगम होता है ; यथा—भय + कृ + ख = भयङ्कर ; भुज + गम् + ख = भुजङ्गमः ।

(५) घ—'घ्'-इत् (घित्) होनेसे, प्रकृतिके 'च्' स्थानमे 'क्', और 'ज्' के स्थानमे 'ग्' होता है ; यथा—पच् + घञ् = पाकः ; त्यज् + घञ् = त्यागः ।

(६) ङ—'ङ'-इत् (ङित्) होनेसे, गुण नहीं होता ; यथा—भिद् + अङ् = भिदा ।

(७) ञ—'ञ'-इत (ञित्) होनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा अकारकी वृद्धि होती है ; यथा—हृ + घञ् = हारः ; नश् + घञ् = नाशः ।

---

* स्वरसहित 'य' के स्थानमे 'इ', 'व' के स्थानमे 'उ', और 'र' के स्थानमे 'ऋ' होनेको 'सम्प्रसारण' कहते हैं ।

उपधा लघुस्वरका गुण होता है ; यथा—शुच् + घञ् = शोकः ।

आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है ; यथा—दा + घञ् = दायः ।

(८) ट—'ट्'-इत् (टित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' होता है ; यथा—अनु + चर् + ट = अनुचरः—अनुचरी ।

(९) ड—'ड्'-इत् (डित्) होनेसे, 'टि' अर्थात् प्रकृतिके अन्त्यस्वर और तत्परवर्त्ती व्यञ्जनवर्णका लोप होता है ; यथा—द्वि + जन् + ड = द्विजः ।

(१०) ण—'ण्'-इत् (णित्) होनेसे, 'ञ्'-इत्के तुल्य कार्य्य होता है ; यथा—कृ + णक = कारकः ।

तद्धितका 'ण्'-इत् होनेसे प्रातिपदिकके आदिस्वरकी वृद्धि होती है ; यथा—विष्णु + ष्ण = वैष्णवः ।

(११) प—'प्'-इत् (पित्) होनेसे, ह्रस्वस्वरान्त धातुके उत्तर 'त' होता है ; यथा—प्र + कृ + यप् = प्रकृत्य ; विश्व + जि + क्विप् = विश्वजित् ।

(१२) श—'श्'-इत् (शित्) होनेसे, लट्के तुल्य कार्य्य होता है ; यथा—गम् + शतृ = गच्छत् ; दृश् + शतृ = पश्यत् ।

(१३) ष—'ष्'-इत् (षित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' होता है ; यथा—विष्णु + ष्ण = वैष्णवः—वैष्णवी ।

४९६ । णिच् परे, जॄ, जागृ, घटादि* और 'अम्'-भागान्त† धातुकी

---

* घटादि—घट्, व्यथ्, त्वर्, ज्वर्, प्रथ्, जन्, नट् (णट्) लग् इत्यादि ।

† किन्तु कम्, चम्, अम् धातुकी वृद्धि होती है ।

वृद्धि नहीं होती ; यथा—(जॄ) जरयति ; (जागृ) जागरयति ; (घट्) घटयति ; (गम्) गमयति ।

४९७ । णिच् परे, आकारान्त धातुके उत्तर 'प' होता है*; यथा—(स्था) स्थापयति ।

४९८ । **कई णिजन्त धातुओंकी विशेष आकृति ।**—अस्—भावि ; भावयति । इ—गमि ; गमयति । अधि+इ—(अध्ययनार्थे) अध्यापि, (स्मरणार्थे) अध्यायि ; अध्यापयति, अध्याययति । प्रति+इ—(ज्ञानार्थे) प्रत्यायि ; प्रत्याययति । ऋ—अर्पि ; अर्पयति । क्री—क्रापि ; क्रापयति । गै—गापि ; गापयति । चल्—(कम्पनार्थे) चलि, (स्थानान्तर-प्रापणार्थे) चालि ; यथा—चलयति तरून् समीरणः, चालयति हस्तिनं यन्ता । चि—चापि, चायि ; चापयति, चाययति । जि—जापि ; जापयति । ज्वल्—ज्वलि, ज्वालि, (उपसर्गयुक्त) ज्वलि ; ज्वलयति, ज्वालयति, प्रज्वलयति । दुष्—दूषि ; दूषयति ;—'चित्तविकार'-अर्थमे विकल्पसे होता है ; यथा—दूषयति दोषयति चित्तं कामः । धू—धूनि ; धूनयति ;—धावि इति च केचित् ; धावयति । नम्—नमि, नामि, (उपसर्गयुक्त) नमि ; नमयति, नामयति, प्रणमयति । पा—(पानार्थे) पायि, (रक्षार्थे) पालि ; पाययति, पालयति । प्री—प्रीणि, प्रायि ; प्रीणयति, प्राययति । ब्रू, वच्—वाचि ; वाचयति । भी—भीपि, भापि, (करण-कारक रहनेसे) भायि ; भीपि, भापि आत्मनेपदी होते हैं ; यथा—सर्पः शिशुं भीपयते, भापयते वा—यहाँ सर्प अन्यकी अपेक्षा न करके स्वयं भयका जनक है ; पुरुषः सर्पेण शिशुं भाययति—यहाँ पुरुष सर्प-द्वारा शिशुका भय उत्पादन

* 'प' परे 'ज्ञा'-धातुका ह्रस्वभी होता है ।

करता है, अन्यनिरपेक्ष होकर स्वयं नहीं । रुह्—रोहि, रोपि ; रोहयति, रोपयति । लभ्—लम्भि ; लम्भयति । ली—लापि, लायि, (द्रवपदार्थ कर्म होनेसे) लालि, लीनि ; यथा—लौहं विलापयति, जतु विलाययति ; विलालयति विलीनयति विलापयति विलाययति वा घृतम् । वम्—वमि, वामि, (उपसर्गयुक्त) वमि ; वमयति, वामयति, उद्वमयति । शद्— (गत्यर्थे) शादि, (पतनार्थे) शाति ; यथा—गाः शादयति गोपालः (गमयतीत्यर्थः), पत्रं शातयति तुषारः (नाशयति इत्यर्थः) । शम्— शमि, (दर्शनार्थे) शामि ; यथा—शमयति रोगं भिषक् ; निशामयति रूपम् (पश्यतीत्यर्थः) । सिध्—(दिवादि) साधि ; साधयति । स्ना— स्नपि, स्नापि, (उपसर्गयुक्त) स्नापि ; स्नपयति, स्नापयति, प्रस्नापयति । स्मि—स्मापि, (करण कारक रहनेसे) स्मायि ; स्मापि आत्मनेपदी होता है ; यथा—मुण्डः शिशुं विस्मापयते ; प्रेतो रूपेण मां विस्माययति । हन्—घाति ; घातयति । ह्री—ह्रेपि ; ह्रेपयति । स्फुर्—स्फारि, स्फोरि ; स्फारयति, स्फोरयति ।

णिजन्त धातुके रूप ।

श्रावि धातु ।

लट्—श्रावयति । लोट्—श्रावयतु । लङ्—अश्रावयत् । विधिलिङ्— श्रावयेत् । लृट्—श्रावयिष्यति । लुट्—श्रावयिता । लृङ्—अश्रावयिष्यत् । आशीः—(आशीर्लिङ् परस्मैपदमें णिजन्त धातुके 'इ' का लोप होता है) श्राव्यात्, श्राव्यास्ताम्, श्राव्यासुः ।

लिट्—

४९९ । लिट्-विभक्तिमें णिजन्त धातुके उत्तर आम्' होता है, और

'आम्' के उत्तर भू, कृ, अस्—इन तीन धातुओंका प्रयोग होता है; यथा—आवयाम्बभूव, आवयाञ्चकार, आवयामास।

लुङ्—अशिश्रवत्, अशुश्रवत्।

४६०। लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, णिजन्त धातुके उत्तर 'अङ्' होता है; 'ङ' ईत्, 'अ' रहता है; यथा—सेचि + द् = असेचि + अ + द्—

४६१। 'अङ्' परे रहनेसे, णिजन्त धातु अभ्यस्त होता है, और 'णिच्'के इकारका लोप होता है; यथा—असेच् सेच् + अ + द् = असिसेच् + अ + द् (३९३ सूत्रानुसार ह्रस्व)—

४६२। 'अङ्' परे, अकारान्त (अदन्त) चुरादि और शास् भिन्न अभ्यस्त धातुके परभागका दीर्घस्वर ह्रस्व होता है, और अकार-भिन्न पूर्वभागका ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—असीसिच् + अ + द् = असीषिचत्; मोचि + द् = अमूमुचत्।

४६३। अभ्यस्त धातुका परभाग गुरुस्वर-युक्त होनेसे, पूर्वभागका ह्रस्वस्वर दीर्घ नहीं होता; यथा—निन्दि + द् = अनिनिन्दत्।

४६४। परभाग लघुस्वर-युक्त होनेसे, पूर्वभागका अकार—ईकार होता है; यथा—पाति + द् = अ + पात् पात् + अ + द् = अपपत् + अ + द् = अपीपतत्।

४६५। अनेकस्वरविशिष्ट धातुके पूर्वभागका 'अ' विकल्पसे ईकार होता है; यथा—चकासि + द् = अचीचकासत्, अचचकासत्। (परभाग गुरुस्वर-युक्त) शासि + द् = अशशासत्; (भक्षि) अबभक्षत्।

४६६। णिजन्त स्मृ, दृ, त्वर्, स्तृ, प्रथ् भिन्न संयुक्तवर्ण परे रहनेसे, पूर्वभागके अकारके स्थानमे इकार होता है; यथा—व्यथि + द् =

अविव्यथत्; (ज्ञापि) अजिज्ञपत्। स्मारि+द्=असस्मरत्; (दारि) अददरत्; (त्वरि) अतत्वरत्; (स्तारि) अतस्तरत्; (प्रथि) अपप्रथत्।

णिजन्त चेष्ट् और वेष्ट् धातुका उक्त कार्य्य विकल्पसे होता है; यथा— (चेष्टि) अचिचेष्टत्, अचचेष्टत्; (वेष्टि) अविवेष्टत्, अववेष्टत्।

४६७। णिजन्त भ्राजादि*धातुके परभागका उपधा गुरुस्वर विकल्पसे लघु होता है; यथा—भ्राजि+द्=अबिभ्रजत्, अबभ्राजत्; (दीपि) अदीदिपत्, अदिदीपत्।

४६८। जिन धातुओंकी उपधामें ऋकार रहता है, णिजन्त करनेसे, वे 'अङ्' परे विकल्पसे धातुकी आकृति धारण करते हैं; यथा—वर्त्ति+द्=अवर्त्ति+अ+द्=अ+वृत् वृत्+अ+द्=अवीवृतत्; (पक्षे) अववर्त्तत्।

४६९। 'अङ्' परे, स्वापि—सूपुप्, स्थापि—तिष्ठिप्, और (पानार्थ) पायि—पीपी होता है; यथा—स्वापि+द्=असूपुपत्; (स्थापि) अतिष्ठिपत्; (पायि) अपीप्यत्।

४७०। 'अङ्' परे, णिजन्त श्रु, स्रु, द्रु, प्रु, प्लु और च्यु धातुके पूर्वभागके अकारके स्थानमें विकल्पसे इकार होता है; यथा—श्रावि+द्=अशिश्रवत्, अशुश्रवत्; (द्रु) अदिद्रवत्, अदुद्रवत्।

४७१। 'अङ्' परे रहनेसे, अकारान्त चुरादिके पूर्वभागके अकारके स्थानमें 'ई' नहीं होता; यथा—रचि+द्=अररचत्।

---

* भ्राजादि—भ्राज्, दीप्, भास्, भाष्, जीव्, मील्, पीड्, कण्, रण्, वण्, भण्, श्रण्, लप्, लुप् इत्यादि।

४७२। 'अङ्' परे, गण और कथ धातुके पूर्व्वभागका अकार विकल्पसे 'ई' होता है; यथा—गणि+द्=अजीगणत्, अजगणत्; (कथि) अचीकथत्, अचकथत्।

गण धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजीगणत्	अजीगणताम्	अजीगणन्
मध्यमपुरुष	अजीगणः	अजीगणतम्	अजीगणत
उत्तमपुरुष	अजीगणम्	अजीगणाव	अजीगणाम

४७३। णिजन्त धातुके प्रयोगमे, जो अन्य कर्त्ताको किसी कार्य्यमे प्रवर्त्तित (प्रेरण) करता है (अर्थात् अन्यद्वारा कोई काम कराता है), उसे 'प्रयोजक कर्त्ता' कहते हैं। कर्त्तृवाच्यमे प्रयोजक कर्त्तामे प्रथमा होती है, और प्रयोजक कर्त्ताके अनुसार क्रियाके पुरुष और वचन होते हैं। प्रयोजक कर्त्ता जिसको क्रियामे नियुक्त करता है, अर्थात् प्रेरित होकर जो काम करता है, उसको 'प्रयोज्य कर्त्ता' कहते हैं। प्रयोज्य कर्त्तामे तृतीया विभक्ति होती है। यथा—गुरुः छात्रेण लेखयति (लिखन्तं छात्रं प्रेरयति—गुरु छात्र-द्वारा लिखाता है)—यहाँ 'गुरुः'—प्रयोजक कर्त्ता, 'छात्रेण'—प्रयोज्य कर्त्ता।

किसी किसी धातुके प्रयोगसे प्रयोज्य कर्त्ता कर्म होता है। जिस जिस धातुके प्रयोगसे प्रयोज्य कर्त्ता कर्म होता है, सो नीचे दिखलाया जाता है।

४७४ । गत्यर्थ*, प्राप्त्यर्थ†, ज्ञानार्थ‡, कथनार्थ, पठनार्थ, भोजनार्थ (अद्, खाद्-भिन्न) और अकर्मक धातुओंकी अणिजन्तावस्थामे जो कर्त्ता (प्रयोज्य कर्त्ता), वह उनकी णिजन्तावस्थामे कर्म होता है§; (तब उसे 'प्रयोज्य कर्म' कहते हैं; प्रयोज्य कर्ममे द्वितीया होती है); यथा—

(गत्यर्थ) पुत्रः विद्यामन्दिरं गच्छति—पिता पुत्रं विद्यामन्दिरं गमयति ।

(प्राप्त्यर्थ) दरिद्रः धनं प्राप्नोति—आढ्यः दरिद्रं धनं प्रापयति।

(ज्ञानार्थ) शिष्यः शास्त्रं बुध्यते जानाति वा—गुरुः शिष्यं शास्त्रं बोधयति ज्ञापयति वा ।

(कथनार्थ) छात्रः पाठं वक्ति—गुरुश्छात्रं पाठं वाचयति ।

(पठनार्थ) ब्रह्मचारी वेदं पठति—आचार्य्यः ब्रह्मचारिणं वेदं पाठयति।

(ग्रहणार्थ) विप्रः दक्षिणां गृह्णाति—यजमानः विप्रं दक्षिणां ग्राहयति ।

(दर्शनार्थ) बालश्चन्द्रं पश्यति—जननी बालं चन्द्रं दर्शयति।

(श्रवणार्थ) सभ्याः पुराणं शृण्वन्ति—वाचकः सभ्यान् पुरा-

---

* प्रवेश, आरोहण, तरणभी गत्यर्थ ॥ 'नी'-धातुका नहीं होता ।

† 'ग्रह्' धातुभी प्राप्त्यर्थ ।

‡ दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्पर्श इत्यादिभी ज्ञानार्थ ।

§ गमनाहारबोधार्थ शब्दार्थाकर्मधातुषु ।
अणिजन्तेषु यः कर्त्ता, स्याण्णिजन्तेषु कर्म तत् ॥

णं श्रावयति ।

(भोजनार्थ) ब्राह्मणाः अन्नं भुञ्जते—व्रती ब्राह्मणान् अन्नं भोजयति ।

(अकर्मक) शिशुः शेते—माता शिशुं शाययति ।

४७५ । हृ और कृ धातुकी अणिजन्तावस्थामे कर्त्ता (प्रयोज्य कर्त्ता) णिजन्तावस्थामे विकल्पसे कर्म होता है ; विकल्पपक्षमे तृतीया ; यथा—

(हृ) चौरः धनं हरति—चौरः चौरं चौरेण वा धनं हारयति ।

भृत्यः भारं हरति—प्रभुः भृत्यं भृत्येन वा भारं हारयति ।

(कृ) दासः कर्म करोति—प्रभुः दासं दासेन वा कर्म कारयति ।

सनन्त धातु (Desiderative verb) ।

[यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोक्त स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य और लिट्के तुल्य अभ्यस्त-कार्य होगा ।]

४७६ । 'इच्छा'-अर्थमे धातुके उत्तर 'सन्'-प्रत्यय होता है ; 'सन्' का 'स' रहता है । 'सन्'-प्रत्ययान्त धातुको 'सनन्त धातु' कहते हैं । यथा—(कर्त्तुम् इच्छति—करनेको इच्छा करता है) चिकीर्षति ।

४७७ । स्वार्थमे कितादि* धातुके उत्तर 'सन्'-प्रत्यय होता है ; यथा—कित्+स—

---

* कितादि—कित्, तिज्, गुप्, वध्, मान् ।

गुपो वधेश्च निन्दायां, क्षमायाञ्च तथा तिजः ।
संशये च प्रतीकारे कितः सन्नभिधीयते ॥

४७८ । 'सन्'-प्रत्यय होनेसे, वे पुनः स्वतन्त्र सनन्त धातुओंमें परिगणित होकर, चतुर्लकारमें भ्वादिगणीय धातुके तुल्य रूप धारण करते हैं ; और जिसपदी धातुके उत्तर 'सन्' होता है, पश्चात्-भी सनन्त धातु उभयपदीही रहता है ।

४७९ । 'सन्' परे रहनेसे, धातु अभ्यस्त होता है ; यथा—कित् कित्+स=चिकित्+स (३८८ । ३८९ । ३९३ सू०)—

४८० । 'सन्' परे रहनेसे, कितादि धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता ; यथा—चिकित्स+ति—

४८१ । अनिट् 'सन्' परे रहनेसे, गुण नहीं होता ; यथा—चिकित्सति । तिज्+स=तितिक्षते ; (गुप्) जुगुप्सते ।

४८२ । अभ्यस्त बध् और मान् धातुके पूर्वभागके अकारके स्थानमें 'ई' होता है ; यथा—बध्+स+ते=बबध्+स+ते=बीभत्सते (३६० सू०) ; (मान्) मीमांसते ।

४८३ । 'सन्' परे रहनेसे, सेट् धातुके उत्तर 'इट्' होता है ; यथा—पठ्+स+ति=पपठि+स+ति—

४८४ । अभ्यस्त सनन्त धातुके पूर्वभागका 'अ'—'इ' होता है ;

'कित्'-धातुके उत्तर रोगापनयन और संशय अर्थमें, 'तिज्'-धातुके उत्तर क्षमा-अर्थमें, 'गुप्' और 'बध्' धातुके उत्तर निन्दा-अर्थमें, और 'मान्'-धातुके उत्तर विचार-अर्थमें 'सन्' होता है ; यथा—चिकित्सति व्याधिम् ; विचिकित्सति मे मनः ; तितिक्षते साधुः ; जुगुप्सते बीभत्सते वा विषयं योगी ; मीमांसते शास्त्रम् । 'श्रु'-धातुके उत्तर सेवा-अर्थमेंभी 'सन्' होता है ; यथा—शुश्रूषते पितरम् ।

यथा—पिपठि+स+ति=पिपठिषति; (जीव्) जिजीविषति; (सेव्) सिसेविषते।

गुणकी सम्भावना न रहनेसे, अथवा अन्य किसी विशेष नियम-द्वारा बाधित न होनेसे, यावतीय सेट्-धातुका रूप ऐसा होगा।

अनिट्-धातुका रूप, यथा—नम्+स+ति=निनंसति (६३ सू०); दह्+स+ति=दिधक्षति (२३४ सू०); (भिद्) बिभित्सति; (बुध्) बुभुत्सते (२६० सू०); (पा) पिपासति; (स्था) तिष्ठासति। किसी विशेष नियमसे बाधित न होनेसे, समस्त अनिट्-धातुका रूप इसप्रकार।

४८५। 'सन्' परे रहनेसे, वृतादि* धातुके उत्तर परस्मैपदमें 'इट्' नहीं होता; यथा—वृत्+स+ति=विवृत्सति; (स्यन्द्) सिस्यन्त्सति, (आत्मनेपद) सिस्यन्दिषते।

४८६। 'सन्' परे रहकर 'इट्' होनेसे, उस 'इट्' परे उपधा लघुस्वरका गुण होता है; किन्तु विदादि धातुका गुण नहीं होता; यथा—वृत्+स+ते=विवर्त्तिषते। विदादि—(विद्) विविदिषति; (रुद्) रुरुदिषति; (मुष्) मुमुषिषति।

४८७। आदिमें व्यञ्जनवर्ण और उपधामें 'उ' अथवा 'इ' रहनेसे, सेट् धातुका विकल्पसे गुण होता है; किन्तु अन्तमें 'व' रहनेसे, नित्य गुण होता है; यथा—(व्यञ्जनादि उपधा 'इ') लिख्—लिलेखिषति, लिलिखिषति; (उपधा 'उ') रुच्—रुरोचिषति, रुरुचिषति; (वान्त) दिव्—दिदेविषति।

४८८। 'सन्' परे रहनेसे, इवर्णान्त धातु, गुह् और ग्रह् धातुके

---

* वृत्, वृध्, शृध्, स्यन्द्, कृप्।

उत्तर 'इट्' नहीं होता ; यथा—दु + स + ति = दुदु + स + ति—

४८९ । 'सन्' पर रहनेसे, अन्त्यस्वर दीर्घ होता है ; और हन्-धातु तथा इङ् (अधि + इ) के स्थानमें जात गम्-धातुका उपधा अकार आकार होता है ; यथा—दुदूषति ।

४९० । 'सन्' परे रहनेसे, ग्रह्—गृह्, स्वप्—सुप्, प्रच्छ्—पृच्छ्, जि—गि, हन्—घन्, इण्—गमि, और अधि + इङ्—गम् होता है ; यथा—(ग्रह्) जिघृक्षति* (३३४ सू०); (स्वप्) सुषुप्सति ; (जि) जिगीषति ; (हन्) जिघांसति ; (इण्) जिगमिषति ; (अधि + इ) अधिजिगांसते ।

४९१ । 'सन्' परे रहनेसे, स्मि, पू, कॄ, गॄ, दृ, धृ, रञ्ज्, गम् और प्रच्छ् धातुके उत्तर 'इट्' होता है ; यथा—(स्मि) सिस्मयिषते ; (कॄ) चिकरिषति ; (गॄ) जिगरिषति ; (दृ) दिदरिषते ; (धृ) दिधरिषते ; (रञ्ज्) रिरञ्जिषते ; (गम्) जिगमिषति ; (प्रच्छ्) पिपृच्छिषति ।

४९२ । ज, स, ल और पवर्ग परे रहनेसे, सनन्त अभ्यस्त धातुके पूर्वभागके उकारके स्थानमें इकार होता है ; यथा—पू + स + ते = पू पू + स + ते = पु पू + स + ते = पिपविषते ।

४९३ । 'सन्' परे रहनेसे, भ्रस्जादि† धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है ; यथा—भ्रस्ज् + स + ति = बिभर्जिषति, बिभ्रक्षि-

---

* विभक्तिका 'स' परे रहनेसे, हान्त और चतुर्थवर्णान्त धातुके आदि-स्थित तृतीयवर्णके स्थानमें चतुर्थवर्ण होता है ।

† भ्रस्ज्, श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भृ (भ्वादि), दरिद्रा, सन्, तन्, पत् इत्यादि ।

पति*, बिभ्रक्षति ; (श्रि) शिश्रयिषति, शिश्रीषति ; (सन्) सिसनिषति, सिषासति† ; (पत्) पिपतिषति ।

४९४ । 'सन्' परे रहनेसे, धातुके अन्तस्थित ऋवर्णके स्थानमे 'ईर्' होता है ; किन्तु ऋवर्ण ओष्ठ्यवर्णसे युक्त होनेसे 'ऊर्' होता है ; यथा—(कृ) चिकीर्षति ; (मृ) मुमूर्षते ।

४९५ । 'सन्' परे, अभ्यस्त मा—मित्, दा—दित्, धा—धित्, रभ्—रिभ्, लभ्—लिप्, शक्—शिक्, पद् और पत्—पित्, आप्—ईप् होता है ; यथा—(मा) मित्सति ; (दा) दित्सति ; (धा) धित्सति ; (रभ्) रिप्सते ; (लभ्) लिप्सते ; (शक्) शिक्षति ; (पद्) पित्सते ; (पत्) पित्सति ; (आप्) ईप्सति ।

४९६ । 'सन्' परे, अभ्यस्त अद्—जिघत्, दिव्—दुद्यू, (ष्ठिव्) तुष्ठ्यू, सिव्—सुस्यू होता है ; यथा—(अद्) जिघत्सति ; (दिव्) दुद्यूषति ; (ष्ठिव्) तुष्ठ्यूषति ; (सिव्) सुस्यूषति ।

सनन्त धातुके रूप ।

चिकीर्ष धातु ।

लट्—चिकीर्षति । लोट्—चिकीर्षतु । लङ्—अचिकीर्षत् । विधिलिङ्—चिकीर्षेत् । लृट्—चिकीर्षिष्यति । लिट्—चिकीर्षामास, चिकीर्षाम्बभूव, चिकीर्षाञ्चकार (चिकीर्षाञ्चक्रे) । लुङ्—अचिकीर्षीत् । लुट्—चिकीर्षिता । लृङ्—अचिकीर्षिष्यत् । आशीः—चिकीर्ष्यात् ।

---

* 'इट्' परे, भ्रस्ज्—भर्ज् और भ्रज् होता है ।

† अनिट् 'सन्' परे, सन्—सिषा होता है ।

यङन्त धातु (Frequentative verb)।

[पूर्व पूर्व प्रकरणोक्त स्टार(*)-चिह्नित सूत्र यथासम्भव प्रयुक्त होंगे।]

४९७। पौनःपुन्य वा अतिशय अर्थमे एकस्वरविशिष्ट व्यञ्जनादि धातुके उत्तर 'यङ्'-प्रत्यय होता है। 'यङ्'का 'य' रहता है। 'यङ्-प्रत्ययान्त धातुको 'यङन्त धातु' कहते हैं। यङन्त धातु आत्मनेपदी होता है। यथा—(पुनःपुनः अतिशयेन वा करोति—बारबार अथवा अत्यन्त करता है) चेक्रीयते।

४९८। 'यङ्' परे रहनेसे, धातु अभ्यस्त होकर यावतीय अभ्यस्त कार्य्य प्राप्त होता है; अभ्यस्त होनेसे, समस्तभाग धातु-संज्ञा प्राप्त होकर स्वतन्त्र यङन्त धातुमे गण्य होता है, और चतुर्लकारमे भ्वादिगणीय धातुके तुल्य रूप धारण करता है।

४९९। यङन्त होनेसे, अभ्यस्त धातुके पूर्वभागके अन्त्यस्वरका गुण, और अकारकी वृद्धि होती है; यथा—(पुनःपुनः शोचति) शुच्+य+ते=शोशुच्यते (३८९ सू०); (लुप्) लोलुप्यते; (रुद्) रोरुद्यते; (भिद्) वेभिद्यते; (लप्) लालप्यते।

५००। 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त नकारान्त और मकारान्त धातुके पूर्वभागके स्वरवर्णके पश्चात् 'म्' होता है; परन्तु लान्त, वान्त और यान्त धातुमे विकल्पसे होता है; यथा—(मन्) मम्मन्यते; (क्रम्) चङ्क्रम्यते (६४ सू०)। (चल्) चञ्चल्यते, चाचल्यते।

५०१। जिन जिन धातुकी उपधामे ऋकार रहता है, अभ्यस्त

उस उस धातुके पूर्वभागके पश्चात् 'री' होता है; यथा—(नृत्) नरीनृत्यते ।

६०२ । यङन्त होनेसे, अभ्यस्त ऋकारान्त धातुके पूर्वभागका 'ऋ'—'ए', और परभागका 'ऋ'—'री' होता है; यथा—(कृ) चेक्रीयते; (सृ) सेस्रीयते ।

६०३ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त चर्—चञ्चूर्, फल्—पम्फुल्, हन्—जङ्घन् और जेघ्नी, दह्—दन्दह्, शप्—शंशप्, भज्—बम्भज् होता है; यथा—(चर्) चञ्चूर्य्यते; (फल्) पम्फुल्यते; (हन्) जङ्घन्यते, जेघ्नीयते; (दह्) दन्दह्यते; (शप्) शंशप्यते; (भज्) बम्भज्यते ।

६०४ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त स्रन्स्—सनीस्रस्, पत्—पनीपत्, पद्—पनीपद्, वच्—वनीवच्, ध्वन्स्—दनीध्वस् होता है; यथा—(स्रन्स्) सनीस्रस्यते; (पत्) पनीपत्यते; (पद्) पनीपद्यते; (वच्) वनीवच्यते; (ध्वन्स्) दनीध्वस्यते ।

६०५ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त गॄ—जेगिल्, दा—देदी, जन्—जाजन् और जञ्जन्, शी—शाशय्, स्वप्—सोपुप्, घ्रा—जेघ्री, दन्श्—दन्दश्, स्था—तेष्ठी, अट्—अटाट् होता है; यथा—(गॄ) जेगिल्यते; (दा) देदीयते; (जन्) जाजन्यते, जञ्जन्यते; (शी) शाशय्यते; (स्वप्) सोपुप्यते; (घ्रा) जेघ्रीयते; (दन्श्) दन्दश्यते; (स्था) तेष्ठीयते; (अट्) अटाट्यते ।

६०६ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त व्ये—वेवी, और चाय्—चेकी होता है; यथा—(व्ये) वेवीयते; (चाय्) चेकीयते ।

यङन्त धातुके रूप ।

चेक्रीय धातु ।

लट्—चेक्रीयते । लोट्—चेक्रीयताम् । लङ्—अचेक्रीयत । विधिलिङ्—चेक्रीयेत । लृट्—चेक्रीयिष्यते । लिट्—चेक्रीयामास, चेक्रीयाम्बभूव, चेक्रीयाञ्चक्रे । लुङ्—अचेक्रीयिष्ट । लुट्—चेक्रीयिता । लृङ्—अचेक्रीयिष्यत । आशीः—चेक्रीयिषीष्ट ।

चतुर्लकार-भिन्न विभक्तियोंमे व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'यङ्' का लोप होता है ; यथा—

दन्दश्य धातु ।

लट्—दन्दश्यते । लोट्—दन्दश्यताम् । लङ्—अदन्दश्यत । विधिलिङ्—दन्दश्येत । लृट्—दन्दशिष्यते । लिट्—दन्दशामास । लुङ्—अदन्दशिष्ट । लुट्—दन्दशिता । लृङ्—अदन्दशिष्यत । आशीः—दन्दशिषीष्ट ।

यङ्लुगन्त धातु (Frequentative verb rejecting यङ्) ।

५०७ । कई धातुओंके उत्तर विकल्पसे 'यङ्' का लोप होता है । लोप होनेसे उनको 'यङ्लुगन्त धातु' कहते हैं । यङ्लुगन्त धातु परस्मैपदी होता है । यथा—(लिह्—लेलिह्य—लेलिह्) लेलेढि । (लप्) लालपीति, लालप्ति ; (सिच्) सेसेचीति, सेसेक्ति ; (दीप्) देदीपीति, देदीप्ति ; (शुच्) शोशोचीति, शोशोक्ति ; (भू) बोभवीति, बोभोति ; (नृत्) नरीनर्त्ति, नर्नर्त्ति ; (वृत्) वरीवर्त्ति, वर्वर्त्ति ।

यङ्लुगन्त धातुके रूप।

लेलिह् धातु।

लट्—लेलेढि। लोट्—लेलेढु। लङ्—अलेलेट्। विधिलिङ्—लेलिह्यात्। लृट्—लेलेहिष्यति। लिट्—लेलिहामास, लेलिहाम्बभूव, लेलिहाञ्चकार। लुङ्—अलेलेहीत। लुट्—लेलेहिता। लृङ्—अलेलेहिष्यत्। आशीः—लेलिह्यात्।

नामधातु (Nominal verb)।

५०८। काम्य (काम्यच्)—आत्मसङ्क्रान्त (अपनी) इच्छा समझानेसे, शब्दके उत्तर 'काम्य'-प्रत्यय होता है ; 'काम्य'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी ; यथा—(आत्मनः पुत्र-मिच्छति—अपना पुत्र इच्छा करता है) पुत्रकाम्यति ; धन-काम्यति ; यशःकाम्यति।

आत्मसङ्क्रान्त इच्छा न समझाकर अन्यसङ्क्रान्त इच्छा समझानेसे नहीं होता ; यथा—गुरोः पुत्रमिच्छति—इस स्थलमे 'गुरोः पुत्र-काम्यति'—एसा प्रयोग नहीं होगा।

'काम्य'-प्रत्ययान्त धातुके रूप।

लट्—पुत्रकाम्यति। लोट्—पुत्रकाम्यतु। लङ्—अपुत्रकाम्यत्। विधिलिङ्—पुत्रकाम्येत्। लृट्—पुत्रकाम्यिष्यति। लिट्—पुत्रकाम्यामास, पुत्रकाम्याम्बभूव, पुत्रकाम्याञ्चकार। लुङ्—अपुत्रकाम्यीत्। लुट्—पुत्रकाम्यिता। लृङ्—अपुत्रकाम्यिष्यत्। आशीः—पुत्रकाम्यात्*।

---

* 'य' परे रहनेसे, व्यञ्जनवर्णके परवर्त्ती यकारका लोप होता है।

५०९ । क्य (क्यच्)—आत्मसङ्क्रान्त इच्छा (निजेच्छा) समझानेसे, मकारान्त और अव्यय-भिन्न शब्दके उत्तर 'क्य'-प्रत्यय होता है; 'क्' इत्, 'य' रहता है; 'क्य'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी ; यथा—(आत्मनः पुत्रमिच्छति) पुत्र + य + ति—

(क) 'क्य'-प्रत्ययका 'य' परे रहनेसे, पूर्व अवर्णके स्थानमें 'ई' होता है ; यथा—पुत्रीयति । (मान्त) किंकाम्यति ; (अव्यय) स्वःकाम्यति ;—यहाँ 'क्य' नहीं हुआ ।

(ख) 'क्य' और 'क्यङ्' परे रहनेसे शब्दके अन्तस्थित ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है ।

(ग) 'आचरण' (पोषण सम्माननादिरूप व्यवहार) अर्थमें उपमान* कर्म और अधिकरण-कारकके उत्तर 'क्य' होता है । यथा—(शिष्यं पुत्रमिव आचरति—शिष्यके प्रति पुत्रके तुल्य आचरण करता है He treats his pupil like a son) पुत्रीयति शिष्यम् (पोषयति इत्यर्थः) ; (भृत्यं सखायमिव आचरति) सखीयति भृत्यम् ; (मित्रं रिपुमिव आचरति) रिपूयति मित्रम् (पश्यतीत्यर्थः) ; (उपाध्यायं पितरमिव आचरति) पित्रीयति† उपाध्यायम् (सम्मानयति इत्यर्थः) । (कुट्यां प्रासादे इव आचरति—कुटीरमें प्रासादके तुल्य आचरण करता है) प्रासादीयति कुट्याम् ।

(घ) भोजनेच्छा-अर्थमें 'अशन'-शब्दके उत्तर, पानेच्छा अर्थमें

---

* जिसके साथ उपमा दी जाती है, वह 'उपमान' ; और जिसकी उपमा दी जाती है, वह 'उपमेय' ।

† 'क्य' और 'क्यङ्' परे अन्तस्थित 'ऋ'—'री' होता है ।

'उदक'-शब्दके उत्तर, और आकाङ्क्षा-अर्थमे 'धन'-शब्दके उत्तर 'क्य' होता है ; 'क्य' परे रहनेसे, अशन—अशना, उदक—उदन्, और धन—धना होता है ; यथा—(अन्नं भोक्तुम् इच्छति—अन्न खानेको इच्छा करता है) अशनायति अन्नम् ; (जलं पातुम् इच्छति—जल पीनेको इच्छा करता है) उदन्यति जलम् ; (धनम् अभिकाङ्क्षति—धन आकाङ्क्षा करता है) धनायति धनम् ।

(ङ) 'करण'-अर्थमे नमस्, तपस् और वरिवस् (सेवार्थ) शब्दके उत्तर 'क्य' होता है ; यथा—(देवं नमस्करोति—देवताको नमस्कार करता है) नमस्यति देवम् ; (तापसः तपः करोति—चरति) तपस्यति तापसः ; (गुरून् शुश्रूषते—परिचरति, सेवते) वरिवस्यति गुरून् (वरिवः—परिचर्य्यां—करोति = वरिवस्यति) ।

'क्य'-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

पुत्रीय धातु ।

लट्—पुत्रीयति । लोट्—पुत्रीयतु । लङ्—अपुत्रीयत् । विधिलिङ्—पुत्रीयेत् । लृट्—पुत्रीयिष्यति । लिट्—पुत्रीयामास, पुत्रीयाम्बभूव, पुत्रीयाञ्चकार । लुङ्—अपुत्रीयीत् । लुट्—पुत्रीयिता । लृङ्—अपुत्रीयिष्यत् । आशीः—पुत्रीय्यात् ।

६१० । (क्यङ्)—'आचरण'-अर्थमे उपमान कर्त्तृकारकके उत्तर 'क्यङ्'-प्रत्यय होता है ; 'क्यङ्' का 'य' रहता है ; 'क्यङ्'-प्रत्ययान्त धातु आत्मनेपदी ; यथा—(दण्ड इव आचरति) दण्डायते ; (पुत्र इव आचरति) पुत्रायते ; (विष्णुरिव आचरति) विष्णूयते ।

(क) 'क्यङ्' परे रहनेसे, व्यञ्जनान्त सकारका विकल्पसे लोप

होता है ; यथा—(पय इव आचरति) पयायते, पयस्यते ।

(ख) 'करण' (करना) अर्थमे—शब्द, वैर और कलह शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है ; यथा—(शब्दं करोति) शब्दायते ; (वैरं करोति) वैरायते ; (कलहं करोति) कलहायते ।

(ग) 'अनुभव'-अर्थमे—सुख, दुःख और कृच्छ्र शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है ; यथा—(सुखम् अनुभवति) सुखायते ; (दुःखमनुभवति) दुःखायते ; (कृच्छ्रमनुभवति) कृच्छ्रायते ।

(घ) 'उद्वमन' (उद्गिरण) अर्थमे—बाष्प, फेन, धूम और उष्मन् शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है ; यथा—(बाष्पम् उद्वमति) बाष्पायते ; (फेनमुद्वमति) फेनायते ; (धूममुद्वमति) धूमायते ; (उष्माणमुद्वमति) उष्मायते* ।

(ङ) 'उद्गार-पूर्वक चर्वण' अर्थमे रोमन्थ-शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है ; यथा—रोमन्थायते गौः (उद्गीर्य्य—उगालकर—चर्वयति इत्यर्थ.) ।

(च) भृश, शीघ्र, चपल, मन्द, पण्डित, उत्सुक, सुमनस्, दुर्मनस्, उन्मनस्—इन शब्दोंके उत्तर 'अभूततद्भाव†'-अर्थमे 'क्यङ्' होता है ; यथा—(अभृशो भृशो भवति) भृशायते ; (अशीघ्रः शीघ्रो भवति) शीघ्रायते ; (अचपलश्चपलो भवति) चपलायते ; (अमन्दो मन्दो भवति) मन्दायते ; (अपण्डितः पण्डितो भवति) पण्डितायते ;

---

* 'क्यङ्' परे, अन्त्य नकारका लोप होता है ।

† पूर्वमे जैसा नहीं था, वैसा होना ।

(अनुत्सुकः उत्सुको भवति) उत्सुकायते ; (असुमनाः सुमनाः भवति) सुमनायते*; (अदुर्मनाः दुर्मनाः भवति) दुर्मनायते ; (अनुन्मनाः उन्मनाः भवति) उन्मनायते ।

'क्यङ्'-प्रत्ययान्त धातुके रूप।

दण्डाय धातु ।

लट्—दण्डायते । लोट्—दण्डायताम् । लङ्—अदण्डायत । विधिलिङ्—दण्डायेत । लृट्—दण्डायिष्यते । लिट्—दण्डायामास, दण्डायाम्बभूव, दण्डायाञ्चक्रे । लुङ्—अदण्डायिष्ट । लुट्—दण्डायिता । लृङ्—अदण्डायिष्यत । आशीः—दण्डायिषीष्ट ।

५११ । क्विप्—'आचरण'-अर्थमे उपमान कर्त्तृकारकके उत्तर 'क्विप्'-प्रत्यय होता है ; 'क्विप्' का कुछभी नहीं रहता ; 'क्विप्'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी ; यथा—(सुजन इव आचरति) सुजनति ; (शिष्य इव आचरति) शिष्यति ; (सखा इव आचरति) सखयति ; (कविरिव आचरति) कवयति ; (बन्धुरिव आचरति) बन्धवति ; (गुरुरिव आचरति) गुरवति ; (पितेव आचरति) पितरति ; (मातेव आचरति) मातरति।

'क्विप्'-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

सुजन धातु ।

लट्—सुजनति । लोट्—सुजनतु । लङ्—असुजनत् । विधिलिङ्—सुजनेत् । लृट्—सुजनिष्यति । लिट्—सुजनामास, सुजनाम्बभूव, सुजनाञ्चकार । लुङ्—असुजनीत् । लुट्—सुजनिता । लृङ्—असुजनिष्यत् ।

---

* सुमनस्-प्रभृति शब्दके सकारका लोप होता है ।

आशा —धनन्यात् ।

५१२ । णिच्—'करण'-अर्थमे शब्दके उत्तर 'णिच्'-प्रत्यय होता है, 'णिच्' होनेसे, णिच् प्रकरणमे जैसा कार्य्यविधान है, यहाँभी वैसा होगा ; यथा—(प्रश्नं करोति) प्रश्नयति, (शब्द करोति) शब्दयति, (पवित्र करोति) पवित्रयति ।

(क) 'णिच्' पर रहनेसे, पृथु—प्रथ्, मृदु—म्रद्, दृढ—द्रढ्, स्थूल—स्थव्, दूर—दव्, अन्तिक—नेद्, बहुल—बंह्, दीर्घ—द्राघ् होता है ; यथा—(पृथुं करोति) प्रथयति ; (मृदु करोति) म्रदयति ; (दृढं करोति) द्रढयति, (स्थूल करोति) स्थवयति ; (दूरं करोति) दवयति ; (अन्तिक करोति) नेदयति ; (बहुल करोति) बंहयति ; (दीर्घं करोति) द्राघयति ।

(ख) शब्दविशेषके उत्तर अर्थविशेषमेभी 'णिच्' होता है ; यथा—(त्वचं गृह्णाति) त्वचयति ; (पाश विमोचयति) विपाशयति ; (वस्त्रं समाच्छादयति) संवस्त्रयति, (वर्मणा सन्नह्यति) संवर्मयति । (मुण्ड करोति) मुण्डयति,—एव श्लक्ष्णयति, लवणयति । (सत्य करोति, आचष्टे वा) सत्यापयति ; (वेदमाचष्टे) वेदापयति । (वीणया उपगायति) उपवीणयति ; (श्लोकैरुपस्तौति) उपश्लोकयति ; (सेनया अभिमुखं याति) अभिषेणयति ; (पुच्छम् उत्क्षिपति) उत्पुच्छयते ।

५१३ । य (यक्)—'कण्डू' प्रभृति धातुओंके* उत्तर स्वार्थमे 'य'

---

* इनको 'नामधातु' कहते हैं । कण्डूञ् गात्रविघर्षणे (खुजलाना), असु उपतापे, भिषज् चिकित्सायाम्, चित्रङ् आश्चर्य्ये ; महीङ् पूजायाम् ; हृणीङ् लज्जायाम् ।

होता है; यथा—कण्डूयति, कण्डूयते; "मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः" कु० ३. ३६. ।

कण्ड्वादि ।

असू—असूयति (असूया—दोषदर्शन—करता है; असन्तुष्ट वा विरक्त होता है; पराङ्मुख होता है)। प्रायः चतुर्थ्यन्त व्यक्ति वा वस्तु-के साथ प्रयुक्त होता है; "असूयन्ति मह्यं प्रकृतयः" विक्रमो० ४; "असूयन्ति सचिवोपदेशाय" काद० ।

भिषज्—भिषज्यति (चिकित्सा करता है)।

चित्री—चित्रीयते (विस्मय—आश्चर्य्य—उत्पादन करता है); "चित्रीयते हेममृगः" ।

मही—महीयते (पूजां लभते—पूजित, सम्मानित होता है; सुखी, समृद्ध होता है)।

हृणी—हृणीयते (लज्जित होता है); "त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी हृणीयते ?" नै० १. १३३. ।

परस्मैपद और आत्मनेपद-विधान ।

भ्वादिगणीय धातु ।

५१४ । क्रम्—उपसर्गहीन क्रम् धातु विकल्पसे आत्मनेपदी होता है; यथा—क्रमते, क्रामति । किन्तु उत्साह, अप्रतिबन्ध और वृद्धि अर्थमे नित्य आत्मनेपदी होता है; यथा—(उत्साह) व्याकरणाध्ययनाय क्रमते (उत्सहते इत्यर्थः); (अप्रतिबन्ध) शास्त्रेषु क्रमते बुद्धिः (न प्रतिहन्यते, अप्रतिहता भवतीत्यर्थः); (वृद्धि) सतां श्रीः क्रमते (वर्द्धते

इत्यर्थः)।

(क) ग्रहनक्षत्रादि ज्योति पदार्थका ऊर्द्ध्वगमन समझानेसे, 'आ'-पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—आक्रमते भानु (नभो-मण्डलम् आरोहतीत्यर्थः)। ज्योतिर्भिन्न अन्य पदार्थका ऊर्द्ध्वगमन समझानेसे, नहीं होता; यथा—आक्रामति धूमो गगनम्; शैलमाक्रामति।

(ख) 'आरम्भ'-अर्थमें, प्र और उप-पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—भोक्तुं प्रक्रमते, उपक्रमते (आरभते इत्यर्थः)।

(ग) 'पादविक्षेप'-अर्थमें, 'वि' पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—साधु विक्रमते वाजी। अन्य अर्थमें नहीं होता; यथा—विक्रामति राजा (विक्रमं प्रकाशयतीत्यर्थः)।

५१५। क्रीड्—आ, अनु और परि-पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—आक्रीडते, अनुक्रीडते, परिक्रीडते माणवकः।

(क) 'सम्' पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"सङ्क्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या." मेघ० ६८.। किन्तु 'कूजन' (अव्यक्तध्वनि) अर्थमें नहीं होता; यथा—सङ्क्रीडति रथः; सङ्क्रीडन्ति विहङ्गमाः।

५१६। गम्—कर्म न रहनेसे, 'सम्'-पूर्वक गम् धातु (मिलनार्थ) आत्मनेपदी होता है; यथा—"एते भगवत्यौ कलिन्दकन्या-मन्दाकिन्यौ सङ्गच्छेते" अनर्घ० ७; "अक्षधूर्त. समगंसि" दशकु०। कर्म रहनेसे, नहीं होता; यथा—सङ्गच्छति मित्रम् (प्राप्नोतीत्यर्थः)।

'सम्'-पूर्वक अकर्मक ऋ (ऋच्छ्) धातुभी आत्मनेपदी होता है; यथा—समृच्छते; "समारन्त ममाभीष्टाः सङ्कल्पाः" भ० ८, १९.।

६१७। चर्—सकर्मक होनेसे, 'उत्'-पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—गुरुवचनमुच्चरते (उल्लङ्घयतीत्यर्थः)। अकर्मक होनेसे, नहीं होता; यथा—उच्चरति धूमः (उपरिष्टाद् गच्छतीत्यर्थः)।

(क) तृतीयाविभक्त्यन्त पदके योगसे 'सम्'-पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—पादेन सञ्चरते; रथेन सञ्चरते; "क्वचित् पथा सञ्चरते सुराणाम्" रघु० १३. १९.।

६१८। जि—वि और परा-पूर्वक जि धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—विजयते, पराजयते।

६१९। तप्—कर्म न रहनेसे, अथवा अपना अङ्ग (अवयव) कर्म होनेसे, उत् और वि-पूर्वक तप् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—उत्तपते, वितपते रविः (दीप्यते इत्यर्थः); उत्तपते, वितपते पाणिम्। स्वाङ्ग कर्म न होनेसे नहीं होता; यथा—वितपति भुवं सविता।

६२०। नी—कर्त्तामें अवस्थित किन्तु कर्त्ताके अङ्गसे भिन्न कर्म होनेसे, अपनयन-अर्थमें 'वि'-पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—क्रोधं विनयते (शमयतीत्यर्थः)। कर्त्तृगत न होनेसे नहीं होता; यथा—गुरोः क्रोधं विनयति। अङ्ग होनेसे नहीं होता; यथा—व्रणं विनयति।

'शिक्षा'-अर्थमें 'वि+नी' परस्मैपदी; यथा—"विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्" र० ३. २९.।

६२१। यम्—अकर्मक होनेसे, 'आ'-पूर्वक यम् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—आयच्छते (दीर्घो भवति इत्यर्थः)। सकर्मकका नहीं होता; यथा—आयच्छति कूपाद्रज्जुम् (आकर्षति, उद्धरति इत्यर्थः)। अपना अवयव कर्म होनेसे आत्मनेपदी होता है; यथा—आयच्छते पाद-

मात्मीयम् (दीर्घीकरोतीत्यर्थः) ।

(क) 'विवाह'-अर्थ समझानेसे, 'उप'-पूर्वक यम् धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—सुलक्षणां कन्यामुपयच्छते ; "मेनां विधिनोपयेमे" कु० १. १८. ।

६२२ । रम्—वि, आ और परि-पूर्वक रम् धातु परस्मैपदी होता है ; यथा—"हा हन्त किमिति चित्तं विरमति नाद्यापि विषयेभ्यः ?" भामिनी० ४. २५ ; आरमति उद्याने ; "क्षणं पर्य्यरमत् तस्य दर्शनात्" (तुष्टोऽभवदित्यर्थः) म० ८. ६३. ।

(क) 'उप'-पूर्वक रम् धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है ; यथा—इत्युक्त्वोपरराम ; "यत्रोपरमते चित्तम्" गीता. ६. २० ; "नात्र सीतेत्युपारंस्त" म० ८. ५५. ।

६२३ । वद्—मतभेद, कलह अर्थमें 'वि'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—तत्त्वे विवदन्ते मुनयः (नानामतं प्रकटयन्तीत्यर्थः) ; क्षेत्रे विवदन्ते कर्षकाः (विप्रतिपद्यमाना विचित्रं वदन्तीत्यर्थः) ।

(क) बहुत आदमियोंका मिलकर स्पष्ट शब्दोचारण (कथन) अर्थमें 'सम् + प्र'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—सम्प्रवदन्ते विप्राः (सम्भूय—मिलित्वा—व्यक्तं वदन्तीत्यर्थः) । मनुष्य-भिन्न अन्यत्र नहीं होता ; यथा—"वरतनु ! सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः" महाभाष्यम् ।

(ख) कर्म न रहनेसे, 'अनु'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—गुरोरनुवदते शिष्यः (यथा गुरुणोक्तम् , तथा शिष्यो वदतीत्यर्थः) । कर्म रहनेसे नहीं होता ; यथा—वाद्युक्तम् अनुवदति ; "गिरम् अनुवदति

शुकस्ते" र० ९. ७४.।

(ग) अनेक मनुष्योंका एकत्र होकर परस्पर विरुद्ध वाक्यकथन अर्थमे 'वि + प्र'-पूर्वक वद् धातु विकल्पसे आत्मनेपदी होता है; यथा—विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैद्याः (एको यादृक् वदति, तद्विरुद्धमपरो वदति इत्येवं सम्भूय विरुद्धमन्योन्यं वदन्तीत्यर्थः)।

(घ) निन्दा, तिरस्कार अर्थमे 'अप'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—न्यायमपवदते।

९२४। स्था—किसी सन्दिग्ध विषयमे निर्णयके लिये किसीका आश्रय-ग्रहण (accepting as umpire) समझानेसे, स्था धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः" (कर्णादीन् निर्णेतृत्वेन आश्रयति इत्यर्थः—संशय दूर करनेके लिये कर्णप्रभृतिका आश्रय-ग्रहण करता है) भा० ३. १४.—तिष्ठतेरत्र अवस्थानमेवार्थः।

(क) 'अभिप्राय-प्रकाश' अर्थमे स्था धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—रामाय तिष्ठते सीता (स्वाभिप्रायं प्रकाशयतीत्यर्थः)।

(ख) 'प्रतिज्ञा' (अङ्गीकार) अर्थमे 'आ'-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—शब्दं नित्यमातिष्ठते (शब्दो नित्यः इति प्रतिजानीते, अभ्युपगच्छति, अङ्गीकरोतीत्यर्थः)।

(ग) सम्, अव, प्र और कहीं वि उपसर्गके परवर्त्ती स्था धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"दारिद्र्यात् पुरुषस्य वान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते" मृच्छ० १. ३६; "क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ" र० ८. ८७; "हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे" माघ० ३. १; "पदैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्" माघ० ४. ४.।

(घ) 'उत्'-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—मुक्तौ उत्तिष्ठते (उद्युङ्क्ते, उद्यमं करोतीत्यर्थः) । किन्तु 'उत्थान'-अर्थमें नहीं होता ; यथा—आसनात् उत्तिष्ठति ।

(ङ) देवपूजा, मिलन, मैत्रीकरण और मार्गगमन (lead to—as a way) अर्थमें, 'उप'-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—(देवपूजा) विष्णुमुपतिष्ठते वैष्णवः (पूजयतीत्यर्थः) ; (मिलन) यमुनामुपतिष्ठते गङ्गा (यमुनया सह सङ्गच्छते, मिलतीत्यर्थः) ; (मैत्रीकरण) साधुमुपतिष्ठते साधुः (मैत्रीकरोतीत्यर्थः) ; (मार्गगमन) अयं पन्थाः काशीमुपतिष्ठते (प्राप्नोतीत्यर्थः—यह मार्ग काशीको जाता है This way leads to Benares) ।

(च) 'मन्त्र-द्वारा आराधन' अर्थमें 'उप'-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—गायत्र्या सूर्य्यमुपतिष्ठते ।

(छ) 'लाभेच्छा' समझानेसे, 'उप'-पूर्वक स्था धातु विकल्पसे आत्मनेपदी होता है ; यथा—धनिनमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा भिक्षुः (धनलाभेच्छया धनिसमीपं गच्छतीत्यर्थः) ।

(ज) अकर्मक 'उप'-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—भोजनकाले उपतिष्ठते (सन्निहितो भवतीत्यर्थः) । सकर्मक होनेसे नहीं होता ; यथा—शिष्यो गुरुमुपतिष्ठति ।

६२८ । ह्वे—स्पर्द्धा अर्थात् युद्धार्थ आह्वान अर्थमें 'आ'-पूर्वक ह्वे धातु आत्मनेपदी होता है ; यथा—कृष्णः कंसमाह्वयते (स्पर्द्धमानः—परिभवेच्छया—आह्वानं करोतीत्यर्थः) । स्पर्द्धा-भिन्न अर्थमें नहीं होता ; यथा—पिता पुत्रमाह्वयति ।

अदादिगणीय धातु।

५२६। विद्—'पहचानना' अर्थमे 'सम्'-पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"पितरावपि मां न प्रतिसंविद्राते" दशकु०।

(क) 'जानना' अर्थमे अकर्मक होनेसे, 'सम्'-पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"के न संविद्रते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा?" भ० ८.१७.।

५२७। हन्—आत्म-अवयव (अपना अङ्ग) कर्म होनेसे, 'आ'-पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—आहते स्वं शिरः (ताडयतीत्यर्थः)। स्वाङ्ग कर्म न होनेसे नहीं होता; यथा—आहन्ति चोरम्।

ह्वादि और स्वादिगणीय धातु।

५२८। दा—'आ'-पूर्वक दा धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—विद्यामादत्ते; शस्त्रमादत्ते। किन्तु 'विस्तार'-अर्थमे नहीं होता; यथा—मुखं व्याददाति सिंहः (विस्तारयतीत्यर्थः); नदी कूलं व्याददाति; वैद्यो विस्फोटकं व्याददाति।

५२९। श्रु—कर्म न रहनेसे, 'सम्'-पूर्वक श्रु धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"संश्रृणुष्व कपे!" भ० ८.१६.। "हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः" (हितात्+न) भा० १.५.—यहां कर्मकी विवक्षा नहीं, इसलिये आत्मनेपद।

तुदादिगणीय धातु।

५३०। कॄ—चतुष्पद जन्तु अथवा पक्षी कर्त्ता होनेसे, हर्ष-हेतु अथवा आहारान्वेषणके या वासग्रहणके लिये भूमिविलेखन (पांवसे मिट्टी खोदकर बिखेरना) अर्थमे, 'अप'-पूर्वक कॄ धातु आत्मनेपदी होता है; और आदिमे

'सुट्' का आगम होता है; 'सुट्' का 'स्' रहता है; यथा—अपस्किरते वृषभः (हृष्टो भूमिमालिखति इत्यर्थः); अपस्किरते मयूरः (भक्षार्थी भूमिं विलिख्य विक्षिपति इत्यर्थः); अपस्किरते सारमेयः (वासार्थी, शयनार्थी भूमिं विदारयति इत्यर्थः)।*

किन्तु—अपकिरति कुसुमम्।

६३१। गॄ—'अव'-पूर्वक गॄ धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—अवगिरतेऽन्नम्।

(क) 'प्रतिज्ञा'-अर्थमें, 'सम्'-पूर्वक गॄ धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—सङ्गिरते (प्रतिजानीते इत्यर्थः); "राज्ञे समगिरेताम्" दशकु०।

किन्तु—सङ्गिरति ग्रासम्।

६३२। प्रच्छ्—'विदा लेना' अर्थमें (taking leave of, bidding adieu to) 'आ'-पूर्वक प्रच्छ् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"आपृच्छस्व प्रियसखममुम्" मेघ० १२।

६३३। विश्—'नि'-पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"किश्चिन्त्यग्नि न्यविशत" (प्रविवेश इत्यर्थः) भ० ६. १४३।

रुधादिगणीय धातु।

६३४। भुज्—पालन (रक्षा)-भिन्न अन्य अर्थमें, भुज् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—ओदनं भुङ्क्ते (अभ्यवहरतीत्यर्थः); "सदयं बुभुजे स मेदिनीम्" (भुक्तवान् enjoyed); सुखं भुङ्क्ते (अनुभवतीत्यर्थः)।

---

* "छायापस्किरमाणविष्किर०" (अपस्किरमाणाः—भक्षार्थं चञ्च्वा भूमिं लिखन्त इत्यर्थः) उत्तर० २. ९; "रदैरपस्कीर्णमहत्तटीभुवां कद्रुम-ताम्" (अपस्कीर्ण—आलेखित) माघ० १२. ७४।

('पालन'-अर्थमे) "भुनक्ति स्वाराज्यम्" अनर्घ० ३.।

९३५। युज्—स्वरादि और स्वरान्त उपसर्ग-पूर्वक युज् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—(स्वरादि उपसर्ग) उद्युङ्क्ते; (स्वरान्त उपसर्ग) प्रयुङ्क्ते, नियुङ्क्ते, अनुयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते। यज्ञपात्र कर्म होनेसे नहीं होता; यथा—स्रुवं प्रयुनक्ति।

तनादिगणीय धातु।

९३६। कृ—'अनु' और 'परा'-पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होता है; यथा—"अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" काद०; पराकरोति दानम् (निरस्यतीत्यर्थः)।

क्र्यादिगणीय धातु।

९३७। क्री—वि, परि और अव-पूर्वक क्री धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—"गवां शतसहस्रेण विक्रीणीषे सुतं यदि" रामा०; परिक्रीणीते; अवक्रीणीते।

९३८। ज्ञा—'अपह्नव' (अपलाप, गोपन) अर्थमे 'अप'-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—उक्तम् अपजानीते (अपलपतीत्यर्थः)।

(क) स्मरण-भिन्न अर्थमे सम् और प्रति-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—सञ्जानीते (अवेक्षते इत्यर्थः); "हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते" (अङ्गीकरोतीत्यर्थः)। ('स्मरण'-अर्थमे) गुरुः शिष्यं शिष्यस्य वा सञ्जानाति (स्मरतीत्यर्थः)।

(ख) 'अनु'-पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होता है; यथा—"अनुजानीहि मां गमनाय" उत्तर० ३; "ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य" भ० ३. २२.।

९३९। णिजन्त बुध्, युध्, नश्, जन् और अधि+इ (अध्ययनार्थ)

धातु परस्मैपदी होता है; यथा—बोधयति पद्मम्; योधयति सैनिकम्; नाशयति दुःखम्; जनयति सुखम्; अध्यापयति शिष्यम्।

णिजन्त धातु ।

६४० । णिजन्त भोजनार्थ और चलनार्थ धातु परस्मैपदी होता है; यथा—भोजयति, आशयति, चलयति, कम्पयति । किन्तु अद् धातु नहीं होता; यथा—आदयते ।

६४१ । अणिजन्त अवस्थामें प्राणी अर्थात् चेतन पदार्थ कर्त्ता होनेसे अकर्मक णिजन्त धातु परस्मैपदी होता है; यथा—

अणिजन्त	णिजन्त
बालः शेते	माता बालं शाययति ।
शिशुः जागर्त्ति	माता शिशुं जागरयति ।

प्राणी कर्त्ता न होनेसे नहीं होता; यथा—जलं शुष्यति—सूर्यो जलं शोषयति, शोषयते; नदी वर्द्धते—जलदकालो नदीं वर्द्धयति, वर्द्धयते ।

सनन्त धातु ।

६४२ । सनन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातु आत्मनेपदी होता है; यथ—धर्मं जिज्ञासते; गुरुं शुश्रूषते; नष्टं सुस्मूर्षते; चन्द्रं दिदृक्षते ।

'अनु'-पूर्वक ज्ञा धातु नहीं होता; यथा—अनुजिज्ञासति ।

* * * *

६४३ । लुङ्-विभक्तिमें द्युतादि* धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है; यथा—अद्युतत्, अद्योतिष्ट ।

---

* ४३९ सूत्र टिप्पनी ।

५४४। 'स्य' और 'सन्' परे रहनेसे, 'वृत्'-आदि * धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है ; यथा—वृत्+लृट्=वर्त्स्यति, वर्तिष्यते ; वृत्+सन्=विवृत्सति, विवर्त्तिषते ।

५४५। लुट्-विभक्तिमेभी क्लृप् धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है ; यथा—कल्प्तासि, कल्पितासे ।

५४६। लिट्, लुट्, लृट् और लृङ् विभक्तिमे 'मृ' धातु परस्मैपदी होता है ; यथा—(लिट्) ममार ; (लुट्) मर्त्ता ; (लृट्) मरिष्यति ; (लृङ्) अमरिष्यत् ।

कर्मवाच्य और भाववाच्य† ।

५४७। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे समस्त धातुओंके उत्तरही आत्मनेपद होता है ।

५४८। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे, चतुर्लकार परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'यक्' होता है ; 'यक्' का 'य' रहता है ; 'यक्'-प्रत्यय होनेसे, सब धातुओंके रूप चतुर्लकारमे दिवादिगणीय आत्मनेपदी धातुके तुल्य ; यथा—गम्+य+ते=गम्यते ।

---

* वृतादि—वृतुर्वृधुः शृधुः स्यन्दुः कृपुः पञ्च वृतादयः ।

† कर्मवाच्य और भाववाच्यमे—चतुर्लकारमे, और लुङ्के प्रथमपुरुषके एकवचनमे धातुरूपकी विभिन्नता है। अन्यान्य विभक्तियोंमे कर्त्तृवाच्यकेही तुल्य ।

गम् धातु ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गम्यते	गम्येते	गम्यन्ते
मध्यमपुरुष	गम्यसे	गम्येथे	गम्यध्वे
उत्तमपुरुष	गम्ये	गम्यावहे	गम्यामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गम्यताम्	गम्येताम्	गम्यन्ताम्
मध्यमपुरुष	गम्यस्व	गम्येथाम्	गम्यध्वम्
उत्तमपुरुष	गम्यै	गम्यावहै	गम्यामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगम्यत	अगम्येताम्	अगम्यन्त
मध्यमपुरुष	अगम्यथाः	अगम्येथाम्	अगम्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अगम्ये	अगम्यावहि	अगम्यामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	गम्येत	गम्येयाताम्	गम्येरन्
मध्यमपुरुष	गम्येथाः	गम्येयाथाम्	गम्येध्वम्
उत्तमपुरुष	गम्येय	गम्येवहि	गम्येमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	गंस्यते	गंस्येते	गस्यन्ते
मध्यमपुरुष	गंस्यसे	गंस्येथे	गंस्यध्वे
उत्तमपुरुष	गंस्ये	गंस्यावहे	गस्यामहे

लिट् ।

प्रथमपुरुष	जग्मे	जग्माते	जग्मिरे
मध्यमपुरुष	जग्मिषे	जग्माथे	जग्मिढ्वे
उत्तमपुरुष	जग्मे	जग्मिवहे	जग्मिमहे

लुट्—गन्ता । लृङ्—अगंस्यत । आशीः—गंसीष्ट ।

(३७३ सूत्रानुसार) जि + य + ते = जीयते ; श्रु—श्रूयते । (३७५ सू०) कृ—क्रियते । (३७६ सू०) स्मृ—स्मर्य्यते ; जागृ—जागर्य्यते । (३७७ सू०) कॄ—कीर्य्यते ; तॄ—तीर्य्यते (पॄ—पूर्य्यते)। दा—दीयते ; धा, धे—धीयते ; (पानार्थ) पा—पीयते ; मा—मीयते ; हा—हीयते ; स्था—स्थीयते ; गै—गीयते ; सो—सीयते*। दिव्—दीव्यते ; ष्ठिव्—ष्ठीव्यते। (३७८ और ३७९ सू०) ग्रह्—गृह्यते ; प्रच्छ्—पृच्छयते ; व्यध्—विध्यते ; यज्—इज्यते ; ह्वे—हूयते ; ब्रू , वच्—उच्यते ; वद्—उद्यते ; वप्—उप्यते ; वस्—उष्यते ; वह्—उह्यते ; स्वप्—सुप्यते । (३८० सू०) दृश्—दृश्यते । (३२४ सू०) शास्—शिष्यते । अस्—भूयते ; चक्ष्—ख्यायते । वे—ऊयते । कथि—कथ्यते† ; कारि—कार्य्यते ; स्थापि—स्थाप्यते ।

६४९ । ※ अगुण 'य' परे रहनेसे, जन्-धातुके स्थानमे विकल्पसे 'जा', खन्-धातुके स्थानमे विकल्पसे 'खा', और शी-धातुके स्थानमे 'शय्' होता है ; यथा—(जन्) जायते, जन्यते ; (खन्) खायते, खन्यते ; (शी)

---

* 'यक्' परे रहनेसे, दा, धा, (पानार्थ) पा, मा, ह्वादि हा, स्था, गै और सो धातुका अन्त्यस्वर 'ई' होता है ।

† 'य' परे णिच्का 'इ' लुप्त होता है ।

शय्यते ।

६६० । 'यक्'-प्रत्यय परे रहनेसे, तन्-धातुके स्थानमें विकल्पसे 'ता' होता है ; यथा—(तन्) तायते, तन्यते ।

६६१ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमें—लुट्, लृट्, लृङ् और आशीर्लिङ्,—तथा लुङ्-विभक्तिमें धातुके उत्तर जात 'सि' परे रहनेसे, स्वरान्त धातु, ग्रह्, दृश् और हन् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इण्' होता है ; 'इण्'-का 'इ' अवशिष्ट रहता है । 'इ' परे, हन्—घन्, और णित्-कार्य्य अर्थात् धातुके अन्त्यस्वर और उपधा अकारकी वृद्धि, तथा उपधा लघुस्वरका 'गुण होता है । विकल्पपक्षमें—कर्तृवाच्यके नियमसेही धातुके रूप होंगे, केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष । हन्—आशीर्लिङ्में 'वध्' होता है । यथा—

	लुट्	लृट्	लृङ्	आशीर्लिङ्
कृ—	कारिता कर्त्ता	कारिष्यते करिष्यते	अकारिष्यत अकरिष्यत	कारिषीष्ट कृषीष्ट
दृश्—	दर्शिता द्रष्टा	दर्शिष्यते द्रक्ष्यते	अदर्शिष्यत अद्रक्ष्यत	दर्शिषीष्ट दृक्षीष्ट
हन्—	घानिता हन्ता	घानिष्यते हनिष्यते	अघानिष्यत अहनिष्यत	घानिषीष्ट वधिषीष्ट
ग्रह्—	ग्राहिता ग्रहीता	ग्राहिष्यते ग्रहीष्यते	अग्राहिष्यत अग्रहीष्यत	ग्राहिषीष्ट ग्रहीषीष्ट

६६२ । * ञित् (ञ्-इत्) और णित् (ण्-इत्) प्रत्यय परे रहनेसे, आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है ; यथा—दायिता ; (पक्षे) दाता ।

६६३ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमें लुङ्के 'त' के स्थानमें 'इण्'

(चिण्) होता है ; 'इण्' का 'इ' रहता है ; 'इण्' परे, पूर्वोक्त 'इण्' के तुल्य कार्य्य होता है ; यथा—श्रु+लुङ्-त=अश्रावि ; (आताम्) अश्राविपाताम्, अश्रोपाताम् ; (अन्त) अश्राविपत, अश्रोपत।

अनुतापार्थक 'अनु+तप्' धातुके उत्तर 'इण्' नहीं होता ; यथा—अन्वतप्त।

लुङ्का 'त' परे रहनेसे, हन्—वध् और घन् होता है ; अन्यत्र विकल्पसे होता है ; यथा—(लुङ् प्रथमपुरुष) अवधि अघानि, अवधिपाताम् अहसाताम् अघानिपाताम्, अवधिपत अहसत अघानिपत।

६६४। * 'इण्' और 'कृत्'-का 'णम्' (णमुल्) परे रहनेसे, भन्ज् और लम्भ् धातुके नकारका विकल्पसे लोप होता है ; यथा—भन्ज्+लुङ्-त=अभाजि, अभञ्जि ; (लम्भ्) अलाभि, अलम्भि। (उपसर्ग) प्रालम्भि।

६६५। लुट्, लृट्, लृङ्, आशीर्लिङ् विभक्तिमे पूर्वोक्त स्वरान्त-प्रभृति-धातु-भिन्न यावतीय धातुके रूप कर्त्तृवाच्यके नियमसे होंगे ; केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष ; यथा—

	लुट्	लृट्	लृङ्	आशीर्लिङ्
त्यज्—	त्यक्ता	त्यक्ष्यते	अत्यक्ष्यत	त्यक्षीष्ट
	त्यक्तारौ	त्यक्ष्येते	अत्यक्ष्येताम्	त्यक्षीयास्ताम्
	त्यक्तारः	त्यक्ष्यन्ते	अत्यक्ष्यन्त	त्यक्षीरन्

६६६। लिट्मे और कोई विशेष नहीं है ; कर्त्तृवाच्यके नियमानुसार धातुके रूप होंगे ; केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष ; यथा—

सिव्—{ सिषेवे, सिषेवाते, सिषेविरे } भुज्—{ बुभुजे, बुभुजाते, बुभुजिरे } दा—{ ददे, ददाते, ददिरे }

५५७। कर्मवाच्यमें—कर्त्तामें तृतीया, और कर्ममें प्रथमा होती है; और क्रियापद कर्मके अनुसार वैठता है, अर्थात् कर्ममें जो पुरुष जो वचन रहता है, क्रियाकाभी वही पुरुष वही वचन होता है; यथा—

कर्त्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स बालकं पश्यति	तेन बालको दृश्यते ।
त्वं बालकौ पश्यसि	त्वया बालकौ दृश्येते ।
अहं बालकान् पश्यामि	मया बालकाः दृश्यन्ते ।
वयं त्वां पश्यामः	अस्माभिः त्वं दृश्यसे ।
ते युवां पश्यन्ति	तैः युवां दृश्येथे ।
तौ युष्मान् पश्यतः	ताभ्यां यूयं दृश्यध्वे ।
युवां मां पश्यथः	युवाभ्याम् अहं दृश्ये ।
यूयम् आवां पश्यथ	युष्माभिः आवां दृश्यावहे ।
सः अस्मान् पश्यति	तेन वयं दृश्यामहे ।
अहं तम् अपश्यम्	मया सः अदृश्यत ।
अहं त्वां द्रक्ष्यामि	मया त्वं द्रक्ष्यसे ।
स चन्द्रं पश्यतु	तेन चन्द्रो दृश्यताम् ।
कः सूर्यं पश्येत् ?	केन सूर्यो दृश्येत ?

जिन धातुओंका एक कर्म, उनका वाच्यान्तर ऐसा होगा ।*

परन्तु दुहादि और न्यादि † धातुके दो कर्म रहते हैं—एक, मुख्य अथवा प्रधान कर्म; दूसरा, गौण अथवा अप्रधान कर्म ‡ ।

५५८ । कर्मवाच्यमे—दुहादि-धातुके गौण-कर्ममे, और न्यादि-धातुके मुख्य-कर्ममे प्रथमा होती है § । अन्य कर्म द्वितीयान्तही रहता है । जिस कर्ममे प्रथमा हो, कर्मवाच्यकी क्रिया उसी कर्मके अनुसार होगी ; यथा—

दुहादि—(कर्त्तृवाच्यमे) गोपः गां दुग्धं दोग्धि (यहाँ 'गाम्' गौण कर्म, क्योंकि वक्ताकी इच्छासे इसमे अपादान-कारकभी हो सकता था); (कर्मवाच्यमे) गोपेन गौः दुग्धं दुह्यते । दरिद्रः राजानं धन याचते—दरिद्रेण राजा धनं याच्यते । शिक्षकः मां हितं वदति—शिक्षकेण अहं हितम् उद्ये । पूजकः वृक्षं पुष्पं चिनोति—

---

* कर्मवाच्यप्रयोगे तु तृतीया कर्त्तृकारके ।
कर्मणि प्रथमा प्रोक्ता, कर्माधीनं क्रियापदम् ॥

† २०८ सूत्र (क) टिप्पनी द्रष्टव्य ।

‡ क्रियाके साथ जिसका निकट-सम्बन्ध रहता है, उसे 'मुख्य कर्म', और क्रियाके साथ जिसका दूर-सम्बन्ध (और जिसमे अन्य कारकभी हो सकता है), उसे 'गौण कर्म' कहते हैं । 'भिक्षुक मुझे (मेरे पास—अधिकरण) वस्त्र माङ्गता है' कहनेसे, जिस वस्तुको माङ्गता है, उसके साथही क्रियाका निकट-सम्पर्क होनेसे, 'वस्त्र' मुख्यकर्म , और जिसके पास माङ्गता है, उसके साथ क्रियाका दूर-सम्पर्क होनेसे, 'मुझे' गौणकर्म ।

§ गौणे कर्मणि दुह्यादेः, प्रधाने नी-हृ-कृष्-वहाम् ।

पूजकेन वृक्ष पुष्प चीयते। राजा चौर शत दण्डयति—राज्ञा चौरः शत दण्डयते। शिष्य गुरु धर्म पृच्छति—शिष्येण गुरु धर्म पृच्छयते। देवा जलधिम् अमृत ममन्थु—देवै जलधि अमृत ममन्थे। गुरु शिष्य धर्मम् अनुशास्ति—गुरुणा शिष्य धर्मम् अनुशिष्यते।

न्यादि-भृत्य भार गृह नयति, हरति, कर्षति, वहति वा (कर्त्तृवाच्य)।
भृत्येन भार गृह नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा (कर्मवाच्य)।

५५९। णिजन्त धातुके कर्मवाच्यमे—प्रयोज्यकर्ममे प्रथमा होती है, और प्रयोज्यकर्मानुसार क्रिया होती है; यथा—(कर्त्तृवाच्यमे) प्रभु भृत्य ग्राम प्रेषयति, (कर्मवाच्यमे) प्रभुणा भृत्य ग्राम प्रेष्यते।

५६०। भाववाच्य*—तिङन्त क्रियाके सकर्मक धातुका भाव वाच्य नहीं होता। भाववाच्यमे—कर्त्तामे तृतीया विभक्ति, और क्रिया सवत्रही प्रथमपुरुषके एकवचनकी होती है †। कर्मवाच्यके कर्त्ताके तुल्य भाववाच्यमेभी क्रियाके साथ कर्त्ताका कोई सम्पर्क नहीं रहता। यथा—मया, युवाभ्याम्, तै वा अत्र स्थीयते। ‡

---

* 'भाव' शब्दका अर्थ—धात्वर्थ वा कर्म (कार्य)। कम—नाम, क्लीवलिङ्ग और एकवचन।

† प्रयोगे भाववाच्यस्य तृतीया कर्त्तृकारके।
प्रथम पुरुषैकवचन स्यत् क्रियापदे ॥

‡ कृदन्त क्रिया कर्त्तृवाच्यमे कर्त्ताका विशेषण, कर्मवाच्यमे कर्मका विशेषण, और भाववाच्यमे क्लीवलिङ्ग तथा एकवचनान्त होता है; यथा—स युष्मान् उक्तवान्, तेन यूयम् उक्ता, तेन उक्तम्।

कर्मकर्त्तृवाच्य ।

५६१ । कार्य्य करनेके समय जो कर्मकारक कर्त्ताके सुखकर निजगुणोसे स्वयंही सिद्ध होता है, उसको 'कर्मकर्त्ता' कहते हैं ।*

वस्तुतः कर्मही यदि कर्त्ता हो, अर्थात् क्रियाका कर्त्तृत्व यदि कर्ममे आरोपित हो, तो 'कर्म-कर्त्ता' होता है । कर्मकर्त्तामे प्रथमा विभक्ति होती है ; अन्य कर्मपद नहीं रहता । कर्मकर्त्तृवाच्यमे क्रियाका रूप कर्मवाच्यकी क्रियाके तुल्य । यथा—(कर्त्तृवाच्य) भृत्यः काष्ठं भिनत्ति ; (कर्म-कर्त्तृवाच्य) काष्ठं भिद्यते (स्वयमेव)—लकड़ी फटता है (आपसे आप) ।

अनुवाद करो—(कर्त्तृवाच्य और भाववाच्यमे) राजा था । गायें चरती हैं । लड़के नाचते हैं । फल गिरता है । सुख होगा । वह मरा । तुमलोग जाओ । तुम मत रोओ । हमलोगोंने वहाँ वास किया था । वे नहीं रहेंगे । वह हसा था ।

(कर्त्तृवाच्य और कर्मवाच्यमे) बच्चे बिछौनेमे सोते हैं । मैंने धन पाया है । वे धन पायेंगे । सब कोई सुखकी (कर्म) इच्छा करते हैं । तुम नक्षत्रोंको देखो । वह सत्य कहता है । हम काम करेंगे । मैं पुस्तक पढ़ता हूँ । हम दोनो काशी गये थे । तुम फलोंको ग्रहण करो । राजाने शत्रुओंको जीता है । तुम इसको पीछे जानोगे । असत्सङ्गका (कर्म) परित्याग करो । हनुमान्‌ने लङ्काको जलाया था । उसको मैंने पाठ पूछा था । जो परिश्रम करता है, वह सुख पाता है । प्राणियोंकी (कर्म) हत्या मत करो । परद्रव्य हरण नहीं करना । बिड़ाल दुग्ध पान करता है । मैं

---

* क्रियमाणन्तु यत् कर्म स्वयमेव प्रसिध्यति ।
सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्त्तुः, कर्म-कर्त्तेति तद्विदुः ॥

जरु पाऊगा । उसका नाम पूछो । मै उसे जानता हूँ । तू क्या सोचता है ? मै तुम्हारे साथ जाऊंगा । तुमलोग कहां रहोगे ? सदा सत्य कहो । वे क्या हसते हैं ? मेरा हाथ पकडो* ।

वाच्यान्तर-प्रणाली ।

जिस वाच्यका प्रयोग रहता है, उसको अन्य वाच्यमे परिवर्त्तित करना हो, तो समापिका क्रिया और उसके कर्त्ता और कर्म को परिवर्त्तित करना होगा। उस कर्त्ता और कर्मका यदि विशेषण रहे, तो वहभी बदल जायेगा; अन्यान्य पद नहीं बदलेगा। यथा—

	कर्त्ता	कर्म	समापिका क्रिया	वाच्य
(१)	अह	चन्द्र	पश्यामि	(कर्तृ)
	मया	चन्द्र	दृश्यते	(कर्म)

	कर्त्ता	कर्म	असमापिका क्रिया	समापिका क्रिया	वाच्य
(२)	शिशु	वाद्य	श्रुत्वा (सुनकर)	नृत्यति	(कर्तृ)
	शिशुना	वाद्यं	श्रुत्वा	नृत्यते	(भाव)

	कर्त्ता	कर्तृविशेषण	समापिका क्रिया	वाच्य
(३)	स	दु खित	भवति	(कर्तृ)
	तेन	दु खितेन	भूयते	(भाव)

	कर्त्ता	कर्म-विशेषण	कर्म	समापिका क्रिया	वाच्य
(४)	त्वया	पूर्ण	चन्द्र	दृश्यताम्	(कर्म)
	त्वं	पूर्णं	चन्द्रं	पश्य	(कर्तृ)

---

* यह दो प्रकारसे लिखा जा सकता है—'मेरा हाथ पकडो' अथवा 'मुझे हाथमे पकडो' ।

कर्त्ता	अन्यकारक	समापिका क्रिया	वाच्य
(५) मया	गृहे	स्थीयते	(भाव)
अहं	गृहे	तिष्ठामि	(कर्त्तृ)
कर्त्ता	कर्म	कृदन्त-क्रिया	वाच्य
(६) सः	०	गतवान्*	(कर्त्तृ)
तेन	०	गतम्	(भाव)
(७) तैः	दुग्धं	पीतम्	(कर्म)
ते	दुग्धं	पीतवन्तः	(कर्त्तृ)
(८) मया	०	गन्तव्यम्	(भाव)
अहं	०	गमिष्यामि	(कर्त्तृ)
(९) अस्माभिः	सत्यं	वक्तव्यम्	(कर्म)
वयं	सत्यं	ब्रूयाम	(कर्त्तृ)

कर्त्ता	क्रिया-विशेषण	विधेयविशेषण	क्रिया	वाच्य
(१०) रामः	अत्यन्तं	सुशीलः	†	(कर्त्तृ)
रामेण	अत्यन्तं	सुशीलेन	भूयते	(भाव)

---

* तिङन्त-क्रिया-द्वाराही तिङन्त-क्रियाका वाच्यान्तर, और कृदन्तक्रिया-द्वाराही कृदन्त-क्रियाका वाच्यान्तर करना । किन्तु कृदन्त-क्रियाका अभाव होनेसे (अर्थात् वर्त्तमानकालके 'क्त'-प्रत्यय, और तव्य, अनीय, य प्रत्यय-के स्थलमें) तिङन्तपदद्वारा वाच्यान्तर करना होगा ; यथा—तस्य मतम्—स मन्यते ; मया गन्तव्यम्—अहं गमिष्यामि ।

† जहाँ क्रियापदका प्रयोग नहीं रहता, वहाँ 'अस्'-धातुके 'लट्' का रूप ऊह्य (Understood) करना होता है । इसलिये यहाँ 'अस्ति'-

वाच्यान्तर करो—अहं गच्छामि। ते गच्छन्ति। युवां गां पश्यतम्। आवां जलं पास्यावः। युष्माभिः कथं रध्यते ? नगरे बहवो धनिनो वसन्ति। वर्षासु नद्यः प्रबला भवन्ति। पूजनीया हि गुरवः। अहं सर्वैः पशुभिः भवत्सकाशे प्रस्थापितः। यद्येष छागः केनाप्युपायेन लभ्येत (अस्माभिः)। अस्ति मालवदेशे पद्मगर्भनामधेयं सरः। दशरथो नाम राजा आसीत्। मद्वचनं शृणु। कश्चिद्बालको हसति। धर्मात्मा राजा धर्मेण प्रजाः पालयति।

संक्षिप्त कृत्-प्रकरण।*

(Verbal affix)

सगुण प्रत्यय।

६६२। कित् (क्-इत्) और ङित् (ङ्-इत्)-भिन्न—तुम्, शतृ, शान, स्यतृ, स्यमान, तव्य, अनीय, य, ण्यत्, घ्यण्,† तृच्, णिण्, अण्, घञ्, ण, खल्, अल्, अच्, अनट्, अन, णिन्, घिनुण्, इत्र, अस्, इस्, इष्णु, उ, णमुल्, णक, षक, ट, खि, आलु इत्यादि।

क्रिया कृत्य है। कर्तृवाच्यमेंही यह नियम।

* रचनादिकी सुविधाके लिये कई नितान्त प्रयोजनीय 'कृत्'-प्रत्यय यहाँ अलग दिये जाते हैं। परिशिष्ट 'कृत्'-प्रत्यय समासके पश्चात् लिखे जायँगे।

† व्याकरणान्तरमें ण्यत्, घ्यण्—इन दो प्रत्ययोंके स्थलमें एक 'ण्यत्'-प्रत्ययही विहित है, परन्तु सहजमें समझानेके लिये यहाँ ण्यत्, घ्यण्—दो अलग किये गये।

अगुण प्रत्यय ।

९६३ । कित्—क्त, क्तवतु, क्त्वा, क्ति, कष्ठ, कान, क्विप्, क्वनि्, कि, टक्, क्यप्, 'क्त्वा' के स्थानमे जात 'यप्' इत्यादि ; ङित्—अङ्, नङ् इत्यादि ।

९६४ । तव्य, अनीय, य, ण्यत्, ण्यण्, क्यप्, केलिम*—इन प्रत्ययोंको 'कृत्य-प्रत्यय' कहते है ।

९६५ । क्त और क्तवतु प्रत्ययको 'निष्ठा-प्रत्यय' कहते हैं ।

९६६ । धातुके उत्तर तुम्, क्त्वा, कृत्य, निष्ठा-प्रभृति कई प्रत्यय करनेसे शब्द उत्पन्न होता है ; उनको 'कृत्-प्रत्यय' कहते हैं ।

[कृत्-प्रकरणमेभी विशेष विशेष सूत्रोंसे वाधित न होनेसे तिङन्त-प्रकरणके स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

९६७ । कृत्-प्रत्यय होनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वर-का गुण होता है । किन्तु क् अथवा ङ् इत् होनेसे नहीं होता ।

[४९९ (४) (५) (७) (१०) (११) सूत्रानुसार कृत्-प्रत्ययका 'इत्'-कार्य्य होगा ।]

९६८ । कृत्-प्रत्यय परे रहनेसे, 'णिच्'-का लोप होता है । किन्तु आलु, इष्णु-प्रभृति कई प्रत्यय और श्-इत् (शित्) प्रत्यय परे, तथा 'इट्'-व्यवधानसे नहीं होता । यथा—उद्भावनम् ।

९६९ । कृत्-प्रत्ययका 'य' परे रहनेसे, धातुके अन्तस्थित 'ओ' के

---

* कर्मकर्त्तृवाच्यमे धातुके उत्तर 'केलिम' (केलिमर्) प्रत्यय होता है ; 'क्' इत्, 'एलिम' रहता है ; यथा—(पच्) पचेलिम (स्वयं पक्व) ; "ददर्श माल्लूरफलं पचेलिमम्" नै० १. ९५ ; (भिद्) भिदेलिम (भङ्गुर) ।

स्थानमें—अव्, और 'औ' के स्थानमें—आव् होता है ।

तुमुन् (तुम्) । (Infinitive mood).

५७० । यदि उभय क्रियाका कर्त्ता एक हो, तो निमित्तार्थमें भविष्यत्कालमें धातुके उत्तर 'तुमुन्'-प्रत्यय होता है; 'तुमुन्'-का—'उ' और 'न्' इत्, 'तुम्' रहता है ; यथा—भोक्तुं याति (भोजनके निमित्त—लिये—अर्थात् भोजन करनेको जाता है) ।

तुमन्त-क्रिया अव्यय ; इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं ।

लुट् का 'ता' परे जैसा कार्य्य हुआ है, 'तुमुन्' परेभी वैसा कार्य्य होगा ; यथा—(दृश्) द्रष्टुं याति ; (भुज्) भोक्तुम् अभिलषति ; (अधीङ्) अध्येतुम् इच्छति ।

दा—दातुम् । गै—गातुम् । क्रीड्—क्रीडितुम् ।
स्था—स्थातुम् । पच्—पक्तुम् । गम्—गन्तुम् ।
जि—जेतुम् । प्रच्छ्—प्रष्टुम् । क्षम्—क्षन्तुम्, क्षमितुम् ।
नी—नेतुम् । त्यज्—त्यक्तुम् । मुह्—मोहितुम्, मोग्धुम्, मोढुम् ।
कृ—कर्त्तुम् । भुज्—भोक्तुम् ।
श्रु—श्रोतुम् । अद्—अत्तुम् । सह्—सहितुम्, सोढुम् ।
कारि—कारयितुम् । कथि—कथयितुम् ।

५७१ । कालवाचक शब्द और समर्थार्थक शब्दके योगसे धातुके उत्तर 'तुमुन्' होता है । यथा—अध्येतुं कालोऽयम् ; गन्तुं समयोऽयम् ; दायितुं नेछेयम् । बोढुं समर्थः ; भोक्तुं पटुः ; वर्त्तितुं निपुणः ; कारयितुं

कुशलः ; योजयितुं प्रवीणः ; "पर्य्याप्तोऽसि प्रजाः पातुम्" र० १०. २९. ।

* हिन्दीमे जहाँ 'खानेको, जानेको'—ऐसी क्रियाका व्यवहार होता है, वहाँ उसके अनुवादमे 'तुमुन्' का प्रयोग करना चाहिये ; यथा—(मै खानेको जाऊंगा) अहं खादितुं यास्यामि, वा भोक्तुं गमिष्यामि । परन्तु 'मुझे खानेको दो'—ऐसे स्थलमे विभिन्न कर्त्ता होनेसे—भोजनका कर्त्ता एक, और दानका कर्त्ता दूसरा—'भोजन'-शब्दके उत्तर चतुर्थी-द्वारा अनुवाद करना होगा; यथा—मह्यं भोजनाय देहि ।

अनुवाद करो—माधव स्नान करनेको गया था । तू खानेको जा । हमलोग विवाह देखनेको जायेंगे । ग्वाला गाय दोहनेको गया । वह आखोंसे देख नहीं सकता । मुझे वह पुस्तक पढ़नेको दो । श्याम आध घण्टेमे (होरा) तीन चार पत्र लिख सकता है । पांवोंसे चल नहीं सकूंगा । मै उसे यह संवाद कहनेको जाऊंगा । यही खेलनेका समय । मैं पैरनेको असमर्थ । वह कुछ कहना चाहता है ।

(१) क्त्वा ।

[किसी विशेष-सूत्र-द्वारा बाधित न होनेसे, तिङन्तप्रकरणमे रुधादि और अदादिमे 'त' परे व्यञ्जनान्त धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'क्त्वा'-

---

* 'तुमुन्'-प्रत्ययान्त शब्द कभी क्रियावाचक विशेष्यभी होता है; यथा—एवं कर्त्तुम् उचितम् (करणम् इत्यर्थः) । क्रियावाचक विशेष्यके उत्तर निमित्तार्थमे चतुर्थीकी प्राप्ति होनेसे, उसके स्थानमे 'तुमुन्'-प्रत्ययान्त पदकाभी प्रयोग हो सकता है; यथा—पाठाय उपविशति, अथवा पठितुम् उपविशति ।

प्रत्यय परेभी प्रायः वैसाही कार्य्य, और अन्यान्य सूत्रोंका कार्य्य यथा-सम्भव होगा ।]

५७२ । उभय क्रियाका एकही कर्त्ता होनेसे*, पूर्व-कालिक-क्रिया-बोधक धातुके उत्तर† अनन्तर-अर्थमे 'क्त्वा'-प्रत्यय होता है ; 'क्' इत्, 'त्वा' अवशिष्ट रहता है ; यथा—भुक्त्वा व्रजति (भोजनके अनन्तर—पश्चात्, पीछे—अर्थात् भोजन करके जाता है)।

'क्त्वा'-प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय ; इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं।

५७३ । निषेधार्थक 'अलम्' और 'खलु' शब्दके योगसे 'क्त्वा' होता है ; यथा—अलं भुक्त्वा, खलु गत्वा (भोजन-गमने निषिद्धे—न भोक्तव्यम्, न गन्तव्यम् इत्यर्थः)। "निर्द्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्" माघ० २. ७०. ।

५७४ । क्-इत् (क्तिन्) अगुण, किन्तु 'इट्' होनेसे गुण होता है । क्त्वा परे, श्रि, उवर्णान्त, वृ और ऋदन्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता। ज्ञा—ज्ञात्वा ; स्ना—स्नात्वा ; जि—जित्वा ; श्रि—श्रित्वा ; नी—नीत्वा ; श्रु—श्रुत्वा ; भू—भूत्वा ; कृ—कृत्वा ; वृ—वृत्वा ; स्मृ—स्मृत्वा।

---

* किसी किसी स्थलमे (शिष्टप्रयोगमे) 'स्थित'-पदके अध्याहारसे एक-कर्त्तृकता होती है ; यथा—चन्द्रं दृष्ट्वा [स्थितस्य जनस्य] मनसि महान् हर्षो जायते ।

† किसी किसी स्थलमे परवर्त्ती धातुके उत्तरभी होता है ; यथा—उदरं पूरयित्वा भुङ्क्ते ; मुखं व्यादाय स्वपिति ; चक्षुः सम्मील्य हसति ; ठाठिति कृत्वा पतति कुम्भः ।

अनिट्—(चान्त) पच्—पक्त्वा ; सिच्—सिक्त्वा ; मुच्—मुक्त्वा । (जान्त) त्यज्—त्यक्त्वा ; भुज्—भुक्त्वा ; मृज्—मृष्ट्वा । (दान्त) भिद्—भित्त्वा ; छिद्—छित्त्वा । (धान्त) युध्—युद्ध्वा ; बुध्—बुद्ध्वा ; क्रुध्—क्रुद्ध्वा । (पान्त) क्षिप्—क्षिप्त्वा ; तप्—तप्त्वा ; आप्—आप्त्वा । (भान्त) रभ्—रब्ध्वा ; लभ्—लब्ध्वा । (शान्त) स्पृश्—स्पृष्ट्वा ; दृश्—दृष्ट्वा । (षान्त) कृष्—कृष्ट्वा ; पिष्—पिष्ट्वा; द्विष्—द्विष्ट्वा । (हान्त) दह्—दग्ध्वा ; दुह्—दुग्ध्वा ; नह्—नद्ध्वा ।

९७५ । * कित्-प्रत्यय परे रहनेसे, दा—दत्, धा—हि, स्था—स्थि, मा—मि, गै—गी, (पानार्थ) पा—पी, (त्यागार्थ) हा—हि, शो—शि, सो—सि, धाव्—विकल्पसे धौ होता है ; यथा—(दा) दत्त्वा ; (धा) हित्वा ; (स्था) स्थित्वा ; (मा) मित्वा ; (गै) गीत्वा ; (पा) पीत्वा ; (हा) हित्वा ।

९७६ । कित् 'कृत्'-प्रत्यय परे रहनेसे, हन्, मन्, तन्, गम्, नम्, यम्, रम्, क्षण्-प्रभृति धातुके अन्त्यवर्णका लोप होता है । 'क्त्वा'-के स्थानमे जो 'ल्यप्' होता है, उसमेभी यही नियम ; किन्तु 'ल्यप्' परे, गम्-आदिके अन्त्यवर्णका विकल्पसे लोप होता है ; यथा—(हन्) हत्वा ; (मन्) मत्वा ; (गम्) गत्वा ; (नम्) नत्वा ; (रम्) रत्वा इत्यादि ।

९७७ । 'क्त्वा' परे रहनेसे, उदित् (उकार-इत्) धातु* और पू धातु-

---

* उदित् धातु—अञ्च्, (तुदादि) इष्, कम्, भ्रम्, क्लम्, श्रम्, शम्, दम्, रम्, क्षम्, वृत्, तृप्, क्लिश्, शास्, भ्रस्, मृष्, ध्वन्स्, भ्रन्श्, सिव्, क्षण्, कम्, धाव्, लुप्, सिध्, हृष्, तन् इत्यादि ।

के उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है; यथा—(अञ्च्) अञ्चित्वा, अङ्क्त्वा; (इष्) एषित्वा, इष्ट्वा; (दिव्) देवित्वा, द्यूत्वा; (सिव्) सेवित्वा, स्यूत्वा; (धाव्) धावित्वा, धौत्वा; (पू) पवित्वा, पूत्वा। अञ्च्-धातुके पूजा भिन्न अन्य अर्थमें नहीं होता।

५७८। * क्त्वा, क्ति, क्त और क्तवतु परे रहनेसे, क्रम्, भ्रम, क्षम्, श्रम्, शम्, दम्, वम् और क्षम् धातुके उपधा अकारके स्थानमें 'आ' होता है; यथा—(क्रम्) क्रमित्वा, क्रान्त्वा; (भ्रम्) भ्रमित्वा, भ्रान्त्वा; (शम्) शमित्वा, शान्त्वा; (वम्) वमित्वा, वान्त्वा; (क्षम्) क्षमित्वा, क्षान्त्वा।

(३७८ सूत्र) ग्रह्—गृहीत्वा; प्रच्छ्—पृष्ट्वा; व्यध्—विद्ध्वा; यज्—इष्ट्वा।

(३७९ सूत्र) वद्—उदित्वा; वच्—उक्त्वा; वस्—उषित्वा; वह्—ऊढ्वा; स्वप्—सुप्त्वा।

(३८० सूत्र) दन्श्—दष्ट्वा।

५७९। 'क्त्वा' परे रहनेसे, जान्त, थान्त, फान्त धातु, और वन्च् तथा लुन्च् धातुके उपधा नकारका विकल्पसे लोप होता है। यथा—(जान्त) भन्ज्—भक्त्वा, भङ्क्त्वा; रन्ज्—रक्त्वा, रङ्क्त्वा। (थान्त) ग्रन्थ्—ग्रथित्वा, ग्रन्थित्वा; मन्थ्—मथित्वा, मन्थित्वा। (फान्त) गुम्फ्—गुफित्वा, गुम्फित्वा। वन्च्—वचित्वा, वञ्चित्वा; लुन्च्—लुचित्वा, लुञ्चित्वा।

५८०। 'इट्' परे रहनेसे, मृड्, मृद्, रुद्, विद्, मुष् और क्लिश् धातुका गुण नहीं होता; यथा—मृडित्वा; मृदित्वा; रुदित्वा; विदित्वा;

मुषित्वा ; क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा ।

५८१ । 'इट्' परे रहनेसे, 'मिल्'-आदि* धातुके उत्तर विकल्पसे गुण होता है ; यथा—(मिल्) मिलित्वा, मेलित्वा ; (लिख्) लिखित्वा, लेखित्वा ; (कुप्) कुपित्वा, कोपित्वा ; (द्युत्) द्युतित्वा, द्योतित्वा इत्यादि । सेट्-धातु—(शी) शयित्वा ; (कारि) कारयित्वा ।

(अद् + क्त्वा = जग्ध्वा ।)

हिन्दीमे 'खाके खाकर, जाके जाकर' प्रभृति प्रचलित क्रियाओंका अनुवाद संस्कृतमे प्रायशः 'क्त्वा'-निष्पन्न-क्रिया-द्वारा करना होता है ; यथा—(वे खाकर जायेंगे) ते भुक्त्वा यास्यन्ति ; (मैं स्नान करके खाऊंगा) अहं स्नात्वा भक्षयिष्यामि ।

अनुवाद करो—पुष्प चयन करके ला । जल सींचकर पेड़को बढ़ा । लड़के विद्यालयसे पढ़कर आते हैं । दयालु दरिद्रको धन देकर सुखी होता है । लड़के खेलकर घर लौटते हैं । बैल रस्सी तोड़कर भागा । धार्मिक बालक प्रतिदिन ईश्वरका (कर्म) स्मरण और नमस्कार करके पाठ आरम्भ करता है ।

(२) ल्यप् (यप्) ।

५८२ । 'नञ्'-भिन्न† अव्यय पदके साथ समास होनेसे धातुके उत्तर 'क्त्वा' के स्थानमे 'ल्यप्' होता है ; 'ल्' और 'प्' इत्, 'य' रहता है । 'प्'-इत् का कार्य्य होता है । यथा—आ +

* मिल्, लिख्, स्तिम्, कुप्, क्षुध्, त्रुट्, द्युत्, रुच्, स्फुट्, कृश्, तृप्, मृप् ।

† 'नञ्'-अव्ययके योगसे 'ल्यप्' नहीं होता ; यथा—(न गत्वा) अगत्वा ।

दा + ल्यप् = आदाय; (वि + जि) विजित्य; (वि + नी) विनीय; (प्र + हृ) प्रहृत्य; (आ + दृ) आदृत्य; (वि + हा) विहाय; (नि + पा—पानार्थ) निपाय*।

'ल्यप्'-प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय; इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं।

(३७७ सू०) प्र + कॄ—प्रकीर्य; आ + पॄ—आपूर्य।

सम् + त्यज्—सन्त्यज्य; वि + श्रम्—विश्रम्य; सम् + दृश्—सन्दृश्य; प्र + विश्—प्रविश्य; आ + श्लिष्—आश्लिष्य; सम् + भू—सम्भूय।

(५७६ सू०) आ + हन्—आहत्य; आ + गम्—आगत्य, आगम्य; प्र + नम्—प्रणत्य, प्रणम्य; नि + यम्—नियत्य, नियम्य; वि + रम्—विरत्य, विरम्य इत्यादि।

(५४१ सू०) सम् + शी—संशय्य।

(३७८ सू०) सम् + प्रच्छ्—सम्पृच्छ्य; सम् + ग्रह्—सङ्गृह्य; आ + ह्वे—आहूय।

(३७९ सू०) सम् + स्वप्—संसुप्य; प्र + वच्—प्रोच्य; सम् + वह्—समुह्य।

(३८० सू०) प्र + शास्—प्रशास्य; प्र + मन्थ्—प्रमथ्य इत्यादि।

५८३। 'ल्यप्' परे रहनेसे, 'णिच्'का लोप होता है। यदि 'णिच्'-का पूर्ववर्त्ती स्वर लघु हो, तो 'णिच्'का लोप न होकर 'णिच्'के 'इ'के

* निपीय—नि + पी (पानार्थ—दिवादि, आत्मने०) + ल्यप्; "निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाम्" नै० १. १.।

स्थानमे 'अय्' होता है । यथा—(वि+चारि) विचार्य्य ; (प्र+काशि) प्रकाश्य । (पूर्वस्वर लघु) वि+गणि—विगणय्य ; वि+रचि—विरचय्य ।

(क) 'ल्यप्' परे रहनेसे, 'आपि'-धातुका 'इ' विकल्पसे 'अय्' होता है ; यथा—(प्र+आपि) प्रापय्य, प्राप्य ।

☞ 'ल्यप्-प्रत्ययान्त क्रियाका व्यवहार 'क्त्वा'-प्रत्ययान्त क्रियाके तुल्य ।

कृत्य-प्रत्यय (Potential passive paticiple) ।

(१) तव्य ।

५८४ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे धातुके उत्तर 'तव्य'-प्रत्यय होता है ।

'लुट्'का 'ता' परे धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'तव्य'-प्रत्यय परे-भी वैसा कार्य्य होता है ; यथा—दा+तव्य=दातव्य ; (शी) शयितव्य ; (नी) नेतव्य ; (श्रु) श्रोतव्य ; (भू) भवितव्य ; (कृ) कर्त्तव्य ; (हन्) हन्तव्य ; (गम्) गन्तव्य ; (प्रच्छ्) प्रष्टव्य ; (श्वस्) श्वसितव्य ; (वह्) वोढव्य ; (सह्) सोढव्य ; (विश्) वेष्टव्य ; (स्पृश्) स्प्रष्टव्य ; (कारि) कारयितव्य ; (भोजि) भोजयितव्य इत्यादि ।

(२) अनीय (अनीयर्) ।

५८५ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे धातुके उत्तर 'अनीय'-प्रत्यय होता है ।

'अनीय' परे रहनेसे, अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है ; यथा—पा + अनीय = पानीय ; (भुज्) भोजनीय ; (श्रु) श्रवणीय ; (कृ) करणीय ; (हृ) हरणीय ; (रम्) रमणीय ; (शी) शयनीय इत्यादि ।

(३) यत् (य)।

५८६। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे स्वरान्त (इवर्णान्त और उवर्णान्त), पवर्गान्त*, और शक्, सह्-प्रभृति धातुके उत्तर 'यत्' होता है ; 'त्' इत्, 'य' रहता है ।†

'यत्' परे रहनेसे, अन्त्यस्वरका गुण होता है । यथा—(स्वरान्त) चि + यत् = चेय ; (जि) जेय ; (नी) नेय ; (श्रु) श्रव्य ; (भू) भव्य । (पवर्गान्त) जप् + यत् = जप्य ; (लभ्) लभ्य ; (गम्) गम्य ; (नम्) नम्य ; (रम्) रम्य । (शक्) शक्य ; (सह्) सह्य ।

५८७। 'यत्' परे रहनेसे, आकारान्त धातु और खन्-धातुके 'टि' के स्थानमे 'ए' होता है ; यथा—(दा) देय ; (मा) मेय ; (स्था) स्थेय ; (खन्) खेय ।

५८८। उपसर्गविहीन गद्, मद्, यम् और चर् धातुके उत्तर

---

* लप्, वप्, चम् भिन्न ।

† स्थलविशेषमे कारकवाच्यमे तव्यादि होते हैं ; यथा—वसतीति, वसन्त्यस्मिन्निति वा वास्तव्यः (ऐसे स्थलमे 'तव्य'-प्रत्यय परे वस् धातुकी वृद्धि होती है) ; जायते इति जन्यः ; स्नाति अनेनेति स्नानीयम् ; दीयते अस्मै इति दानीयः ; बिभेति अस्मात् इति भेतव्यः ; रमते अस्मिन्निति रमणीयम्, रम्यम् ।

'यत्' होता है; यथा—(गद्) गद्य; (मद्) मद्य; (यम्) यम्य; (चर्) चर्य्य। किन्तु 'आ'-पूर्वक चर्-धातुके उत्तर 'यत्' होता है; यथा—आचर्य्य।

(४) ण्यत्।

५८९। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे उवर्णान्त धातुके उत्तर 'आवश्यक'-अर्थमे 'ण्यत्' होता है; 'ण्' और 'त्' इत्, 'य' रहता है; यथा—(स्तु) स्ताव्य (अवश्यस्तवनीय)।

५९०। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे ऋकारान्त और व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर 'ण्यत्' होता है। यथा—(ऋकारान्त) कृ—कार्य्य; (हृ) हार्य्य; (स्मृ) स्मार्य्य। (व्यञ्जनान्त) वह्—वाह्य; हन्—घात्य ('ण्यत्' परे 'हन्'—'घात्' होता है); (जन्) जन्य; (वध्) वध्य; (त्यज्) त्याज्य; (यज्) याज्य; (बुध्) बोध्य*; (भुज्) भोज्य; (वच्) वाच्य इत्यादि।

(५) घ्यण्।

५९१। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे, 'शब्द'-अर्थमे—वच्, 'भोग'-अर्थमे—भुज्, और 'अर्ह' (औचित्य, सामर्थ्य)-अर्थमे—युज् धातुके उत्तर 'घ्यण्' होता है; 'घ्' 'ण्' इत्, 'य' रहता है; यथा—(वच्) वाक्यम् (पदसङ्घातः); (भुज्) भोग्य; (युज्) योग्य।

(क) 'क्त'-प्रत्ययमे अनिट्, ऐसे पच्, रुज् प्रभृति धातुके उत्तरभी

---

* णित्-प्रत्यय परे उपधा लघुस्वरका गुण होता है।

'ण्यत्' होता है ; यथा—(पच्) पाक्य ; (रुज्) रोग्य।

(३) क्यप्।

५१२। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे इ, दृ, भृ, कृ, जुष्, शास्, स्तु धातु, और उपधामे ऋकार-विशिष्ट धातुके उत्तर 'क्यप्' होता है ; 'क्' और 'प्' इत्, 'य' रहता है ; यथा—(इ) इत्य ; (दृ) आदृत्य ; (भृ) भृत्यः ; (कृ) कृत्य (पक्षान्तरे 'ण्यत्'—कार्य्य) ; (जुष्) जुष्य ; (शास्) शिष्यः (३२४ सू०) ; (स्तु) स्तुत्य (४५१ (११) सू०) ; (दृश्) दृश्य।

५१३। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे सुबन्त-पदके परवर्त्ती वद् धातुके उत्तर 'क्यप्' और 'यत्' होते हैं ; 'क्यप्'-पक्षमे 'व' के स्थानमे 'उ' होता है ; यथा—ब्रह्म + वद् + क्यप् = ब्रह्मोद्यम् ; ब्रह्म + वद् + यत = ब्रह्मवद्यम् ; वेदवाक्यं ब्रह्मज्ञानं वा इत्यर्थः। "ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्य्यात्" मनु० २. २३१. ('परमात्मनिरूपणपराः कथाश्च कुर्य्यात्' इति टीका)।

'मृषा'-शब्दके परवर्त्ती होनेसे केवल 'क्यप्' होता है ; यथा—मृषा + वद् + क्यप् = मृषोद्यम् (मिथ्यावचनम् इत्यर्थः)। मृषोद्य—मिथ्यावादी (विशेषण)।

५१४। भाववाच्यमे सुबन्त पदके परवर्त्ती भू-धातुके उत्तर 'क्यप्' होता है ; यथा—ब्रह्मन् + भू = ब्रह्मभूयम् (ब्रह्मत्वम्) ; देवभूयम् (देवत्वम्) ; विप्रभूयम् (विप्रत्वम्)।

५१५। भाववाच्यमे सुबन्त पदके परवर्त्ती हन्-धातुके उत्तर 'क्यप्' होता है ; और 'न्' के स्थानमे 'त्', तथा स्त्रीलिङ्ग होता है ; यथा—

स्त्रीहत्या, गोहत्या, ब्रह्महत्या।

☞ भविष्यत्-कालमे और औचित्य, अनुज्ञा प्रभृति अर्थमे 'कृत्यप्रत्यय' होता है।

कर्मवाच्यमे—कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जब क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब कर्मका विशेषण होता है, अर्थात् कर्मका जो लिङ्ग, जो विभक्ति, जो वचन, 'कृत्य'-निष्पन्न शब्दकाभी वही लिङ्ग, वही विभक्ति, वही वचन होता है; और कर्ममे—प्रथमा विभक्ति, कर्त्तामे—तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—भविष्यत्-कालमे—(तू अवश्य इसका फल पायेगा) त्वया नूनमस्य फलं प्राप्तव्यम्; (मैं काशी जाऊंगा) मया मम वा वाराणसी गन्तव्या। 'औचित्य'-अर्थमे—(असत्सङ्ग परित्याग करना चाहिये) असत्सङ्गः परिहर्त्तव्यः; (सबसमय मातापिताकी सेवा करनी चाहिये) सर्वदा मातापितरौ सेवनीयौ; (दुष्टोंको सर्वप्रकारसे दण्ड देना चाहिये) दुर्वृत्ताः सर्वथा दण्डनीयाः; (दूसरेकी निन्दा नहीं करना) परनिन्दा न कर्त्तव्या; (सब स्त्रियोंको माताके तुल्य देखना) सर्वाः स्त्रियो मातृवत् दर्शनीयाः; (शत्रुकेभी गुण कहना, और गुरुकेभी दोष कहना) "शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि"।

"कन्याऽप्येवं पालनीया शिक्षणीयाऽतियत्नतः।
देया वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता॥"

'अनुज्ञा'-अर्थमे—(प्रातःकालमे तुम्हे पाठशालाको जाना होगा) त्वया प्रातः पाठशाला गन्तव्या; (ब्राह्ममुहूर्त्तमे तुम्हे वेद पढ़ना

होगा) ब्राह्मे मुहूर्त्ते त्वया वेदोऽध्ययनीयः ।

भाववाच्यमे—कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जब क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब क्लीवलिङ्ग प्रथमाका एकवचन होता है; और कर्त्तामे तृतीया अथवा षष्ठी होती है; यथा—(हम स्नान करेंगे) अस्माभि अस्माकं वा स्नातव्यम् ।

※ कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जब विशेषण होता है, तब विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है; यथा—गन्तव्यो ग्रामः,* गन्तव्यं ग्रामम्, गन्तव्येन ग्रामेण इत्यादि; दृश्या नदी†, दृश्यां नदीम्, दृश्यया नद्या इत्यादि; पानीयं जलम् ‡, पानीयेन जलेन, पानीयस्य जलस्य इत्यादि ।

अनुवाद करो—दीनोको धन देना चाहिये । भूलकरभी मिथ्या नहीं बोलना । सर्वत्र गुणका आदर करना चाहिये । दुष्ट बालकका (कर्म) शासन करना चाहिये । तू तेरे गन्तव्य स्थानमे जाना । कल मेरे यहाँ भोजन करना ।

(Present participle)

(१) शतृ ।

५९६ । कर्त्तृवाच्यमे परस्मैपदी धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमे 'शतृ'-प्रत्यय होता है; 'श्' और 'ऋ' इत्, 'अत्' रहता है।

५९७ । अभ्यस्त धातु-भिन्न भ्वादि-प्रभृति धातुके 'लट्'की 'अन्ति'-

* जो जाया जायेगा—ऐसा गाँव ।

† जो देखी जायेगी, अथवा देखनेके योग्य—ऐसी नदी ।

‡ जो पीया जा सकता—ऐसा जल ।

विभक्तिमे जो रूप होता है, उससे 'न्' और 'इ' निकाल देनेसेही 'शतृ'-प्रत्ययान्त शब्द बनता है; यथा—(धाव्) धावन्ति—धावत्; (दृश्) पश्यन्ति—पश्यत्; (मुच्) मुञ्चन्ति—मुञ्चत्; (दिव्) दीव्यत्; (अश्) अश्नत्; (श्रु) शृण्वत्; (हिन्स्) हिंसत्; (कथि) कथयत्; (कारि) कारयत्; (चोरि) चोरयत् ।

५९८ । अभ्यस्त धातुके 'अन्ति'के रूपसे केवल 'इ' निकाल देनेसेही 'शतृ'-प्रत्ययान्त शब्द होता है; यथा—(दा) ददति—ददत्; (भी) बिभ्यति—बिभ्यत्; (हा) जहति—जहत् ।

५९९ । अदादिगणीय विद्-धातुके उत्तर 'शतृ'के स्थानमे विकल्पसे 'क्वसु' (वस्) होता है; यथा—विद्वस्, विदत् ।

(२) शानच् (शान) ।

६०० । कर्त्तृवाच्यमे आत्मनेपदी धातुके उत्तर वर्त्तमान-कालमे 'शानच्'-प्रत्यय होता है; 'श्' 'च्' इत्, 'आन' रहता है ।

६०१ । 'आन' परे रहनेसे, लट्की 'अते'-विभक्तिका समस्त कार्य्य होता है। भ्वादि, दिवादि और तुदादिगणीय धातुके उत्तर विहित 'आन'-के स्थानमे 'मान' होता है । यथा—(भ्वादि) सेव्—सेवमान; (वृत्) वर्त्तमान । (दिवादि) जन्—जायमान; विद्—विद्यमान । (तुदादि) मृ—म्रियमाण; धृ—ध्रियमाण । (अदादि) शी—शयान; अधि+इ—अधीयान । (तनादि) मन्—मन्वान । (ह्वादि) मा—मिमान ।

६०२ । अदादिगणीय आस्-धातुके परस्थित 'आन'—'ईन' होता है; यथा—(आस्) आसीन ।

६०३ । कर्त्तृवाच्यमे उभयपदी धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमे 'शतृ'

और 'शानच्'—दोनों होते हैं। यथा—(भ्वादि) श्रि—श्रयत्, श्रयमाण; यज्—यजत्, यजमान। (अदादि) स्तु—स्तुवत्, स्तुवान; दुह्—दुहत्, दुहान। (ह्वादि) दा—ददत्, ददान; भृ—बिभ्रत्, बिभ्राण। (रुधादि) रुध्—रुन्धत्, रुन्धान। (तनादि) तन्—तन्वत्, तन्वान; कृ—कुर्वत्, कुर्वाण। (क्र्यादि) क्री—क्रीणत्, क्रीणान; ग्रह्—गृह्णत्, गृह्णान।

६०४। कर्मवाच्यमे धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमे 'शानच्' होता है। 'शानच्' परे रहनेसे, कर्मवाच्यके लट्की 'अन्ते'-विभक्तिवत् यावतीय कार्य्य होता है, और 'आन'के स्थानमे 'मान' होता है; यथा—(कृ) क्रियमाण; (वच्) उच्यमान; (दा) दीयमान; (पा) पीयमान; (ग्रह्) गृह्यमाण; (सेव्) सेव्यमान; (वह्) उह्यमान; (दृश्) दृश्यमान; (कृष्) कृष्यमाण; (सृज्) सृज्यमान; (ज्ञा) ज्ञायमान।

६०५। उपलक्षण और हेत्वर्थमेभी 'शतृ' 'शानच्' होते हैं; यथा—स पशूनां वधं कुर्वन्नासीत् (वधक्रियया उपलक्षित इत्यर्थः); फलान्याहरन् वनं याति (फलाहरणाद्धेतोरित्यर्थः)।

(क) शील (स्वभाव) और शक्ति अर्थमे परस्मैपदी धातुके उत्तर भी 'शानच्' होता है; यथा—हसमानः शिशुः; करिणं निघ्नानः—द्विपम् अभिमन्यमानः—सिंहः।

※ 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निष्पन्न होता है, वह विशेषण; इसलिये विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है। यथा—(कर्तृवाच्य) पश्यन् पुरुषः,* पश्यन्तं पुरुषम्, पश्यता

* जो देखता है, ऐसा पुरुष।

पुरुषेण ; गच्छन्ती स्त्री, गच्छन्तीं स्त्रियम्, गच्छन्त्या स्त्रियां ; पतत् फलम्, पतता फलेन, पततः फलस्य । (कर्मवाच्य) दृश्यमानः (जो देखा जाता है—ऐसा) पुरुषः ; क्रियमाणौ घटौ ; छिद्यमानानि फलानि ; तीर्य्यमाणा नदी ।

✻ 'करके' या 'करते करते' अथवा 'जो करता है, करता था, या करता रहेगा—ऐसा' इत्यादिरूप अर्थमे धातुके उत्तर 'शतृ' वा 'शानच्' होता है ।

'जाते जाते गाता है', 'खाते खाते हसता है'—ऐसे वाक्योंके अनुवादमे—अर्थात् जहाँ एक समय दो क्रियायें चलती हैं, उसके अनुवादमे—पूर्व-क्रिया 'शतृ' वा 'शानच्'-प्रत्ययान्त होगी ; यथा—(लड़के जाते जाते गाते हैं) बालका गच्छन्तो गायन्ति ; (पथ देखते देखते जा) पन्थानं पश्यन् व्रज ; (वह खाते खाते बात करता था) स भुञ्जानः आलपति स्म ।

विभिन्न कर्त्ता होनेसे, अनेक स्थलोंमे 'खाते' 'जाते'—ऐसी क्रियाओंकी संस्कृत उक्त 'शतृ' अथवा 'शानच्'-द्वारा की जाती है; यथा—(मैंने उसे खाते देखा है) अहमसुं भक्षयन्तम् अपश्यम् ;—यहाँ दर्शनका कर्त्ता—'मै', और भक्षणका कर्त्ता—'वह',

---

समापिका क्रियाके साथ प्रयोग करनेसे, उसके प्राधान्य-हेतु, तदनुसारही वर्त्तमानकालमेभी अतीत और भविष्यत्कालका अर्थ प्रकाश करता है; यथा—उद्यन्तं चन्द्रम् अहमपश्यम् (उठता था जो चन्द्र, उसे मैंने देखा) ; उद्यन्तं चन्द्रम् अहं द्रक्ष्यामि (उठेगा जो चन्द्र, उसको मै देखूंगा)।

इसलिये विभिन्न कर्त्ता। †

'सुनते सुनते कथा समाप्त हुई'—इस वाक्यका अर्थ ऐसा है, कि—हम सुनते हैं, कथाभी समाप्त होती है; इसलिये इसकी संस्कृतमे पूर्व-क्रियाको कर्मवाच्यमे 'शानच्'-प्रत्ययान्त करके 'कथा'-का विशेषण कर लेना होगा; यथा—श्रूयमाणा कथा समाप्तिं याति।

अनुवाद करो—यहां लड़के खेलते खेलते लड़ते थे। मैंने हसते हसते कहा था। पढ़ते पढ़ते बूढ़ा हुआ हूं। वह चिड़िया उड़ते उड़ते पृथ्वीमे गिरी। छात्रलोग अध्ययन करते करते बात कर रहे हैं। जटायु रावणको सीताहरण करते देखा।

निष्ठा-प्रत्यय (Past participle)।

(१) क्त।

६०६। अतीतकालमे धातुके उत्तर कर्मवाच्य और भाव-वाच्यमे 'क्त'-प्रत्यय होता है; 'क्' इत्, 'त्' रहता है।

६०७। निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, 'सेट्'-धातुके उत्तर 'इट्' होता है। तिङन्त-प्रकरणमे जो धातु 'अनिट्' बोलके निर्दिष्ट हुए हैं, 'क्त'-प्रत्यय परे रहनेसे, उन धातुओंके उत्तर 'इट्' नहीं होता।

[तिङन्तप्रकरणमे जो समस्त स्टार (*)-चिह्नित साधारण सूत्र

---

† क्रियाका अविच्छेद (Continuation) समझानेसे, 'शतृ' वा 'शानच्'के साथ 'आस्' अथवा 'स्था' धातु व्यवहृत होता है; यथा—"गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ" कादं० (गीत समाप्त होनेका अवसर देखता रहा)।

हैं, निष्ठा-प्रत्यय परेभी यथासम्भव उन सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

६०८ । अकर्मक धातुके उत्तर कर्तृवाच्य और भाववाच्यमे 'क्त' होता है ।

६०९ । गत्यर्थ और प्राप्त्यर्थ धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमेभी 'क्त' होता है ; यथा—ग्रामं गतः, गृहं प्रस्थितः ; गङ्गां प्राप्तः, विद्यामधिगतः ।

६१० । उपसर्गके योगसे सकर्मक होनेपरभी शी (अधि+शी), स्था (अधि+स्था, उप+स्था), आस् (अधि+आस्, अनु+आस्, उप+आस्), वस् (अधि+वस्, उप+वस्), जन् (अनु+जन्), श्लिष् (आ+श्लिष्) और रुह् (आ+रुह्, अधि+रुह्) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमेभी 'क्त' होता है ; यथा—शय्यामधिशयितः ; आसनमधिष्ठितः, गुरुमुपस्थितः ; आश्रममध्यासितः, पितरमन्वासितः, शिवमुपासितः ; शिलातलमध्युषितः, हरिवासरमुपोषितः ; अग्रजमनुजातः ; शिशुमाश्लिष्टः ; तुरगमारूढः, योगमधिरूढः । (नम्) "वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि" बाणभट्टः ।

६११ । पूजार्थ, इच्छार्थ, ज्ञानार्थ और ञीत् (ञि-इत) धातुके* उत्तर वर्त्तमानकालमेभी 'क्त' होता है ; यथा—मम देवः पूजितः (पूज्यते इत्यर्थः) ।

६१२ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे,—जिन धातुओंके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, उन धातुओंके उत्तर, और श्रि, उवर्णान्त, वृ, ॠदन्त

---

* ञीत् धातु—(भेदार्थ) फल्, भी, मिद्, स्विद्, स्वप्, त्वर्, तृष्, इन्ध् इत्यादि ।

तथा ईदित् (ईकार-इत्) धातुके† उत्तर 'इट्' नहीं होता ।

६१३ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, दिव्—द्यू , सिव्—स्यू , ष्ठिव्—ष्ठ्यू , प्याय्—पी और प्या, स्फाय्—स्फी और स्फा, व्ये—वी, ह्वे—हू, ध्या—ध्यी, जन्—जा, सन्—सा, खन्—खा, श्वि—शू होता है ।

६१४ । 'मद्'-भिन्न दान्त, रान्त और ओदित्‡ (ओकार-इत्) धातु, तथा ग्लै, म्लै, द्रा, स्त्यै धातुके परस्थित निष्ठा-प्रत्ययका 'त'—'न' होता है ; 'न' परे रहनेसे, दान्त-धातुके 'द्' के स्थानमेंभी 'न्' होता है ।

६१५ । ह्री, घ्रा, त्रै, नुद् और विन्द् धातुके उत्तर निष्ठा-प्रत्ययका 'त' विकल्पसे 'न' होता है ।

६१६ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, क्षुध्, वस् और लुभ् धातुके उत्तर 'इट्' होता है ; किन्तु 'लिप्सा'-अर्थमें लुभ्-धातुका 'इट्' नहीं होता ; तथा—लुभित (विमोहित, आकुलीकृत) ; (लिप्सार्थे) लुब्ध ।

६१७ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, जप् , वम् , क्लिश् , रुष् , त्वर् , 'सम्'-पूर्वक घुष् , 'वि' और 'आ'-पूर्वक श्वस् धातुके उत्तर विकल्पमें 'इट्' होता है ।

६१८ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, छादि और ज्ञापि के स्थानमें विकल्पसे छद् और ज्ञप् होता है ; यथा—छन्न, छादित ; ज्ञप्त, ज्ञपित ।

---

† ईदित् धातु—कृत् , पृच् , जन् , त्रस् , दीप् , पुष् , प्याय् , मद् इत्यादि ।

‡ ओदित् धातु—ह्री, भञ्ज् , मस्ज् , रुज् , विज् , भुज् (तुदादि), रुज् , लस्ज् , दिव, हा इत्यादि ।

६१९ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, दा-धातुके स्थानमे 'दत्' होता है ।

(क) 'आ' और 'प्र' उपसर्ग पूर्वमे रहनेसे, 'दा'-धातुके स्थानमे विहित 'दत्' के दकारका विकल्पसे लोप होता है ; यथा—(आ + दा) आदत्त, आत्त ; (प्र + दा) प्रदत्त, प्रत्त ।

६२० । 'इट्'-युक्त निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, पू, शी, धृष्, स्विद्, जागृ और (क्षमार्थ) मृष् धातुका गुण होता है ; यथा—(पू) पवित ; (शी) शयित ; (धृष्) धर्षित ; (स्विद्) स्वेदित ; (जागृ) जागरित ; (मृष्) मर्षित ।

६२१ । क्षै, पच् और शुष् धातु—परस्थित निष्ठाप्रत्ययके तकारमे मिलकर, यथाक्रम—क्षाम, पक्क और शुष्क होते हैं ।

६२२ । 'इट्-युक्त निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, 'णिच्'-का लोप होता है ; यथा—(कथि) कथित ; (कारि) कारित ; (पालि) पालित ; (स्थापि) स्थापित ; (श्रावि) श्रावित ।

(उदाहरण)

'क्त'-निष्पन्न पद ।

अनिट्—(आकारान्त) ख्या—ख्यात ; घ्रा—घ्राण, घ्रात ; ज्ञा—ज्ञात ; दा—दत्त ; आ + दा—आदत्त, आत्त ; प्र + दा—प्रदत्त, प्रत्त ; द्रा—द्राण ; धा—हित ; पा—पीत ; मा—मित ; या—यात ; स्था—स्थित ; स्ना—स्नात ; हा—हीन ।

(इकारान्त) क्षि—क्षीण ; चि—चित ; जि—जित ; श्रि—श्रित ; श्वि—शून ।

(ईकारान्त) क्री—क्रीत ; क्षी—क्षीण ; डी—डीन ; दी—दीन ;

नी—नीत ; प्री—प्रीत ; भी—भीत ; ली—लीन ; ह्री—ह्रीण, ह्रीत ।

(उकारान्त) च्यु—च्युत ; दु—दून ; द्रु—द्रुत ; नु—नुत ; यु—युत ; रु—रुत ; श्रु—श्रुत ; स्तु—स्तुत ; हु—हुत ।

(ऊकारान्त) दू—दून ; धू—धूत ; पू—पूत ; ब्रू—उक्त ; भू—भूत ; लू—लून ; सू—सूत ।

(ऋकारान्त) कृ—कृत ; दृ—दृत ; धृ—धृत ; मृ—मृत ; वृ—वृत ।

(ॠकारान्त) कॄ—कीर्ण ; गॄ—गीर्ण ; जॄ—जीर्ण ; तॄ—तीर्ण ; दॄ—दीर्ण ; पॄ—पूर्त ; शॄ—शीर्ण ; स्तॄ—स्तीर्ण ।

(एकारान्त) वे—उत ; व्ये—वीत ; ह्वे—हूत ।

(ऐकारान्त) क्षै—क्षाम ; गै—गीत ; ग्लै—ग्लान ; घ्रै—घ्राण, घ्रात ; ध्यै—ध्यात ; म्लै—म्लान ; श्यै—श्यान (शुष्क), शीन (द्रवावस्थायाः कठिनीभूत, घनीभूत , यथा—शीनं घृतम् ; स्पर्शार्थे—शीत, यथा—शीत समीरण.) ; स्त्यै—स्त्यान ।

(ओकारान्त) दो—दित ; शो—शित, शात ; सो—सित ।

(कान्त) शक्—शक्त ।

(चान्त) पच्—पक्व ; पृच्—पृक्त ; मुच्—मुक्त ; रिच्—रिक्त ; वच्—उक्त ; सिच्—सिक्त ।

(छान्त) प्रच्छ्—पृष्ट ; मूर्च्छ्—मूर्त्त ।

† इंदित्) त्यज्—त्यक्त ; भज्—भक्त ; भञ्ज्—भग्न ; भुज्—इत्यादि । भग्न ; मृज्—मृष्ट ; यज्—इष्ट ; युज्—युक्त ; रुज्—

‡ ओदित् धातु- कौटिल्यार्थक 'भुज्'—भुग्न । कौटिल्यम्—वक्रीकरणम् रुज्, लग्न्, दित्र, हा

रक्त ; रुज्—रुग्ण ; सन्ज्—सक्त ; सृज्—सृष्ट ।

(णान्त) क्षण्—क्षत ।

(तान्त) वृत्—वृत्त ।

(दान्त) अद्—जग्ध (भक्ष्यार्थे—अन्नम्) ; क्लिद्—क्लिन्न ; क्षुद्—क्षुण्ण ; खिद्—खिन्न ; नुद्—नुन्न, नुत्त ; पद्—पन्न ; भिद्—भिन्न (खण्डार्थे—भित्तम्) ; मद्—मत्त ; विन्द्—विन्न, वित्त (ख्यात) ; सद्—सन्न ।

(धान्त) क्रुध्—क्रुद्ध ; बन्ध्—बद्ध ; बुध्—बुद्ध ; युध्—युद्ध ; रुध्—रुद्ध ; व्यध्—विद्ध ; शुध्—शुद्ध ; सिध्—सिद्ध ।

(नान्त) खन्—खात ; जन्—जात ; तन्—तत ; मन्—मत ; सन्—सात ; हन्—हत ।

(पान्त) आप्—आप्त ; क्षिप्—क्षिप्त ; गुप्—गुप्त ; तप्—तप्त ; तृप्—तृप्त ; दीप्—दीप्त ; दृप्—दृप्त ; लिप्—लिप्त ; लुप्—लुप्त ; वप्—उप्त ; स्वप्—सुप्त ।

(भान्त) रभ्—रब्ध ; लभ्—लब्ध ; लुभ्—लुब्ध ; स्तम्भ्—स्तब्ध ।

(मान्त) कम्—कान्त ; क्रम्—क्रान्त ; क्लम्—क्लान्त ; क्षम्—क्षान्त ; गम्—गत ; चम्—चान्त ; तम्—तान्त ; दम्—दान्त ; नम्—नत ; भ्रम्—भ्रान्त ; यम्—यत ; रम्—रत ; शम्—शान्त ; श्रम्—श्रान्त ।

(यान्त) प्याय्—पीन, प्यान ; स्फाय्—स्फीत, स्फात ।

(रान्त) चूर्—चूर्ण ; पूर्—पूर्ण ।

(वान्त) दिव्—द्यूत; ष्ठिव्—ष्ठ्यूत; सिव्—स्यूत।

(शान्त) क्रुश्—क्रुष्ट; दन्श्—दष्ट; दिश्—दिष्ट; दृश्—दृष्ट; नश्—नष्ट; भ्रन्श्—भ्रष्ट; विश्—विष्ट; स्पृश्—स्पृष्ट।

(षान्त) इष्—इष्ट (दिवादि—इषित); कृष्—कृष्ट; तुष्—तुष्ट; दुष्—दुष्ट; पुष्—पुष्ट; वृष्—वृष्ट; शिष्—शिष्ट; शुष्—शुष्क; श्लिष्—श्लिष्ट।

(सान्त) अस्—भूत (दिवादि—अस्त); प्रस्—प्रस्त; ग्रस्—ग्रस्त; ध्वन्स्—ध्वस्त; शन्स्—शस्त; शास्—शिष्ट; स्रन्स्—स्रस्त।

(हान्त) गाह्—गाढ; गुह्—गूढ; दह्—दग्ध; दिह्—दिग्ध; नह्—नद्ध; मुह्—मुग्ध, मूढ; रुह्—रूढ; लिह्—लीढ; वह्—ऊढ; सह्—सोढ; स्निह्—स्निग्ध।

सेट्—(आस्) आसित; (ईक्ष्) ईक्षित; (क्षुध्) क्षुधित; (ग्रह्) गृहीत; (जागृ) जागरित; (निन्द्) निन्दित; (पठ्) पठित; (पत्) पतित; (मुद्) मुदित; (लक्ष्) लक्षित; (लिख्) लिखित; वद्—उदित; वस्—उषित; (शी) शयित; (सेव्) सेवित; (हस्) हसित।

वेट्—(क्लिश्) क्लिष्ट, क्लिशित; सम्+घुष्—सङ्घुष्ट, सङ्घुषित; (जप्) जप्त, जपित; (मुष्) मुष्ट, मुषित; (रुष्) रुष्ट, रुषित; (वम्) वान्त, वमित; आ+श्वस्—आश्वस्त, आश्वसित; वि+श्वस्—विश्वस्त, विश्वसित; (हृष्) हृष्ट, हृषित।

※ सकर्मक-धातुके उत्तर कर्मवाच्यमें 'क्त' होता है; इसलिये कर्मवाच्यमें 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द कर्मका विशेषण, सुतरां

कर्मके लिङ्ग, विभक्ति और वचन प्राप्त होता है; यथा—ईश्वरेण जगत् सृष्टम्; मया गुरवः समुपासिताः; रामेण देवी आराधिता; मित्रेण पत्र्यौ लिखिते; मालिना पुष्पाणि चितानि।

※ 'किया गया, किया गया है, किया गया था'—इत्यादि सर्वप्रकार अतीत-कालकी क्रियाओंका अनुवाद 'क्त'-प्रत्ययान्त-क्रिया-द्वारा निष्पन्न हो सकता है; यथा—(हमने अन्न खाया) अस्माभिरन्नं भुक्तम्; (रावणसे सीता हरी गयी थी) रावणेन सीता हृता; (मैंने वेदान्तशास्त्र पढ़ा है) मया वेदान्तशास्त्रं पठितम्; (श्राद्धमें शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणा दी गयी) श्राद्धे शास्त्रविद्भ्यो विप्रेभ्यः प्रभूता दक्षिणा दत्ता।

※ कर्त्तृवाच्यमें 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द कर्त्ताका विशेषण; यथा—स जागरितः; सा भीता; जलं शुष्कम्; शिशुः शयितः; वृद्धो मृतः।

※ भाववाच्यमें 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द जब समापिका क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब सदाही क्लीबलिङ्ग प्रथमाका एकवचन होता है; यथा—शिशुना हसितम्; कन्यकया रुदितम्; श्रोतृभिरुपविष्टम्; ताभ्यामेकासने स्थितम्।

और जब विशेष्यशब्दके तुल्य व्यवहृत होता है, तब उसके रूप क्लीबलिङ्ग शब्दके समान; यथा गतम्, गते, गतानि; रुदितम्, रुदिते, रुदितानि।

(७) क्तवतु ।

६२३ । कर्तृवाच्यमें धातुके उत्तर अतीत-कालमें 'क्तवतु'-प्रत्यय होता है , 'क्' और 'उ' इत् , 'तवत्' रहता है ।

'क्त'-प्रत्यय परे धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'क्तवतु' परेभी ठीक वैसा कार्य्य होगा, यथा—(कृ) कृतवान्; (स्था) स्थितवान्; (भुज्) भुक्तवान् इत्यादि ।

✕ 'क्तवतु' प्रत्यय-निष्पन्न शब्द कर्त्ताका विशेषण ; इसलिये कर्त्ताके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है ; यथा—स पुस्तकं पठितवान् , तौ पुस्तकं पठितवन्तौ, ते पुस्तकं पठितवन्तः ; सा चन्द्रं दृष्टवती, ते चन्द्रं दृष्टवत्यौ, ताश्चन्द्रं दृष्टवत्यः ; वृक्षात् फलं पतितवत् , वृक्षात् फले पतितवती, वृक्षात् फलानि पतितवन्ति ।

✕ हिन्दीमें व्यवहृत 'हुआ, हुआ है, हुआ था' 'किया, किया है, किया था' इत्यादि समस्तप्रकार अतीतकालकी क्रियाका अनुवाद संस्कृतमें 'क्तवतु' प्रत्यय द्वारा किया जा सकता है ; यथा—(श्याम घरसे गया) श्यामः गृहात् गतवान् ; (हनुमान्‌ने लङ्का जलायी थी) हनुमान् लङ्कां दग्धवान् ; (अगस्त्यने समुद्रका पान किया) अगस्त्यः समुद्रं पीतवान् ; (उसकी एक कन्या हुई थी) तस्यैका कन्या जातवती ।

✕ 'क्तवतु' और 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द समापिका क्रियाके तुल्य प्रयुक्त न होकर, केवल विशेषण-स्वरूप व्यवहृत होनेसे, विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है । यथा—अधीतवान्

छात्रः*, अधीतवन्तं छात्रम्, अधीतवता छात्रेण, अधीतवते छात्राय इत्यादि। भीतः शिशुः, भीतं शिशुम्, भीतेन शिशुना इत्यादि।

❋ 'क्त'-प्रत्ययान्त क्रिया भविष्यत् और वर्त्तमान कालकी क्रियाके साथ युक्त होनेसे, भविष्यत् और वर्त्तमानका अर्थ प्रकाश करती है; यथा—(वेद पढ़ा गया था) वेदः पठितः अभवत्; (शत्रु आहत होगा) शत्रुः आहतः भविष्यति; (धन लब्ध होता है) धनं लब्धं भवति।

अनुवाद करो—गरमीमे सब जल सूख गया था। समस्त फल गिर गये। अभी वह खानेको गया। हमलोग नदीमे थे। तुम कहाँ थे? क्या तू कल आया था? कुम्भकर्णने सीताको नहीं देखा। लक्ष्मणने इन्द्रजित्को मारा था। युधिष्ठिरने भीष्मको बहुत प्रश्न पूछे।

(Perfect participle)

(१) क्वसु।

६२४। कर्तृवाच्यमे परस्मैपदी धातुके उत्तर अतीतकालमे 'क्वसु'-प्रत्यय होता है; 'क्' और 'उ' इत्, 'वस्' रहता है।

लिट्का 'व' परे धातुका जो जो कार्य्य होता है, 'वस्' परेभी वही कार्य्य होगा; यथा—(भू) बभूवस्; (श्रु) शुश्रुवस्; (स्तु) तुष्टुवस्; (विद्) विविद्वस्।

६२५। 'क्वसु' परे, घस्, इण् और आकारान्त धातुके उत्तर 'इट्' होता है; यथा—(घस्) जक्षिवस्; (इण्) ईयिवस्; (स्था) तस्थिवस्; (दा) ददिवस्; (पा) पपिवस्।

---

* जिसने अध्ययन किया था—ऐसा छात्र।

६२६। अभ्यस्त-कार्य्यके पश्चात् जो धातु एकस्वर-विशिष्ट रहते हैं, 'क्वसु' प्रत्यय परे, उन धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है ; यथा—(पच्) पेचिवस् ; (पत्) पेतिवस् ; (वच्) ऊचिवस् ; (वस्) ऊषिवस् ; (यज्) ईजिवस् ; (सद्) सेदिवस्।

६२७। 'क्वसु'-प्रत्यय परे रहनेसे, गम्, हन्, विश्, दृश् और तुदादि विद् (विन्द्) धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है ; यथा—(गम्) जग्मिवस्,* जगन्वस् ; (हन्) जघ्निवस्, जघन्वस् ; (विश्) विविशिवस्, विविश्वस् ; (दृश्) ददृशिवस्, ददृश्वस् ; (विन्द्) विविदिवस्, विविद्वस्।

(२) कानच् (कान)।

६२८। अतीतकालमे आत्मनेपदी धातुके उत्तर 'कानच्'-प्रत्यय होता हैं ; 'च्' इत्, 'आन' रहता है।

लिट्की 'आते'-विभक्तिमे जो जो कार्य्य होता है, 'आन' परेभी वही कार्य्य होगा ; यथा—(युध्) युयुधान ; (रुच्) रुरुचान ; (वन्द्) ववन्दान ; (शिक्ष्) शिशिक्षाण ; (व्यथ्) विव्यथान ; (सह्) सेहान ; (सेव्) सिषेवाण ;† (कृ) चक्राण ; (वच्) ऊचान।

☞ 'किया है जिसने—ऐसा'—इस अर्थमे धातुके उत्तर 'क्वसु' और 'कानच्' होते हैं।

'क्वसु' और 'कानच्'-प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निष्पन्न होते हैं, वे विशेषण, सुतरां विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होते हैं ;

* तीर्थं जग्मिवान् वृद्ध —जो तीर्थमे गया था, ऐसा वृद्ध।

† पितरं सिषेवाणः पुत्रः—जिसने पिताकी सेवा की थी, ऐसा पुत्र।

यथा—शुश्रुवान् (सुना है जिसने—ऐसा) पुरुषः, शुश्रुवांसं पुरुषम्, शुश्रुवुषा पुरुषेण ; विविदुषी कन्या, विविदुषीं कन्याम्, विविदुष्या कन्यया ; पेतिवः पत्रम्, पेतुषा पत्रेण इत्यादि ।

☞ कर्मवाच्यमेभी 'कानच्'-प्रत्यय होता है ; यथा—सिषेवाण (जिसकी सेवा की गयी थी—वह) ।

(Future participle)

(१) स्यतृ ।

६२९ । कर्त्तृवाच्यमे परस्मैपदी धातुके उत्तर भविष्यत्कालमे 'स्यतृ'-प्रत्यय होता है ; 'ऋ' इत्, 'स्यत्' रहता है ।

'लृट्' परे धातुका जो जो कार्य्य होता है, 'स्यतृ'-प्रत्यय परेभी वही कार्य्य होगा ; यथा—(भू) भविष्यत् ; (गम्) गमिष्यत् ; (श्रु) श्रोष्यत् ; (जि) जेष्यत् ; (कारि) कारयिष्यत् ।

(२) स्यमान ।

६३० । कर्त्तृवाच्यमे आत्मनेपदी धातुके उत्तर भविष्यत्-कालमे 'स्यमान'-प्रत्यय होता है ।

'स्यमान' परेभी 'लृट्'-विभक्तिका समुदाय कार्य्य होता है ; यथा—(सेव्) सेविष्यमाण ; (वृत्) वर्त्तिष्यमाण ; (जन्) जनिष्यमाण ; (पद्) पत्स्यमान ; (सह्) सहिष्यमाण ।

६३१ । कर्त्तृवाच्यमे उभयपदी धातुके उत्तर भविष्यत्-कालमे 'स्यतृ' और 'स्यमान'—दोनो होते हैं ; यथा—(स्तु) स्तोष्यत्, स्तोष्यमाण ; (दा) दास्यत्, दास्यमान ; (धा) धास्यत्, धास्यमान ; (ग्रह्) ग्रहीष्यत्, ग्रहीष्यमाण ; (कृ) करिष्यत्, करिष्यमाण ।

६३२ । कर्म्मवाच्यमे धातुके उत्तर भविष्यत्-कालमे 'स्यमान' होता है ; यथा—(ज्ञा) ज्ञास्यमान, ज्ञायिष्यमाण ; (श्रु) श्रोष्यमाण, श्राविष्यमाण ; (कृ) करिष्यमाण, कारिष्यमाण ; (दृश्) द्रक्ष्यमाण, दर्शिष्यमाण ; (दह्) धक्ष्यमाण ; (वच्) वक्ष्यमाण ।

※ 'करेगा जो—ऐसा'—यह अर्थ समझानेसे, धातुके उत्तर 'स्यतृ' और 'स्यमान' होते हैं । *

'स्यतृ' और 'स्यमान'-प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निष्पन्न होते हैं, वे विशेषण, इसलिये विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होते हैं। यथा—(कर्तृवाच्य) गमिष्यन् (जायेगा जो—ऐसा) पुरुषः, गमिष्यन्तौ पुरुषौ, गमिष्यन्तः पुरुषाः, गमिष्यन्तं पुरुषम्, गमिष्यता पुरुषेण ; जनिष्यमाणा कन्या, जनिष्यमाणां कन्याम्, जनिष्यमाणया कन्यया ; पतिष्यत् पत्रम्, पतिष्यता पत्रेण, पतिष्यतः पत्रस्य इत्यादि । (कर्मवाच्य) करिष्यमाणं कर्म,† करिष्यमाणे कर्मणी, करिष्यमाणानि कर्माणि, करिष्यमाणेन कर्मणा, करिष्यमाणात् कर्मणः, करिष्यमाणे कर्मणि ; वक्ष्यमाणं (जो कहा जायेगा—

---

* उद्देश्य वा अभिप्राय समझानेसेभी 'स्यतृ' और 'स्यमान' होते हैं ; यथा—"वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् स दावं विचचार" र० २. ८. (दुष्ट वन्यपशुओंको वश करनेके उद्देश्यसे) ; "करिष्यमाणः सशरं शरासनम्" र० ३. ५२. (धनुष्को शरयुक्त करनेके अभिप्रायसे) ।

† जो किया जायेगा—ऐसा काम ।

'गम्'-धातुके उत्तर 'स्यमान' करनेसे 'गस्यमान' होता है ('गमिष्यमाण' नहीं होता) ।

ऐसा) वचनम्, वक्ष्यमाणेन वचनेन, वक्ष्यमाणात् वचनात्, वक्ष्यमाणस्य वचनस्य, वक्ष्यमाणेषु वचनेषु इत्यादि।

णमुल् (णम्) Gerund in अम्।

६३३। 'पौनःपुन्य'-अर्थमे 'क्त्वा' के स्थानमे पूर्वकालिक-क्रियाबोधक धातुके उत्तर 'णमुल्'-प्रत्यय होता है; 'ण्' और 'उल्' इत्, 'अम्' रहता है।

'णमुल्'-प्रत्ययान्त क्रिया असमापिका और अव्यय।

प्रयोगकालमे यह द्विरुक्त होकर व्यवहृत होती है; यथा—(स्मृ) स्मारं स्मारं* नमति (स्मृत्वा स्मृत्वा—पुनःपुनः स्मृत्वा इत्यर्थः)।

(पा) पायम्; (श्रु) श्रावम्; (स्तु) स्तावम्; (नम्) नामम्; (ग्रह्) ग्राहम्; (भुज्) भोजम्; (भिद्) भेदम्; (क्षिप्) क्षेपम्; (मृश्) मर्शम्; (स्पृश्) स्पर्शम्; (हस्) हासम्; (गाह्) गाहम्।

(क) 'णमुल्'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'हन्'-धातुके स्थानमे 'घात्' होता है, यथा—घातम्।

६३४। कथम्, इत्थम्, एवम् और अन्यथा शब्दके परस्थित 'कृ'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है,—यदि इसप्रकार 'णमुल्'-प्रत्यय-निष्पन्न पदोंका अर्थ उन शब्दोंकेही समान हो; यथा—कथङ्कारम् (कथमित्यर्थः—कैसे); "कथङ्कारमनालम्ब्य कीर्त्तिर्द्यामधिरोहति?" माघ० २. ५२; इत्थङ्कारम् (इत्थमित्यर्थः—ऐसे); एवङ्कारम् (एवमित्यर्थः—ऐसे

---

* 'णित्'-कार्य्य होता है।

अन्यथाकारम् (अन्यथा इत्यर्थ.—अन्यप्रकारसे) ;—यहाँ 'कृ'-धातु निरर्थक है ।

६३५ । 'साकल्य' अर्थ समझानेसे, कर्मपदके परवर्त्ती दृश् और विद् धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है ; यथा—दरिद्रदर्शं ददाति (दरिद्रं दरिद्रं दृष्ट्वा—यं यं दरिद्रं पश्यति, तं तं ददाति—सर्वान् दरिद्रान् इत्यर्थः) ; विप्रवेदं भोजयति (विप्रं विप्रं विदित्वा—यं यं विप्रं वेत्ति विन्दति विचारयति वा, तं तं भोजयति—सर्वान् विप्रानित्यर्थः) ।

६३६ । 'यावत्' शब्दके परवर्त्ती 'जीव्'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है ; यथा—यावज्जीवम् अधीते (यावत् जीवति, तावत् इत्यर्थः) ।

६३७ । कर्मवाचक 'उदर' शब्दके परवर्त्ती 'पूरि'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है ; यथा—उदरपूरं भुङ्क्ते (उदरं पूरयित्वा इत्यर्थः—पेट भरके) ।

६३८ । 'त्वरा' समझानेसे, अपादानवाचक पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है ; यथा—शय्योत्थायं धावति (शय्यायाः शीघ्रम् उत्थायेत्यर्थः) ।

६३९ । कर्मवाचक 'नाम'-शब्दके परवर्त्ती 'ग्रह्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है ; यथा—नामग्राहम् आह्वयति (नाम गृहीत्वा इत्यर्थः) ।

६४० । तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पदके परवर्त्ती 'उप'-पूर्वक 'पीड्' और 'उप'-पूर्वक 'रुध्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है ; यथा—पार्श्वोपपीडं शेते (पार्श्वाभ्यां पार्श्वेन पार्श्वयोर्वा उपपीड्य इत्यर्थः) ; "स्तनोपपीडं परिरब्धुकामा" (स्तनयोरुपपीड्य इत्यर्थः) मा० ३. ९४ ; व्रजोपरोधं गाः स्थापयति (व्रजेन व्रजे वा उपरुध्य इत्यर्थः) ।

म ६४१ । किसी अवयवका परिक्लेश अर्थात् सम्पूर्णरूपसे पीड़ा

समझानेसे, उस अवयववाचक द्वितीयान्त पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है; , यथा—"स्तनसम्बाधमुरो जघान च" (स्तनौ सम्बाध्य इत्यर्थः) कु० ४. २६; "उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः" (नखैः उरो विदार्य्य हतः इत्यर्थः) माघ० १. ४७. ।

६४२ । क्रियाविशेषणवाचक 'समूल'-शब्दके परवर्त्ती 'कष्' (हिंसायाम्) और 'हन्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है; यथा—समूलकाषं कषति, समूलघातं हन्ति (समूलं कषति, हन्ति इत्यर्थः) ।*

६४३ । 'जीव'-शब्दके परवर्त्ती 'ग्रह्'-धातुका 'णमुल्' होता है; यथा—जीवग्राहं गृह्णाति (जीवं गृह्णाति—जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः—जीवतीति जीवः, जीव्+क—जीता पकड़ता है) ।

६४४ । करणबोधक शब्दके परवर्त्ती 'हन्' और 'पिष्' धातुका 'णमुल्' होता है; यथा—पादघातं भूमिं हन्ति (पादेन हन्तीत्यर्थः); "सूत्रधारो दारुवर्मा वैरोधकपुरःसरैः पदातिलोकैर्लोष्टघातं हतः" मुद्रा० २; उदपेषं पिनष्टि (उदकेन पिनष्टीत्यर्थः) ।

६४५ । हस्तवाचक करणपदके परवर्त्ती 'ग्रह्'-धातुका 'णमुल्' होता है; यथा—हस्तग्राहं गृह्णाति (हस्तेन गृह्णातीत्यर्थः); पाणिग्राहम्; करग्राहम् ।

६४६ । कर्त्तृविशेषण 'ऊर्द्ध्व'-शब्दके परवर्त्ती 'शुष्'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है; यथा—ऊर्द्ध्वशोषं शुष्यति तरुः (तरुः ऊर्द्ध्वः—उन्नतः—

---

* इस सूत्रसे लेकर परवर्त्ती सूत्रोंमे जिन धातुओंके उत्तर 'णमुल्' विहित होगा, उनका पुनः प्रयोग करना होगा । इसलिये सब उदाहरणोंमेही उन धातुओंका पुनः प्रयोग दृष्ट होगा ।

एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थः—खड़ा खड़ा सूख जाता है)।

६४७। उपमानवाचक कर्त्तृपद और कर्मपदके परवर्त्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है। यथा—(कर्त्ता) विद्युत्प्रणाशं प्रनष्टः (विद्युदिव क्षणेनैव विनष्ट इत्यर्थः); शलभनाशं नश्यति (शलभ इव अविमृश्यकारी पुरुषो नश्यतीत्यर्थः); पार्थसञ्चारं चरति (पार्थ इव सशौर्य्यं चरतीत्यर्थः); "विच्छिन्नाभ्रविलायं वा विलीये नगमूर्द्धनि" (विच्छिन्नाभ्रमिव विलीये इत्यर्थः) भा० ११. ७९.। (कर्म) पितृवेदं वेत्ति गुरुम् (गुरुं पितरमिव जानातीत्यर्थः); पुत्रदर्शं पश्यति शिष्यम् (शिष्यं पुत्रमिव सस्नेहं पश्यतीत्यर्थः); रत्ननिधायं निदधाति (रत्नमिव सयत्नं निदधातीत्यर्थः); सैकतभेदं भिनत्ति शैलम् (सैकतमिव अनायासेनैव भिनत्तीत्यर्थः); घनचायं चिनोति धर्मम् (घनमिव यत्नेन अवधानेन च चिनोतीत्यर्थः); "अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः, सोऽनन स्वागतेनाभिनन्द्यते।" शकु० ६.।

(अन्य उदाहरण)

चौरङ्कारम् आक्रोशति (चौरं कृत्वा*—चौरोऽसीत्युक्त्वा इत्यर्थः; 'म्'-आगम)। स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते, लवणङ्कारं भुङ्क्ते (स्वादु कृत्वा, लवणं कृत्वा इत्यर्थः)। पुष्पवर्जम् (पुष्पं वर्जयित्वा इत्यर्थः)।

'कृत्'-विषयक प्रश्नमाला।

निम्नलिखित धातुओंके उत्तर शतृ वा शानच्, क्वसु वा कान, स्यतृ वा स्यमान, क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, य, तुम्, क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय करनेसे कौन कौन पद होगा, कहो—

अस्, आप्, आस्, इष्, ईक्ष्, कथ, कृ, क्री, क्षिप्, गम्, घ्रा, चर्,

---

* करोतिरत्र भाषणार्थः।

जन्, जागृ, जि, ज्ञा, त्यज्, दह्, दा, दृश्, नम्, नी, नृत्, पठ्, पत्, पा, प्रच्छ्, ब्रू, भुज्, भू, मृ, या, रक्ष्, रुद्, रुह्, लभ्, लिख्, वद्, वस्, शक्, शी, श्रु, सद्, सृज्, सेव्, स्था, स्पृश्, स्मृ, हन्, हस्, हृ।

कारक-प्रकरण।

हे मित्र, राजा कोशसे पुत्रके जन्मदिनमे दरिद्रोंको स्वहस्तसे धन देता है—इस वाक्यमे,

कौन देता है?—राजा;

क्या देता है?—धन;

किससे देता है?—स्वहस्तसे;

किनको देता है?—दरिद्रोंको;

कहाँसे देता है?—कोशसे;

किस दिनमे देता है?—जन्मदिनमे;—इस रीतिसे राजा, धन, स्वहस्त, दरिद्र, कोश और जन्मदिन, इन छः पदोंका क्रियाके साथ अन्वय है। पर 'मित्र' और 'पुत्र'—इन दोनो पदोंका क्रियाके साथ अन्वय नहीं है; क्योंकि 'हे मित्र देता है', अथवा 'पुत्रके देता है'—ऐसा वाक्य नहीं हो सकता। ('मित्र'—सम्बोधनपद, 'पुत्रके'—सम्बन्धपद)।

६४८। क्रियाके साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है, उसको 'कारक' कहते हैं।*

* क्रियोपयोगि क्रियान्वयि कारकम्।

कारक छः प्रकार—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण।

कर्त्ता ।

६४९ । क्रियासम्पादन-विषयमे जो स्वतन्त्र (स्वाधीन), अर्थात् प्रधानभावसे विवक्षित होता है, (जो अन्य किसी कारकके अधीन न होकर स्वयं क्रिया-निष्पादन करता है), वह 'कर्त्तृकारक'।* यथा—सूदः पचति—यहाँ पाकक्रियामे सूपकारका व्यापार अन्यके व्यापारके अधीन नहीं। रामेण स्थीयते।

कर्म ।

६५० । कर्त्ताकी क्रिया-द्वारा जो आक्रान्त होता है, उसे 'कर्म-कारक' कहते हैं; † यथा—बालः चन्द्रं पश्यति; हरिं भजति साधुः।

६५१ । 'अधि'-पूर्वक—शी, स्था, आस् धातु, और 'अधि' तथा 'आ'-पूर्वक—वस्-धातुके अधिकरण-कारकको कर्मसंज्ञा होती है। यथा—(अधि+शी) शय्यायां शेते=शय्याम् अधिशेते; 'भीष्मोऽधिशिश्ये किल बाणशय्याम्'। (अधि+स्था) गृहे तिष्ठति=गृहम् अधितिष्ठति; "मद्रासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ" र० ६. ७३.। (अधि+आस्) आसने आस्ते=आसनम् अध्यास्ते; 'मलयाचलमध्यास्ते चन्दनं न वने वनम्'। (अधि+वस्) नगरे वसति=नगरम् अधिवसति; 'शुक्तिं मुक्ताऽधि-

* स्वतन्त्रः कर्त्ता।

† क्रियाव्याप्यं कर्म।

वसति' । (आ+वस्) गुरोरालये वसति=गुरोरालयम् आवसति ।*

६९२ । दुह्, याच्, चि, प्रच्छ्, नी, मन्थ् प्रभृति † कई धातुओंके दो कर्म रहते हैं ; एकका नाम 'मुख्य' वा 'प्रधान' (Direct object), अपरका नाम 'गौण' वा 'अप्रधान' (Indirect object) । क्रियाके साथ प्रधानभावसे जिसका अन्वय होता है, उसको 'प्रधान कर्म', और अप्रधानभावसे जिसका अन्वय होता है, उसको 'अप्रधान कर्म' कहते हैं । यथा—गोपो गां दुग्धं दोग्धि ; दरिद्रो राजानं धनं याचते ; मालाकारो वृक्षं पुष्पं चिनोति ; शिष्यो गुरुं धर्मं पृच्छति ; पिता पुत्रं गृहं नयति ; देवा जलधिममृतं ममन्थुः ;—यहाँ दुग्ध, धन, पुष्प, धर्म, पुत्र, अमृत 'प्रधान कर्म', और गो, राजा, वृक्ष, गुरु, गृह, जलधि 'अप्रधान कर्म' । इस अप्रधान कर्मकोही 'अकथित और अविवक्षित कर्म' कहते हैं ; अर्थात् दोनो कर्मोंके बीचमे जिससे अन्य कारककी प्रवृत्तिकी सम्भावना रहती है, पर वक्ताकी इच्छाके अभावसे उन सब कारकोंकी प्रवृत्ति न होकर कर्म-कारक प्रवृत्त होता है, उसेही 'अकथित, अविवक्षित और अप्रधान कर्म' कहते हैं । पूर्वोक्त उदाहरणोमे 'गो'-प्रभृतिकी कर्म-संज्ञा हुई है ; परन्तु विवक्षा रहनेसे,—गोर्दुग्धं दोग्धि ; राज्ञो धनं याचते ; वृक्षात् पुष्पं चिनोति ; गुरोर्धर्मं पृच्छति ; पुत्रं गृहे नयति ; जलधेरमृतं ममन्थुः—इसप्रकार यथासम्भव अपादानादिकारक प्रवृत्त हो सकते ।

---

* उन सब उपसर्गोंके साथ वे सब धातु कृत्प्रत्यय-योगसे क्रियावाचक विशेष्य होनेपर, उनका अधिकरणकारक कर्म नहीं होता ; यथा—शय्यायाम् अधिशयनम् इत्यादि ।

† २०८ सूत्र (क) टिप्पनी द्रष्टव्य ।

अवशिष्ट द्विकर्मक धातुके उदाहरण, यथा—

पुत्रं नीतिं ब्रूते, वदति वा ; तण्डुलान् ओदनं पचति ; शत्रुं राज्यं जयति ; दुष्टान् शतं दण्डयति राजा ; बालं गृहं रुणद्धि ; साधून् धनं मुष्णाति चोरः ; शिष्यं धर्मं शास्ति ; ग्रामम् अजां कर्षति, हरति, वहति वा ।

करण ।

६५३ । कर्त्ताकी क्रियासिद्धिमें जो अत्यन्त उपकारक, उसे 'करण-कारक' कहते हैं ;* यथा—दात्रेण लुनाति ; "सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू ?" वेणी० १. १५. ।

सम्प्रदान ।

६५४ । दानकर्मके उद्देश्यभूत जो कारक, अर्थात् कर्त्ता जिसको उद्देश करके स्वत्वत्यागपूर्वक कोई वस्तु दान करता है, उसे 'सम्प्रदान-कारक' कहते हैं ;† यथा—विप्राय गां ददाति ; शिष्याय विद्यां ददाति ।

६५५ । जिसको उद्देश करके, अथवा जिसकी प्रीति-उत्पादनके लिये किसी क्रियाका अनुष्ठान किया जाता है, उसकोभी सम्प्रदान-संज्ञा होती है । यथा—युद्धाय सन्नह्यते राजा (युद्धम् उद्दिश्य, अभिप्रेत्य इत्यर्थः) ; पत्ये शेते (पतिम् उद्दिश्य इत्यर्थः) । पुत्राय क्रीडनकम् आनयति (पुत्रं प्रीणयितुम् इत्यर्थः) ; गुरवे दक्षिणामाहरति ; 'दर्शयते शिशवे शशिबिम्बम्' ; 'नृपायोपहारं प्रजाः प्रेरयन्ति' ;

---

* साधकतमं करणम् ।

† दानकर्मणा यमभिप्रैति, स सम्प्रदानम् ।

"तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन् प्रियदर्शनः।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः॥" र० १. ४७.।*

६९६। रुच्यर्थक (रुचि-अर्थविशिष्ट) धातुका कर्त्ता जिसकी प्रीति उत्पादन करता है, उसकी सम्प्रदान-संज्ञा होती है; यथा—मोदकः शिशवे रोचते; साधवे रोचते धर्मः; 'कदाचिच्चाटुवचनं सुजनेभ्यो न रोचते'; "यत् प्रभविष्णवे रोचते" शकु० २; इदं मह्यं स्वदते; छदशे स्वदते तत्त्वम्।

६९७। 'स्पृहि'-धातुके प्रयोगमे, कर्त्ताका जो ईप्सित अर्थात् अभिलषित विषय, उसकी सम्प्रदान-संज्ञा होती है; यथा—धर्माय स्पृहयति; "परिक्षीणो यवानां प्रसृतये स्पृहयति" भर्तृ०।

६९८। 'धारि'-धातुके प्रयोगमे, जो उत्तमर्ण (धन-स्वामी—जिसके पास ऋण लिया जाता है), उसकी सम्प्रदान-संज्ञा होती है; यथा—स मह्यं शतं धारयति (वह मेरे पास सौ रुपये धारता है); "वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे" शकु० १.।

---

* कोशलाधिपतये पुरोधसं प्राहिणोत्; "भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः" र० ५. ३९; "रक्षस्तस्मै महोपलं प्रजिघाय" र० १५. २१; "राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूव सः" र० ११. ३७; "ते रामाय वधोपायमाचख्युर्विबुधद्विषः" र० १५. ५; "तस्मै शशंस प्रणिपत्य नन्दी" कु० ३. ६०; "वर्णाश्रमाणां गुरवे···प्रस्तुतमाचचक्षे" र० ५. १९; "उपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि" शकु० ४; "याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ" उत्तर० ४. ९; "यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विवव्रे" महावीर० २. ४२;—इत्यादिस्थलोंमेभी इसी सूत्रके अनुसार 'उद्दिश्य वा अभिप्रेत्य' अर्थमे सम्प्रदानत्व समझना।

६९९ । क्रोधार्थक, द्रोहार्थक, ईर्ष्यार्थक और असूयार्थक* धातुके प्रयोगमे, क्रोधादिका जो उद्देश्य, अर्थात् जिसके प्रति क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या-प्रभृति होता है, उसकी सम्प्रदान-संज्ञा होती है ; यथा—भृत्याय कुप्यति; शत्रवे द्रुह्यति ; प्रतिवेशिने ईर्ष्यति ; प्रतिद्वन्द्विने असूयति । †

६६० । 'प्रति'-पूर्वक 'श्रु' और 'आ'-पूर्वक—'श्रु' धातुके प्रयोगमे, जो याच्ञा करता है, अथवा जिसके पास अङ्गीकार किया जाता है, उसको सम्प्रदान-संज्ञा होती है; यथा—भिक्षुकाय वस्त्रं प्रतिश्रृणोति, आश्रृणोति वा (वस्त्रं याचमानाय भिक्षुकाय वस्त्रं दातुम् अङ्गीकरोतीत्यर्थः); "प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्" र० ११. ४. ।

अपादान ।

६६१ । अपाय अर्थात् विश्लेष (विभाग, वियुक्त होना, अलग होना, दूर जाना) समझानेसे, जो ध्रुव (निश्चल), अर्थात् जिससे विश्लेष अथवा दूरगमन सम्पन्न होता है,‡ उसे 'अपादान-कारक' कहते हैं,* यथा—भिन्नभाण्डात् पयः स्रवति ; विभीषणो लङ्कायाः रामान्तिकं ययौ ।

---

* द्रोह—अनिष्टचिन्ता ; ईर्ष्या—अक्षमा (किसीकी भलाई न सह सकना); असूया—गुणमे दोषारोप ।

† क्रुध् और द्रुह् धातु उपसर्गयुक्त होनेसे, सम्प्रदानकी कर्म-संज्ञा होती है ; यथा—भृत्यमभिक्रुध्यति ; शत्रुमभिद्रुह्यति ।

"मया पुनरेभ्य एवाभिद्रोग्धुमहेनायुधपरिग्रहः कृत." उत्तर० ६ ; 'नाभिद्रुह्यति भूतेभ्य." भागवतम् ।

‡ यतोऽपायः ।

६६२। भयार्थ और रक्षार्थ धातुके प्रयोगमे, भय-हेतुकी† अपादान-संज्ञा होती है। यथा—(भयार्थ) 'बिभेति दुर्जनात् साधुः'; पापात् त्रस्यति सज्जनः; "तीक्ष्णादुद्विजते श्रीः" मुद्रा० ३. ५; (ऐसे—"लोकापवादाद्भयम्" भर्त्तृ० २; "तृणबिन्दोः परिशङ्कितः" र० ८. ७९.)। (रक्षार्थ) भल्लूकात् रक्षति; आतपात् त्रायते।

६६३। उत्पत्तिका जो कारण,‡ वह अपादान-संज्ञक होता है; यथा—बीजादङ्कुरो जायते; मृदो घटो जायते; सुवर्णात् कुण्डलं जायते; दुग्धात् घृतमुत्पद्यते; पितुः पुत्रो जायते; धर्मात् सुखं भवति; अधर्मात् दुःखमुद्भवति। §

---

* ध्रुवमपायेऽपादानम्। † यतो भीः। यतस्त्राणम्। ‡ यतो भूः।

§ "जनिकर्त्तुः प्रकृतिः" [जनिरुत्पत्तिः, तस्याः कर्त्तुः (यः खलु उत्पद्यते, स एव उत्पत्तेः कर्त्ता, तस्य) उत्पद्यमानस्य पदार्थस्येत्यर्थः, प्रकृतिः उपादानम् अपादानसंज्ञिका भवति]—इत्यस्मिन् पाणिनिसूत्रे उपादानकारणवाचित्वेन प्रसिद्धस्य 'प्रकृति'-शब्दस्य उपादानात् उपादानकारणस्यैव अपादानत्वं व्यक्तं प्रतिपाद्यते। अत एव हि शारीरकमीमांसाभाष्यकारेण (१. ४. २३ सूत्रे) ब्रह्मण उपादानकारणत्वे सूत्रमिदं प्रमाणतया उपन्यस्तम्, यथा—"'यत' इतीयं पञ्चमी 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यत्र 'जनिकर्त्तुः प्रकृतिः' इति विशेषस्मरणात् प्रकृतिलक्षण एवापादाने द्रष्टव्या" इति।

काशिकावृत्तिकृता तु 'प्रकृतिः कारणं हेतुः' इत्येवं व्याचक्षाणेन कारणमात्रस्यैव अपादानत्वमभिप्रेयत इति प्रतिभाति। ततः सङ्क्षिप्तसारटीकायां गोयीचन्द्रेणापि—"अत्र 'प्रकृति'-ग्रहणं सर्वकारणोपसङ्ग्रहणार्थम्" इति स्फुटमुल्लिखितम्।

६६४। 'भू'-धातुके प्रयोगमे, आविर्भावभूमि अर्थात् आद्यप्रकाश-स्थानकी अपादान-संज्ञा होती है ; यथा—हिमवतो गङ्गा प्रभवति (तत्र प्रथमत उपलभ्यते, प्रकाशते इत्यर्थः); "वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः-खण्डमाखण्डलस्य" (आविर्भवतीत्यर्थः) मेघ० १६.।

६६५। विरामार्थक-धातुके प्रयोगमे, जिससे विराम होता है,* उसकी अपादान-संज्ञा होती है ; यथा—अध्ययनात् विरमति ; कष्टात् निवर्त्तते ; "वत्सैतस्माद् विरम" उत्तर० १ ; "प्राणाघातान्निवृत्तिः" भर्तृ० २.।

६६६। जुगुप्सार्थक धातुके प्रयोगमे, जिससे जुगुप्सा होती है,† उसकी अपादान-संज्ञा होती है ; यथा—पापात् जुगुप्सते ; नरकात् बीभत्सते।

६६७। प्रमादार्थक-धातुके प्रयोगमे, जिस विषयमे प्रमाद होता है, ‡ उसकी अपादान संज्ञा होती है ; यथा—पाठात् प्रमाद्यति ; अध्ययनात् अनवधानम् ; "स्वाधिकारात् प्रमत्तः" मेघ० १ ; धर्मात् मुह्यति।

६६८। 'अन्तर्धान' (पोशीदगी) समझानेसे, जिससे अपनेको छिपाना चाहता है, § उसकी अपादान-संज्ञा होती है ; यथा—गुरोः अन्तर्धत्ते, पितुः निलीयते, दस्योः लुकायते (गुरुः पिता दस्युर्वा मां मा द्राक्षीत् इति लज्जया भयेन वा तद्दर्शनपथात् अपसरतीत्यर्थः)।

* यतो विरामः।

† यतो जुगुप्सा। ("गर्हायाश्रितनिवृत्तिर्जुगुप्सा)।

‡ यत. प्रमादः। (विहितार्थात् निवृत्तिः प्रमादः)।

§ यतोऽन्तर्द्धिः।

६६९। वारणार्थक-धातुके प्रयोगमे, निवारणकर्त्ताका (जिसका निवारण किया जाता है, उसका) जो ईप्सित (अभिलषित) पदार्थ, अर्थात् जिससे निवारण किया जाता है,* उसकी अपादान-संज्ञा होती है ; यथा—यवेभ्यो गां वारयति; अन्नेभ्यः काकं निषेधति ; व्यसनात् पुत्रं निवारयति।

६७०। जिसके पास नियम-पूर्वक अध्ययन किया जाता है, जिसके पास सुना जाता है, और जिससे लिया अथवा पाया जाता है, उसकी अपादान-संज्ञा होती है ; यथा—गुरोः शास्त्रम् अधीते, पठति ; कस्मात् श्रुतं भवता ?—मया श्रुतमिदं तातात् ; प्रजाभ्यः करम् आदत्ते, गृह्णाति ; गुरोः ज्ञानं लभते, प्राप्नोति।

अधिकरण।

६७१। कर्त्ता और कर्म-द्वारा तन्निष्ठ क्रियाका जो आधार, अर्थात् क्रियाश्रयभूत कर्त्ता और कर्म जिसमे अवस्थान करते हैं, उसे 'अधिकरण-कारक' कहते हैं।

आधार चतुर्विध—(१) आश्लेष (अर्थात् एकदेश-सम्बन्ध),‡ (२) विषय, (३) व्याप्ति (सर्वत्र सम्बन्ध) और (४) सामीप्य-बोधक।§ यथा—(१) वने व्याघ्रः प्रतिवसति (वनैकदेशे इत्यर्थः) ; गृहे स्वपिति (गृहैकदेशे इत्यर्थः) ; 'गृहे चेन्मधु विन्देत, किमर्थं पर्वतं व्रजेत् ?' ; नद्यां स्नाति (नद्या एकदेशे इत्यर्थः)। (२) विद्यायाम्

---

* यतो वारणम्। † यत आदानम्।

‡ आश्लेषको 'अवच्छेद'-भी कहते हैं ; यथा—तं शिरसि अताडयत् ; स मां करे जग्राह।

§ सामीप्याश्लेषविषयैर्व्याप्त्याऽऽधारश्चतुर्विधः।

अनुरागः (विद्याविषये इत्यर्थः) ; भोगे अभिलाषः (भोगविषये इत्यर्थः) ; 'सदा धर्मे मतिं कुर्यात्' (धर्मविषये इत्यर्थः) । (३) तिलेषु तैलं विद्यते (तिलस्य सर्वान् अवयवान् व्याप्य इत्यर्थः) ; दुग्धे माधुर्यमस्ति (दुग्धस्य सर्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थः) ; वह्नौ दाहिका शक्तिरस्ति (वह्नेः सर्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थः) ; 'महतां चेतसि दया, तरौ रस इव स्थिता' । (४) गङ्गायां घोष * (गङ्गायाः समीपे इत्यर्थः) ; 'आश्रम. कपिलस्यासीद्गङ्गासागरसङ्गमे' (तत्समीपे इत्यर्थः) ।

कालकोभी अधिकरण-संज्ञा होती है ; यथा—"आषाढस्य प्रथमदिवसे" मेघ० २ ; "शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां, यौवने विषयैषिणाम् । वार्द्धके मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥" र० १.८ ; 'वर्षासु दर्दुरा एव स्वनन्ति, न तु कोकिला.' ।

६७२ । जिस स्थलमें जिस कारकका विधान हुआ है, वक्ताकी इच्छाके अनुसार उसका अन्यथाभाव लक्षित होता है;† यथा—गृहं गच्छति, गृहे गच्छति ; गृहं प्रविशति, गृहे प्रविशति ; पुष्पेभ्यः स्पृहयति, पुष्पाणि स्पृहयति ; पुष्पेभ्यः स्पृहा, पुष्पेषु स्पृहा ; "स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी" र० ३.५ ; "तपोवनेषु स्पृहयालुरेव" र० १४. ४१ ; अरये कुप्यति, अरौ कुप्यति ; गां दुग्धं दोग्धि, गोभ्यो दुग्धं दोग्धि इत्यादि ; शिष्याय विद्यां वितरति, शिष्ये विद्यां वितरति ; ("भगवान् मारीचस्ते दर्शनं वितरति" शकु० ७ ; "वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव, तथा जडे" उत्तर० २. ४.) ; हिमवतो गङ्गा प्रभवति, हिमवति गङ्गा

---

* "घोष आभीरपल्ली स्यात्" इत्यमरः ।

† विवक्षावशात् कारकाणि ।

प्रभवति; "न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः" मनु० २. २१३; "मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" हितो० १. १४. (Cf. To carry coals to Newcastle)।

६७३। एक पदमे अनेक कारक होनेका सन्देह होनेसे, 'अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण, कर्म, कर्त्ता'—इस क्रमके अनुसार परवर्त्ती कारक होता है;* यथा—दरिद्रोंको बुलाकर धन देता है—इस वाक्यमे 'दरिद्र' यह पद 'बुलाकर' क्रियाका कर्म, और 'देता है' इस क्रियाका सम्प्रदान; अब उसमे कर्मकी विभक्ति, अथवा सम्प्रदानकी विभक्ति होगी—ऐसा सन्देह उठता है; इसलिये उपरिलिखित क्रमके अनुसार सम्प्रदानके पश्चात् कर्म रहनेके कारण उसमे सम्प्रदान न होकर कर्मकारकको विभक्तिही होगी; यथा—दरिद्रम् आहूय धनं ददाति। गङ्गां गत्वा स्नाति (अधिकरण न होकर कर्म); गृहं प्रविश्य निःसरति (अपादान न होकर कर्म)।

विभक्ति-निर्णय (Case-endings)।

प्रथमा।

६७४। कर्त्तृकारकमे (अर्थात् उक्त-कर्त्तामे) प्रथमा-विभक्ति होती है;† यथा—'सृजति पाति हरते च परेशः'।

---

* अपादान-सम्प्रदान-करणाधार-कर्मणाम्।
कर्त्तुश्चान्योन्यसन्देहे परमेकं प्रवर्त्तते॥

† कर्त्तृवाच्यकी क्रियाके कर्त्ताको 'उक्त-कर्त्ता' कहते हैं। तिङ्, कृत्, तद्धित और समासमे जो वाच्य होता है (अर्थात् वे जिसको समझाते हैं),

६७५ । अभिधेयमात्रमे (अर्थात् जिस स्थलमे क्रियापद-प्रभृति नहीं रहने, केवल अभिधेय * समझानेके लिये शब्द-प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमे उस शब्दके उत्तर) प्रथमा होती है; यथा—वृक्षः, लता, पुष्पम्; 'नभः क्षितिर्वारि समीर-वह्नी' ।

६७६ । सम्बोधनमे (Vocative case or Case of Address) प्रथमा होती है ; यथा—जगदीश ! विभो ! भव-पालयितः ! ।

६७७ । 'इति'-†प्रभृति अव्यय-शब्दके योगसे प्रथमा होती है । यथा—दशरथ इति ‡ राजा बभूव ('दशरथ' इस नामसे);

उसकाभी 'उक्त-कारक' कहते हैं । समस्त उक्त-कारकमेही प्रथमा होती है । यथा—(तिङ्) स गच्छति (उक्त-कर्त्तरि प्रथमा); ग्रामो गम्यते (उक्त-कर्मणि प्रथमा) । (कृत्) स गतः ; ग्रामो गतः ; दृश्यते येन तत् दर्शनं चक्षु ; सम्प्रदीयते यस्मै स सम्प्रदानं विप्रः ; प्रभवति यस्मात् स प्रभवः जनकः ; आस्यते यस्मिन् तत् आसनम् । (तद्धित) सभाया साधुः सभ्यो नरः । (समास) कृता विद्या येन स कृतविद्यः पुरुषः ।

* जिस शब्दसे जो अर्थ समझा जाता है, वही उसका 'अभिधेय' ।

† इति=नामसे ; इसरूपसे ; इसलिये, बोलके । दरिद्र बोलके—दरिद्र इति ।

‡ दशरथो नाम ('नाम'-शब्द अव्यय), अथवा—नाम्ना दशरथः ('नामन्'-शब्दके उत्तर क्रियाविशेषणमे तृतीया)—ऐसाभी लिखा जाता है । 'नाम' और 'नामन्' शब्दके योगसे कारक-विभक्तिकी बाधा नहीं होती ; यथा—दशरथो नाम राजा आसीत्, दशरथं नाम राजानम् उवाच इत्यादि;

मानवाश्चन्द्रं सुधाकर इति वदन्ति; 'वलिर्दातेति विख्यातः'। अपराधिनो दण्डः साम्प्रतम् (उचित); पापात्मनां सङ्गः परित्यक्तुं साम्प्रतम् (पापियोंका सङ्ग छोड़ना चाहिये); "विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्" (विषवृक्षकोभी बढ़ाकर स्वयं छेदन करना उचित नहीं) कु० २. ५५.।

द्वितीया।

६७८। कर्मकारकमे (अर्थात् अनुक्त-कर्ममे) द्वितीया-विभक्ति होती है; यथा—'पुष्पं मा छिन्धि मा छिन्धि, फलं चेद्भोक्ष्यसे शिशो!'।

६७९। 'व्याप्ति'-अर्थमे* कालवाचक और अध्ववाचक (पथके परिमाणवाचक—क्रोशादि) शब्दके उत्तर द्वितीया होती है। यथा—(कालवाचक) मासं व्याकरणमधीते (मासं व्याप्य इत्यर्थः—महीनाभर); दिवसम् उपवसति (दिवसं व्याप्य इत्यर्थः—सारा दिन); क्षणमवतिष्ठस्व (Wait a moment); "न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः" दशकु०; 'वने न्यूषुः पाण्डवा द्वादशाब्दान्'। (अध्ववाचक) गिरिरयं क्रोशं स्थितः (क्रोशं व्याप्य इत्यर्थः—कोसभर); योजनं भृत्येन अनुगतः (योजनं व्याप्य इत्यर्थः); "सभा वैश्रवणी राजन्! शतयोजनमायता" महाभा०; 'बहून् क्रोशान् राजते विन्ध्यशैलः'।

नाम्ना दशरथो राजा आसीत्, नाम्ना दशरथं राजानम् उवाच इत्यादि।

* इसको 'अत्यन्तसंयोग'-भी कहते हैं।

६८० । समया, निकषा,* धिक्, प्रति, अनु, अन्तरा,† अन्तरेण, यावत् (अवधि, पर्यन्त, तक), अभितः,‡ परितः, सर्वतः, उभयतः शब्दके योगसे द्वितीया होती है। यथा—पर्वतं समया नदी वहति (पर्वतस्य समीपे इत्यर्थः); "समया सौधभित्तिम्" (सौधभित्तेः समीपे इत्यर्थः) दशकु०; "शिखरीन्द्रं समया" माघ० ६. ७३. । ग्रामं निकषा वनम् (ग्रामस्य समीपे इत्यर्थः); "लङ्कां निकषा" माघ० १. ६८; 'द्वारकां निकषा सिन्धुः'। मूर्खं धिक्; 'धिगस्तु कृपणं जनम्'। दीनं प्रति दया उचिता; 'भक्तिं विधेहि सततं मातरं पितरं प्रति'। रामम् अनु जातो लक्ष्मणः (रामस्य पश्चात् इत्यर्थः); 'मृतमनु धावति धर्माधर्मम्'। स त्वां मां च अन्तरा उपविष्टः (तव मम च मध्ये इत्यर्थः); 'हिमालयं विन्ध्यगिरिञ्चान्तरा पुण्यभूमयः'। धर्ममन्तरेण न वै सुखम्; 'न पूज्यते पौरुषमन्तरेण'। वनं यावत् अनुसरति (वनपर्य्यन्तम् इत्यर्थः); "स्तन्यत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व" उत्तर० ७; 'मृत्युं यावत् क्लेशमाप्नोति मूर्खः' (मृत्युम् अभिव्याप्य इत्यर्थः)। "परिजनो राजानम् अभितः स्थितः" मालविका० १; "त्रिपथगाम् अभितः" (त्रिपथगायाः अभिमुखम्—सम्मुखे, सामने—इत्यर्थः) भा० ६.१; 'दिनमणिमभितः कुतोऽन्धकारः ?'। 'पृथिवीं

* "समया-निकषा-शब्दौ सामीप्ये त्वव्यये मतौ" हलायुधः।

† "अन्तरा तु विनार्थे स्यान्मध्यार्थ-निकटार्थयोः" मेदिनी।

‡ "समीपोभयतः-शीघ्र-साकल्याभिमुखेऽभितः" अमरः।

परितः सिन्धुः' (पृथिव्याः चतुर्दिक्षु इत्यर्थः)। मही सर्वतः जीवाः वसन्ति (मह्याः समन्तात् इत्यर्थः); 'प्रदेशं सर्वतो निन्दा कृपणस्य प्रजायते'। पन्थानम् उभयतः महीरुहाः राजन्ते (पथः उभयोः पार्श्वयोः इत्यर्थः—मार्गकी दोनो तरफ़); 'नदीमुभयतः स्थानं जनेन तटमुच्यते'।

६८१। क्रियाके विशेषणमे द्वितीया होती है, और वह क्लीवलिङ्ग एकवचनान्त होता है;* यथा—स सुखं तिष्ठति; त्वं दुःखं स्थास्यसि; अधिकं ब्रूते; मृदु हसति; साधु भाषते; 'शब्दायते शून्यपात्रमधिकं, न तु पूरितम्'; रामः अत्यन्तं सुशीलः†।

तृतीया।

६८२। करणकारक और अनुक्त-कर्त्तामे तृतीया-विभक्ति होती है; यथा— (करणे)

"गावो घ्राणेन पश्यन्ति, वेदैः पश्यन्ति पण्डिताः।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥"

(अनुक्त-कर्त्तरि) 'प्रसार्य्यते केन करः कृशानौ ?'।‡

---

* स्तोक, कृच्छ्र, अल्प और कतिपय शब्दके उत्तर तृतीया और पञ्चमीभी होती है; यथा—स्तोकेन वा स्तोकात् (थोड़ा थोड़ा करके) शीतम् अनुभूयते।

† ऐसे स्थलमे 'भवति' वा 'स्यात्' क्रिया ऊह्य रहती है, इसलिये वह उस क्रियाका विशेषण होता है; यथा—अत्यन्तं यथा भवति वा यथा स्यात् तथा सुशीलः।

‡ यह कर्मवाच्यका प्रयोग है, इसलिये इसकी क्रिया कर्मकोही समझाती

६८३। सहार्थ-शब्दके योगसे तृतीया होती है; यथा—'सुजनैः सह संवसेत्'; 'केनापि सार्द्धं विरोधो न कर्त्तव्यः;' 'मूर्खेण सार्द्धं न विधेहि मैत्रीम्'; 'केनापि साकं कलहं न कुर्य्यात्'; 'सन्ध्याचारिणा समम्'।

'सह'-शब्दका प्रयाग न रहनेसे सहार्थमेभी तृतीया होती है; यथा—व्यञ्जनेन अन्नं भुङ्क्ते (व्यञ्जनेन सह इत्यर्थः); 'भूपो मन्त्रयतेऽमात्यैः' (अमात्यैः सह इत्यर्थः)।

६८४। हीनार्थ, निषेधार्थ और प्रयोजनार्थ शब्दके योगसे तृतीया होती है। यथा—(हीनार्थ) विद्यया हीनः; 'ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः'; 'एकेन ऊना गणिता दशग्रहाः'; अहङ्कारेण शून्यः। (निषेधार्थ) अलं विवादेन! (विवादं मा कुरु, विवादो निष्प्रयोजन इत्यर्थः); 'संसारयात्रानिर्वाहिणालं पापेन कर्मणा'; कलहेन किम्? (कलहो व्यर्थ इत्यर्थः), 'धनेन किं, यो न ददाति नाश्नुते?'; कृतं बहुजल्पनेन (बहुजल्पनं न कार्य्यम् इत्यर्थः)। (प्रयोजनार्थ) न मे धनेन प्रयोजनम्; कोऽर्थः* कलहेन?; "किं तया दृष्टया?" शकु० २; तृणेन

है, कर्ताको नहीं; सुतरां क्रिया-द्वारा कर्म उक्त, और कर्ता अनुक्त।

क्रीडार्थ 'दिव्'-धातुके करण कारकमे विकल्पसे द्वितीया होती है; यथा—पाशकेन पाशकं वा दीव्यति।

* 'अर्थिन्'-शब्दके योगसेभी तृतीया होती है; यथा—"तृणैरर्थिनः" दशकु०; "छाययाऽर्थी जनोऽयम्" वेणी० ६. २६; "को वधेन ममार्थी स्यात्?" महाभा०।

कार्य्यं भवतीश्वराणाम्" पञ्च० १. १; "अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः ?" मुद्रा० १.।

६८५। जो अङ्ग विकृत (Defective) होनेसे, अङ्गी अर्थात् शरीरका विकार (Defect) लक्षित होता है, उस विकृत अङ्गके वाचक शब्दके उत्तर तृतीया होती है; यथा—चक्षुषा काणः; श्रोत्रेण बधिरः; पादेन खञ्जः; 'पृष्ठेन कुब्जोऽयमधर्मकारी'।

६८६। जिस लक्षण अर्थात् चिह्न-द्वारा कोई व्यक्ति सूचित होता है, उस लक्षणके बोधक शब्दके उत्तर 'विशिष्ट'-अर्थमें तृतीया होती है;* यथा—जटाभिः तापसम् अपश्यम् (जटाभिः उपलक्षितम्—जटाविशिष्टम् इत्यर्थः); भूषाभिः शिशुम् अदर्शम्; छात्रेण उपाध्यायम् अद्राक्षम्; 'मयैको बालको दृष्टः सौन्दर्य्येण गुणेन च'; "जटाभिः स्निग्धताम्रासिराविरासीद् वृषध्वजः"; "त्रिवर्णराजिभिः कण्ठैरेते मञ्जुगिरः शुकाः"।

६८७। 'अपवर्ग' अर्थात् क्रियासमाप्ति और फलप्राप्ति समझानेसे, कालवाचक और अध्ववाचक शब्दके उत्तर तृतीया होती है। यथा—(कालवाचक) त्रिभिः अहोभिः कृतम्; 'त्रिभिर्वर्षैः शब्दशास्त्रं पपाठ'। (अध्ववाचक) क्रोशेन अधीतः

---

* इसको 'उपलक्षणे', 'विशेषणे' अथवा 'इत्थम्भूतलक्षणे'—तृतीया कहते हैं।

'अभेद'-अर्थमेभी तृतीया होती है; यथा—धान्येन धनवान् (धान्याभिन्नधनवान्—धान्यरूपधनवान् इत्यर्थः); ईश्वरेण बन्धुमान्।

ग्रन्थाध्यायः ।

मासं व्याकरणम् अधीतम्, न तु स्फुरति—यहां अध्ययनकी फलप्राप्ति न समझानेके कारण 'मास' शब्दके उत्तर तृतीया नहीं हुई। (६७९ सू०)।

६८८ । स्थलविशेषमे, क्रियाविशेषणके तुल्य व्यवहृत 'प्रकृति'-प्रभृति शब्दके उत्तर तृतीया होती है; यथा—प्रकृत्या दर्शनीयः; 'भूषाभिः किं सुन्दरो यः प्रकृत्या ?'; स्वभावेन सरलः; आकृत्या सुन्दरः; जात्या ब्राह्मणः; गोत्रेण शाण्डिल्यः; नाम्ना शिवः; वयसा अधिकः; प्रायेण दुःखिनः; वेगेन गच्छति; त्वरया धावति; यत्नेन लिखति; सुखेन स्वपिति; दुःखेन याति; क्लेशेन वदति; क्रमेणायाति; विधिना पूजयति।

६८९ । निम्नलिखित स्थलोंमेभी तृतीया विभक्ति होती है; यथा—

(क) जिस मूल्यसे कोई वस्तु क्रय की जाती है; यथा—कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकम् ? (कितने मूल्यमे पुस्तक मोल ली है ?)—रूप्य-कत्रयेण ।

(ख) गत्यर्थक-धातुके योगसे, वाहन (सवारी)-वाचक शब्दके उत्तर; यथा—धूमशकटेन पुरुषोत्तमपुरीं प्रयाति; विष्णुपदं विमानेन विगाहते ।

(ग) 'वह्'-धातुके योगसे, जिसमे धरकर वहन किया जाता है; यथा—"स श्रान्तं स्कन्धेन उवाह" हितो० ४. । "भर्तुरार्ज्ञां मूर्ध्ना आदाय" (कु० ३. २२.)—ऐसे स्थानोमेभी तृतीया होती है ।

(घ) 'शपथ'-वाचक शब्दके योगसे, जिसके नामसे शपथ किया जाता है; यथा—जीवितेनैव शपामि ते ।

(ङ) जिस दिशा वा मार्गमे जाया जाता है; यथा—"कतमेन दिग्विभागेन गतः स जाल्मः?" विक्रमो० १.।

चतुर्थी।

६९०। सम्प्रदानकारकमे चतुर्थी-विभक्ति होती है; यथा-'दीनेभ्यो दीयतामन्नं, यदि धर्ममभीप्ससि'।

६९१। 'तादर्थ्य' (निमित्तार्थ*) समझानेसे—अर्थात् जिसके निमित्त कोई वस्तु वा क्रिया अभिप्रेत होती है, उसके उत्तर—चतुर्थी होती है; यथा—यूपाय दारु (यूपनिमित्तम् इत्यर्थः); कुण्डलाय हिरण्यम्; अश्वाय घासः (अश्वनिमित्तम् इत्यर्थः); रन्धनाय स्थाली (रन्धननिमित्तम् इत्यर्थः); स्नानाय नदीं याति (स्नाननिमित्तम् इत्यर्थः); पाकाय अग्निम् आहरति; 'खलस्य विद्या चातुर्य्यं नोपकाराय कस्यचित्';

"विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य, साधोर्विपरीतमेतज्-, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥"

६९२। 'निवृत्ति' समझानेसे, निवर्त्तनीय अर्थात् जिसकी निवृत्ति की जाय, उसके उत्तर चतुर्थी होती है; यथा—मशकाय धूमः (मशकनिवृत्तये इत्यर्थः); आतपाय छत्रम् (आतपनिवृत्तये इत्यर्थः); पिपासायै जलम् (पिपासानिवृत्तये इत्यर्थः); तापाय स्नानम् (तापनिवृत्तये इत्यर्थः); 'रोगायौषधमाहरेत्' (रोगनिवृत्तये इत्यर्थः); पापाय प्राय-

---

* अतीत कारणको 'हेतु', और भावि कारणको 'निमित्त' कहते हैं।

श्चित्तम् आचरेत् (पापनिवृत्तये इत्यर्थः) ।

६९३ । 'तुम्'-प्रत्ययान्त असमापिका क्रिया ऊह्य (Understood) रखनेसे, उसके कर्मकारकमे चतुर्थी होती है; यथा—काष्ठाय याति (काष्ठम् आहर्त्तुम् इत्यर्थः); वनाय सज्जो भवति (वनं गन्तुम् इत्यर्थः) । (६५५ सूत्र द्रष्टव्य) ।

६९४ । क्लृप्यर्थ धातु (क्लृप् धातु और तदर्थक 'सम्'-पूर्वक पद्, भू, जन्-प्रभृति धातु)-के प्रयोगमे, सम्पद्यमान अर्थात् जो फल उत्पन्न होता है, उसके उत्तर चतुर्थी होती है; यथा—भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते (ज्ञानरूपेण परिणमति इत्यर्थः); ज्ञानं सुखाय सम्पद्यते; धर्मः स्वर्गाय भवति; बन्धाय जायते रागः ।

६९५ । नमस्,* स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, वषट् और हित शब्दके योगसे चतुर्थी होती है; यथा—गुरवे नमः; 'नमः

* 'नमस्'-शब्द 'कृ'-धातुके साथ युक्त होनेमे, उसके योगमे द्वितीया और चतुर्थी—दोनो होती हैं; यथा—मुनित्रयं नमस्कृत्य; नमस्कुर्मो नृसिंहाय ।

प्र+नि+पत्, प्र+नम् प्रभृति प्रणामार्थक धातुके योगसे द्वितीया और चतुर्थी—दोनो होती हैं। यथा—"धातारं प्रणिपत्य" कु० २. ३; "तस्मै प्रणिपत्य नन्दी" कु० ३. ६०. । "तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम" काद०; "तां कुलदेवताभ्यः प्रणमय्य" कु० ७. २७; "प्रणम्य त्रिलोचनाय" काद० ।

"मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय चकार" कु० ३. ६२; "तस्मै दण्डप्रणामम् अकरवम्" दशकु०—यहाँ केवल चतुर्थी ।

श्रीपरमेशाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे'; स्वस्ति भवते; 'स्वस्ति प्रजाभ्यो विदधाति राजा'; अग्नये स्वाहा; पितृभ्यः स्वधा (दान); इन्द्राय वषट्; सर्वस्मै हितम् ।

(क) समर्थार्थक-शब्दके योगसे चतुर्थी होती है; यथा—भोजनाय समर्थः; 'सदा शठः शठायालम्' (शठः शठेन सार्द्धं प्रतिद्वन्द्वितां कर्त्तुं समर्थ इत्यर्थः); चैत्राय शक्तो मैत्रः ।

समर्थार्थक-क्रियाके योगसेभी चतुर्थी होती है; यथा—'मल्लो मल्लाय शक्ष्यति'; "नमस्तत् कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति" शान्तिशतकम् ।

६९६ । 'अवज्ञा' समझानेसे, दिवादिगणीय मन्-धातुके अवज्ञा-सूचक कर्ममे (गौणकर्ममे) विकल्पसे चतुर्थी होती है; यथा—अहं त्वां तृणाय (तृणं वा) मन्ये (मै तुझे तृण ज्ञान करता हूँ); तृणाय मन्यते भोगान् (पक्षे—तृणम्); 'तृणाय विश्वं कुपितो न मन्यते'; नाहं त्वां कुक्कुराय मन्ये ।

काकादि* कर्म होनेसे नहीं होती; यथा—काकं मन्यते याचकन्; त्वामहं श्रृगालं मन्ये ।

६९७ । 'चेष्टा' (Physical motion) समझानेसे, गमनार्थक-धातुके कर्ममे विकल्पसे चतुर्थी होती है; यथा—ग्रामाय गच्छति; व्रजाय व्रजति । पक्षे—द्वितीया । चेष्टा (यथार्थ गमन) न समझानेसे नहीं होती; यथा—मनसा मथुरां गच्छति । 'पथ'-वाचक शब्द कर्म होनेसे नहीं होती; यथा—पन्थानं याति; अध्वानं गच्छति ।

---

* काक, शुक, श्रृगाल प्रभृति ।

पञ्चमी।

६९८। अपादानकारकमे पञ्चमी-विभक्ति होती है; यथा—'पापी स्वर्गात् पतत्यधः'।

६९९। जिससे उत्कर्ष वा अपकर्ष (आधिक्य वा न्यूनता) निर्द्धारित होता है, उसके उत्तर 'अपेक्षा'-अर्थमे पञ्चमी होती है। यथा—धनात् विद्या गरीयसी (धनापेक्षया इत्यर्थः—धनकी अपेक्षा); 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'; "सत्यादप्यनृतं श्रेयः" वेणी० ३. ४८; भीमो दुःशासनात् बलीयान्; 'दारिद्र्यान्मरणं वरम्'; "मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः" र० १४. ५६; "चैत्ररथादनूने वृन्दावने" र० ६. ५०; "अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते" हितो० ४; "श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते" मनु० ३. २७८.। वैश्याः क्षत्रियेभ्यः हीनबलाः; "कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः" मेघ० १००.।

७००। 'ल्यप्'-प्रत्ययान्त असमापिका क्रिया ऊह्य रहनेसे (अर्थात् उसका प्रयोग न रहनेसे), उसके कर्म और अधिकरण कारकमे पञ्चमी होती है;* यथा—प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादम् आरुह्य इत्यर्थः); श्वशुरात् जिह्रेति (श्वशुरं वीक्ष्य इत्यर्थः); आसनात् अवलोकयति (आसने उपविश्य इत्यर्थः); 'रथादयं पश्यति वीरसिंहः' (रथे उपविश्य इत्यर्थः)।

७०१। अन्यार्थ-शब्दके योगसे, पञ्चमी होती है; यथा—

* इसको 'ल्यब्लोपे पञ्चमी' कहते हैं।

'धर्मादन्यः कोऽस्ति दुःखापहारी ?' ; तस्मात् इदं भिन्नम् ; घटः पटात् इतरः ; "अन्यतिरिक्तेयम् अस्मच्छरीरात्" काद० ; "आत्मा देहाद्विलक्षणः" अपरोक्षानुभूतिः ३८.।

अन्यार्थ-बोधक, क्रियाके योगसेभी पञ्चमी होती है ; यथा—स्वर्णं रजतात् भिद्यते ।

(क) आरभ्यार्थ*-शब्दके योगसे पञ्चमी होती है ; यथा—"मालत्याः प्रथमावलोकदिवसादारभ्य" मालती० ६. ३ ; "दिग्विजयात् आरभ्य सर्वम् आचचक्षे" काद० ; जन्मनः प्रभृति सेव्यतां हरिः ; "अत्रभवति सर्वैव आत्मसम्पत् अभिजनात् प्रभृति अन्यूनैव लक्ष्यते" दशकु० ।

(ख) 'आरात्'† और 'बहिः'‡ शब्दके योगसे पञ्चमी होती है ; यथा—ग्रामात् आरात् वनम् (ग्रामस्य समीपे, दूरे वा इत्यर्थः) ; 'शिक्षेत शिक्षकादाराद्बाल्यात् प्रभृति सन्नयम्' (शिक्षकस्य अन्तिके इत्यर्थः) ; 'पुराद्बहिर्दुष्टजनान् विवासयेत्'।

(ग) दिग्वाचक, देशवाचक और कालवाचक शब्दके योगसे पञ्चमी होती है । यथा—(दिग्वाचक) ग्रामात् पूर्वः पर्वतः ; गृहात् उत्तरं सरः । (देशवाचक) वसति चैत्रो मैत्रात्

---

* 'आरभ्य' और 'प्रभृति' शब्द अव्यय । 'आरभ्य'-शब्द असमापिका क्रिया होनेसे उसके कर्ममे द्वितीया होती है ।

† "आराद्दूर-समीपयोः" इत्यमरः ।

‡ क्रमदीश्वरने 'बहिः'-शब्दके योगसे पञ्चमी और षष्ठी—इन दोनो विभक्तियोंकाही विधान किया है ; यथा—"बहिर्युक्तात् षष्ठी-पञ्चम्यौ" इति ।

पूर्वदेशे। (कालवाचक) माघात् पूर्वः पौषः ; माघात् उत्तरः (परो वा) फाल्गुनः ; "बाल्यात् परं साऽथ वयः प्रपेदे" कु० १. ३१ ; भोजनात् प्राक् ; शयनात् पूर्वम् ; "अस्मात् परम्" शकु० ६. २५ ; उत्थानात् परतः ; प्रस्थानात् अनन्तरम् ; "ऊर्द्ध म्रिये मुहूर्त्ताद्धि" भ० १८. ३६ ।*

(घ) 'आ' और 'आहि'-प्रत्ययान्त शब्दके योगसे, पञ्चमी होती है ; यथा—उद्यानात् उत्तरा गृहम्, गृहात् उत्तराहि सरः (उत्तरस्यां दिशि इत्यर्थः) ; हिमालयात् दक्षिणा भारतवर्षम्, प्रयागात् दक्षिणाहि विन्ध्यः (दक्षिणस्यां दिशि इत्यर्थः) ।

७०२ । 'ऋते'-शब्दके योगसे पञ्चमी और द्वितीया होती हैं । यथा—"विविक्तात् ऋते अन्यत् शरणं नास्ति" विक्रमो० ७ ; 'उपदेशादृते विद्या न कदाऽपि समुद्भवेत्' । 'ऋते सुपुर्ति विश्रामं लभते न मनः क्वचित्' ।

७०३ । 'पृथक्' (Without) और 'विना' शब्दके योगसे पञ्चमी, द्वितीया और तृतीया होती हैं । यथा—विद्यायाः पृथक् (विद्यां, विद्यया वा पृथक्) सुखं न स्यात् (विद्याव्यतिरेकेण सुखं न भवति—विद्यामात्रसाध्यं सुखम् इतिभावः) । 'श्रमाद् विना को लभते निजेष्टम् ?' ; 'स्वाधीनतां विना किञ्चिदन्यत् सुखकरं न हि' ; 'सहायेन विना नैव कार्य्यं किमपि सिध्यति' ।

---

* कहीं कहीं 'परम्' अनन्तरम्' इत्यादि शब्द लुप्त रहता है ; यथा—"बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदम्" (बहोः कालात् परं दृष्टम् इत्यर्थः—Seen after a long time) उत्तर० २. २७ ।

७०४ । 'अभिविधि' (व्याप्ति The limit inceptive, from, ever since) और 'मर्यादा'* (सीमा The limit exclusive or conclusive, till, until, up to, as far as) अर्थमे, 'आ' (आङ्)—इस अव्ययशब्दके योगसे पञ्चमी होती है । यथा—(अभिविधि) "आ मूलात् श्रोतुमिच्छामि" शकु० १. (मूलात् आरभ्य इत्यर्थः—आदिसे From the beginning); "आ जन्मनः" शकु० ५. २५. (जन्मनः आरभ्य इत्यर्थः—जन्मसे लेकर Ever since (her) birth) ; 'आ बाल्याद्धार्मिको भवेत्'; "आ मनोः" र० १. १७. (मनुम् आरभ्य इत्यर्थः) । (मर्यादा) "आ परितोषाद्विदुषाम्" शकु० १. २. (परितोषं मर्यादीकृत्य ; यावत् परितोषो भवति इत्यर्थः—Till the learned are satisfied) ; "आ कैलासात्" मेघ० ११. (कैलासपर्य्यन्तम् इत्यर्थः—Up to or as far as Kailâsa) ;

"दद्यान्नावसरं कञ्चित् कामादीनां मनागपि ।
आ सुप्तेरा मृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया ॥"

"आ विन्ध्यादा हिमाद्रेर्विरचितविजयः" (विन्ध्यात् आरभ्य हिमाद्रिपर्य्यन्तम् इत्यर्थः) ।

७०५ । 'हेतु' समझानेसे, हेतु-बोधक शब्दके उत्तर पञ्चमी और तृतीया होती हैं ; यथा—अज्ञानात् अज्ञानेन वा बन्धः ; ज्ञानात् ज्ञानेन वा मुक्तिः ; अधर्माल्लभते दुःखं, धर्मेण सुखमश्नुते ।

---

* तेन विना मर्य्यादा, तत्सहितोऽभिविधिः ।

"सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्य्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥" हितो० ।

षष्ठी ।

७०६ । जिसके साथ किसीका किसीप्रकार सम्बन्ध प्रतीत होता है, उसमे षष्ठी-विभक्ति होती है;* यथा—राज्ञो धनम् (स्व-स्वामि-भाव-सम्बन्ध); मम हस्तः (अवयवावयवि-भाव-सम्बन्ध); तस्य पुत्रः (जन्य-जनक-भाव-सम्बन्ध); पृथिव्याः गन्धः (गुण-गुणि-भाव-सम्बन्ध); श्रुतेः अर्थः (वाच्य-वाचक-भाव-सम्बन्ध); नद्याः उदकम् (आधारा-धेय-भाव-सम्बन्ध); 'मूर्खाणां बहवो दोषाः, विदुषां बहवो गुणाः' (विषय-विषयि-भाव-सम्बन्ध)।

७०७ । 'कृत्'-प्रत्ययके प्रयोगमे, अनुक्त कर्त्ता और कर्ममें† षष्ठी होती है । यथा—(कर्त्तामे) मम भोजनम् (मेरा भोजन अर्थात् मत्कर्त्तृक भोजन); शिशोः शयनम्; अश्वस्य गतिः; तव पिपासा; तस्य बुभुक्षा; विशाखदत्तस्य कृतिः (Work); "शृणुत जना अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य" विक्रमो० १·२; 'नास्तिकस्य कुतो भक्तिर्नृशंसस्य कुतो दया ?'; "भर्तुः

* 'सम्बन्धे षष्ठी' को 'शेषे षष्ठी' भी कहते हैं । अर्थात् जहाँ अन्य कोई विभक्ति होनेका सूत्र नहीं है, वहाँ षष्ठीही होगी ; यथा—रजकस्य वस्त्रं ददाति ; सर्वे वेदाः ते प्रतिभास्यन्ति इत्यादि ।

† अर्थात् भाववाच्यविहित-'कृत्'-प्रत्ययान्त पदके (कृदन्त विशेष्य-पदके) कर्त्तामे और कर्ममे ।

प्रणाशात्" र० १४. १; सूदस्य पाकः। (कर्ममे) पयसः पानम् (दुग्ध वा जल पान करना); अन्नस्य भोजनम्; सुखस्य भोगः; "शास्त्राणां परिचयः" काद०; धनस्य दाता; धर्मस्य प्रणेता; भूभृतां भेत्ता; "आहर्त्ता क्रतूनाम्" काद०; वृत्तस्य च्छेदकः; 'गुरुः शिष्यस्योपकर्त्ता, सत्पथस्य च दर्शकः'; 'आवृत्तिः सर्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी'।

७०८। कर्त्ता और कर्म दोनोमे षष्ठीप्राप्तिकी सम्भावना रहनेसे, केवल कर्ममे षष्ठी होती है; यथा—गोपेन गवां दोहः; शिशुना पयसः पानम्; नृपेण धनस्य दानम्; सूर्येण जलस्य शोषणम्; चौरेण अर्थस्य हरणम्; छात्रेण ग्रन्थस्य पाठः।

(क) स्त्रीलिङ्ग-विहित 'क्तिन्'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्तामे विकल्पसे षष्ठी होती है; यथा—कुलालस्य कुलालेन वा घटस्य कृतिः।

(ख) स्त्रीलिङ्ग-विहित 'अ'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्ता और कर्म उभयत्र षष्ठी होती है; यथा—छात्रस्य शास्त्रस्य पिपठिषा; राज्ञः ग्रामस्य जिगमिषा; तन्तुवायस्य वस्त्रस्य चिकीर्षा; मम चन्द्रस्य दिदृक्षा; गुरोः शिष्यस्य प्रशंसा।

७०९। 'कृत्य'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्तामे विकल्पसे षष्ठी होती है; पक्षे तृतीया; यथा—मम (मया वा) कर्त्तव्यम्; तव (त्वया वा) गुरुरर्चनीयः; तस्य (तेन वा) पुस्तकं पाठ्यम्; 'न श्राव्यं सत्सुतानान्तु रोदनं मातृतातयोः'; "नास्ति असाध्यं नाम मनोभुवः" काद०; "न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानाम्" काद०; "न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः" भा० १.४; "राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्यं मया लभ्यमिदं वनम्" भ० ८. १२९.।

७१० । भाववाच्यविहित 'क्त'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्तामे विकल्पसे षष्ठी होती है ; यथा—मम (मया वा) आगतम् ; मम शयितम् ; मम जागरितम् ।

७११ । वर्त्तमानकालमे विहित 'क्त'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्तामे नित्य षष्ठी होती है ; यथा—राज्ञां मतः (राजभिर्मन्यते इत्यर्थः) ; सतां पूजितः (सद्भिः पूज्यते इत्यर्थः) ; "अहमेव मतो महीपतेः" (महीपतिना मन्यमान इत्यर्थः) र० ८.८ ; "विदितं तप्यमानञ्च तेन मे भुवनत्रयम्" (मया ज्ञायते इत्यर्थः) र० १०.३९. ।

७१२ । शतृ, शानच् , क्वसु, कानच् , स्यतृ और स्यमान प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती । यथा—(शतृ) गृहं गच्छन् ; जलं पिबन् ।* (शानच्) अन्नं भुञ्जानः ; व्याकरणमधीयानः । (क्वसु) ओदनं पेचिवान् ; ग्रामं जग्मिवान् । (कानच्) गुरुं ववन्दानः ; शास्त्रं शिशिक्षाणः । (स्यतृ) गृहं गमिष्यन् ; वेदं पठिष्यन् । (स्यमान) गुरुं सेविष्यमाणः ; धनं दास्यमानः ।

(क) तुमुन्, क्त्वा, ल्यप् और णमुल् प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती । यथा—(तुमुन्) गृहं गन्तुम् ; चन्द्रं द्रष्टुम् । (क्त्वा) जलं पीत्वा ; फलं गृहीत्वा । (ल्यप्) गृहम् आगत्य ; व्याकरणम् अधीत्य । (णमुल्) कृष्णं स्मारं स्मारम् ; शास्त्रं श्रावं श्रावम् ।

(ख) उकारान्त 'कृत्'-प्रत्ययके प्रयोगमे षष्ठी नहीं होती ; यथा—जलं पिपासुः ; रिपून् जिष्णुः ; शिलां क्षिप्नुः ; विपक्षं निराकरिष्णुः ; फलं

---

* 'द्विष्'-धातुके 'शतृ'के योगमे विकल्पसे ; यथा—मुरं द्विषन्, मुरस्य द्विषन् ।

गृहयालुः ।

(ग) 'उक' और शीलार्थ 'तृन्' प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती । यथा—(उक) गृहं गामुकः ; जलं वर्षुकः ; शत्रुं घातुकः* । (तृन्) परापवादं वक्ता खलः ; "पितरम् आराधयिता भव" विक्रमो० ९ ; "सम्भावयिता बुधान्, न्यग्भावयिता शत्रून्" दशकु० ।

(घ) भविष्यत्-कालमे विहित 'णक' और 'णिन्' प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती ; यथा—(णक) भक्तं भोजको व्रजति ; (णिन्) गृहं गामी ।

(ङ) खलर्थ-प्रत्ययके प्रयोगमे,† षष्ठी नहीं होती । यथा—नैतत् सुकरं भवता ; नैतत् दुष्करं तेन ; सर्वम् ईषत्करं सुधिया । मया दुर्मर्षणः शत्रुः ; त्वया दुःशासनो रिपुः ।

(च) 'निष्ठा'-प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती । यथा—(क्त) तेन व्याकरणम् अधीतम् ; मया जलं पीतम् ; त्वया चन्द्रो दृष्टः । (क्तवतु) स गृहं गतवान् ; त्वं चन्द्रं दृष्टवान् ; अहं वेदम् अधीतवान् ।

७१३ । स्मरणार्थ धातु (स्मृ, अधि+इ—इक्), दय् धातु और ईश् धातुके कर्ममे विकल्पसे षष्ठी होती है । यथा—(स्मृ) माता पुत्रस्य स्मरति ; "स्मर्त्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः" भा० ९. २८ ; "कच्चिद्भर्त्तुः स्मरसि रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ?" मेघ० ८९ ; (अधि

---

* 'कामुक'-शब्दके प्रयोगमे होती है ; यथा—विद्यायाः कामुकः ।

† सु, दुर् और ईषत् शब्दके योगसे धातुके उत्तर जो 'अ' और 'अन' प्रत्यय होते हैं, उनको 'खलर्थ-प्रत्यय' कहते हैं ।

+ ६) "अध्येति तव लक्ष्मणः" भ० ८. ११९. (त्वां स्मरति इत्यर्थः)।* (दय्) दाता दरिद्रस्य दयते । (ईश्) पिता पुत्रस्य ईष्टे (यथेष्टं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः—यथेच्छ नियोग करता है) ।† पक्षे—द्वितीया ।

७१४ । 'हिंसा'-अर्थ समझानेसे, जासि, पिष्, और 'नि' तथा 'प्र'-पूर्वक हन्-धातुके कर्ममें विकल्पसे षष्ठी होती है । यथा—(उत्+जासि) चौरस्य उज्जासयति (चौरं हिनस्ति इत्यर्थः); "निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम्" माघ० १. ३७. । (पिष्) शत्रोः पिनष्टि; "प्रवृत्त

* षष्ठी-पक्ष— उत्कण्ठापूर्वकस्मरणम् (Remembering with regret, to think of) एव अर्थः प्रतीयते । साधारण अर्थमें प्रायः द्वितीयाही होती है; यथा—"स्मरसि तान्यहानि, स्मरसि गोदावरीं वा !" उत्तर० १. २६. ।

† अपि च—"श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणाम् अनीशोऽस्मि संवृत्तः" शकु० २. ।

'प्र'-पूर्वक भू-धातुके योगसेभी षष्ठी होती है; यथा—"ननु प्रभवत्यार्य्यः शिष्यजनस्य" (Why, your honour has mastery over your pupil—क्यों, शिष्यके उपर आपका प्रभुत्व है) मालविका०१; "हा धिक्, हा धिक् । एकाकिनीं प्रसुप्तां माम् उज्झित्वा कुत्र गतो नाथः ? भवतु तस्मै कोपिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि ।" उत्तर० १. । ('प्र'-पूर्वक भू-धातुके योगसे सप्तमीभी होती है; यथा—"तत्र प्रभवति अनुशासने देवी" वेणी० २. । 'सामर्थ्य' (सकना) अर्थमें प्र+भू धातु तुमन्त क्रियाके साथ प्रयुक्त होता है; यथा—"कोऽन्यो हुतवहात् दग्धुं प्रभविष्यति ?" शकु० ४.) ।

एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि" माघ० १.४०.। 'नि' और 'प्र' व्यस्त (पृथक्), समस्त (एकत्र) और विपर्य्यस्त (विपरीत)-रूपसे विन्यस्त होनेपरभी होती है; यथा—निहन्ति प्रहन्ति निप्रहन्ति प्रणिहन्ति वा चौरस्य; "निष्प्रहन्तुममरेशविद्विषाम्" माघ० १४. ८२.। पक्षे—द्वितीया।

७१५। तृप्त्यर्थ धातुके करणकारकमे विकल्पसे षष्ठी होती है; यथा—अन्नस्य (अन्नेन वा) तृप्तः; "अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा" नै० ३. ९३;

"नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां, नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां, न पुंसां वामलोचना॥" पञ्च०१.१४८.।

७१६। 'कृत्वसुच्' और 'सुच्' प्रत्ययके प्रयोगमे, कालवाचक शब्दके अधिकरणमे विकल्पसे षष्ठी होती है। यथा—(कृत्वसुच्) पञ्चकृत्वो दिवसस्य ईश्वरम् उपास्ते (दिनमे पांच वार ईश्वरकी उपासना करता है); सप्तकृत्वो दिनस्यागच्छति; "शतकृत्वस्तवैकस्याः स्मरत्यह्नो रघूत्तमः" भ० ८. १२२.। (सुच्) द्विरह्नो भुङ्क्ते; त्रिर्वासरस्य स्वपिति। पक्षे—सप्तमी; यथा—द्विरह्नि भुङ्क्ते इत्यादि।

७१७। अस्तात्, असि, आति और अतसु प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी होती है। यथा—(अस्तात्) पुरस्तात् उद्यानस्य; उपरिष्टात् मञ्चस्य*। (असि) पुरो नगरस्य; अधो वृक्षस्य†। (आति) उत्तरात् समुद्रस्य;

* 'उपरि'-शब्दके योगसेभी षष्ठी होती है; यथा—हर्म्यस्योपरि राष्ट्रपताका।

† शिष्टप्रयोगमे 'अधस्'-शब्दके योगसे पञ्चमीभी होती है; यथा—"कफोणिः कूर्परादधः" अमरः।

दक्षिणात् हिमालयस्य। (अतस्) उत्तरतो गृहस्य; दक्षिणतो ग्रामस्य।

७१८। 'एनप्'-प्रत्ययान्त शब्दके योगसे षष्ठी और द्वितीया होती हैं; यथा—दक्षिणेन पुष्पवाटिकायाः सरः, (अथवा) दक्षिणेन पुष्पवाटिकां सरः; "तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयम्" मेघ० ७९.।

७१९। तुल्यार्थ-शब्दके योगसे, षष्ठी और तृतीया होती हैं। यथा—मम तुल्यः, मया तुल्यः; "पितुरेव तुल्यः" र० १८ ३८; 'नान्यो गुणः स्याद्विनयेन तुल्यः'। तव समः, त्वया समः; "गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः"। तस्य सदृशः, तेन सदृशः; 'युधिष्ठिरस्य सदृशो न जातः सत्यभाषणः'; "श्रुतस्य किं तत् सदृशं* कुलस्य?" र० १४. ६१.। †

* यहाँ 'सदृश'-शब्दका अर्थ—योग्य, अनुरूप। इस अर्थमे प्राय षष्ठीही होती है। ऐसे—"सखे पुण्डरीक! नैतत् अनुरूपं भवत." काद०।

† "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्" [अतुलोपमाभ्यां तुला च उपमा च इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां विना, एतौ शब्दौ वर्जयित्वा इत्यर्थ, तुल्यार्थै. तुल्यशब्दस्य अर्थ इव अर्थो येषा तैस्तथाविधै. शब्दैर्योगे अन्यतरस्यां विकल्पेन इत्यर्थ., तृतीया भवति]—इत्यस्मिन् सूत्रे पाणिनिना तुलोपमाशब्दयोर्योगे तृतीया प्रतिषिध्यते। किन्तु नैतत् महाकविप्रयोगसंवादि, तत्र भूयसा व्यभिचारदर्शनात्; यथा—"तुला यदारोहति दन्तवाससा" कु० ५. ३४; "नभसा तुला समारुरोह" र० ८. १५; "स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना" माघ० १. ४; "तन्वन्तः कनकावलीभिरुपमां सौदामनीदामभि." माघ० १७. ६९. इति।

मल्लिनाथस्तु तत्र तत्र—'सदृशार्थवाचिनोरेव तुलोपमाशब्दयोर्योगे

न दैवतं ह्यस्ति गुरोः समानम्; "धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः"।

७२० । 'आशीर्वाद' समझानेसे, आयुष्य, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित शब्द, और एतदर्थक शब्दके योगसे षष्ठी और चतुर्थी होती हैं; यथा—पुत्रस्य पुत्राय वा आयुष्यम् (आयुरित्यर्थः), चिरजीवनम्, भद्रम्, शुभम्, क्षेमम्, कुशलम्, मङ्गलम्, सुखम्, शर्म, अर्थः, फलम्, हितम्, पथ्यं वा भूयात्, अस्तु, जायताम्, सम्पद्यतां वा ।

७२१ । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दके योगसे, षष्ठी और पञ्चमी होती हैं। यथा—ग्रामस्य दूरम्; ग्रामात् दूरम् । नगरस्य अन्तिकम्; नगरात् अन्तिकम् ।*

७२२ । 'हेतु'-शब्दका प्रयोग रहनेसे, निमित्तबोधक शब्दके उत्तर षष्ठी होती है; यथा—अन्नस्य हेतोः वसति (अन्नके लिये); 'पुत्रस्य

तृतीयाप्रतिषेधः, न तु सादृश्यार्थवाचिनोरपि' इत्येवं पाणिनिसूत्रविरोधं परिहर्त्तुम् ऐहिष्ट । तत्स्वारस्यं सुधीभिर्विचारणीयम् ।

तुल्यार्थक धातुके योगसे तृतीया होती है; यथा—"अस्य मुखं सीताया मुखचन्द्रेण संवदति" उत्तर० ४. । निभ, सङ्काश, नीकाश, प्रतीकाश प्रभृति शब्द समासमे उत्तरपद होनेसेही तुल्यार्थ होते हैं; अत एव उनके योगसे तृतीया वा षष्ठी नहीं होती; देवनिभः—देव इव निभः (उपमान कर्मधारय); देवोपमः—देवः उपमा यस्य सः (बहुव्रीहि) ।

* साधारणतः षष्ठीकाही प्रयोग होता है; यथा—"तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे" काद०; "अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः" शकु० ५. १७; "प्रयामि तस्याः सकाशम्" काद०; "न त्यजन्ति ममान्तिकम्" हितो० १. ४७. ।

हेतोर्जननी सहते क्लेशमुरुस्तम्' ; "अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचार-मूढः प्रतिभासि मे त्वम्" र० २. ४७. ।

(क) 'हेतु'-शब्दका प्रयोग रहनेसे, निमित्तबोधक सर्वनाम शब्दके उत्तर षष्ठी और तृतीया होती हैं ; यथा—कस्य हेतोः स आगतः ?; केन हेतुना स आगतः ? ।*

७२३ । शिष्टप्रयोगमें धातुओंके कर्मादि कारक रहनेपरभी, उनकी कर्मत्वादि-विवक्षा न करनेसे, 'सम्बन्ध-विवक्षा'-में षष्ठी होती है ; यथा—स मम अकथयत् ; "अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" काद० ; "सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्" मा० ७. २८ ; "किमिव हि दुष्करमकरुणानाम् ?" काद० ; "तत्र व्यसृजत भरतस्य" उत्तर० ४ ; "जयसेनायास्तावत् स्वैरं गच्छ" मालविका० ४ ; "तावद्भयस्य भेतव्यम्" हितो० १. ५८ ; "स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः" हितो० १. । इत्यादि ।

७२४ । जब किसी घटनाके पश्चात् कोई समय व्यतीत होना कहा जाता है, तब उस घटना-सूचक शब्दके उत्तर षष्ठी होती है ; यथा—"अद्य

---

* निमित्तार्थक शब्दके योगसे प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं ; यथा—किं निमित्तम्, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् निमित्तात्, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते वा वसति ? ऐसे—किं कारणम्, किं प्रयोजनम् इत्यादि ।

किन्तु सर्वनाम-भिन्न अन्य स्थलमें प्रथमा और द्वितीया नहीं होतीं ; यथा—ज्ञानेन निमित्तेन इत्यादि ।

परस्पर विशेष्य-विशेषण-भावापन्न होनेके कारण निमित्तार्थ-शब्दमेंभी वही वही विभक्ति होती है ।

दशमो मासः तातस्य उपरतस्य" (पिताजीकी मृत्यु हुई आज दश महीने हो गये) मुद्रा० ६ ; "कतिपये संवत्सराः तस्य तपः तप्यमानस्य" उत्तर० ४. (उनके तप करते कई वर्ष हुए) ।

सप्तमी ।

७२५ । अधिकरण-कारकमे सप्तमी-विभक्ति होती है ; यथा—आसने उपविशति ; स्थाल्याम् ओदनं पचति ।

७२६ । जिस कारकको (कर्त्ता वा कर्मको) क्रियाके काल-द्वारा अन्य क्रियाका काल निरूपित होता है, (अर्थात् जिस क्रियाकी निष्पत्तिके साथ अन्य क्रिया उत्पन्न होती है), उसके उत्तर सप्तमी होती है ;* यथा—विधौ उदिते स आगतः (विधूदयसमकालम् आगत इत्यर्थः—चन्द्रमा उठते–उठनेके साथ—वह आया)—यहाँ विधु (कर्त्ता) के उदयके काल-द्वारा उसके आगमनका काल निरूपित होनेसे 'विधु'-शब्दके उत्तर सप्तमी हुई, और 'उदिते' यह पद उसका विशेषण होनेके कारण सप्तम्यन्त हुआ ; रजन्यां प्रभातायां प्रस्थितः (रजनीप्रभातसमकालं प्रस्थित इत्यर्थः) ; गोषु दुह्यमानासु गतः (गाय—कर्म—के दोहनकालमे) ; तयोः सुप्तयोः स जजागार ; जनेषु जागरितेषु चौराः पलायिताः ; "वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः" कु० २. ५३ ; "कः पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति ?" शकु० १. २१ ; "क एष मयि स्थिते

---

* इसको 'भावे सप्तमी' कहते हैं (Locative absolute) ।

चन्द्रगुप्तम् अभिभवितुम् इच्छति ?" मुद्रा० १.।*

७२७। क्रिया-द्वारा 'अनादर' समझानेसे, अनादरके कर्ममें (अर्थात् जिसका अनादर किया जाता है, उसके उत्तर) सप्तमी और षष्ठी† होती हैं; यथा—रुदति बाले, रुदतो बालस्य वा, बहिर्गता माता (रुदन्तं बालम् अनादृत्य इत्यर्थः); पश्यतः ते मरिष्यामि (पश्यन्तं त्वाम् अनादृत्य इत्यर्थः); "नन्दाः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य" (पश्यन्तं राक्षसम् अनादृत्य इत्यर्थः) मुद्रा० ३. २७; "पश्यतो मे श्येनेनापहृतः शिशुः" पञ्च० १. कथा २१.।

७२८। जाति, गुण, क्रिया अथवा संज्ञा-द्वारा समुदायसे (समग्र सजातीयसे) एकदेशके (एकके) पृथक् करनेका नाम 'निर्द्धारण'। जिससे निर्द्धारण किया जाता है, उसके उत्तर सप्तमी और षष्ठी होती हैं;‡ यथा—(जाति-द्वारा) मनुष्येषु

---

* 'भावे सप्तमी' समझानेके लिये, 'सत्'-शब्दको उसका विशेषण करके उसके साथ प्रयोग किया जाता है ('सत्'—अस् + शतृ—शब्दका अर्थ 'होना'); यथा—विधौ उदिते सति (चन्द्रके उठनेपर); रजन्यां प्रभातायां सत्याम् (रात्रिके प्रभात होनेपर); गोषु दुह्यमानासु सतीषु (गायोंके दुही जाती रहनेपर); तयोः सुप्तयोः सत्योः (उन दोनोंके सो जानेपर); जनेषु जागरितेषु सत्सु (आदमियोंके जागनेपर)। "अभ्रेषु सत्सु धावत्सु सोमो धावति" अपरोक्षानुभूतिः ८४; "सति सकलदृश्यबाधे", स्वात्मनिरूपणम् २२.।

† इसको 'अनादरे षष्ठी' कहते हैं (Genitive absolute)।

‡ इसको 'निर्द्धारे सप्तमी वा षष्ठी' कहते हैं।

(मनुष्येषु मध्ये) क्षत्रियः शूरः, (अथवा) मनुष्याणां (मनुष्याणां मध्ये) क्षत्रियः शूरः (मनुष्योंमे—मनुष्योंके बीचमे); (गुण-द्वारा) गोषु कृष्णा बहुक्षीरा, गवां कृष्णा बहुक्षीरा; (क्रिया-द्वारा) अध्वगेषु धावन्तः शीघ्रगामिनः, अध्वगानां धावन्तः शीघ्रगामिनः; (संज्ञा-द्वारा) कविषु कालिदासः श्रेष्ठः, कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः।

"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥" मनु० १. ९६–९७।*

७२९। 'प्रशंसा' समझानेसे, 'साधु' और 'निपुण' शब्दके योगसे सप्तमी होती है; यथा—व्याकरणे साधुः; साहित्ये निपुणः।

७३०। 'इनि'-प्रत्यय-सहित 'क्त'- प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्ममे सप्तमी होती है; यथा—"अधीती चतुर्षु आम्नायेषु" दशकु० (अधीतिन्—अधीतम् अनेन, अधीत + इनि Versed or proficient in); "गृहीती षट्सु अङ्गेषु" दशकु० (गृहीतिन्—गृहीतम् अनेन, गृहीत + इनि Who has grasped, comprehended or mastered)।

शिष्टप्रयोगमे निर्द्धारे पञ्चमीभी होती है; यथा—"अजात-मृत-मूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरम्" पञ्च० १; "यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्" रामा०।

* "नराणां नापितो धूर्त्तः, पक्षिणाञ्चैव वायसः।
चतुष्पदां शृगालस्तु, स्त्रीणां धूर्त्ता च मालिनी॥" चाणक्यः।

७३१। 'अन्तर्' और 'अधीन' शब्दके योगसे सप्तमी होती है। यथा—जले अन्तः (जलके बीचमें); "निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः" पञ्च० १. ३२.।* "त्वयि अधीनम्" (तेरे अधीन) कु० ४. १०. टीकायां मल्लिनाथः।

७३२। 'प्रसित' और 'उत्सुक' शब्दके योगसे सप्तमी और तृतीया होती हैं; यथा—सत्कार्य्ये सत्कार्य्येण वा प्रसितः (आसक्तः); विद्यायां विद्यया वा उत्सुकः।

७३३। दो क्रियाओंके मध्यवर्त्ती कालवाचक और अध्ववाचक शब्दके उत्तर सप्तमी और पञ्चमी होती हैं; यथा—(कालवाचक) अयम् अद्य भुक्त्वा त्र्यहे त्र्यहात् वा भोक्ता (आज खाकर यह तीन दिन पीछे खायेगा); (अध्ववाचक) अयम् इह स्थित्वा क्रोशे क्रोशात् वा लक्ष्यं विध्येत् (यहाँ रहकर यह एक कोसपर लक्ष्य विद्ध कर सकता है)।

७३४। दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दके उत्तर सप्तमी, और द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी होती हैं; यथा—ग्रामस्य दूरे, दूरम्, दूरेण, दूरात् वा; गृहस्य अन्तिके, अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकात् वा। †

७३५। साक्षिन्, प्रतिभू, कुशल, स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, प्रसूत और आयुक्त शब्दके योगसे सप्तमी और षष्ठी होती हैं; यथा—विवादे

---

* 'अन्तर्'-शब्दके योगसे षष्ठीभी होती है; यथा—"अन्तः कञ्चुकि-कञ्चुकस्य" रत्ना० २. ३; "प्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे" वेणी० ३. ७; "बहिरन्तश्च भूतानाम्" गीता. १३. १५.।

† दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्द विशेषण होनेसे विशेष्याधीन होता है; यथा—दूरः ग्रामः; दूरः पन्थाः।

विवादस्य वा साक्षी ; व्यवहारे व्यवहारस्य वा प्रतिभूः ; मीमांसायां मीमांसायाः वा कुशलः ; गोषु गवां वा स्वामी ; ब्राह्मण्यां ब्राह्मण्याः वा प्रसूतः ; ग्रन्थरचने ग्रन्थरचनस्य वा आयुक्तः (व्यापृतः, तत्पर इत्यर्थः)।

७३६। निमित्तबोधक शब्द कर्मकारकमे समवेत (अर्थात् अवयव-रूपसे सम्बद्ध) रहनेसे, उसमे सप्तमी होती है; यथा—"चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति, मांसेषु हरिणो हतः॥" (चर्मणि—चर्मनिमित्तम् इत्यर्थः)।

विधेय विशेषण।

७३७। जिसके विषयमे कुछ कहा जाता है, उसको 'उद्देश्य' (Subject) कहते हैं; और जो कुछ कहा जाता है, उसे 'विधेय' (Predicate) कहते हैं; यथा—सुशील बालक आदरणीय होता है—इस वाक्यमे बालकके विषयमे कहा जाता है, इसलिये 'बालक' उद्देश्य, 'सुशील' उद्देश्य विशेषण, 'आदरणीय' विधेय विशेषण, और 'होता है' क्रियाभी विधेय। विधेय-विशेषण विशेष्यके पश्चात् बैठता है; यथा—ईश्वरो दयालुः; सूर्य्यः तेजोमयः; पृथिवी सुविस्तीर्णा; जलं शीतलम्; फलं मधुरम्; धर्मः परमो बन्धुः।

(क) विशेष्यपद विधेय-विशेषण होनेसे, तदनुसारही सर्वनाम और क्रियापद बैठते हैं; यथा—"शैत्यं हि यत्, सा प्रकृतिर्जलस्य" र० ५.५४; "दरिद्रस्य यत् मरणम्, सोऽस्य विश्रामः"; "मातुस्तु यौतकं यत्, स्यात् कुमारीभाग एव सः" मनु० ९.१३१; "सन्तः तृतीया गतिः उक्ता"।*

* विधेय-विशेषण-रूपसे व्यवहृत पात्र, पद, आस्पद, स्थान, भाजन

(ख) उद्देश्य और विधेय पदका उल्लेख रहनेसे, विधेयके अनुसार क्रिया बदलती है ; यथा—भवन्तः प्रमाणं भवति ।

(ग) प्रकृति और विकृतिका उल्लेख रहनेसे, प्रकृतिके अनुसारही क्रिया बदलती है ; यथा—एको वृक्षः पञ्च नौकाः भवति ।

अनुवाद करो—तू कौन ? लड़के, तुम क्या करते हो ? वह अच्छा पढ़ता है । हमारे प्रति कृपा कीजिये । बिना परिश्रम कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता। मैंने सारी रात जागी थी । अग्निमें उसकी अङ्गुली छिन्न हो गयी । वह शोक हेतु क्रन्दन करता है । हमारे साथ तुमा आ । मूर्ख पुत्रसे क्या प्रयोजन ? वृथालापसे प्रयोजन नहीं । पिताके तुल्य कौन पूजनीय है ?

और प्रमाण शब्द सर्वदा क्लीवलिङ्ग एकवचनान्त होते हैं, (उद्देश्य अर्थात् कर्त्ताके लिङ्ग वचन चाहे जो हों), और क्रिया कर्त्ताके अनुसार होती है, विधेय-विशेष्यपदके अनुसार नहीं। यथा—"विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम्" मालती० १. ३०.। "अविवेकः परमापदां पदम्" (स्थानम्, कारणमित्यर्थ.) भा० २. ३०; "सम्पदः पदमापदाम्" हितो० १. २२२; "के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ?" मेघ०५४.। "निर्द्धनता सर्वापदामास्पदम्" मृच्छ० १. १४; "करिण्यः कारुण्यास्पदम्" भामिनी० १. १; "आस्पदं त्वमसि सर्वसम्पदाम्" भा० १३. ३९.। "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिङ्गं, न च वयः" उत्तर० ४. ११.। "स श्रियो भाजनं नरः" पञ्च० १. २६६; "वरयाणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्त्ते !" मालती० १. ५.। व्याकरणे पाणिनिः प्रमाणम्; "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" मनु० २. १३; "आर्य्यमिश्राः प्रमाणम्" मालविका० १; "एतदाकर्ण्य देवः प्रमाणम्" (कार्य्याकार्य्यनिर्णेता इति भावः) कादं० ।

पिताजीको प्रणाम। हम अध्ययनके लिये विद्यालयमे आये हैं। घरसे निकलो। मित्र विना कौन हित करता है? आजसे मैं पाठमे मनोयोगी हूंगा। नगरसे बाहर रहना अच्छा। चन्द्रकी अपेक्षा सूर्य्य बृहत्तर। तेरा निवास कहां? पृथिवीके नीचे और सात लोक हैं। उसके उपर पुष्प-वृष्टि गिरी। हमलोगोंमे कौन पुरस्कार पायेगा? मेघ गरजनेपर (गर्ज्जत्) मयूर नाचते हैं। युद्धमे जानेको तैयार (सज्ज) होता है। पहाड़मे चढ़कर गांव देखता है। पर्वतोंके बीचमे हिमालय उच्चतम। प्रजालोग राजाके अधीन। वह घरके भीतर दीपक जलाकर पढ़ता है। इस गांवको चारों ओर निविड वन। वे दरिद्र, इसलिये (दरिद्र इति) सभीके अवज्ञा-भाजन। भीमके पीछे अर्ज्जुनका जन्म हुआ। तेरे पढ़नेपर मैं पढ़ूंगा। जिस विद्यासे धर्मज्ञान हो, वही श्रेष्ठ।

शुद्ध करो—अरण्येऽधिवस्तुं यतय इच्छन्ति। सन्न्यासी बहवो दिनान्येकस्थाने नावसेत्। यद्ग्रामादन्तरेणायोध्या शून्या दृश्यते, तत् कैकेयी-वचनस्य परिणामः। अस्य गिरेरभितो बहवोऽश्मानः सन्ति। अस्य वर्त्मनः परितः पलाशवृक्षा दृश्यन्ते। हा धिङ्मेऽन्यायाचरणं कुर्वते। स सकला रात्रिरेवं विचारयंस्तस्थौ। दुर्य्योधनः पाण्डवान्नास्निह्यत्। मम वचनं स न विश्वसिति। सर्वेभ्यः पुत्रेभ्यो गोपालः पितुः प्रेष्ठः। सर्व्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा। स भोजनादनु बहिरगच्छन्। संसारसुखानि केवलं दुःखस्थानमस्तीति साधोरन्तरेण को जानाति? इयं नगरी त्रयः क्रोशा आयता। धनिनं द्रव्यं याचितं भिक्षुकैः। अम्भोनिधिं सुधा ममन्थे देवैः। तेषां मे च सख्यमस्ति। अयं वित्तसञ्चयस्त एव। तां वाऽत्रानय, मा वा तत्र नय। हे जगन्नाथ! मे सर्व्वाणि पापानि क्षमस्व। क्रुद्धः पुरुषः

शिलायामप्यधिशेते । पथिक उत्थिते सति, तस्य सार्द्धमहमगच्छन् । समागतेषु बालेषु, तान् फलानि दातुमारभम्व । दम्भश्च पैशुन्यञ्च सदा गर्हणीयौ । पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीयः । अजाश्च क्षेत्रं नीयमानासु, ताः शस्यमखादयत् । भार्य्याया आक्रोशन्त्याः सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा । रूपवती भार्य्या सदा प्रीतिपात्रा भवति । यत् स एवम् उवाच, तत् तस्य दोष एव । यत् क्रौर्य्यमित्याचक्षते, तत् प्रकृतिरेव खलानाम् । त्वं मम प्राणानामपि प्रियतरा, अतस्त्वां सर्वं कथयामि । अहं वा त्वं तच्चकार । राजाऽपराधिनं दाता रूपका दण्डगाः । इन्द्रः स्वयशः किन्नरमिथुनैर्गापयामास । प्रासादस्य परितोऽमात्यं भिक्षुकान् स्थापयति राजा । क्षुधितेन वत्सेन पयः पायय, तमन्नं वा खादय । राज्ञी वनात् पुष्पाणि दासीरानाययत् । अहं मम मित्रं मां पारितोषिकमदापयम् । तस्या नार्य्या अवलोकनस्य पात्रं ते नरा बभूव । अत्र विषये ईश्वरो न दोषास्पदः । सा तपस्विनी मत्कृपापात्रं जातम् । गोविन्दस्तस्य भार्य्या च स्तुत्यचरिते स्तः । तपो दमो निःस्पृहता च सर्वे अमी यतिषु प्रशस्याः । ऋते रामं जनकः कमपि नृपं शिवधनुर्भञ्जयितुं न शशाक । अयं पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तरः । रामस्य पूर्वं गोविन्द आगच्छतु । तं दिवसमारभ्य मम मनः पर्य्याकुलं जातम् । पुत्रविवाहस्यानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास । स शिष्येणोपनिषदं वेदयामास । स्वामिना भृत्येन धेनुं पयो दोह्यते । भिक्षुकं श्रेष्ठिनं धनं याचयति । स नरः पदस्य खञ्जः, अयन्तु नयनस्य काणः । स जम्बूद्वीपं नावि गतः, शकटे च प्रत्यागतः । यज्ञदत्तः कुण्डिनपुराय प्रेषितः ; स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति । गोविन्दो यूयञ्चैतदकुरुताम् । अहं ते वीराश्च शत्रून् पराजयन्त । त्वमहं गोपालसूनवश्च तत् कृत्यं कुर्य्युः । अयं वटुस्ते

ब्राह्मणा वा ग्रामं गच्छतु । यूयं वयं वा नदीं गमिष्यथ । अतस्त्वां दूरादेव नमः । यदि स त्वया पाठं नाध्यापयति, तर्हि मां तन्निवेदय । अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति । ममागमनस्य प्रागेव स गतः । अलं तं बहु ताडयितुम् ; सोऽत्यशक्तः । अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति । ये यतयोऽरण्येऽधिवसन्ति, तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उपयोगः ? भक्ति देवो रोचते । अहं देवदत्तस्य शता रूपका धारयामि । स मयि द्रुह्यति ; नाहं तस्मा अभिद्रुह्यामि । न किमपि त्वामधुना प्रतिशृणोमि । राज्यस्योपरि चण्डवर्मा शास्ति । रामो रावणं हत्वा विभीषणो लङ्काराज्ये स्थापितः । त्वया प्रातरेव गां पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽत्रागतवान् । रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम् । प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराजः । वासुकिः पातालतलस्येष्टे । मामग्रे किं तिष्ठसि ? अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापी वर्त्तते । अस्मादुत्तरतस्तु रौद्रं श्मशानम् । उपवनाद्दक्षिणेनार्त्तरवं श्रुत्वा दुःखितान् शरणं प्रत्यशृणोत् । अधुना सुवृष्टिर्भवति चेत्, सुभिक्षं सर्वत्राजनिष्ट । अहं ह्यः पथि महान्तं भुजगं ददर्श । अत्र विषये तव सन्देहो मा भूत् । मा चौरानभैष्ट । भ्रातुः सार्द्धं मा कलहमकृथाः । अशीतिदिवसा यावत् स भृत्यो मामसेविष्ट । ते रथे कुसुमपुराय यातवन्तः । यावद्धनमीश्वरेणास्मान् दीयते, तस्मिन् सन्तोषः कार्य्यः । अयं मम चिरन्तनो वयस्यो भवितव्यः । त्वय्यस्मान् शासति, कथमस्माभिरभिभूतं भाव्यम् ? कुमन्त्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम् । जितोऽसौ मया षोडशसहस्राणां रूपकाणाम् । त्वं चेन्मम कार्य्यं करोषि, त्वामहं मुद्रिकाशतं दास्यामि । त्वामत्रावस्थातुं कथमहमनुमंस्ये ? अहं त्वामेतत् कर्त्तुमिच्छामि । इमं ग्रन्थं वाचयितुं न शक्यते । इममाम्रवृक्षमधः पातयितुं न साम्प्रतम् । विजयतु भवान्, य एवं जनानानन्दयः ।

समास-प्रकरण (Compound)।

पहले कहा गया, कि विभक्तियुक्त शब्द और धातुको 'पद' कहते हैं। इसलिये 'जगतः पतिः'—इस स्थलमे 'जगत्'-शब्दकी षष्ठीके एकवचनमे—'जगत.', और 'पति' शब्दको प्रथमाके एकवचनमे—'पति.' होनेसे, ये दो पद हैं। कभी कभी 'जगत्पतिः'—ऐसा प्रयोगभी किया जाता है। तब 'जगत्' शब्दमे विभक्ति नहीं है, केवल 'पति'-शब्दमेही विभक्ति है, इसलिये 'जगत्पतिः' एक पद हुआ। इसप्रकार, 'कन्दं मूलं फलम्' इन तीन पदोंको लेकर 'कन्द मूल-फलानि' ऐसा एकपद किया जाता है।

७३८। दो अथवा बहु पदोंके एकपदीकरणको* 'समास'† कहते हैं।

समास छः प्रकार—(१) तत्पुरुष, (२) कर्मधारय, (३) द्विगु, (४) द्वन्द्व, (५) बहुव्रीहि और (६) अव्ययीभाव।

परस्पर अन्वय (अर्थात् अर्थसङ्गति वा आकाङ्क्षा) न रहनेसे किसी पदका समास नहीं होता; यथा—राज्ञः सुन्दरः पुत्रः—यहाँ 'राज्ञः' और 'पुत्र.' इन दोनो पदोंका, अथवा 'सुन्दरः' और 'पुत्र' इन दोनो पदोंका परस्पर अन्वय है, इसलिये उन्हींका समास हो सकता; 'राज्ञः' और 'सुन्दरः' इन दोनो पदोंका परस्पर अन्वय न रहनेके कारण समास नहीं हो सकता (अर्थात् 'सुन्दरः राजपुत्र.' वा 'राज्ञः सुन्दरपुत्र' अथवा

---

* जो पूर्वमे एकपद नहीं थे, उनको एकपद करना।

† समसनं संक्षेपणम्। परस्परापेक्षयोः पूर्वोत्तरपदयोरेकत्वेन न्यसनं समासः।

'सुन्दर-राजपुत्रः' हो सकता है, किन्तु 'राजसुन्दरः पुत्रः'—ऐसा नहीं होगा)।*

नित्यसमास-भिन्न सब समासही विकल्पसे होता है। समासविच्छेदके वाक्यको 'व्यास-वाक्य' अथवा 'विग्रह-वाक्य' कहते हैं †। जिन पदोंका समास किया जाता है, उनको 'समस्यमान-पद' कहते हैं। समासनिष्पन्न पदको 'समस्त-पद' कहते हैं। समस्यमान पदोंके बीचमे सर्वप्रथम पदको 'पूर्वपद', और सर्वशेष पदको 'उत्तरपद' कहते हैं।

७३९। समासके अन्तर्गत पदोंकी विभक्तिका लोप होता है।‡

---

* "श्रुतदेहविसर्जनः पितुः" र० ८. २५; "रतेर्गृहीतानुनयेन" र० ६. २; "अप्रविष्टविषयस्य रक्षसाम्" र० ११. १८; "अवेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम्" कु० १. २०; "ज्ञातविशेष ! पुंसाम्" कु० ३. ३; "मरुताम् आकृष्टलीलान् नरलोकपालान्" र० ६. १; "बाणेन भिन्नहृदयः"—ऐसे स्थलोंमे **"सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः"** कहते हैं; अर्थात् कारक और सम्बन्धपदके साथ आकाङ्क्षा रहनेपरभी यदि अनायास अर्थबोध हो, तो उनको पृथक् रखकर समास किया जा सकता है। विशेषणपद पृथक् नहीं रहता; यथा—धार्मिकब्राह्मणपुत्रः—ऐसा समास होगा; धार्मिकस्य ब्राह्मणपुत्रः—ऐसा नहीं होगा।

† वृत्त्यर्थ (समासार्थ)-बोधकं वाक्यं विग्रहः।

‡ समास-प्रभृति-कारणसे (अर्थात् समास होनेसे, और प्रत्यय परे रहनेसे) जिन शब्दोंके उत्तर विभक्तिका लोप होता है, वेभी पदमे गिने जाते हैं; इसलिये वे पदान्तविहित कार्य्य प्राप्त होते हैं। (इसका तात्पर्य्य यह है, कि जिनके उत्तर विभक्तिका लोप होता है, वे वास्तवमे पद नहीं,

७४० । कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त (समासनिष्पन्न) शब्द प्रातिपदिक होते हैं ; इसलिये इनके उत्तर फिर नूतन विभक्ति होती है ।

(१) तत्पुरुष समास ।

(Determinative Compound)

७४१ । जिस समासमे उत्तरपदका अर्थ प्रधान होता है,

किन्तु पदके तुल्य कार्य्य प्राप्त होते हैं)। यथा—'जगतः ईश्वरः'—इन दोनो पदोंके समासमे 'जगत्-ईश्वर' होता है ; समास-विधिके अनुसार 'जगत्'-शब्दकी विभक्तिके लोपसे दोनो मिलके एकपद होनेपरभी, 'जगत्'-शब्द पदमे गण्य होनेके कारण पदान्तकार्य्य प्राप्त होगा, अर्थात् व्यञ्जन-सन्धिके नियमानुसार पदान्तस्थित 'त्' के स्थानमे 'द्' होगा, सुतरां 'जगदीश्वरः' यह पद सिद्ध होगा । इसप्रकार, 'मृदो विकारः' इस वाक्यमे 'मृद्'-शब्दके उत्तर 'मयट्'-प्रत्यय करनेसे, 'मृद्-मय' होगा ; और 'मृद्'-शब्दके विभक्तिलोपसे वह पदमे गण्य होनेके कारण 'द्' के स्थानमे 'त्', तत्पश्चात् 'त्' के स्थानमे 'न्' होगा, और णत्वविधानानुसार 'न्' मूर्द्धन्य नहीं होगा, सुतरां 'मृन्मय' सिद्ध होगा ।

किन्तु तद्धितके 'य' और स्वरवर्ण परे रहनेसे, लुप्तविभक्तिक शब्द पदमे गण्य नहीं होता ; यथा—जगत् + इक (ष्णिक) जागतिक। अस्त्यर्थ-प्रत्यय परे रहनेसेभी, तकारान्त और सकारान्त शब्द पदमे गण्य नहीं होते ; यथा—तडित् + मतुप्=तडित्वत् ; रजस् + वल=रजस्वल । किन्तु भवदीय, अहंयु, शंयु, शुभंयु—इन स्थलोंमे पद होता है । चतुर्थ, षष्ठ इत्यादि स्थलोंमे पद नहीं होता ।

उसे 'तत्पुरुष-समास' कहते हैं ।*

(प्रथमा-तत्पुरुष)

७४२ । षष्ठ्यन्त एकदेशीके (अर्थात् अवयवीके) साथ प्रथमान्त एकदेशके (अर्थात् अवयवके) समासको 'प्रथमा-तत्पुरुष' कहते हैं † ।

(क) एकवचनान्त अवयवीके साथ पूर्व, अपर, अधर, उत्तर—इनका समास होता है ; यथा—(पूर्वं कायस्य) पूर्वकायः ; ‡ अपरकायः ; अधर-कायः, उत्तरकायः । एकवचन न होनेसे नहीं होता ; यथा—पूर्वं छात्राणाम् आमन्त्रयस्व ।

(ख) कालवाचक पदके साथ समस्त एकदेशवाचक पदका समास होता है । यथा—(पूर्वम् अह्नः) पूर्वाह्णः ; (अपरम् अह्नः) अपराह्णः ; (मध्यम् अह्नः) मध्याह्नः ; (सायः सायं वा अह्नः) सायाह्नः § । (पूर्वं रात्रेः) पूर्वरात्रः ; (मध्यं रात्रेः) मध्यरात्रः ; (अपरं रात्रेः) अपर-रात्रः । (८२९ सूत्र) ।

---

* तत्पुरुषसमासनिष्पन्न शब्द उत्तरपदके लिङ्ग और वचन प्राप्त होता है ।

† इसको 'एकदेशि-समास' कहते हैं । इसमे पूर्वपद प्रथमान्त होता है, इसलिये यहाँ इसे 'प्रथमा-तत्पुरुष' कहा गया ।

‡ यहाँ 'पूर्वम्' और 'कायस्य' इन दोनो पदोंकी विभक्तिका लोप होनेसे 'पूर्वकाय' यह समस्त शब्द उत्पन्न होता है ; पश्चात् उसके उत्तर यथासम्भव प्रथमादि विभक्ति होती है ।

§ 'सायम्'-शब्दके मकारका लोप होता है ।

(ग) एकवचनान्त अवयवीके साथ क्लीवलिङ्ग 'अर्द्ध'-शब्दका* समास होता है; (यथा—अर्द्धम् आसनस्य) अर्द्धासनम्; (अर्द्धं पिप्पल्याः) अर्द्धपिप्पली; (अर्द्धं कोशातक्या) अर्द्धकोशातकी। एकवचन न होनेसे नहीं होता; यथा—अर्द्धं पिप्पलीनाम्।

(द्वितीया-तत्पुरुष)

७४३। प्रथमान्त पदके साथ द्वितीयान्त पदके समासको 'द्वितीया-तत्पुरुष' कहते हैं।

(क) 'श्रित'-प्रभृति शब्द† उत्तरपद होनेसेही द्वितीया-तत्पुरुष होता है; यथा—(वृत्तं श्रितः) वृत्तश्रितः; (दुःखम् अतीतः) दुःखातीतः; (गृहं गतः) गृहगतः; (सुखं प्राप्तः) सुखप्राप्तः; (कूपं पतितः) कूपपतितः; (मरणम् आपन्नः) मरणापन्नः; (ग्रामं गामी) ग्रामगामी; (शुभम् इच्छुः) शुभेच्छुः; (धनम् ईप्सुः) धनेप्सुः; (अन्नं बुभुक्षुः) अन्नबुभुक्षुः; (वेदं विद्वान्) वेदविद्वान्।

---

* "भित्तं शकल-खण्डे वा पुंस्यर्धोऽर्धं समेंऽशके" अमरः। क्लीवलिङ्ग 'अर्द्ध' शब्दका अर्थ—समान अंश अर्थात् तुल्यार्द्ध (आधा टुकड़ा), और पुंलिङ्ग 'अर्द्ध'-शब्दका अर्थ—खण्ड अर्थात् असमान अंश (टुकड़ा)। पुंलिङ्ग 'अर्द्ध'-शब्दका षष्ठी-तत्पुरुष समास होता है; यथा—(चन्द्रस्य अर्द्धः) चन्द्रार्द्धः; "कोशार्द्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा [पुष्पकेण]" र० १३. ७९. (कोशैकदेशमित्यर्थः)।

† श्रितादि—श्रितातीत-गत प्राप्त-पतितापन्न-गामिनः।
'उ'-प्रत्ययान्तशब्दश्च विद्वांश्चैते श्रितादयः॥

७४४ । निन्दा समझानेसे, 'क्त'-प्रत्ययान्त पदके साथ 'खट्वा'-शब्दका द्वितीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(खट्वाम् आरूढः) खट्वारूढः (उत्पथप्रस्थित इत्यर्थः) । "खट्वारूढोऽविनीतः स्यात्" त्रिकाण्डशेषः । नित्यसमासोऽयम् ।

७४५ । 'व्याप्ति'-अर्थमे द्वितीया-विभक्त्यन्त कालवाचक पदका द्वितीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(क्षणं सुखम्) क्षणसुखम् ; (मुहूर्त्तं दुःखम्) मुहूर्त्तदुःखम् ; (मासं गम्यः) मासगम्यः ; (वर्षं भोग्यः) वर्षभोग्यः ;—(क्षणं, मुहूर्त्तं, मासं, वर्षं व्याप्य इत्यर्थः) ।

(तृतीया-तत्पुरुष)

७४६ । प्रथमान्त पदके साथ तृतीयान्त पदके समासको 'तृतीया-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) कृत्प्रत्ययनिष्पन्न पदके साथ कर्त्तामे और करणसे विहित तृतीया-विभक्त्यन्त पदका तृतीया-तत्पुरुष होता है । यथा—(कर्त्तामे)—(व्याघ्रेण हतः) व्याघ्रहतः ; (अहिना दष्टः) अहिदष्टः ; (व्यासेन रचितः) व्यासरचितः ; (पाणिनिना प्रणीतम्) पाणिनिप्रणीतम् ; (नारदेन प्रोक्तम्) नारदप्रोक्तम् ; (राज्ञा पालितम्) राजपालितम् ; (द्विजेन भक्ष्यम्) द्विजभक्ष्यम् । (करणमे)—(नखैः भिन्नः) नखभिन्नः ; (असिना छिन्नः) असिच्छिन्नः ; (अग्निना दग्धः) अग्निदग्धः ; (जलेन सिक्तः) जलसिक्तः ; (अञ्जलिना पेयम्) अञ्जलिपेयम् ; (शिरसा धार्य्यम्) शिरोधार्य्यम् ।*

---

* दात्रेण लूनवान्, परशुना छिन्नवान्—इत्यादिस्थलोंमे समास नहीं होता ।

७४७ । ऊनार्थ पदके साथ तृतीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(एकेन ऊनः) एकोनः ; (विद्यया हीनः) विद्याहीनः ; (श्रमेण रहितः) श्रमरहितः ; (गर्वेण शून्यः) गर्वशून्यः ; (अङ्गेन विकलः) अङ्गविकलः ।

७४८ । 'पूर्व'-प्रभृति पदके साथ तृतीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(मासेन पूर्वः) मासपूर्वः ; (वर्षेण अवरः) वर्षावरः ; (मात्रा सदृशः) मातृसदृशः ; (पित्रा समः) पितृसमः ; (वाचा कलहः) वाक्कलहः ; (गुडेन मिश्रः) गुडमिश्रः ; (आचारेण श्लक्ष्णः—मनोहर इत्यर्थः) आचारश्लक्ष्णः ; (धनेन अर्थः) धनार्थः ।

(चतुर्थी-तत्पुरुष)

७४९ । प्रथमान्त पदके साथ चतुर्थ्यन्त पदके समासको 'चतुर्थी-तत्पुरुष' कहते हैं ; यथा—(विप्राय दत्तम्) विप्रदत्तम् ।

७५० । बलि, हित और सुख शब्दके साथ चतुर्थी-तत्पुरुष होता है ; यथा—(भूताय बलिः) भूतबलिः ; (पुत्राय हितम्) पुत्रहितम् ; (भ्रात्रे सुखम्) भ्रातृसुखम् ।

७५१ । प्रकृति विकृति-*भाव समझानेसे, तादर्थ्यमें विहित चतुर्थी-विभक्त्यन्त पदका चतुर्थी तत्पुरुष होता है ; यथा—(कुण्डलाय हिरण्यम्) कुण्डलहिरण्यम् ; (यूपाय दारु) यूपदारु ;—यहाँ 'हिरण्य' और 'दारु'—प्रकृति, 'कुण्डल' और 'यूप'—विकृति । प्रकृति-विकार-भिन्न अन्य स्थलमें चतुर्थी-तत्पुरुष नहीं होता ; यथा—रन्धनाय स्थाली—यहाँ समास नहीं होगा ।†

---

* स्वतःसिद्धं वस्तु प्रकृतिः, रूपान्तरितं विकृतिः ।

† 'रन्धनस्थाली'—यहाँ षष्ठी-तत्पुरुष समास होगा ।

(पञ्चमी-तत्पुरुष)

७५२ । प्रथमान्त पदके साथ पञ्चम्यन्त पदके समासको 'पञ्चमी-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'भय'-प्रभृति पदके साथ पञ्चमी-तत्पुरुष होता है ; यथा—(व्याघ्रात् भयम्) व्याघ्रभयम् ; (व्याघ्रात् भीतः) व्याघ्रभीतः ; (व्याघ्रात् भीः) व्याघ्रभीः ; (व्याघ्रात् भीतिः) व्याघ्रभीतिः ; (गृहात् निर्गतः) गृहनिर्गतः ; (अधर्मात् विरतः) अधर्मविरतः ; (स्वाध्यायात् प्रमत्तः) स्वाध्यायप्रमत्तः ; (सुखात् अपेतः) सुखापेतः ; (वन्धनात् मुक्तः) वन्धनमुक्तः ; (रथात् पतितः) रथपतितः ; (तर ात् अपत्रस्तः) तरङ्गापत्रस्तः ; (विदेशात् आगतः) विदेशागतः ; (सितात् इतरः) सितेतरः ।

(षष्ठी-तत्पुरुष)

७५३ । प्रथमान्त पदके साथ षष्ठ्यन्त पदके समासको 'षष्ठी-तत्पुरुष' कहते हैं ; यथा—(गङ्गायाः जलम्) गङ्गाजलम् ; (तरोः छाया) तरुच्छाया ; (अग्नेः शिखा) अग्निशिखा ; (वायोः वेगः) वायुवेगः ; (जलस्य प्रवाहः) जलप्रवाहः ; (सुखस्य भोगः) सुखभोगः ; (पयसः पानम्) पयःपानम् ; (कन्यायाः दानम्) कन्यादानम् ; (गवां दोहः) गोदोहः ; (आज्ञायाः भङ्गः) आज्ञाभङ्गः ; (दशायाः अन्तः) दशान्तः ; (सूर्य्यस्य उदयः) सूर्य्योदयः ; (वृष्टेः पातः) वृष्टिपातः ; (शिरसः छेदः) शिरश्छेदः ; (गवां वधः) गो-

वधः ; (पितुः गृहम्) पितृगृहम् ; (राज्ञः भवनम्) राजभवनम् ; (मनोः वचनम्) मनुवचनम् ; (अर्थस्य नाशः) अर्थनाशः ; (कूपस्य उदकम्) कूपोदकम् ।

७६४ । 'निर्द्धारण'-अर्थमे विहित षष्ठी-विभक्त्यन्त पदका समास नहीं होता ; यथा—धर्मभृतां वरः ; क्षत्रियो नराणां शूरतमः ; ब्राह्मणो वर्णानां पूज्यतमः ।

(क) पूरणार्थ पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता ; यथा—राज्ञां प्रथमः ; पुत्रयोः द्वितीयः ; भ्रातॄणां तृतीयः ; शिष्याणां चतुर्थः ; छात्राणां पञ्चमः ।

(ख) गुणवाचक पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता ; यथा—पटस्य शौक्ल्यम् ; कोकनदस्य लौहित्यम् ; आकाशस्य नीलिमा ; द्राक्षायाः माधुर्य्यम् ।

किन्तु किसी स्थलमे होता है ; यथा—(अर्थस्य गौरवम्) अर्थगौरवम् ; (बुद्धेः मान्द्यम्) बुद्धिमान्द्यम् ; (अर्थस्य कार्श्यम्) अर्थकार्श्यम् ; अङ्गमार्दवम् ; वचनकौशलम् ।

(ग) तृप्त्यर्थ पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता ; यथा—अपां तृप्तः ; फलानां सुहितः ।

(घ) कर्त्तामे विहित 'तृच्' और 'णक' (अक) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न पदके साथ कर्ममे विहित षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता । यथा—(तृच्) जगतः स्रष्टा ; सुखस्य दाता ; दुःखस्य हर्त्ता । (अक) प्रजानां पालकः ; वृक्षाणां छेदकः ; शत्रूणां घातकः ।

याजकादि शब्दके साथ समास होता है ; यथा—(शूद्राणां याजकः)

शूद्रयाजकः ; देवपूजकः ; राजपरिचारकः ; अन्नपरिवेषकः ; जलपरिषेचकः ; वेदाध्यापकः ; अनर्थोत्पादकः ; पुराणवाचकः ; मुक्तिप्रयोजकः ; भुवनभर्त्ता ; हविर्होता ; गुणग्रहीता ; गुणग्राहकः ।

(सप्तमी-तत्पुरुष)

७५५ । प्रथमान्त पदके साथ सप्तम्यन्त पदके समासको 'सप्तमी-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'शौण्ड'-प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसेही सप्तमी-तत्पुरुष होता है ; यथा—(दाने शौण्डः—विख्यात इत्यर्थः) दानशौण्डः ; (शास्त्रे प्रवीणः) शास्त्रप्रवीणः ; (कर्मसु निपुणः) कर्मनिपुणः ; (रणे पण्डितः) रणपण्डितः ; (क्रीडायां कुशलः) क्रीडाकुशलः ; (कार्य्ये दक्षः) कार्य्यदक्षः ; (विचारे पटुः) विचारपटुः ; (व्याख्याने चतुरः) व्याख्यानचतुरः ; (विषये चपलः) विषयचपलः ; (आतपे शुष्कः) आतपशुष्कः ; (स्थाल्यां पक्वः) स्थालीपक्वः ; (वने अन्तः) वनान्तः ; (ईश्वरे अधीनः) ईश्वराधीनः ; (मन्त्रे सिद्धः) मन्त्रसिद्धः ।

७५६ । 'ऋण' समझानेसे, कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न पदके साथ सप्तमी-तत्पुरुष होता है ; यथा—(मासे देयम्) मासदेयम् [ऋणम्] ; (वर्षे परिशोध्यम्) वर्षपरिशोध्यम् [ऋणम्] । ('यत्'-प्रत्ययेनैव इष्यते) ।

७५७ । 'क्त'-प्रत्ययनिष्पन्न पदके साथ दिवस और रात्रिके अवयव-वाचक पदका सप्तमी-तत्पुरुष होता है ; यथा—(पूर्वाह्णे कृतम्) पूर्वाह्ण-कृतम्) ; (अपराह्णे कृतम्) अपराह्णकृतम् ; (पूर्वरात्रे कृतम्) पूर्वरात्र-कृतम् ; (अपररात्रे कृतम्) अपररात्रकृतम् ।

७५८ । 'निन्दा' समझानेसे, 'काक'-वाचक पदके साथ सतमी-तत्पुरुष होता है ; यथा—(तीर्थे काक इव) तीर्थकाकः ; तीर्थवायसः ; तीर्थध्वाङ्क्षः ;—(लोलुप इत्यर्थः) ।

(नञ्-तत्पुरुष)

७५९ । प्रथमान्त पदके साथ 'नञ्'*—इस अव्ययके समासको 'नञ्-तत्पुरुष' कहते हैं ; यथा—(न ब्राह्मणः) अब्राह्मणः ; (न मोघः) अमोघः ; (न प्रियः) अप्रियः ; (न विकृतः) अविकृतः ; (न सिद्धः) असिद्धः ; (न सुखम्) असुखम् ; (न दर्शनम्) अदर्शनम् ; (न उपलम्भः) अनुपलम्भः ।

---

* 'नञ' के अर्थ छः-प्रकार—(१) सादृश्य ; यथा—अब्राह्मणः (ब्राह्मणसदृश इत्यर्थः) ; (२) अभाव ; यथा—अभोजनम् (भोजनाभाव इत्यर्थः) ; अपापम् (पापाभाव इत्यर्थः) ; (३) अन्यत्व ; यथा—असुखम् (सुखात् अन्यत्, दुःखमित्यर्थः) ; अघटः पटः (पटो घटभिन्न इत्यर्थः) ; (४) अल्पता ; यथा—अनुदरी कन्या (अल्पोदरी, कृशोदरी, तनुमध्यमा इत्यर्थः) ; अकेशी (अल्पकेशी इत्यर्थः) ; (५) अप्रशस्तता ; यथा—अकालः (अप्रशस्तकाल इत्यर्थः) ; अकार्य्यम् (अप्रशस्तकार्य्यम् इत्यर्थः) ; (६) विरोध ; यथा—असुरः (सुरविरोधी इत्यर्थः) ; अनीतिः (नीतिविरोधिनी इत्यर्थः) ; असितः (सितविपरीतः, कृष्ण इत्यर्थः) ; अधर्मः परापकारः (परापकारः धर्मविरोधी इत्यर्थः) ।

"तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः ॥"

(२) कर्मधारय समास ।

(Appositional Compound)

७६० । जिस समासमे समस्यमान पद समानाधिकरण* (अर्थात् विशेष्य-विशेषण†-भावापन्न, अथवा अभेदसम्बन्धसे

---

* अभेदेन अन्वितार्थकः शब्दः समानाधिकरणः । एकविभक्त्यन्तत्वम् एकार्थनिष्ठत्वं सामानाधिकरण्यम् ।

† किसी पद-द्वारा जिस पदको विशेष किया जाता है, अर्थात् अनेक प्रकारोंसे पृथक् करके एकही प्रकारमे स्थापन किया जाता है, वह **'विशेष्य'**; और जिस पद-द्वारा विशेष किया जाता है, वह **'विशेषण'**; यथा—नील पद्म;—यहाँ, पद्म नाना प्रकारके हैं (नील, श्वेत, लोहित इत्यादि), किन्तु 'नील' यह पद उसको उन प्रकारोंसे पृथक् करके एकही प्रकारमे अर्थात् नीलमे स्थापन करता है, इसलिये 'पद्म'—विशेष्य, और 'नील'—विशेषण ।

(विशिष्यते नियम्यते व्यावर्त्यते व्यवच्छिद्यते भेद्यते येन तत् विशेषणम्, भेदकम् इति यावत् । अनेकप्रकारं वस्तु प्रकारान्तरेभ्यो व्यवच्छिद्य एकस्मिन् उपात्ते प्रकारे यत् व्यवस्थापयति, तत् व्यवस्थापकं भेदकं विशेषणम्; यत् व्यवस्थाप्यमानम्, तत् भेद्यं विशेष्यम् ।)

फिर, 'गाढ नील' कहनेसे, उक्तरीतिसे 'गाढ' विशेषण, और 'नील' विशेष्य होता है । 'पद्म पुष्प' कहनसे, 'पद्म' विशेषण, और 'पुष्प' विशेष्य होगा ।

जो शब्द द्रव्य (अर्थात् वस्तु, व्यक्ति, देश, काल इत्यादि), गुण, जाति और क्रियाका नाम समझाते हैं, वेही प्रायः विशेष्य होते हैं; यथा—

एकार्थप्रतिपादक) होते हैं, उसको 'कर्मधारय समास' कहते हैं।

(क) विशेष्य-पदके साथ विशेषण-पदका कर्मधारय समास होता है। कर्मधारय-समासमे उत्तर-पदका अर्थ प्रधान होता है। यथा—(नवः पल्लवः, अथवा नवश्चासौ पल्लवश्च) नवपल्लवः; (नवौ पल्लवौ, अथवा नवौ च तौ पल्लवौ च) नवपल्लवौ; (नवाः पल्लवाः अथवा नवाश्च ते पल्लवाश्च) नवपल्लवाः। (शोभना लता, अथवा शोभना चासौ लता च) शोभनलता; (शोभने लते, अथवा शोभने च ते लते च) शोभनलते; (शोभनाः लताः, अथवा शोभनाश्च ताः लताश्च) शोभनलताः। (नीलम् उत्पलम्, अथवा नीलं च तत् उत्पलं च) नीलोत्पलम्; (नीले उत्पले, अथवा नीले च ते उत्पले च) नीलोत्पले; (नीलानि उत्पलानि, अथवा नीलानि च तानि उत्पलानि च) नीलोत्पलानि। (शीतः पवनः) शीतपवनः; (उष्णम् उदकम्) उष्णोदकम्; (मधुरं वचनम्) मधुरवचनम्।

पुष्प, सौन्दर्य, ब्राह्मण, गमन। और जो शब्द गुण, जाति और क्रियाको समझाकर द्रव्यकोभी समझाते हैं, वेही प्रायः विशेषण होते हैं; यथा—सुन्दर (पुष्प), ब्राह्मण (वशिष्ठ), गत (दिन)।

प्रयोगविशेषमेही विशेष्य पद विशेषण, और विशेषण-पद विशेष्य होता है; जैसे 'नील पद्म' यहाँ 'पद्म'—द्रव्यवाचक विशेष्य, 'पद्म पुष्प' यहाँ 'पद्म'—द्रव्यवाचक विशेषण; 'नील वस्त्र' यहाँ 'नील'—गुणवाचक विशेषण, 'गाढ नील', यहाँ 'नील'—गुणवाचक विशेष्य; 'कुलीन ब्राह्मण' यहाँ ब्राह्मण'—जातिवाचक विशेष्य, 'ब्राह्मण पण्डित' यहाँ 'ब्राह्मण'—जातिवाचक विशेषण।

(नवम् अन्नम्) नवान्नम्; (सर्वे लोकाः) सर्वलोकाः; (विश्वे देवाः) विश्वदेवाः; (दृढो बन्धः) दृढबन्धः; (सुरभि चन्दनम्) सुरभिचन्दनम्; (नवः जलधरः) नवजलधरः; (सन् पुरुषः) सत्पुरुषः; (महान् देवः) महादेवः; (महान् वीरः) महावीरः; (परमः पुरुषः) परमपुरुषः; (केवलः वैयाकरणः) केवलवैयाकरणः; (जरन् नैयायिकः) जरन्नैयायिकः; (सप्त ऋषयः) सप्तर्षयः* ।

(ख) यदि अनेक विशेषण एकही विशेष्यके हों, तो विशेषणके साथ विशेषणकाभी कर्मधारय होता है; यथा—(नीलः उज्ज्वलश्च—जो नील, वही उज्ज्वल) नीलोज्ज्वलः† [आकाशः]; (पीनः उन्नतश्च) पीनोन्नतः [कायः]; (कुब्जः कुण्ठश्च) कुब्जकुण्ठः [पुरुषः] ।

७६१। 'नञ्'-विशिष्ट 'क्त'-प्रत्ययान्त पदके साथ 'नञ्'-शून्य 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका कर्मधारय-समास होता है; यथा—(कृतञ्च तत् अकृतञ्च) कृताकृतम्; (भुक्तञ्च तत् अभुक्तञ्च) भुक्ताभुक्तम्; (पीतञ्च तत् अपीतञ्च) पीतापीतम्; (क्लिष्टञ्च तत् अक्लिष्टञ्च) क्लिष्टाक्लिष्टम्; (पक्वञ्च तत्

---

* संज्ञा समझानेसेही सङ्ख्यावाचक विशेषण-पदका कर्मधारय होता है; यथा—सप्तर्षयः—यह 'सप्तर्षिमण्डल' को समझाता है। किन्तु सामान्यतः 'सप्तसङ्ख्यक ऋषि' समझानेसे कर्मधारय-समास नहीं होगा—द्विगु-समास होगा। 'एक'-शब्दका कर्मधारय-समास होता है; यथा—(एकः वीरः) एकवीरः।

† यहाँ 'उज्ज्वल'-पदकी विशेष्यत्व-विवक्षा हुई है।

अपक्वञ्च) पक्वापक्वम् । समान-प्रकृति-स्थलमेंही होता है ; सिद्धञ्च अभुक्तञ्च—यहां समास नहीं होगा ।

७६२ । वर्णवाचक पदके साथ वर्णवाचक पदका कर्मधारय-समास होता है ; यथा—(नीलश्चासौ लोहितश्च) नीललोहितः ; (लोहितश्चासौ धवलश्च) लोहितधवलः ; (पीतश्चासौ शबलश्च) पीतशबलः ।

७६३ । पूर्वकाल और उत्तरकाल समझानेसे, 'क्त'-प्रत्ययान्त पदके साथ 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका कर्मधारय-समास होता है ; यथा—(पूर्वम्—अथवा आदौ—स्नातः, पश्चात् अनुलिप्तः) स्नातानुलिप्तः ; यातायातः ; शयितोत्थितः ; लूनप्ररूढः ; दत्तापहृतम् ; पक्वभुक्तम् ; भुक्तोद्गीर्णम् ।

(उपमान-कर्मधारय)

७६४ । उपमान और उपमेयके * साधारणगुण-वाचक पदके साथ उपमान पदके समासको 'उपमान-कर्मधारय' कहते हैं ; यथा—(घन इव श्यामः) घनश्यामः ; † (अर्णव इव गभीरः) अर्णवगभीरः ; (शैल इव उन्नतः) शैलोन्नतः ; (अनल इव उज्ज्वलः) अनलोज्ज्वलः ; (नवनीतम् इव कोमलम्) नवनीतकोमलम् ; (कुसुममिव सुकुमारम्) कुसुमसुकुमारम् ।

---

* जिसके साथ किसीकी तुलना की जाती है, उसे **'उपमान'** कहते हैं ; और जिसकी तुलना की जाय, उसको **'उपमेय'** कहते हैं ।

† जिस गुण वा धर्मको अवलम्बन करके दोनोकी तुलना होती है, उसका नाम **'साधारणगुण'** वा **'समानधर्म'** । यहाँ 'श्यामत्व'-को अवलम्बन करके तुलना हुई है, इसलिये 'श्याम.'—यह साधारणगुणवाचक वा समानधर्मबोधक पद ।

(उपमित-कर्मधारय)

७६५। उपमान-पदके साथ उपमेय-पदके समासको 'उपमित-कर्मधारय' कहते हैं। यथा—(नरः व्याघ्र इव) नरव्याघ्रः ; (पुरुषः सिंह इव) पुरुषसिंहः ; तपस्विशार्दूलः ; मुनिपुङ्गवः ; द्विजर्षभः ; कविकुञ्जरः।* (मुखं कमलम् इव) मुखकमलम् ; (चरणम् अरविन्दम् इव) चरणारविन्दम् ; (राजा चन्द्र इव) राजचन्द्रः ; (वदनं सुधाकर इव) वदनसुधाकरः ; (करः किसलयमिव) करकिसलयम् ; (अधरः पल्लव इव) अधरपल्लवः ; (कन्या रत्नम् इव) कन्यारत्नम्।

उपमान और उपमेयके साधारणगुणवाचक पदका प्रयोग रहनेसे समास नहीं होता ; यथा—नरो व्याघ्र इव शूरः ; मुखं कमलमिव सुन्दरम्।

(रूपक-कर्मधारय)

७६६। उपमान और उपमेय अभिन्नरूपसे कल्पित होनेसे, उपमान-पदके साथ उपमेय-पदके समासको 'रूपक-कर्मधारय' कहते हैं ; यथा—(दुःखम् एव सागरः) दुःखसागरः ; (मानसमेव विहङ्गः) मानसविहङ्गः ; (देह एव पिञ्जरम्) देहपिञ्जरम् ; (अविद्या एव निगडः) अविद्यानिगडः ; (ज्ञान-

---

* व्याघ्र, पुङ्गव, ऋषभ, कुञ्जर, सिंह, शार्दूल, नाग प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होते हैं, और पुंलिङ्गमेही प्रयुक्त होते हैं।—

"स्युरुत्तरपदे व्याघ्र-पुङ्गवर्षभ-कुञ्जराः।
सिंह-शार्दूल-नागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः॥" अमरः।

मेव अग्निः) ज्ञानाग्निः ।

(मध्यपदलोपी कर्मधारय)

७६७ । जिस कर्मधारय-समासमे मध्यपदका लोप होता है, उसे 'मध्यपदलोपी कर्मधारय' कहते हैं*; यथा—(शाकप्रियः पार्थिवः) शाकपार्थिवः ; (मेरुनामा पर्वतः) मेरुपर्वतः ; (छायाप्रधानः तरुः) छायातरुः ; (अर्द्धावशिष्टः दग्धः) अर्द्ध-दग्धः ; (मुखसहिता नासिका) मुखनासिका ; (ब्राह्मण-बहुलो ग्रामः) ब्राह्मणग्रामः ; (बिम्बाकारः अधरः) बिम्बाधरः ; (वज्रतुल्यं हृदयम्) वज्रहृदयम् ; (पलमिश्रम् अन्नम्) पलान्नम् ; (द्व्यधिकाः दश) द्वादश ; इत्यादि ।

७६८ । 'कृत'-प्रभृति पदके साथ 'श्रेणि'-प्रभृति पदका 'अभूततद्भाव' (अर्थात् पूर्वमे जैसा नहीं था, वैसा होना) अर्थमे कर्मधारय होता है । यथा—(अश्रेणयः श्रेणयः कृताः) श्रेणिकृताः ; (अपूगाः पूगाः कृताः) पूगकृताः ; (अराशयः राशयः कृताः) राशिकृताः । (अश्रेणयः श्रेणयः भूताः) श्रेणिभूताः ; (अनिपुणाः निपुणाः भूताः) निपुणभूताः ; (अकुशलः कुशलः भूतः) कुशलभूतः ; (अपण्डितः पण्डितो भूतः पण्डितभूतः ।†

७६९ । प्रशंसार्थ मतल्लिका, मचर्चिका, प्रकाण्ड, उद्ध और तल्लज पदके साथ जातिवाचक पदका कर्मधारय होता है ; यथा—(प्रशस्ता गौः

---

* इसको 'शाकपार्थिवादि-समास'-भी कहते हैं ।

† 'च्वि'-प्रत्यय होनेसे तन्निबन्धन कार्य्यभी होता है ; यथा—श्रेणीकृताः, पूगीकृताः, राशीकृताः, श्रेणीभूताः, निपुणीभूताः, कुशलीभूतः, पण्डितीभूतः ।

गोमतल्लिका, गोमचर्चिका, गोप्रकाण्डम्, गवोद्धः, गोतल्लजः ।

(३) द्विगु समास ।

(Numeral Compound)

६७० । समाहार-प्रभृति अर्थमे,* विशेष्य-पदके साथ सङ्ख्या-वाचक विशेषण-पदके समासको 'द्विगु-समास' कहते हैं † । द्विगु-समासमे उत्तरपदका अर्थ प्रधान होता है, और समाहार होनेसे समस्त-पद क्लीवलिङ्ग एकवचनान्त होता है ; यथा—(त्रयाणां भुवनानां समाहारः) त्रिभुवनम् ; (चतुर्णां युगानां समाहारः) चतुर्युगम् ; (पञ्चानां पात्राणां समाहारः) पञ्च-पात्रम् ; (चतसृणां दिशां समाहारः) चतुर्दिक् ।

(क) समाहार-द्विगु होनेसे, पात्रादि‡-भिन्न अकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ('ईप्'—'ङीप्'—प्रत्ययान्त) होता है ; यथा—

---

* समाहारका अर्थ—समष्टि ।

† तद्धितार्थमे, और उत्तरपद परेभी द्विगुसमास होता है । यथा—(तद्धितार्थमे)—(द्वयोः मात्रोः अपत्यम्) द्वैमातुरः ; (पञ्चभिः गोभिः क्रीतः) पञ्चगुः । (उत्तरपद परे)—(त्रयाणां लोकानां नाथः) त्रिलोक-नाथः—यहाँ 'नाथ' यह उत्तरपद परे 'त्रिलोक'—इसमे द्विगु समास हुआ ; (सप्तभिः सामभिः उपगीतम्) सप्तसामोपगीतम्—र० १०. २१ ; (पञ्च गावः धनं यस्य सः) पञ्चगवधनः ।

‡ पात्र, भुवन, युग, मुख, गुण, पथ, गव, रात्र (मतान्तरमे 'रात्र'-शब्द पु०), अह इत्यादि ।

(त्रयाणां लोकानां समाहारः) त्रिलोकी ; (चतुर्णां पदानां समाहारः) चतुष्पदी ; (पञ्चानां वटानां समाहारः) पञ्चवटी ; (सप्तानां शतानां समाहारः) सप्तशती ।*

कर्मधारय और द्विगु समासमें उत्तरपदका अर्थ प्रधान होनेके कारण, वेभी तत्पुरुषमें गण्य होते हैं ।

नित्य-समास ।

७७१ । 'कुत्सित'-अर्थ समझानेसे, सुबन्त-पदके साथ 'कु' इस अव्ययका नित्य-समास होता है ; † यथा—(कुत्सितः जनः) कुजनः ; कुपुरुषः ; कुब्राह्मणः ; कुसंस्कारः ।

७७२ । सुबन्त-पदके साथ प्रादि उपसर्गका नित्य-समास होता है‡ । यथा—(प्रकृष्टः पुरुषः) प्रपुरुषः ; (शोभनो जनः) सुजनः । (दुष्टो जनः) दुर्जनः ; (दुष्टा नीतिः) दुर्नीतिः ; दुष्कुरुम् ; दुश्चरितम् ; (अपकृष्टः, अपभ्रष्टो वा, शब्दः) अपशब्दः । (विप्रकृष्टः, विभिन्नो वा, देशः) विदेशः । (अधिको राजा) अधिराजः । (गौणी—असाक्षात् माता) उपमाता । (अतिशयितं नवः) अभिनवः ; (अतिशयितं शीतम्) अति-

---

* 'आप्'-प्रत्ययान्त और 'अन्'-भागान्त शब्द विकल्पसे स्त्रीलिङ्ग (ईप् प्रत्ययन्त) होता है ; यथा—(त्रयाणां लतानां समाहारः) त्रिलती, त्रिलतम् ; (पञ्च-कर्मन्) पञ्चकर्मी, पञ्चकर्मम् ('अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'अ'-प्रत्यय होता है, और 'अन्'-भागका लोप होता है) ।

† नित्यसमासमें स्वपद द्वारा व्यासवाक्य नहीं होता, पदान्तर-द्वारा करना होता है ।

‡ इसको 'प्रादि-समास' कहते हैं ।

शीतम् । (ईषत् पिङ्गलः) आपिङ्गलः ; आपाण्डुरः ; आलोहितः ।

कई प्रादिसमास-निष्पन्न पद बहुव्रीहिके तुल्य अन्यपदार्थप्रधान होते हैं*—

(क) 'क्रान्त'-प्रभृति अर्थमे, द्वितीयान्त पदके साथ 'अति'-प्रभृति-का नित्य-समास होता है । यथा—(अतिक्रान्तः मायाम्—मायातीत इत्यर्थः) अतिमायः [शिवः] ; (अतिक्रान्तः मर्य्यादाम्) अतिमर्य्यादः [व्यवहारः] ; (अतिक्रान्तम् इन्द्रियम्—इन्द्रियातीतम् इत्यर्थः) अतीन्द्रियम् [ज्ञानम्] ; (अतिक्रान्तम् आदित्यम्—आदित्यात् अधिकम् इत्यर्थः) अत्यादित्यं [तेजः] । (अधिगतं ज्याम्) अधिज्यम् [धनुः] । (अभिगतः मुखम्) अभिमुखः [जनः] । (उत्क्रान्तः, उद्गतो वा, वेलाम्) उद्वेलः [सागरः] ।

(ख) 'क्रान्त'-प्रभृति अर्थमे, पञ्चम्यन्त पदके साथ 'निर्'-प्रभृति-का नित्य-समास होता है ; यथा—(निष्क्रान्तः वनात्) निर्वणः [व्याघ्रः] ; (निर्गतः द्वन्द्वात्) निर्द्वन्द्वः [साधुः] ; (निर्गतः नद्याः) निर्नदिः [कूर्मः] ।

७७३ । धातुके साथ उपपदका† नित्य-समास होता है ‡ । यथा—

---

* सुतरां अन्य-पदार्थकेही लिङ्ग वचन प्राप्त होते हैं ।

† जो जो सुबन्त-पद-प्रभृति पूर्वमे रहनेसे, धातुके उत्तर 'कृत्'-प्रत्यय-का विधान है, उनको 'उपपद' कहते हैं । 'कुम्भकारः'—इस स्थलमे, द्वितीयान्त-पद पूर्वमे रहनेसे धातुके उत्तर 'अण्'-प्रत्ययका विधान होनेके कारण, 'कुम्भम्' इस उपपदके साथ 'कृ'-धातुका समास होकर 'कुम्भकृ' ऐसा होनेसे, 'अण्' होता है ।

‡ इसको 'उपपद-समास' कहते हैं ।

(कुम्भं करोति इति—कुम्भ-कृ) कुम्भकारः। (प्रभां करोति इति—प्रभा-कृ+ट) प्रभाकरः; (जले चरति इति—जल-चर्+ट) जलचरः। (शास्त्रं जानाति इति—शास्त्र-ज्ञा+क) शास्त्रज्ञः। (पङ्कात् जायते इति—पङ्क-जन्+ड) पङ्कजम्; (अध्वानं गच्छति इति—अध्व-गम्+ड) अध्वग·। (शिलायां शेते इति—शिला-शी+अच्) शिलाशयः। (दुःखं भजते इति—दुःख-भज्+विण्) दुःखभाक्। (वने वसति इति—वन-वस्+णिन्) वनवासी। (आत्मानं बिभर्त्ति इति—आत्मन्-भृ+खि) आत्मम्भरिः। (वाचं यच्छति इति—वाच् यम्+खच्) वाचंयमः। इत्यादि।

(क) धातुके साथ उपसर्गका नित्य-समास होता है; यथा—(सम्+कृ) संस्करोति, संस्कारः, संस्कृत्य; (वि+जि) विजयते, विजयः, विजित्य; (अभि+सिच्) अभिषिञ्चति, अभिषेकः, अभिषिच्य; (आ+रभ्) आरभते, आरम्भः, आरभ्य।

(ख) धातुके साथ 'ऊरी'-प्रभृति शब्दका*, और 'च्वि' तथा 'डाच्'-प्रत्ययान्तका नित्य-समास होता है। यथा— (ऊरी) ऊरीकरोति, ऊरीकरणम्, ऊरीकृत्य; (आविस्) आविष्करोति, आविष्क्रिया, आविष्कृत्य; (प्रादुस्) प्रादुर्भवति, प्रादुर्भावः, प्रादुर्भूय। (च्वि) स्वीकरोति, स्वीकारः, स्वीकृत्य; भस्मीभवति, भस्मीभावः, भस्मीभूय। (डाच्)

---

* ऊरी (उरी), उररी (ऊररी), आविस्, प्रादुस्, स्वधा, स्वाहा, वषट्, वौषट् इत्यादि। ('ऊरी'-प्रभृति चार शब्दोंका अर्थ—स्वीकार)। 'श्रत्' शब्दभी इस गणमे लिया जाता है; यथा—(श्रत्-धा) श्रद्दधाति, श्रद्धा, श्रद्धाय।

समयाकरोति, समयाकरणम्, समयाकृत्य; दुःखाकरोति, दुःखाक्रिया, दुःखाकृत्य।

(ग) धातुके साथ अनुकरणात्मक-शब्दका नित्य-समास होता है; यथा—झनत्करोति, झनत्कारः, झनत्कृत्य; खात् (ट्)-करोति, खात्करणम्, खात्कृत्य। 'इति'-शब्द परे रहनेसे नहीं होता; यथा—खात् इति कृत्वा निष्ठीवति।

(घ) धातुके साथ, 'आदर'-अर्थमे 'सत्', और 'अनादर'-अर्थमे 'असत्' शब्दका नित्य-समास होता है; यथा—सत्करोति, सत्कारः, सत्कृत्य; असत्करोति, असत्क्रिया, असत्कृत्य।

(ङ) 'भूषण'-अर्थ समझानेसे, धातुके साथ 'अलम्'-शब्दका नित्य-समास होता है; यथा—अलङ्करोति, अलङ्करणम्, अलङ्कृत्य।

(च) धातुके साथ 'अन्तर्'-शब्दका नित्य-समास होता है; यथा—अन्तर्भवति, अन्तर्भावः, अन्तर्भूय।

(छ) धातुके साथ 'पुरस्' इस अव्ययका नित्य-समास होता है; यथा—पुरस्करोति, पुरस्कारः, पुरस्कृत्य।

(ज) धातुके साथ 'अस्तम्' इस अव्ययका नित्य समास होता है; यथा—अस्तङ्गच्छति, अस्तङ्गतः, अस्तङ्गत्य।

(झ) 'आकाङ्क्षानिवृत्ति' समझानेसे, धातुके साथ 'कणे' और 'मनस्' शब्दका नित्य-समास होता है; यथा—कणेहत्य पयः पिबति; मनोहत्य पयः पिबति;—(तावत् पिबति, यावत् अस्य अभिलाषो न निवर्त्तते इत्यर्थः—आश मिटाकर पीता है Drinks to his heart's content or till he is satisfied)।

(ञ) 'अन्तर्द्धान' (व्यवधान) समझानेसे, धातुके साथ 'तिरस्' इस अव्ययका नित्य-समास होता है ; यथा—तिरोभवति, तिरोभावः, तिरोभूय । किन्तु 'कृ'-धातुके साथ विकल्पसे समास होता है ; यथा—तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा (तिरस्कृत्वा) ।

(ट) 'कृ'-धातुके साथ 'साक्षात्'-प्रभृति शब्दका विकल्पसे समास होता है ; यथा—साक्षात्कृत्य, साक्षात् कृत्वा ; नमस्कृत्य, नमः कृत्वा (नमस्कृत्वा) ; वशेकृत्य, वशे कृत्वा ; मिथ्याकृत्य, मिथ्या कृत्वा ।

(ठ) 'कृ'-धातुके साथ 'उरसि' और 'मनसि'—इन दोनो सप्तम्यन्त पदोंका विकल्पसे समास होता है ; यथा—उरसिकृत्य, उरसि कृत्वा (स्वीकृत्य इत्यर्थः) ; मनसिकृत्य, मनसि कृत्वा (निश्चित्य इत्यर्थः) ।

(ड) 'विवाह'-अर्थ समझानेसे, 'कृ'-धातुके साथ 'हस्ते' और 'पाणौ'—इन दोनो सप्तम्यन्त पदोंका नित्य-समास होता है ; यथा—हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य (दारकर्म कृत्वा इत्यर्थः) ।

७७४ । 'अर्थ'-शब्दके साथ चतुर्थ्यन्त पदका नित्य-समास होता है ; और यह अन्यपदार्थप्रधान होता है ।* विग्रहवाक्यमें 'अर्थ'-शब्दका उल्लेख न करके 'इदम्'-शब्दका उल्लेख किया जाता है । यथा—(भोजनाय अयम्) भोजनार्थः [सूपः] ; (गुरवे इयम्) गुर्वर्थां [दक्षिणा] ; (पानाय इदम्) पानार्थं [जलम्] ।

७७५ । (मयूरश्चासौ व्यंसकः—धूर्त्तः—च) मयूरव्यंसकः ; (अन्यः अर्थः) अर्थान्तरम् ; (अन्यः देशः) देशान्तरम् ; (अवश्यं कर्त्तव्यम्) अवश्यकर्त्तव्यम् ; (उदक् च अवाक् च) उच्चावचम् (नैकभेदम्—अनेक-

* सुतरां अन्यपदार्थके लिङ्ग वचन प्राप्त होता है ।

प्रकारम् इत्यर्थः) ; (तत् एव) तन्मात्रम् *; (नास्ति कुतो भयं यस्य सः) अकुतोभयः ; (नास्ति किञ्चन यस्य सः) अकिञ्चनः ;—इत्यादि-स्थलोंमेभी नित्य-समास होता है ।

कृष्णसर्पः, लोहितशालिः—इत्यादि-स्थलोंमेभी नित्य-समास ।

उक्त नियमसमूहके अतिरिक्त स्थलमेभी कभी कभी नित्य-समास होता है † ; यथा—(पूर्वं भूतः) भूतपूर्वः ; (पित्रा तुल्यः) पितृभूतः ; (ब्रह्मैव) ब्रह्मभूतः ; (नितान्तं दीर्घः) नितान्तदीर्घः ; (अयं लोकः) इहलोकः ; (यथा तथा) यथातथा ; (यथाविधि हुताः) यथाविधि-हुताः—२०१.६ ; (न एकधा) नैकधा ; इत्यादि ।

(४) द्वन्द्व समास ।

(Copulative Compound)

७७६ । जिस समासमे प्रत्येक पदका अर्थही प्रधान होता है, उसे 'द्वन्द्व-समास' कहते हैं ।

(इतरेतर-द्वन्द्व)

७७७ । किसी एक पदके साथ प्रत्येक पदकाही पृथग्भावसे समान अन्वय रहनेसे, उनके समासको 'इतरेतर-द्वन्द्व' कहते हैं । इतरेतर-द्वन्द्वमे समस्तपद उत्तरपदका लिङ्ग और

---

* यहाँ 'मात्र'-शब्द प्रत्यय नहीं, इसका अर्थ—अवधारण ।

† इसको 'सुप् सुपेति' (सुबन्त-पदके साथ सुबन्त-पदका) समास कहते हैं ।

प्रत्येक पदका वचन प्राप्त होता है ; यथा—(रामश्च लक्ष्मणश्च*) रामलक्ष्मणौ [गच्छतः] ;—यहाँ 'गच्छतः' इस पदके साथ 'रामः' और 'लक्ष्मणः' इन दोनो पदोंके प्रत्येकका पृथक्रूपसे समान अन्वय है ; (भीमश्च अर्जुनश्च) भीमार्जुनौ [युध्येते], (हरिश्च हरश्च) हरिहरौ [पूजयति] ; (वृक्षश्च शाखा च) वृक्षशाखे [छिनत्ति] ; (वराहश्च महिषश्च शशकश्च) वराह-महिषशशकाः [धावन्ति] ; (कन्दश्च मूलश्च फलश्च) कन्द-मूलफलानि [भुङ्क्ते] ; (तिक्तश्च अम्लश्च मधुरश्च) तिक्ता-म्लमधुराणि [फलानि] ; (शब्दश्च स्पर्शश्च रूपश्च रसश्च गन्धश्च) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः [विषयाः भवन्ति] । †

(समाहार-द्वन्द्व)

७७८ । किसी एक पदके साथ प्रत्येक पदका अपृथग्भाव-से समान अन्वय रहनेसे, उनके समासको 'समाहार-द्वन्द्व' कहते हैं । समाहार-द्वन्द्वमे समस्तपद क्लीवलिङ्ग एकवचनान्त होता है ; यथा—(फलानि च मूलानि च, तेषां समाहारः) फलमूलम् [भुक्तम्] ; (दिशश्च देशाश्च, तेषां समाहारः) दिग्देशम् ।

७७९ । प्राणीके अङ्ग, वाद्यके अङ्ग और सेनाके अङ्ग—इनका नित्य समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(प्राणीके अङ्ग)—(पाणिश्च पादश्च)

---

* प्रत्येक पदका प्राधान्य समझानेके लिये प्रत्येक पदके पश्चात्ही 'च' बैठाना होता है ।

† परस्परापेक्षया एकक्रियासम्बन्ध इतरेतरयोगः ।

पाणिपादम् ; (करश्च चरणश्च) करचरणम् ; दन्तश्च ओष्ठश्च (दन्तौष्ठम्) ; (कर्णश्च नासिका च) कर्णनासिकम् ; (पृष्ठञ्च उदरञ्च) पृष्ठोदरम् । (वाद्यके अङ्ग)—(पणवश्च मृदङ्गश्च) पणवमृदङ्गम् ; (शङ्खश्च दुन्दुभिश्च) शङ्खदुन्दुभि ; (भेरी च पटहश्च) भेरीपटहम् ; (ऋषभश्च गान्धारश्च) ऋषभगान्धारम् ; (धैवतश्च पञ्चमश्च) धैवतपञ्चमम् ; (षड्जश्च मध्यमश्च) षड्जमध्यमम् । (सेनाके अङ्ग)—(रथिकाश्च अश्वारोहाश्च) रथिकाश्वारोहम् ; (परशवश्च करवालाश्च) परशुकरवालम् ; (धनूंषि च शराश्च) धनुःशरम् ; (शराश्च तूणीराश्च) शरतूणीरम् ; (हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च पादाताश्च) हस्त्यश्वरथपादातम् * ।

७८० । लिङ्गका भेद रहनेसे, नदीवाचक और देशवाचक पदोंका समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(नदी)—(गङ्गा च शोणश्च) गङ्गाशोणम् ; (ब्रह्मपुत्रश्च चन्द्रभागा च) ब्रह्मपुत्रचन्द्रभागम् । (देश)—(काशी च नवद्वीपश्च) काशीनवद्वीपम् ; (मथुरा च पाटलिपुत्रञ्च) मथुरापाटलिपुत्रम् । ग्रामवाचक पदका समाहार नहीं होता ।

७८१ । जो जन्तु परस्पर नित्यविरोधी, तद्वाचक पदोंका समाहार-द्वन्द्व होता है ; यथा—(अहयश्च नकुलाश्च) अहिनकुलम् ; (काकाश्च उलूकाश्च) काकोलूकम् ; (मार्जाराश्च मूषिकाश्च) मार्जारमूषिकम् ।

७८२ । बहुवचनान्त क्षुद्रजन्तुवाचक और फलवाचक पदोंका समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(क्षुद्रजन्तु)—(दंशाश्च मशकाश्च) दंश-

---

* सेनाङ्गवाचक पदका केवल बहुवचनमें समाहार होता है, अन्यवचनमें नहीं होता ; यथा—(शरश्च तूणीरश्च) शरतूणीरौ ; (हस्ती च अश्वश्च) हस्त्यश्वौ ; (शक्तिश्च परशुश्च करवालश्च) शक्तिपरशुकरवालाः ।

मशकम् ; (यूकाश्च मक्षिकाश्च) यूकमक्षिकम् । (फल)—बदराणि च आमलकानि च) बदरामलकम् ; (खर्जूराणि च नारिकेलानि च) खर्जूर-नारिकेलम् ।

७८३ । शूद्रवाचक पदोंका समाहार-द्वन्द्व होता है ; यथा—(गोपाश्च नापिताश्च) गोपनापितम् ; (कर्माराश्च कुम्भकाराश्च) कर्मार-कुम्भकारम् ; (ताम्बूलिकाश्च तन्तुवायाश्च) ताम्बूलिकतन्तुवायम् । अस्पृश्य शूद्रोंका नहीं होता ; यथा—(शौनिकाश्च चण्डालाश्च) शौनिक-चण्डालाः ।

७८४ । 'गवाश्व'-प्रभृतियोंका समाहार-द्वन्द्व होता है ; यथा—(गावश्च अश्वाश्च) गवाश्वम् ; (अजाश्च अविकाश्च) अजाविकम् ; (पुत्राश्च पौत्राश्च) पुत्रपौत्रम् । एवम्—स्त्रीकुमारम्, श्वचण्डालम्, कुब्जवामनम्, उष्ट्रखरम्, दासीदासम्, मूत्रपुरीषम्, मांसशोणितम्, तृणोलपम्, दर्भशरम् इत्यादि ।

७८५ । बहुवचनान्त वृक्षवाचक, तृणवाचक, शस्यवाचक, पशुवाचक और पक्षिवाचक पदोंका विकल्पसे समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(वृक्ष)—(अश्वत्थाश्च न्यग्रोधाश्च) अश्वत्थन्यग्रोधम्, अश्वत्थन्यग्रोधाः ; (चूताश्च अशोकाश्च) चूताशोकम्, चूताशोकाः । (तृण)—(कुशाश्च काशाश्च) कुशकाशम्, कुशकाशाः । (शस्य)—(व्रीहयश्च यवाश्च) व्रीहियवम्, व्रीहियवाः ; (मुद्गाश्च माषाश्च) मुद्गमाषम्, मुद्गमाषाः । (पशु)—(गावश्च महिषाश्च) गोमहिषम्, गोमहिषाः ; (वृकाश्च कुरङ्गाश्च) वृककुरङ्गम्, वृककुरङ्गाः ; (गोमायवश्च गर्दभाश्च) गोमायु-गर्दभम्, गोमायुगर्दभाः । (पक्षी)—(हंसाश्च सारसाश्च) हंससारसम्,

हंससारसाः ; (कोकिलाश्च मयूराश्च) कोकिलमयूरम्, कोकिलमयूराः ।

७८६ । परस्परविरुद्ध पदार्थोंका विकल्पसे समाहार-द्वन्द्व होता है ; यथा—(शीतञ्च उष्णञ्च) शीतोष्णम्, शीतोष्णे ; (सुखञ्च दुःखञ्च) सुखदुःखम्, सुखदुःखे ; (धर्मञ्च अधर्मञ्च) धर्माधर्मम्, धर्माधर्मे ; (आलोकश्च अन्धकारश्च) आलोकान्धकारम्, आलोकान्धकारौ ।

(एकशेष-द्वन्द्व)

७८७ । जिस समासमे केवल एकपद शेष अर्थात् अवशिष्ट रहता है, उसे 'एकशेष-द्वन्द्व' कहते हैं ।

(क) समानाकार पदोंका एकशेष होता है ; यथा—(देवश्च देवश्च) देवौ ; (देवश्च देवश्च देवश्च) देवाः ; (फलञ्च फलञ्च) फले ; (फलञ्च फलञ्च फलञ्च) फलानि ।

(ख) एकही शब्दसे उत्पन्न पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पदोंके समासमे पुंलिङ्ग-पद शेष रहता है ; यथा—(ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च) ब्राह्मणौ ; (कुक्कुटश्च कुक्कुटी च) कुक्कुटौ ।

(ग) क्लीवलिङ्ग पदके साथ एकही शब्दसे उत्पन्न अन्यलिङ्ग पदके समासमे क्लीवलिङ्ग पद शेष रहता है, और वह विकल्पसे एकवचनान्त होता है ; यथा—(मधुरश्च मधुरा च मधुरञ्च) मधुराणि, मधुरं वा ।

(घ) मातृ और पितृ, पुत्र और दुहितृ, भ्रातृ और स्वसृ, श्वश्रू और श्वशुर—इन पदोंके समासमे पुंलिङ्ग-पद शेष रहता है ; यथा—(माता च पिता च) पितरौ ; (पुत्रश्च दुहिता च) पुत्रौ ; (भ्राता च स्वसा च) (श्वश्रूश्च श्वशुरश्च) श्वशुरौ । (पक्षे—मातापितरौ और श्वश्रूश्वशुरौ, अर्थात इन दोनो स्थलोंमे विकल्पसे ।)

(५) बहुव्रीहि समास ।

(Relative Compound)

७८८ । जिस समासमे अन्यपदका अर्थ प्रधान होता है, अर्थात् अनेक (एकाधिक) समस्यमान-पद निज अर्थका वाचक न होकर अन्यपदार्थका वाचक होता है, उसे 'बहुव्रीहि समास' कहते हैं ।* यथा—(आरूढः वानरः यं

---

* सुतरा बहुव्रीहि-समास निष्पन्न शब्द विशेषण होता है (अर्थात् अन्यपदार्थके लिङ्ग वचन प्राप्त होता है); यथा—दीर्घनेत्रः [पुरुषः]—यहाँ 'दीर्घ'-शब्दका अर्थ 'लम्बा', और 'नेत्र'-शब्दका अर्थ 'चक्षु'; किन्तु 'दीर्घनेत्र' यह पद लम्बे चक्षुको न समझाकर दीर्घनेत्र-विशिष्ट जो पुरुष उसको समझाता है, इसलिये यहाँ बहुव्रीहि-समास हुआ, और 'दीर्घनेत्रः' यह पद 'पुरुष' इस पदका विशेषण ।

बहुव्रीहि द्विविध—समानाधिकरण और व्यधिकरण † । परस्पर विशेष्य-विशेषण भावापन्न पदोंके समासको 'समानाधिकरण बहुव्रीहि' कहते हैं; यथा—(लम्बौ कर्णौ यस्य सः) लम्बकर्णः [शशक] । और अन्यविध पदोंके समासको 'व्यधिकरण बहुव्रीहि' कहते हैं; यथा—(शूलः पाणौ यस्य सः) शूलपाणि (शिव); (पश्चात् जन्म यस्य तत्) पङ्कजन्म (पद्मम्) ।

उक्त द्विविध बहुव्रीहिका प्रत्येक फिर दो-प्रकार—तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान । समस्तपद जिस पदार्थको समझाता है, और उसका

---

† भिन्नविभक्त्यन्तत्व भिन्नार्थनिष्ठत्व वैयधिकरण्यम् ।

सः*) आरूढ़वानरः [वृत्तः]; (प्राप्तः नरः यं सः) प्राप्तनरः [ग्रामः]। (लब्धं धनं येन सः) लब्धधनः [दरिद्रः]; (कृतं कर्म येन सः) कृतकर्मा [पुरुषः]; (दृष्टः कृष्णः येन सः दृष्टकृष्णः) [भक्तः]; (निर्जितः कामः येन सः) निर्जितकामः [शिवः]; (अधीतं शास्त्रं याभ्यां तौ) अधीतशास्त्रौ [शिष्यौ]; (निरस्ताः शत्रवः येन सः) निरस्तशत्रुः [राजा]। (दत्तं धनं यस्मै सः) दत्तधनः [विप्रः]; (दत्तः उपदेशः यस्मै सः) दत्तोपदेशः [शिष्यः]; (उपनीतं भोजनं यस्मै सः) उपनीत-

---

जो गुण प्रकाश करता है, उस पदार्थके देखनेसेही यदि वह गुण सम्यक् जाना जाय, (अर्थात् समासान्तर्गत प्रधान पदार्थ यदि अन्य पदार्थमे विद्यमान रहे), तो 'तद्गुणसंविज्ञान' होता है; अन्यथा 'अतद्गुणसंविज्ञान'। 'लम्बकर्णः' 'शूलपाणिः' इत्यादि-स्थलोंमे 'तद्गुणसंविज्ञान', और 'प्रियपुत्रः' 'दृष्टसागरः' इत्यादि-स्थलोंमे 'अतद्गुणसंविज्ञान'।

* वहुव्रीहि-निष्पन्न शब्द जिसको समझायेगा, व्यासवाक्यमे उसके लिङ्ग, वचन और सम्बन्ध समझानेके लिये द्वितीयादिविभक्त्यन्त 'यद्'-शब्दका प्रयोग करना होता है; ('यद्'-शब्दके स्थलमे 'इदम्'-शब्दभी कहीं कहीं प्रयुक्त होता है); पश्चात् समस्त शब्दको जिस लिङ्ग, विभक्ति और वचनमे लेना होगा, उसकी सूचनाके लिये 'तद्'-शब्द प्रयुक्त होता है; उस 'तद्'-शब्दमे जो लिङ्ग, जो विभक्ति और जो वचन, समस्त-शब्दकोभी उसी लिङ्ग, उसी विभक्ति और उसी वचनमे लेना होगा॥ द्वितीयान्त 'यद्'-शब्दादिका प्रयोग करनेसे, उसको 'द्वितीयान्यपदार्थ वहुव्रीहि' कहते हैं; ऐसे—'तृतीयान्यपदार्थ' इत्यादि।

भोजनः [अतिथिः] । (निर्गतं जलं यस्मात् तत्) निर्गतजलं [सरः]; (उद्धृतम् उदकं यस्मात् सः) उद्धृतोदकः [कूपः]; (श्रुतः वृत्तान्तः यस्मात् सः) श्रुतवृत्तान्तः [दूतः]; (लब्धं धनं यस्याः सा) लब्धधना [राज्ञी] । (दीर्घौ बाहू यस्य सः) दीर्घबाहुः [पुरुषः]; (सन् आशयः यस्य सः) सदाशयः [साधुः]; (पीतम् अम्बरं यस्य सः) पीताम्बरः [हरिः]; (चत्वारः भुजाः यस्य सः) चतुर्भुजः [कृष्णः]; (निर्मलं जलं यस्याः सा) निर्मलजला [नदी] । (सुप्ताः मीनाः यस्मिन् सः) सुप्तमीनः [ह्रदः]; (बहवः नराः यस्मिन् सः) बहुनरः [ग्रामः]; (बहवः मृगाः यस्मिन् तत्) बहुमृगं [वनम्]; (प्रफुल्लानि कमलानि यस्मिन् तत्) प्रफुल्लकमलं [सरः] । (बहुपद)—(नीलम् उज्ज्वलञ्च वपुर्यस्य सः) नीलोज्ज्वलवपुः [कृष्णः] ।

पूर्वपद अव्यय होनेसेभी, बहुव्रीहि समास होता है; यथा—(उच्चैः शिरः यस्य सः) उच्चैःशिराः; (अधः मुखं यस्य सः) अधोमुखः; (उपरि दृष्टिः यस्य सः) उपरिदृष्टिः ।

(मध्यपदलोपी बहुव्रीहि)

७८९ । जिस बहुव्रीहि-समासमे मध्यपदका लोप होता है, उसको 'मध्यपदलोपी बहुव्रीहि' कहते हैं । यथा—(अविद्यमानं कारणं यस्य सः) अकारणः; (अविद्यमानः पुत्रो यस्य सः) अपुत्रः; (अविद्यमानः क्रोधो यस्य सः) अक्रोधः । (वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य सः) वृषस्कन्धः;

(चन्द्रस्य प्रभा इव प्रभा यस्य तत्) चन्द्रप्रभम् [आतपत्रम्]; (व्याघ्रस्य मुखम् इव मुखं यस्य सः) व्याघ्रमुखः । (तामरस-सदृशम् आननं यस्य सः) तामरसाननः । (प्रपतितानि पर्णानि यस्मात् सः) प्रपर्णः ; (अपगतः शोकः यस्य सः) अपशोकः ; (निर्गतं मलं यस्मात् सः) निर्मलः ; (विगतः अर्थः यस्मात् सः) व्यर्थः ; (उद्गतः मदः यस्य सः) उन्मदः ; (उत्कण्ठितं, उत्क्रान्तं वा, मनः यस्य सः) उन्मनाः ; (प्रकृष्टं वलं यस्य सः) प्रवलः ।

(तुल्ययोगे वहुव्रीहि)

७९० । तृतीयान्त पदके साथ 'सह'-शब्दका वहुव्रीहि होता है ; यथा—(पुत्रेण सह वर्त्तमानः) सपुत्रः ; (अनुजेन सह वर्त्तमानः) सानुजः ; (वान्धवेन सह वर्त्तमानः) सवा-न्धवः ; (भृत्येन सह वर्त्तमानः) सभृत्यः ; (विनयेन सह वर्त्तमानं यथा स्यात् तथा) सविनयम् [उवाच] ।

(व्यतिहारे वहुव्रीहि)

७९१ । व्यतिहार अर्थात् परस्पर एकजातीय कार्य्य करना समझानेसे, वहुव्रीहि होता है ; यथा—(केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्) केशाकेशि ; "केशाकेश्यभवद्युद्धं रक्षसां वानरैः सह" महाभा० ; (दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्) दण्डादण्डि । ये शब्द अव्यय ।

(६) अव्ययीभाव समास ।

(Indeclinable Compound)

७९२ । सुवन्त-पदके साथ सामीप्यादि-अर्थ-वोधक अव्य-

यके समासको 'अव्ययीभाव' कहते हैं । अव्ययीभाव-समासमे पूर्वपदका अर्थ प्रधान होता है * । यथा—(समीप)—(गृहस्य समीपम्) उपगृहम्; (कुलस्य समीपम्) उपकूलम्; (गङ्गायाः समीपम्) उपगङ्गम्। (अभाव)—(विघ्नस्य अभावः) निर्विघ्नम्; (मक्षिकाणाम् अभावः) निर्मक्षिकम्; (भिक्षायाः अभावः) दुर्भिक्षम्। (अत्यय)—(हिमस्य अत्ययः—नाशः) अतिहिमम्; (शीतस्य अत्ययः) अतिशीतम्; (बाधायाः अत्ययः) अतिबाधम्। (असम्प्रति)—(निद्रा सम्प्रति न युज्यते) अतिनिद्रम्; (शोकः सम्प्रति न युज्यते) अतिशोकम्। (पश्चात्)—(रथस्य पश्चात्) अनुरथम्; (गृहस्य पश्चात्) अनुगृहम्; (पदस्य पश्चात्) अनुपदम्। (योग्य)—(रूपस्य योग्यम्) अनुरूपम्; (कुलस्य योग्यम्) अनुकुलम्। (वीप्सा)—(दिनं दिनम्) अनुदिनम्, अथवा प्रतिदिनम्; (गृहं गृहं प्रति) प्रतिगृहम्; (क्षणे क्षणे) अनुक्षणम्। (अनतिक्रम)—(शक्तिम् अनतिक्रम्य) यथाशक्ति; (विधिम्

---

* अव्ययीभावसमास-निष्पन्न शब्द क्लीवलिङ्ग होता है, और उसके उत्तर सब विभक्तियोंके स्थानमेंही 'अम्' (द्वितीयाका एकवचन) होता है; किन्तु अकारान्त शब्दके उत्तर तृतीया और सप्तमीके स्थानमे विकल्पसे 'अम्' होता है, पञ्चमीके स्थानमे नहीं होता; यथा—उपकूलं वृक्षः, उपकूलं वृक्षौ, उपकूलम् उपकूलेन वा वृक्षेण, उपकूलं वृक्षाय, उपकूलात् वृक्षात्, उपकूलं वृक्षस्य, उपकूलम् उपकूले वा वृक्षे; अधिहरि कथा कथाम् कथया इत्यादि ।

अनतिक्रम्य) यथाविधि ; (ज्ञानम् अनतिक्रम्य) यथाज्ञानम् ; (ये ये वृद्धाः) यथावृद्धम् ; (ये ये तथाभूताः) यथातथम् । (आनुपूर्व्य)—(ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण, अथवा ज्येष्ठं ज्येष्ठम् अनुक्रम्य) अनुज्येष्ठम् ; (वर्णानाम् आनुपूर्व्येण) अनुवर्णम् । (समृद्धि)—(भिक्षायाः समृद्धिः) सुभिक्षम् । (सादृश्य)—(चन्द्रस्य सदृशम्) सचन्द्रम् * ; (हरेः सदृशम्) सहरि । (यौगपद्य)—(चक्रेण युगपत्) सचक्रम् । (साकल्य)—(तृणमपि अपरित्यज्य, अथवा तृणेन सह सकलम्) सतृणम् । (विभक्त्यर्थ)—(कूले) उपकूलम्, वा अधिकूलम् ; (हरौ) अधिहरि ; (गृहे) अधिगृहम् ; (आत्मनि, अथवा आत्मानम् अधिकृत्य) अध्यात्मम् । (व्यतीहार) (कर्णे कर्णे) कर्णाकर्णि ।

७१३ । 'अवधारण' समझानेसे, सुबन्तके साथ 'यावत्' इस शब्दका अव्ययीभाव-समास होता है ; यथा—यावदमत्रं ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्व (यावन्ति अमत्राणि—भाजनानि—सन्ति, पञ्च षट् वा, तावत् आमन्त्रयस्व इत्यर्थः) ; (यावन्तः वृद्धाः) यावद्वृद्धम् ।

७१४ । 'मर्य्यादा' और 'अभिविधि' समझानेसे, सुबन्त-पदके साथ 'आङ्' इस अव्ययका विकल्पसे अव्ययीभाव-समास होता है । यथा—(मर्यादा) आपाटलिपुत्रम्, आ पाटलिपुत्रात्, वृष्टो देवः ; आग्रामम्, आ ग्रामात्, वनम् । (अभिविधि) आकुमारम्, आ कुमारेभ्यः, यशः कालिदासस्य ; आबाल्यम्, आ बाल्यात्, विद्यायां यत्नः कार्य्यः ।

---

* 'सह'-शब्दके स्थानमे 'स' होता है ।

आमरणम् ; "आमेखलम्" कु०१. ९ ; "आगोपालं ननृतुः" का०द० ।

७९५ । पञ्चम्यन्त पदके साथ 'बहिस्'-प्रभृति * शब्दोंका विकल्पसे अव्ययीभाव-समास होता है ; यथा—बहिर्ग्रामम्, ग्रामात् बहिः ; प्रागुपवनम्, उपवनात् प्राक् ।

७९६ । 'आभिमुख्य' समझानेसे, लक्ष्यवाचक सुबन्त-पदके साथ 'अभि' और 'प्रति'—इन दोनो अव्ययोंका विकल्पसे अव्ययीभाव-समास होता है ; यथा—अभ्यग्नि, अग्निम् अभि, शलभाः पतन्ति ; प्रत्यग्नि, अग्निं प्रति ;—(अग्निं लक्ष्यीकृत्य अभिमुखं पतन्तीत्यर्थः) ।

७९७ । षष्ठ्यन्त पदके साथ 'पारे', 'मध्ये' और 'अन्तर्' शब्दका विकल्पसे अव्ययीभाव समास होता है । यथा—(गङ्गायाः पारे) पारेगङ्गम् । (समुद्रस्य मध्ये) मध्येसमुद्रम्—माघ०३. ३३ ; (नगरस्य मध्ये) मध्येनगरम् ; (रणस्य मध्ये) मध्येरणम्—भामिनी०१. १२९ ; (जठरस्य मध्ये) मध्येजठरम्—भामिनी०१. ६० ; (गृहस्य मध्ये) मध्येगृहम् ; (सभायाः मध्ये) मध्येसभम्—नै०६. ७६ ; (नद्याः मध्ये) मध्येनदि । निपातनसे एकारागम होता है । (वधूनाम् अन्तः) अन्तर्वधु ; (जलस्य अन्तः) अन्तर्जलम् ; "अन्तर्गिरि"—मा०१. ३४. । पक्षे षष्ठीतत्पुरुष समास, यथा—गङ्गापारे, समुद्रमध्ये, जलान्तः ।

७९८ । 'तिष्ठद्गु'-प्रभृति पद निपातनसे सिद्ध होते हैं ; यथा—(तिष्ठन्ति गावः यस्मिन् काले दोहाय सः) तिष्ठद्गु (रात्रेः प्रथमनाडिका इत्यर्थः—शामके बाद एक या डेढ़ घण्टा) ; (आयन्ति यस्मिन् काले गावः गोष्ठं सः) आयतीगवम् (अर्द्धास्तमितभास्करः कालः

---

* बहिस्, प्राच्, अवाच्, प्रत्यच्, अप, परि इत्यादि ।

इत्यर्थः); (प्रगतो दक्षिणम्) प्रदक्षिणम्; इत्यादि।

७९९। 'पृषोदरादि'-पद निपातनसे सिद्ध होते हैं; यथा—(पृषन्ति—विन्दवः—उदरे अस्य) पृषोदरः [पवनः]; (वारिणः वाहकः) बलाहकः (मेघ इत्यर्थः); (शवानां शयनम्) श्मशानम्; (पिशितम् अश्नाति) पिशाचः; (मह्यां रौति) मयूरः; ('कां दिशं यामि' इत्याह) कान्दिशीकः (भयद्रुतः—भीत्या पलायित इत्यर्थः; "मृगजनः कान्दिशीकः संवृत्तः" पञ्च० १); (जीवनस्य उदकस्य मूतः पटबन्धः) जीमूतः (जलधर इत्यर्थः)।

(सङ्गताः आपः अत्र) समीपम्; (अनुगता आपोऽत्र) अनूपम् (जलबहुलं स्थानम् इत्यर्थः); (अन्तर्गता आपोऽत्र) अन्तरीपम्; (द्विर्गता आपोऽत्र) द्वीपः; (जाया च पतिश्च) दम्पती वा जम्पती (अथवा जायापती); (कुशश्च लवश्च) कुशीलवौ; (द्यौश्च भूमिश्च) द्यावाभूमी; (द्यौश्च पृथिवी च) द्यावापृथिव्यौ वा दिवस्पृथिव्यौ; (सूर्य्यश्च चन्द्रमाश्च) सूर्य्याचन्द्रमसौ; (अग्निश्च सोमश्च) अग्नीषोमौ; (इन्द्रश्च वरुणश्च) इन्द्रावरुणौ; (मित्रश्च वरुणश्च) मित्रावरुणौ।

अलुक्-समास।

८००। किसी किसी स्थलमे पूर्वपदस्थ विभक्तिका लोप नहीं होता, उसको 'अलुक्-समास' कहते हैं। यथा—तमसावृतः; जनुषान्धः। परस्मै-पदम्, परस्मै-भाषा; आत्मने-पदम्, आत्मने-भाषा। वाचो-युक्तिः; पश्यतो-हरः; वाचस्पतिः, वचसां-पतिः (अथवा वाक्पतिः); दिव-स्पतिः; वास्तोष्पतिः; भ्रातुष्पुत्रः; मातुः-ष्वसा (वा मातृ-ष्वसा); पितुः-ष्वसा (वा पितृ-ष्वसा); देवानां-प्रियः (मूर्खः इत्यर्थः; "तेऽपि

अतात्पर्य्यज्ञा देवानां-प्रियाः" काव्यप्रकाशः); दास्याः-पुत्रः (निन्दार्थे, गालिप्रदाने ; "महत्येव प्रत्यूषे दास्याः-पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि" शकु० २.) । युधिष्ठिरः ; अन्ते-वासी ; बिले-शयः ; पङ्के-रुहम् ; कण्ठे-कालः ; उरसि लोमा ; सव्ये-ष्ठा ; स्तम्बे-रमः (हस्ती); कर्णे-जपः (सूचकः, कर्णे लगित्वा परापवादं वदति यो जनः इत्यर्थः); पात्रे-समितः (भोजनकाले पात्रे एव सङ्गतः, न तु कार्य्य-काले इत्यर्थः); गेहे-शूरः (गेहे एव शूरः, न तु अन्यत्र इत्यर्थः A carpet-knight) ; गेहे-नर्दी (गेहे एव नर्दति, न युद्धे इत्यर्थः A dunghill-cock) ; मातरि-पुरुषः ('पुरुष'-शब्द इह शूरवचनः ; तेन मातरि एव पुरुषः—मातरं तर्जयित्वा अन्यस्मात् सर्वस्मात् बिभेतीति, भीरुः इत्यर्थः) ; हृदि-स्पृक् ; हृदि-स्थः ; दिवि-जः ; शरदि-जः ; मनसिजः (वा मनोजः) ; सरसिजम् (वा सरोजम्) ; वने-चरः (वा वनचरः) ; खे-चरः (वा खचरः) ; इत्यादि ।

पूर्वनिपात वा प्राग्भाव ।

८०१ । तत्पुरुष-समासमे—प्रथमादिविभक्त्यन्त पदोंका प्राग्भाव होता है ; यथा—(उत्तरं कायस्य) उत्तरकायः ; (तत्त्वं बुभुत्सुः) तत्त्वबुभुत्सुः ; (पशुना समानः) पशुसमानः ; (देवाय बलिः) देवबलिः ; (चोरात् भयम्) चोरभयम् ; इत्यादि ।

(क) 'राजदन्तादि'-पदोंमे 'दन्त'-प्रभृति पदोंका परनिपात होता है ; यथा—(दन्तानां राजा) राजदन्तः (ऊर्द्ध्वपङ्क्तिस्थं मध्यवर्त्तिदन्त-द्वयम् इत्यर्थः) ; (हंसानां राजा) राजहंसः ; "राजविद्या राजगुह्यम्" गीता. ९. २ ; (वनस्य अग्रे) अग्रेवणम् ; इत्यादि ।

८०२ । **कर्मधारय-समासमे**—विशेषण, और उपमान, उपमित-प्रभृति जिनके समासका विधान किया गया है, उनका प्रागभाव होता है; यथा—(विशेषण)—(शुभः सन्देशः) शुभसन्देशः ; (उपमान)—(चन्द्रिका इव धवलम्) चन्द्रिकाधवलम् ; (उपमित)—(नयनं सरोजम् इव) नयनसरोजम् ; (पदं पल्लवम् इव) पदपल्लवम् ।

८०३ । **द्विगु-समाससे**—सङ्ख्यावाचक शब्दका प्रागभाव होता है ; यथा—(त्रयाणां गुणानां समाहारः) त्रिगुणम् ; (अष्टानां सहस्राणां समाहारः) अष्टसहस्री ।

८०४ । **द्वन्द्व-समासमे**—दो पदोंमे द्वन्द्व होनेसे, अल्पस्वर-विशिष्ट पदका प्रागभाव होता है ; यथा—तालतमालौ ; वटाश्वत्थौ ; गजतुरङ्गौ ; गोमहिषौ ; हंससारसौ ; काककोकिलौ ; शिवकेशवौ ; भ्रातृभगिन्यौ ; अम्लमधुरौ ; तिक्तकषायौ ।

(क) स्वरसाम्यस्थलमे (अर्थात् दोनो पदही समानस्वरविशिष्ट होनेसे), स्वरादि (अर्थात् स्वरवर्ण आदिमे जिसके ऐसे) अकारान्त पदका प्रागभाव होता है ; यथा—अश्वगजौ , अम्लतिक्तौ ; अनलपवनौ ; अच्युतमहेशौ ; अचलसमुद्रौ ; इन्द्रवह्नी ; ईशकृष्णौ ; उष्ट्रखरौ ; ऊर्द्ध्वनिम्ने ।

(ख) स्वरसाम्यस्थलमे, इकारान्त और उकारान्त पदका प्रागभाव होता है । यथा—हरिहरौ ; रविबुधौ । पटुशुक्लौ, मृदुदृढौ ।

(ग) लघुवर्णविशिष्ट पदका प्रागभाव होता है ; यथा—मृगकाकौ ; नलनीलौ ; कुशकाशम् ; वलयकेयूरौ ।

(घ) अधिकतर पूजनीय पदका प्रागभाव होता है ; यथा—मातापितरौ ("पितुर्माता सहस्रेण गौरवेणातिरिच्यते") ; तापसयाचकौ ।

(ङ) ज्येष्ठभ्रातृवाचक पदका प्राग्भाव होता है; यथा—युधिष्ठिरार्जुनौ; धृतराष्ट्रपाण्डू; बलदेवकृष्णौ।

(च) ऋतुवाचक और नक्षत्रवाचक पदोंके आनुपूर्व्य अर्थात् क्रमके अनुसार पूर्ववर्त्तीका प्राग्भाव होता है। यथा—(ऋतु) हेमन्तशिशिरौ; शिशिरवसन्तौ; वसन्तनिदाघौ। (नक्षत्र) अश्विनीभरण्यौ; कृत्तिकारोहिण्यौ। वर्णसाम्यस्थलमेंही यह नियम।

(छ) ब्राह्मणादिवर्णवाचक पदोंका अनुपूर्व्यानुसार पौर्वापर्य्यनियम; यथा—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः; ब्राह्मणवैश्यौ।

८०९। बहुव्रीहि-समासमें—सप्तम्यन्त और विशेषण पदका प्राग्भाव होता है। यथा—(सप्तम्यन्त)—(कण्ठे कालः यस्य सः) कण्ठेकालः; (उरसि लोमानि यस्य सः) उरसिलोमा; (मूर्द्धि शिखा यस्य सः) मूर्द्धशिखः; (तत्त्वे दृष्टिः यस्य सः) तत्त्वदृष्टिः। (विशेषण)—(चित्रं वस्त्रं यस्य सः) चित्रवस्त्रः; (नीलम् अम्बरं यस्य सः) नीलाम्बरः; (मधुरं वचनं यस्य सः) मधुरवचनः।

(क) 'प्रिय'-शब्दका विकल्पसे प्राग्भाव होता है; यथा—गुडप्रियः; प्रियगुडः।

(ख) 'इन्दु'-प्रभृति पदके योगसे, सप्तम्यन्त पदका परनिपात होता है; यथा—(इन्दुः मौलौ यस्य सः) इन्दुमौलिः; चन्द्रशेखरः; (पद्मं नाभौ यस्य सः) पद्मनाभः; पद्महस्तः; (कुशः पाणौ यस्य सः) कुशपाणिः; इत्यादि।

(ग) 'प्रहरण' (शस्त्र)-वाचक पदके योगसे, सप्तम्यन्त पदका परनिपात होता है; यथा—(शस्त्रं पाणौ यस्य सः) शस्त्रपाणिः; दण्डः

पाणौ यस्य सः) दण्डपाणिः ; चक्रपाणिः ; शूलपाणिः ; (खड्गः करे यस्य सः) खड्गकरः ; (धनुः हस्ते यस्य सः) धनुर्हस्तः ।

(घ) 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका प्राग्भाव होता है ; यथा—(कृता विद्या येन सः) कृतविद्यः ; (कृतं कर्म येन सः) कृतकर्मा ; कृतकृत्यः ; (अधीतं व्याकरणं येन सः) अधीतव्याकरणः ; (भक्षितम् ओदनं येन सः) भक्षितौदनः ; (धृतम् आयुधं येन सः) धृतायुधः ; (उद्धृतः दण्डः येन सः) उद्धृतदण्डः ; (भग्नः मनोरथः यस्य सः) भग्नमनोरथः ; (पक्वः केशः यस्य सः) पक्वकेशः ।

(ङ) 'आहिताग्नि'-प्रभृति पदोंमे 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका विकल्पसे प्राग्भाव होता है ; यथा—(आहितः अग्निः येन सः) आहिताग्निः, अग्न्याहितः ; उद्यतासिः, अस्युद्यतः ; सुखोचितः , उचितसुखः ; जातसुखः, सुखजातः ; जातपुत्रः, पुत्रजातः ; जातदन्तः, दन्तजातः ; जातश्मश्रुः, श्मश्रुजातः ; पीततैलः, तैलपीतः ; पीतघृतः, घृतपीतः ; पीतसुरः, सुरापीतः ; ऊढभार्य्यः, भार्य्योढः ; गतार्थः, अर्थगतः ; प्राप्तकालः, कालप्राप्तः ; इत्यादि ।

८०६ । **सब समासोंमे**—अव्ययपदका प्राग्भाव होता है ; यथा—(न ब्राह्मणः) अब्राह्मणः ; (टीकया सह वर्त्तमानः) सटीकः ; (भिक्षायाः अभावः) दुर्भिक्षम् ; (आदित्यम् अतिक्रान्तम्)अत्यादित्यम् ।

समास-कार्य्य ।

(पुर्वपदमे)

८०७ । [अन्य]—'आशिस्'-प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'अन्य'-

शब्दके स्थानमे 'अन्यत्' होता है ; यथा—(अन्या आशीः) अन्यदाशीः ; (अन्यस्मिन् आशा) अन्यदाशा ; (अन्यस्मिन् आस्था) अन्यदास्था ; (अन्यम् आस्थितः) अन्यदास्थितः ; (अन्यस्मिन् उत्सुकः) अन्यदुत्सुकः ; (अन्यस्मिन् रागः) अन्यद्रागः ; (अन्यः कारकः) अन्यत्कारकः । *

(क) तृतीयान्त और षष्ठ्यन्त 'अन्य' शब्दका नहीं होता ; यथा—(अन्येन आशीः) अन्याशीः ; (अन्यस्य आशीः) अन्याशीः ।

(ख) 'अर्थ'-शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है ; यथा—(अन्यस्य अर्थः) अन्यदर्थः, अन्यार्थः ।

८०८ । [अवश्यम्]—'कृत्य'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'अवश्यम्'-शब्दके मकारका लोप होता है ; यथा—(अवश्यं देयम्) अवश्यदेयम् ; (अवश्यम् भव्यम्) अवश्यभव्यम् ; (अवश्यं कर्त्तव्यम्) अवश्यकर्त्तव्यम् ।

८०९ । [उदक]—'वास', 'पेषम्' प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'उदक'-शब्दके स्थानमे 'उद' होता है ; यथा—(उदके वासः) उदवासः ; "सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा [निनाय]" कु० ५. २६ ; उदपेषं पिनष्टि ; उदधिः ।

(क) कुम्भ, पात्र, बिन्दु प्रभृति शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है ; यथा—(उदकस्य कुम्भः) उदकुम्भः, उदककुम्भः ; उदपात्रम्, उदकपात्रम् ; उदबिन्दुः, उदकबिन्दुः । †

८१० । [उभ]—पूर्वस्थित 'उभ'-शब्दके स्थानमे 'उभय' होता

---

* 'ईय'-प्रत्ययमेभी होता है ; यथा—अन्यदीय. ।

† क्षीरोदः, लवणोदः—इत्यादि-स्थलोंमे उत्तरपदमेभी होता है ।

है ; यथा—(उभौ पक्षौ) उभयपक्षौ ।

८११ । [ऋकारान्त]—द्वन्द्व-समासमे—एक गोत्र समझानेसे, 'पुत्र'-शब्द और ऋकारान्त शब्द उत्तरपद होनेसे, ऋकारान्त पूर्वपदके 'ऋ' के स्थानमे 'आ' होता है। यथा—(पिता च पुत्रश्च) पितापुत्रौ ; (माता च पुत्रश्च) मातापुत्रौ । (माता च पिता च) मातापितरौ * ; (याता च ननान्दा च) याताननान्दरौ । गोत्रसम्बन्ध न रहनेसे नहीं होता ; यथा—(दाता च भोक्ता च) दातृभोक्तारौ ।

८१२ । [कु]—स्वरवर्ण और 'रथ' तथा 'वद' शब्द परे रहनेसे, 'कु'-शब्दके स्थानमे 'कत्' होता है। यथा—(कुत्सितः अश्वः) कदश्वः ; (कुत्सितः अर्थः) कदर्थः ; (कुत्सितम् अक्षरम्) कदक्षरम् ; (कुत्सितम् अन्नम्) कदन्नम् ; (कुत्सितः आचारः) कदाचारः ; (कुत्सितः उष्ट्रः) कदुष्ट्रः ; (कुत्सितम् उदकम्) कदुदकम् । (कुत्सितः रथः) कद्रथः ; (कुत्सितं वदति) कद्वदः ; "प्रियापाये कद्वदं हंसकोकिलम्" भ० ६. ७९. ।

(क) 'पथिन्' और 'अक्ष' शब्द परे रहनेसे, 'कु' के स्थानमे 'का' होता है ; यथा—(कुत्सितः पन्थाः) कापथम् † ; (कुत्सितम् अक्षम्)

---

* 'मातरपितरौ' पदभी होता है।

'मातृपितृसुहृदः'—इस स्थलमे 'पितृ'-शब्द उत्तरपद नहीं (६५५ पृष्ठ ७ पङ्क्ति द्रष्टव्य), इसलिये 'मातृ' के स्थानमे 'माता' नहीं हुआ । किन्तु पहले 'मातापितरौ' पद सिद्ध करके पीछे 'सुहृद्'-शब्दके साथ समास करनेसे 'मातापितृसुहृदः' हो सकता है।

† वोपदेवमते तु—"पथि-पुरुषे वा" इति सूत्रेण विभाषया कोः कादेशः,

काक्षम् (कुदृष्टिरित्यर्थः Frown, look of displeasure, malicious look) ; 'अक्ष'-शब्दस्य सामान्यत इन्द्रियवाचित्वेऽपि, प्रयोगात् नयनार्थो बोध्यः ; "काक्षेणानादरेक्षित." भ० ५. २४. । 'अक्षि'-शब्दके साथ बहुव्रीहि समासमेभी होता है ; यथा—(कुत्सितम् अक्षि यस्य सः) काक्षः [पुरुषः] ।

(ख) 'ईषत्' अर्थ समझानेसे, 'कु' के स्थानमे 'का' होता है ; यथा—(ईषत् मधुरम्) कामधुरम् ; (ईषत् लवणम्) कालवणम् ; (ईषत् अम्लम्) काम्लम् ।

(ग) 'पुरुष'-शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे 'का' होता है ; यथा—(कुत्सितः पुरुषः) कापुरुष., कुपुरुषः ।

(घ) 'उष्ण' शब्द परे रहनेसे, 'कु' के स्थानमे—का, कत् और कव होते हैं ; यथा—(ईषत् उष्णम्) कोष्णम्, कदुष्णम्, कवोष्णम् ।

८१३ । [तुमुन्]—'काम' और 'मनस्' शब्द परे रहनेसे, 'तुमुन्'-प्रत्ययके मकारका लोप होता है ; यथा—(गन्तुं कामः यस्य सः) गन्तुकामः ; (ग्रहीतुम् मनः यस्य सः) ग्रहीतुमनाः ।

८१४ । [नञ्]—स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'नञ्'-के स्थानमे 'अन्' होता है ; और व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे 'अ' होता है ; यथा—(न उचितः) अनुचितः ; (न भावः) अभावः । *

८१५ । [महत्]—विशेष्य पद परे रहनेसे, विशेषण 'महत्'-शब्दके स्थानमे 'महा' होता है । यथा—(कर्मधारय)—(महान् देवः)

तेन 'कुपथम्' इत्यपि सिध्यति ।

* 'नातिदूर'-प्रभृति स्थलोंमे 'न'-शब्दके साथ 'सुप् सुपेति समास' ।

महादेवः ; (महान् पुरुषः) महापुरुषः ; (महान् जनः) महाजनः ।*
(बहुव्रीहि)—(महान् कायः यस्य सः)महाकायः [हस्ती] ; (महत् बलं यस्य सः) महाबलः ; (महत् यशः यस्य सः) महायशाः ।

'महत्'-शब्द विशेष्य होनेसे नहीं होता ; यथा—(महताम् आश्रयः) महदाश्रयः ; (महतां सेवा) महत्सेवा ; (महतां वाक्यम्) महद्वाक्यम् ।

८१६ । [युस्मद्, अस्मद्]—एकवचनान्त 'युष्मद्'-शब्दके स्थानमे—'त्वत्', और 'अस्मद्'-शब्दके स्थानमे—'मत्' होता है ; यथा—(तव पुस्तकम्) त्वत्पुस्तकम् ; (मम गृहम्) मद्गृहम् । †

८१७ । [समान]—'गोत्र'-प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'समान'-शब्दके स्थानमे 'स' होता है ; यथा—(समानं गोत्रं—कुलं—यस्य सः) सगोत्रः, अथवा (समानं गोत्रम्) सगोत्रम् ; (समानं रूपं यस्य सः)

---

* 'शङ्ख'-प्रभृति शब्दके पूर्वमे 'महत्'-शब्द योग करनेसे 'निन्दा'-अर्थ होता है ; यथा—महाशङ्खः (शवकपाल, मानुषास्थि, नृललाटास्थि) ; महातैलम् (चर्बी) ; महामांसम् (नरमांस) ; महावैद्यः (निन्दित अर्थात् अज्ञ वा अनिपुण चिकित्सक) ; महाज्यौतिषिकः (अनभिज्ञ ज्योतिषी) ; महाद्विजः, महाब्राह्मणः (नीच ब्राह्मण) ; महायात्रा (मरनेको जाना) ; महापथः (मृत्युपथ) ; महानिद्रा (मृत्यु) ।

"शङ्खे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्यौतिषिके द्विजे ।
यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥"

† प्रत्यय परे रहनेसेभी होता है ; यथा—(तव इदम्) त्वदीयम् ; (मम इदम्) मदीयम् । द्विवचनान्त और बहुवचनान्त—युष्मत्पुस्तकम्, युष्मदीयम् ; अस्मत्पुस्तकम्, अस्मदीयम् ।

सरूपः ; (समानः वर्णः यस्य सः) सवर्णः ; (समानः पक्षः यस्य सः) सपक्षः, अथवा (समानः पक्षः) सपक्षः ; (समानः नाभिः—गोत्रं, मूलपुरुषो वा—यस्य सः) सनाभिः ; (समानः पिण्डः—देहः, मूलपुरुषः, निवापो वा—यस्य सः) सपिण्डः ; (समानं नाम यस्य सः) सनामा ; (समानं वयः यस्य सः) सवयाः ; (समानः तीर्थः—गुरुः—यस्य सः) सतीर्थः ; (समाने तीर्थे वसति) सतीर्थ्यः ; (समानः ब्रह्मचारी) सब्रह्मचारी* ; (समानः धर्मः यस्य सः) सधर्मा ; (समानः जातीयः) सजातीयः ; सस्थानः ; सवचनः ; इत्यादि । †

(क) 'उदर्य्य'-शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है ; यथा—(समाने उदरे शयितः) सोदर्य्यः, समानोदर्य्यः ।

८१८ । [सह]—बहुव्रीहि-समासमें—'सह'-शब्दके स्थानमें विकल्पसे 'स' होता है ; यथा—(धनेन सह वर्त्तमानः) सधनः, सहधनः ; (अनुजेन सह वर्त्तमानः) सानुजः, सहानुजः ।

---

* सतीर्थ्यः, सब्रह्मचारी—सहाध्याय इत्यर्थः Fellow-student ("दुःखसब्रह्मचारिणी तरलिका क्व गता" ? काद० ; "भद्र व्यसनसब्रह्मचारिन् ! यदि न गुह्यम् , ततः श्रोतुमिच्छामि" मुद्रा० ६ ; सब्रह्मचारिन्—सहानुभूतिशालिन्) । ब्रह्म वेदः, तदध्ययनार्थं यद्व्रतं तदपि ब्रह्म, तत् चरति इति ब्रह्मचारी ।

† "नाम-गोत्र-रूप-स्थान-वर्ण-वयो वचन-जातीये वा इति चान्द्राः" अर्थात् 'चन्द्र'-मते, नाम-प्रभृति आठ शब्द परे रहनेसे विकल्पसे 'स' होता है ; यथा—सनामा, समाननामा ; सगोत्रः, समानगोत्रः इत्यादि । कोई कोई 'धर्म' शब्दकोभी लेते हैं ; यथा—सधर्मा, समानधर्मा ।

पदकार्य्य ।

८१९। पद होनसे, सब व्यञ्जनान्त शब्दकी आकृति सप्तमीके बहुवचनके तुल्य होती है ; यथा—वाच्-ईशः=वाक्+ईशः=वागीशः ; सुहृद्-समागमः=सुहृत्समागमः ; राजन्-वरः=राजवरः ; अहन्-मुखम्=अहः+मुखम्=अहर्मुखम् ; दिव्-लोकः=द्युलोकः ; विद्वस्-वरः=विद्वत्+वरः=विद्वद्वरः ; पुमस्-लिङ्गः=पुंलिङ्गः ।

पुंवद्भाव ।

८२०। स्त्रीलिङ्ग विशेष्य पद परे रहनेसे, विशेषण उक्तपुंस्क (भापितपुंस्क) स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव अर्थात् पुंलिङ्गके तुल्य आकार होता है * । यथा—(कर्मधारय)—(सुन्दरी बालिका) सुन्दरबालिका ; (कृष्णा चतुर्दशी) कृष्णचतुर्दशी ; (पाचिका स्त्री) पाचकस्त्री ; (पञ्चमी कन्या) पञ्चमकन्या ; (महती नवमी) महानवमी ; (सुकेशी भार्य्या) सुकेशभार्य्या ; (ब्राह्मणी भार्य्या) ब्राह्मणभार्य्या । (बहुव्रीहि)—(स्थिरा बुद्धिः यस्य सः) स्थिरबुद्धिः ; (महती मतिः यस्य सः) महामतिः ; (चित्रा गतिः यस्य सः) चित्रगतिः ; (दृढा भक्तिः यस्य सः) दृढभक्तिः—र० १२. १९ ; (प्रिया भार्य्या यस्य सः) प्रियभार्य्यः ; (काली तनुः यस्य सः) कालतनुः । †

---

* जो शब्द पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमे एकही आकारमे एकही अर्थ समझाता है, उसको 'उक्तपुंस्क' वा 'भापितपुंस्क' स्त्रीलिङ्ग शब्द कहते हैं ।

† 'कप्'-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग-शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता ; यथा—(कर्मधारय)—(वामोरूः भार्य्या) वामोरूभार्य्या ; (बहुव्रीहि)—(वामोरूः

८२१ । उत्तरपद परे रहनेसे, स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम शब्दका पुंवद्भाव होता है ; यथा—(सर्वस्याः धनम्) सर्वधनम् ; (भवत्याः प्रसादः भवत्प्रसादः ।

८२२ । 'अण्ड'-प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'कुक्कुटी'-प्रभृति शब्दका

भार्य्या यस्य सः) वामोरूभार्य्यः ।

(क) बहुव्रीहि-समासमे—जिस स्त्रीलिङ्ग शब्दकी उपधामे तद्धितका अथवा अक'-प्रत्ययका 'क' रहता है, उसका पुंवद्भाव नहीं होता ; यथा—(तद्धित)—(रसिका भार्य्या यस्य सः) रसिकाभार्य्यः ; ('अक'-प्रत्यय)—(पाचिका भार्य्या यस्य स.) पाचिकाभार्य्यः ।

(ख) पूरणवाचक स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता ; यथा—(द्वितीया भार्य्या यस्य सः) द्वितीयाभार्य्यः ; (पञ्चमी भार्य्या यस्य सः) पञ्चमीभार्य्यः ।

(ग) जातिवाचक और स्वाङ्गवाचक स्त्रीलिङ्ग-शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता । यथा—(जातिवाचक)—(ब्राह्मणी भार्य्या यस्य सः) ब्राह्मणीभार्य्य. ; (क्षत्रिया भार्य्या यस्य स) क्षत्रियाभार्य्यः । (स्वाङ्गवाचक)—(सुकेशी भार्य्या यस्य स·) सुकेशीभार्य्यः ; (कृशाङ्गी भार्य्या यस्य सः) कृशाङ्गीभार्य्यः ।

(घ) प्रिया, कान्ता, तनया, दुहिता—इत्यादि शब्द परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता ; यथा—(शोभना प्रिया यस्य सः) शोभनाप्रियः ; (सुलोचना कान्ता यस्य सः) सुलोचनाकान्तः ; (सुन्दरी तनया यस्य सः) सुन्दरीतनयः ; (गुणवती दुहिता यस्य सः) गुणवतीदुहितृकः ।

पुंवद्भाव होता है ; यथा—(कुक्कुट्याः अण्डम्) कुक्कुटाण्डम् ; (हंस्याः अण्डम्) हंसाण्डम् ; (काक्याः शावकः) काकशावकः ; (मृग्याः शावः) मृगशावः ; (छाग्याः दुग्धम्) छागदुग्धम् ; (महिष्याः क्षीरम्) महिषक्षीरम् ; (मृग्याः पदम्) मृगपदम् ।

समास-कार्य्य ।

(उत्तरपदमे)

८२३ । [अ आ इ ई]—समास-प्रत्ययका स्वरवर्ण परे रहनेसे, अवर्ण और इवर्णका लोप होता है ; यथा—अल्पमेधा-अस्—अल्पमेधस् ; विशालाक्षि-अ—विशालाक्ष ।

८२४ । [उ ऊ न]—समास-प्रत्ययका स्वरवर्ण परे रहनेसे, उवर्णके स्थानमे 'ओ' होता है, और नकारका लोप होता है ; यथा—बाहु-बाहु-इ (इच्)—बाहूबाहवि ; महाराजन्-अ (ट)—महाराजः ।

८२५ । [दीर्घस्वर]—क्लीवलिङ्गका विशेषण होनेसे, दीर्घस्वर ह्रस्व होता है ; यथा—(विश्वं पाति इति) विश्वपं [ब्रह्म] ; छश्रि ; सुभ्रु ; (नावम् अतिक्रान्तम्) अतिनु [जलम्] ।

८२६ । [आप् ईप्]—अन्य पदका विशेषण होनेसे, 'आप्' और 'ईप्'-प्रत्ययका ह्रस्व होता है ; यथा—(त्यक्ता लज्जा येन सः) त्यक्तलज्जः [पुमान्] ; (अतिक्रान्तः प्रेयसीम्) अतिप्रेयसिः [कृष्णः] * ।

---

* बहुव्रीहि-समासमे 'ईयसु'-प्रत्ययके परवर्त्ती 'ईप्'-प्रत्ययका ह्रस्व नहीं होता ; यथा—(बह्व्यः प्रेयस्यः यस्य सः) बहुप्रेयसी [कृष्णः] ।

(क) बहुव्रीहि-समासमे 'क' (कप्) प्रत्यय होनेसे, 'आप्'-प्रत्ययका

८२७। [गो]—अन्य पदका विशेषण होनेसे, 'गो'-शब्दके स्थानमे 'गु' होता है; यथा—(उष्णा गौः—किरणः—यस्य सः) उष्णगु (सूर्य्य इत्यर्थः); (शीता गौः यस्य सः) शीतगुः (चन्द्र इत्यर्थः)।

८२८। [पाद]—बहुव्रीहि-समासमे—उपमानवाचक पदके परवर्त्ती 'पाद'-शब्दके स्थानमे 'पाद्' होता है; यथा—(व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः) व्याघ्रपात्। 'हस्तिन्'-प्रभृतिके परवर्त्ती होनेसे नहीं होता; यथा—(हस्तिन इव पादौ यस्य सः) हस्तिपादः; कुम्भपादः इत्यादि।

(क) 'सु'-शब्द और सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे, 'पाद'-शब्दके स्थानमे 'पाद्' होता है। यथा—(शोभनौ पादौ यस्य सः) सुपात्। (द्वौ पादौ यस्य सः) द्विपात्; (त्रयः पादाः यस्य सः) त्रिपात्; चतुष्पात्—(स्त्री०) चतुष्पदी।

समास-प्रत्यय।

८२९। [तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु समासमे] एकदेशवाचक शब्दके परवर्त्ती 'रात्रि'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है; यथा—(अर्द्धं रात्रेः) अर्द्धरात्रः; (७४२ (ख) सूत्र)।

(क) एकदेशवाचक शब्दके परवर्त्ती 'महन्'-शब्दके उत्तर 'अ'

विकल्पसे ह्रस्व होता है; यथा—(बहवः विद्याः यस्य सः) बहुविद्याकः, बहुविद्यकः।

(ख) षष्ठीतत्पुरुष-समासमे, बहुवचनान्त पद पूर्वमे रहनेसे, 'छाया'-शब्द क्लीवलिङ्ग होता है; यथा—(वृक्षाणां छाया) वृक्षच्छायम्; (इक्षूणां छाया) इक्षुच्छायम्; (शराणां छाया) शरच्छायम्। पूर्वपद एकवचन होनेसे विकल्पसे; यथा—(वृक्षस्य छाया) वृक्षच्छाया, वृक्षच्छायम्।

(टच्) होता है, और 'अहन्'-शब्दके स्थानमे 'अह्न्' आदेश होता है ; यथा—मध्याह्नः (७४२ (ख) सूत्र)।

(ख)। 'सर्व'-शब्द, 'पुण्य'-शब्द, सङ्ख्यावाचक शब्द और अव्यय शब्दके परवर्त्ती 'रात्रि'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(सर्वा रात्रिः) सर्वरात्रः। (पुण्या रात्रिः) पुण्यरात्रः। (द्वयोः रात्र्योः समाहारः) द्विरात्रम् ; (तिसृणां रात्रीणां समाहारः) त्रिरात्रम् ; पञ्चरात्रम् ; दशरात्रम्। (रात्रिम् अतिक्रान्तः) अतिरात्रः।

(ग) 'सर्व'-शब्द, 'पुण्य'-शब्द, सङ्ख्यावाचक शब्द और अव्यय शब्दके परवर्त्ती 'अहन्'-शब्दके उत्तर 'अ' (टच्) होता है, और 'अहन्'-शब्दके स्थानमे 'अह्न्' होता है।* यथा—(सर्वम् अहः) सर्वाह्नः। (द्वयोः अह्नोः भवः) द्वयह्नः (तद्धितार्थे द्विगु) ; (पञ्चसु अहःसु भवः) पञ्चाह्नः। (निर्गतः अह्नः) निरह्नः ; निरह्ना वेला।

(घ) सङ्ख्यावाचक और अव्यय शब्दके परवर्त्ती 'अङ्गुलि'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य) द्वयङ्गुलम् ; त्र्यङ्गुलम्। (निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः) निरङ्गुलम् ; (प्रकृष्टाः अङ्गुलयः) प्राङ्गुलाः।

---

* 'पुण्य'-शब्द और 'एक-शब्दके परवर्त्ती 'अहन्' के स्थानमे 'अह्न्' नहीं होता ; यथा—पुण्याहम् (ट) ; एकाहः (ट)।

(क) समाहार-द्विगु समासमे, 'अहन्' के स्थानमें 'अह्न्' नहीं होता ; यथा—(द्वयोः अह्नोः समाहारः) द्व्यहः (ट) ; त्र्यहः ; दशाहः।

'रात्र' और 'अह्न' शब्द पुंलिङ्ग ; किन्तु सङ्ख्यापूर्व 'रात्र'-शब्द क्लीवलिङ्गः। 'अह'-शब्द पुंलिङ्ग ; किन्तु 'पुण्याह'-शब्द क्लीवलिङ्ग।

(छ) राजन्, अहन् और सखि शब्दके उत्तर 'ट' (टच्) होता है; 'ट्' इत्, 'अ' रहता है। यथा—(अङ्गानां राजा) अङ्गराजः; (महान् राजा) महाराजः—(स्त्री०) महाराज्ञी। (पूर्वम् अहः) पूर्वाह्णः; (परमम् अहः) परमाहः; (उत्तमम् अहः) उत्तमाहः। (राज्ञः सखा) राजसखः; (प्रियः सखा) प्रियसखः—(स्त्री०) प्रियसखी।

(च) 'गो'-शब्दके उत्तर 'ट' होता है; यथा—(राज्ञः गौः) राजगवः—(स्त्री०) राजगवी; (परमो गौः) परमगवः; (दश गावः धनम् अस्य) दशगवधनः; (पञ्चानां गवां समाहारः) पञ्चगवम्। तद्धिता 'मे नहीं होता; यथा—(पञ्चभिः गोभिः क्रीतः) पञ्चगुः।*

(छ) 'कु' और 'महत्'-शब्दके परवर्त्ती 'ब्रह्मन्'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ट' होता है; यथा—(कुत्सितः ब्रह्मा—ब्राह्मण इत्यर्थः) कुब्रह्मः, कुब्रह्मा; महाब्रह्मः, महाब्रह्मा।

८३०। [कर्मधारय-समासमे] वृद्ध, महत् और जात शब्दके परवर्त्ती 'उक्षन्'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है; यथा—(वृद्धः उक्षा) वृद्धोक्षः; (महान् उक्षा) महोक्षः; (जातः उक्षा) जातोक्षः।

८३१। [द्विगु-समासमे] 'द्वि' और 'त्रि'-शब्दके परवर्त्ती 'अञ्जलि'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ट' (टच्) होता है; यथा—(द्वयोः अञ्जल्योः समाहारः) द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि; त्र्यञ्जलम्, त्र्यञ्जलि।

* ऐसे—(पुरुषस्य आयुः) पुरुषायुषम्; (निश्चितं श्रेयः) निःश्रेयसम्; (शोभनं श्रेयः) श्वःश्रेयसम्; (ब्रह्मणो वर्चः) ब्रह्मवर्चसम्; (गोः अक्षि इव) गवाक्षः; (अन्धश्च तत् तमश्च) अन्धतमसम्; इत्यादि। (अन्धयति इति अन्धम्—पचाद्यच्)।

८३२। [द्वन्द्व-समासमे] 'स्त्रीपुंसौ'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध ; यथा—(स्त्री च पुमांश्च) स्त्रीपुंसौ ; (वाक् च मनश्च) वाङ्मनसे ; (नक्तञ्च दिवा च) नक्तन्दिवम् ; (रात्रौ च दिवा च) रात्रिन्दिवम् ; (अहनि च दिवा च) अहर्दिवम् (अहनि अहनि इत्यर्थः—, रोज़ बरोज़ या रोज़मर्रह्) ; (अहश्च रात्रिश्च) अहोरात्रः ; इत्यादि।

८३३। [बहुव्रीहि-समासमे] 'अक्षि' और 'सक्थि'-शब्दके उत्तर 'ष' (षच्) होता है ; 'ष्' इत्, 'अ' रहता है। यथा—(दीर्घे अक्षिणी यस्मिन् तत्) दीर्घाक्षं [वदनम्] ; [विशाले अक्षिणी यस्याः सा) विशालाक्षी [देवी]। (दीर्घे सक्थिनी यस्य सः) दीर्घसक्थः [पुरुषः] ; (वृत्ते सक्थिनी यस्याः सा) वृत्तसक्थी [नारी]।*

(क) 'द्वि' और 'त्रि'-शब्दके परवर्त्ती 'मूर्द्धन्'-शब्दके उत्तर 'ष' होता है ; यथा—(द्वौ मूर्द्धानौ यस्य सः) द्विमूर्द्धः ; (त्रयः मूर्द्धानः यस्य सः) त्रिमूर्द्धः। अन्यत्र नहीं होता ; यथा—(पञ्च मूर्द्धानो यस्य सः) पञ्चमूर्द्धा।

(ख) संज्ञा समझानेसे, 'नाभि'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'अ' (अच्) होता है ; यथा—पद्मनाभः, पद्मनाभिः ; (अरविन्दं नाभौ यस्य सः) अरविन्दनाभः, अरविन्दनाभिः—"प्रजा इवाङ्गादरविन्दनाभेः" माघ० ३. ६८ ; (ऊर्णा इव तन्तुः नाभौ यस्य सः) ऊर्णनाभः,† ऊर्ण-

---

* प्राणीका अङ्ग न समझानेसे नहीं होता ; यथा—स्थूलाक्षिः इक्षुदण्डः ; दीर्घसक्थि शकटम्।

† संज्ञा समझानेसे, पूर्वपदस्थ 'आप्' और 'ईप्'-प्रत्ययका बहुल ह्रस्व होता है ; यथा—(काल्याः दासः) कालिदासः (कविविशेषः) ; (प्रम-

नाभिः—"प्रवृत्तिर्नो विना कार्य्यमूर्णनाभेरपीष्यते" भट्टवार्त्तिकम् ।

(ग) सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्त्ती सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'ड' होता ; 'ड्' इत्, 'अ' रहता है ; यथा—(द्वौ वा त्रयो वा) द्वित्राः ; (पञ्च वा षट् वा) पञ्चषाः* ।

(घ) 'धर्म'-शब्दके उत्तर 'अन्' (अनिच्) होता है ; यथा—(विदितः धर्मः येन सः) विदितधर्मा ; त्यक्तधर्मा ; (मरणं धर्मः यस्य सः) मरणधर्मा ; (जननमरणे धर्मौ यस्य सः) जननमरणधर्मा ; (साक्षात्कृतः धर्मः येन सः) साक्षात्कृतधर्मा—"साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः" उत्तर० ७. ।

(ङ) 'धनुस्'-शब्दके उत्तर 'अन्' (अनङ्)' होता है ; और सकारका लोप होता है ; यथा—(गृहीतं धनुः येन सः) गृहीतधन्वा ; (अधिज्यं धनुः यस्य सः) अधिज्यधन्वा † ।

(च) नञ्, दुर् और सु शब्दके परवर्त्ती 'प्रजा'-शब्दके उत्तर 'अस्' (असिच्) होता है ; यथा—(अविद्यमाना प्रजा यस्य सः) अप्रजाः (अप्रजस्) ; (दुष्टा प्रजा यस्य सः) दुष्प्रजाः ; (शोभना प्रजा यस्य सः) सुप्रजाः ।

(छ) नञ्, दुर्, सु, मन्द और अल्प शब्दके परवर्त्ती 'मेधा'-

दानां वनम्) प्रमदवनम्, प्रमदावनम् ; (वैदेह्याः बन्धुः) वैदेहिबन्धुः—र० १४. २२ ; इत्यादि ।

* किन्तु (त्रयो वा चत्वारो वा) त्रिचतुराः ।

† संज्ञा समझानेसे, विकल्पसे होता है ; यथा—(पुष्पं धनुर्यस्य सः) १, पुष्पधनुः (कन्दर्प इत्यर्थः)—माघ० ९, ४१. ।

शब्दके उत्तर 'अस्' होता है; यथा—अमेधाः, दुर्मेधाः, सुमेधाः; (मन्दा मेधा यस्य सः) मन्दमेधाः; अल्पमेधाः।

(ज) सु, उत्, पूति और सुरभि शब्दके परवर्त्ती गुणवाचक 'गन्ध'-शब्दके उत्तर 'इ' होता है; यथा—(शोभनः गन्धः यस्य सः) सुगन्धिः; (उद्गतः गन्धः यस्य सः) उद्गन्धिः; (पूतिः—दुष्टः—गन्धः यस्य सः) पूतिगन्धिः; (सुरभिः—मनोहरः—गन्धो यस्य सः) सुरभिगन्धिः।

स्वाभाविक गन्ध न होनेसे नहीं होता; यथा—सुगन्धः पवनः; "आघ्रायि वान् गन्धवहः सुगन्धस्तेनारविन्दव्यतिपङ्कवांश्च" (वान् वहन् वायुराघ्रात इत्यर्थः) भ० २. १०.। *

(झ) उपमानवाचक पदके परवर्त्ती 'गन्ध'-शब्दके उत्तर 'इ' होता है †; यथा—(पद्मस्य इव गन्धो यस्य तत्) पद्मगन्धि [मुखम्]।

(ञ) 'जाया'-शब्दके उत्तर 'इ' होता है, और 'जाया' के स्थानमे 'जान्' होता है; यथा—(सीता जाया यस्य सः) सीताजानिः; (युवतिः जाया यस्य सः) युवजानिः; (प्रिया जाया यस्य सः) प्रियजानिः; (सुन्दरी जाया यस्य सः) सुन्दरजानिः।

(ट) 'उरस्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'कप्' होता है; 'प्' इत्, 'क' रहता है; यथा—(व्यूढम्—विपुलम्—उरः यस्य सः) व्यूढोरस्कः; (पीतं सर्पिः येन सः) पीतसर्पिष्कः; (उपानह्यां सह वर्त्तमानः)

---

* "गन्धाद्वा इति चान्द्राः"।

† शाकटायन-मते विकल्पसे; यथा—पद्मगन्धि, पद्मगन्धम्।—"वोपमानात्"।

सोपानत्कः; (भावितः पुमान् येन स) भावितपुंस्कः [शब्द]; (प्रचुरं पयः यस्याः सा) प्रचुरपयस्का [धेनुः]; (प्राप्ता लक्ष्मीः येन सः) प्राप्तलक्ष्मीकः; (आहृत मधु येन सः) आहृतमधुकः; (विक्रीयमाणं दधि यया सा) विक्रीयमाणदधिका [गोपी]; (न विद्यते अर्थः यस्मिन् तत्) निरर्थकम्, अनर्थकम्।

(ठ) स्त्रीलिङ्गमे, 'इन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'कप्' होता है; यथा—(बहवः धनिनः यस्यां सा) बहुधनिका [नगरी]; (बहवः वाग्मिनः यस्यां सा) बहुवाग्मिका [सभा]।

(ड) ऋकारान्त शब्द और स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दके उत्तर 'कप्' होता है। यथा—(नास्ति पिता यस्य सः) निष्पितृकः; (मात्रा सह वर्त्तमान.) समातृकः; (मृतः भर्त्ता यस्याः सा) मृतभर्तृका। (स्त्रिया सह वर्त्तमानः) सस्त्रीकः; (मृता पत्नी यस्य सः) मृतपत्नीकः; (बह्वः कुमार्य्यः यस्य सः) बहुकुमारीकः; (मधुरा वाणी यस्य सः) मधुरवाणीकः। (प्रौढा वधूः यस्य सः) प्रौढवधूकः।*

('स्त्री'-शब्द-भिन्न) जिनके स्थानमे 'इय्' 'उव्' होते हैं, ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दके उत्तर नहीं होता; यथा—(शोभना श्रीः यस्य सः) सुश्रीः; (शोभना भ्रूः यस्य सः) सुभ्रूः।

(ढ) पूर्वोक्त-भिन्न अन्यविध शब्दके उत्तर विकल्पसे 'कप्' होता है; यथा—(लब्धं यशः येन सः) लब्धयशस्कः, लब्धयशाः; (प्राप्तं तेजः येन सः) प्राप्ततेजस्कः, प्राप्ततेजाः; (मुण्डितं शिरः यस्य सः) मुण्डितशिर-

* प्रशंसा समझानेसे, 'भ्रातृ'-शब्दके उत्तर 'कप्' नहीं होता; यथा—सुभ्राता; पण्डितभ्राता; साधुभ्राता। अन्यत्र—मूर्खभ्रातृकः; बहुभ्रातृकः।

स्कः, मुण्डितशिराः ; (धृतं धनुः येन सः) धृतधनुष्कः, धृतधनुः ; (अर्जितं धनं येन सः) अर्जितधनकः, अर्जितधनः ; (अन्यस्मिन् मनः यस्य सः) अन्यमनस्कः, अन्यमनाः ।

(ण) व्यतीहार-अर्थमे 'इच्' होता है ; 'च्' इत्, 'इ' रहता है ; यथा—केशाकेशि, मुष्टीमुष्टि, बाहूबाहवि ।*

८३४ । [अव्ययीभाव-समासमे] 'शरद्'-प्रभृति † शब्दके उत्तर 'अ' (टच्) होता है ; यथा—(शरदि शरदि) प्रतिशरदम् ; (दिशि दिशि) प्रतिदिशम् ; (हिमवत्पर्य्यन्तम्) आहिमवतम् ; अनुदृशम् ।

(क) 'जरा'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है ; 'अ' होनेसे, 'जरा'-के स्थानमे 'जरस्' होता है ; यथा—(जरायाः समीपे) उपजरसम् ।

(ख) सम् , अनु, प्रति और पर शब्दके परवर्त्ती 'अक्षि'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है ; यथा—(अक्ष्णः समीपे) समक्षम् , अन्वक्षम् ; (अक्षि प्रति) प्रत्यक्षम् ; (अक्ष्णः परम्) परोक्षम् ‡ ।

(ग) 'अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'अ' होता है ; यथा—(राजनि) अधिराजम् ; अध्यात्मम् ; प्रत्यध्वम् । §

---

* पूर्वपदका अन्त्यस्वर दीर्घ होता है । शाकटायन-मते—पूर्वपदके अन्त्य-स्वरके स्थानमे 'आ' होता है ; यथा—मुष्टामुष्टि, बाहाबाहवि ।—"आदि-जन्ते" । स्वरवर्ण परे रहनेसे नहीं होता ; यथा—अस्यसि ।

† शरद् , अनस् , मनस् , चेतस् , उपानह् , अनडुह् , दिव् , हिमवत् ; दिश् , दृश् इत्यादि ।

‡ 'अक्षि'-शब्द परे रहनेसे, 'पर' के स्थानमे 'परस्' होता ।

§ क्लीवलिङ्ग-शब्दके उत्तर विकल्पसे होता है ; यथा—उपचर्मम् , उपचर्म ।

(घ) गिरि, नदी, पौर्णमासी और आग्रहायणी शब्दके उत्तर विकल्पसे 'अ' होता है ; यथा—(गिरेः समीपम्) उपगिरम्, उपगिरि ; उपनदम्, उपनदि ; उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि ; उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि ।

(ङ) पञ्चम-भिन्न स्पर्शवर्णान्त शब्दके (अर्थात् वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्णके) उत्तर विकल्पसे 'अ' होता है ; यथा— उपदृशदम्, उपदृशत् ; अनुसमिधम्, अनुसमित् ।

(च) 'प्रति'-शब्दके परवर्त्ती सप्तम्यर्थमे वर्त्तमान 'उरस्'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है ; यथा—(उरसि) प्रत्युरसम् ।

८३५ । [सर्वसमासमे] 'पथिन्'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है । यथा—(राज्ञां पन्थाः) राजपथः ; (दृष्टेः पन्थाः) दृष्टिपथः ; (जले पन्थाः) जलपथः ; (दक्षिणा—दक्षिणस्यां दिशि—पन्थाः) दक्षिणापथः । (सन् पन्थाः) सत्पथः । (कुत्सितः पन्थाः) कापथः । (त्रयाणां पथां समाहारः) त्रिपथम् ; (चतुर्णां पथां समाहारः) चतुष्पथम् । (क्षेत्रञ्च पन्थाश्च) क्षेत्रपथौ । (रम्यः पन्थाः यस्मिन् तत्) रम्यपथं [नगरम्] । (पन्थानं प्रति) प्रतिपथम् ।

अव्यय-शब्दके परवर्त्ती होनेसे क्लीवलिङ्ग होता है ; यथा—(विरुद्धः पन्थाः) विपथम् ; (गर्हितः पन्थाः) उत्पथम् ; (अपकृष्टः पन्थाः) अपपथम् ।

(क) 'अप्'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है ; यथा—(विमलाः आपः यस्मिन् तत्) विमलापं [सरः] ; (उद्धृताः आपः यस्मात् सः) उद्धृतापः [कूपः] ।

(ख) पुर्, धुर् और ऋच् शब्दके उत्तर 'अ' होता है । यथा—(राज्ञः पूः) राजपुरम् । (राज्यस्य धूः) राज्यधुरा ; (महती धूः) महाधुरा ; (विश्वस्य धूः) विश्वधुरा ; (रणस्य धूः) रणधुरा—"ताते चापद्वितीये वहति रणधुराम्*" वेणी० ३. ७ ; "कार्य्यधुरां† वहन्ति" मुद्रा० १. १४ ; "न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति" मृच्छ० ४. १७ ; (धृता धूः येन सः) धृतधुरः ।† (अर्द्धम् ऋचः) अर्द्धर्चः, अर्द्धर्चम् ‡ ; (अधिगता ऋक् येन सः) अधिगतर्चः ।

समासप्रत्यय-निषेध ।

८३६ । पूजार्थ (प्रशंसावाची) 'सु' और 'अति'-शब्द पूर्वमे रहनेसे, समास-प्रत्यय नहीं होता ; यथा—(शोभनो राजा) सुराजा ; (शोभनो राजा यस्मिन् सः) सुराजा [देशः] ; (अतिशयेन राजा) अतिराजा ; सुसखा, अतिसखा ; सुगौः, अतिगौः ; सुपन्थाः ।

(क) निन्दार्थ 'किम्'-शब्द पूर्वमे रहनेसे, समासप्रत्यय नहीं होता ; यथा—(कुत्सितो राजा) किंराजा ; (कुत्सितः सखा) किंसखा ; (कुत्सितः पन्थाः यस्मिन् सः) किम्पन्थाः [देशः] ।

(ख) तत्पुरुष-समासमे, 'नञ्'-शब्द पूर्वमे रहनेसे, समास-प्रत्यय नहीं होता ; यथा—(न राजा) अराजा ; असखा ; अगौः ।

---

* 'रणधुरम्' इति च पाठः । † 'कार्य्यधुरम्' इति च पाठः ।

† 'अक्ष'-शब्दका सम्बन्ध रहनेसे नहीं होता ; यथा—(अक्षस्य धूः) अक्षधूः ; (दृढा धूः यस्य सः) दृढधूः [अक्षः] ।

‡ 'अर्द्धर्चादि'-शब्द पुंलिङ्ग और क्लीवलिङ्ग (अर्द्धर्च, गोमय, कार्षापण, ध्वज, नखर, चरण, मधु, मूल, तण्डुल इत्यादि) ।

'पथिन्'-शब्दके उत्तर विकल्पसे। समासान्त-पक्षमे क्लीवलिङ्ग होता है ; यथा—अपथम्, अपन्थाः।

समास-विच्छेद।

※ समास-विच्छेद करनेके समय, उसका विग्रहवाक्य कहना होता है। किन्तु किसी वाक्यके अन्तर्गत समस्तपदका समास-विच्छेद करनेके समय, पुनरुक्ति-प्रभृति दोष-परिहार तथा अन्यान्य पदके साथ अन्वय-रक्षा करनेके लिये कुछ कुछ परिवर्जन, परिवर्द्धन और परिवर्त्तनभी करना होता है। यथा—

दधिभाण्डम् = दध्नो भाण्डम्।

मस्तकस्थितात् = मस्तके यत् स्थितं तस्मात् *।

यूयं सन्ध्यासमये महारवं करिष्यथ = यूयं सन्ध्यायाः समये महान्तं रवं करिष्यथ।

त्रिभुवने भवादृशः कोऽपि नास्ति = त्रिषु भवनेषु भवादृशः कोऽपि नास्ति।

दानमानाभ्यां तं पूजयामास = दानेन मानेन च तं पूजयामास।

निरपराधो हंसस्तेन व्यापादितः = यस्यापराधो नासीत् स हंसस्तेन व्यापादितः।

स प्रतिदिनं विद्याभ्यासे सयत्नं प्रवर्त्तते = स दिने दिने विद्याया अभ्यासे यत्नेन सह प्रवर्त्तते।

समास होनेके पश्चात्—सिंह, व्याघ्र-प्रभृति शब्द 'श्रेष्ठ'-अर्थ

---

* समस्तपद द्वितीयादिविभक्तियुक्त रहनेसे, समासविच्छेद वा विग्रहवाक्यमे, अन्तमे इसप्रकार 'तद्'-शब्दका वही-विभक्तियुक्त पद कहना होता है।

समझाते हैं; और निभ, सङ्काश-प्रभृति शब्द* 'तुल्य'-अर्थ समझाते हैं; इसलिये समासविच्छेदमे उनके स्थानमे श्रेष्ठार्थ और तुल्यार्थ पद बैठाना चाहिये; यथा—पुरुषसिंहः=पुरुषाणां श्रेष्ठः; देवसङ्काशः=देवस्य सदृशः।

समास-प्रश्नमाला।

समास-विच्छेद करो—वृद्धश्रृगालः। सर्वस्वामिगुणोपेतः। सामर्थ्यहीनः। मन्मरणम्। मत्स्यकण्टकाकीर्णम्। कम्बुग्रीवनामा। स्वकीयोत्कर्षम्। अरण्यवासिषु। क्षुत्क्षामः। चन्द्रार्द्धचूडामणिः। मांसाहारदानेन। तत्कृतरावम्। लगुडहस्तः। हृष्टपुष्टाङ्गः। अस्मत्सौख्यम्। सकोपम्। विश्रम्भालापैः। नीरुजः। व्याघ्रभीतः। रक्तविलिप्तमुखपादः। पार्श्वगतात्। भग्नाशः। प्रत्यहम्। अज्ञातकुलशीलेन। शताब्दी। स कूर्मः कोपाविष्टो विस्मृतपूर्ववचनः प्रोवाच। ततस्तेन सिंहव्याघ्रादीन् उत्तमपरिजनान् प्राप्य स्वजातीयाः सर्वे दूरीकृताः। नास्ति क्षुद्रजन्तूनामपि निमज्जनस्थानम्। ततस्तत्तीरावस्थिता गजपादाहतिभिश्चूर्णिताः क्षुद्रशशकाः। ततस्तेन नकुलेन बालकसमीपमागच्छन् कृष्णसर्पो दृष्ट्वा व्यापादितः। आसीत् सकलराजलक्षणोपेतः शूद्रको नाम राजा। एकदाऽसौ अमात्यगणपरिवृतः परिषदमास्थितः। तदैको राजपुत्रः पुत्रभार्य्यासमेतो देशान्तरादाजगाम।

समास करो, और कौन समास कहो—गुरोर्वचनं शृणुयात्। शीतलं

---

* निभ, सङ्काश, नीकाश, प्रतीकाश प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसेही 'सदृश'-वाची होते हैं।—

"स्युरुत्तरपदे त्वमी।
निभ-सङ्काश-नीकाश-प्रतीकाशोपमादयः॥" (तुल्यार्था इति शेषः)।

जलं पिब । कुठारेण छिन्नो वृक्षः । नद्यां मग्ना नौका । सः अस्माकं गृहम् आगमिष्यति । मया कृतं कार्य्यम् । त्रिषु लोकेषु गीयते ते यशः । दशसु दिक्षु विख्यातम् । चतुर्षु युगेषु सत्यस्य आदरः । तव कुशलं मम प्रीत्यै तूर्णम् आवेदय । तस्योपरि पुष्पाणां वृष्टिः पपात । निशायां निशायाम् उत्सवो भवति । अन्नं व्यञ्जनञ्च भक्षय । फलानि पुष्पाणि च गणय । शस्त्रैः शास्त्रैश्च युध्यते । गुरुः छात्राश्च गच्छन्ति । हंसी मयूरी च सरसः तीरे चरन्ति । महान् वृक्षः अयम् । धार्मिकाणां वरो रामः पितुः सत्यस्य पालनार्थं भ्रात्रा अनुयातः पत्न्या सह वनं जगाम ।

कृत्-परिशिष्ट ।

अ ।

८३७ । अ—प्रत्ययान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमें 'अ'-प्रत्यय होता है । 'अ'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग । यथा—(सनन्त) जिज्ञासा ; पिपासा ; चिकीर्षा ; जिगीषा ; जिगमिषा ; लिप्सा ; जिघांसा ; चिकित्सा ; मीमांसा ; जुगुप्सा । (यङन्त) अटाट्या । (नामधातु) तपस्या ; वरिवस्या ; अशनाया ; पुत्रकाम्या ; कण्डूया ।

(क) निष्ठाप्रत्ययमें जिन धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है, ऐसे आदिमें गुरुस्वरविशिष्ट व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमें 'अ' होता है ; यथा—(ईह्) ईहा ; (चेष्ट्) चेष्टा ; (भिक्ष्) भिक्षा ; (सेव्) सेवा ; (निन्द्) निन्दा ; (शङ्क्) शङ्का ; (अर्च्) अर्चा ; (काङ्क्ष्) आकाङ्क्षा ; (ईक्ष्) परीक्षा ; (कम्प्) अनुकम्पा ; (शंस्) आशंसा,

प्रशंसा ; (क्रीड्) क्रीडा ; (बाध्) बाधा ; (वाञ्छ्) वाञ्छा ।

८३८। अङ्—धातुपाठमे पकार-इत् (षित्) धातुके उत्तर भाव-वाच्यमे 'अङ्'-प्रत्यय होता है ; 'ङ्' इत्, 'अ' रहता है। 'अङ्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग। यथा—(जृष्) जरा ; (क्षमूष्) क्षमा ; (त्रपूष्) त्रपा ; (व्यथ्) व्यथा ;* (त्वर्) त्वरा।

(क) 'भिद्'-प्रभृति धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अङ्' होता है ; यथा—(भिद्) भिदा ; (छिद्) छिदा ; (पीड्) पीडा ; (मृज्) मृजा ; (दय्) दया ; (तोलि) तुला।

(ख) चिन्ति, पूजि, कथि और चर्चि धातुके उत्तरभी भाववाच्यमे 'अङ्' होता है ; यथा—चिन्ता ; पूजा ; कथा ; चर्चा।

(ग) उपसर्ग, 'श्रत्'-शब्द और 'अन्तर्'-शब्द पूर्वमे रहनेसे, आकारान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अङ्' होता है। यथा—(भा) आभा, प्रभा, विभा, प्रतिभा ; (मा) प्रमा, उपमा, प्रतिमा ; (धा) विधा, व्यवधा, अभिधा, उपधा ; (ज्ञा) अभिज्ञा, प्रज्ञा, अनुज्ञा, संज्ञा, अवज्ञा, प्रतिज्ञा, उपज्ञा, आज्ञा ; (ख्या) आख्या, सङ्ख्या, अभिख्या ; (स्था) संस्था, अवस्था, आस्था, निष्ठा, प्रतिष्ठा। (धा) श्रद्धा, अन्तर्द्धा।

८३९। अच्—'पच्'-प्रभृति धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'अच्'-प्रत्यय होता है ; 'च्' इत्, 'अ' रहता है ; यथा—(पचतीति) पचः ; (दीव्यतीति) देवः ; (क्षमते इति) क्षमः ; (धरतीति) धरः ; (हरतीति) हरः।

---

* घटादि धातुभी 'षित्'।

(चरतीति) चरः वा चराचरः ; (चलतीति) चलः वा चलाचलः ; (पततीति) पतः वा पतापतः ; (वदतीति) वदः वा वदावदः ।

(क) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'हृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अच्' होता है ; यथा—(अंशं हरति इति) अंशहरः (दायादः) ; (भागं हरति) भागहरः ; रोगहरः ; शोकहरः ; दुःखहरः ; क्लेशहरः ।*

(ख) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'अर्ह्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अच्' होता है ; यथा—(पूजाम् अर्हति इति) पूजार्हः ; (तत् अर्हति) तदर्हः ; (सत्कारम् अर्हति) सत्कारार्हः ; (निन्दाम् अर्हति) निन्दार्हः ।

(ग) अधिकरणवाचक पदके परवर्त्ती 'शी'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अच्' होता है ; यथा—(शिलायां शेते इति) शिलाशयः ; (भूमौ शेते) भूमिशयः ; (शय्यायां शेते) शय्याशयः ; (बिले शेते) बिलेशयः (सर्पः) ।

(घ) 'पार्श्व'-प्रभृति शब्दके परवर्त्ती 'शी'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अच्' होता है ; यथा—(पार्श्वेन शेते इति) पार्श्वशयः ; (पृष्ठेन शेते) पृष्ठशयः ; (उदरेण शेते) उदरशयः ; (उत्तानः शेते) उत्तानशयः ; (अवमूर्द्धा †—अधोमुख.—शेते) अवमूर्द्धशयः ।

८४० । घञ्—भाववाच्यमे और कर्तृभिन्न-कारकवाच्यमे धातुके उत्तर 'घञ्'-प्रत्यय होता है ; 'घ्' और 'ञ्' इत्, 'अ' रहता

---

* 'भारवहन'-अर्थमे नहीं होता ; यथा—(भारं हरति) भारहारः—यहाँ 'अण्' हुआ ।

† अवनतः मूर्द्धा यस्य सः—अवमूर्द्धा ।

है। * 'घञ्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग। यथा—(भाववाच्ये)—(पच्) पाकः; (त्यज्) त्यागः; (नश्) नाशः; (पठ्) पाठः; (स्रु) स्रावः; (रु—उपसर्गपूर्व) आरावः, विरावः, संरावः; (शुच्) शोकः। (कर्मवाच्ये)—(भुज्यते इति) भोगः (भोग्यवस्तु); (प्रास्यते—क्षिप्यते—इति) प्रासः (कुन्तः)। (करणवाच्ये)—(रज्यते अनेन इति) रागः† (लाक्षादिः)। (अपादानवाच्ये)—(आहरन्ति रसम् अस्मात् इति) आहारः (भक्ष्यवस्तु)। (अधिकरणवाच्ये)—रज्यति अस्मिन् इति) रङ्गः (नाट्यशाला)।

(रभ्) आरम्भः; (लभ्) आलम्भः।

८४१। अच्—इवर्णान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे और कर्त्तृभिन्न-कारकवाच्यमे 'अच्'-प्रत्यय होता है; 'च्' इत्, 'अ' रहता है। 'अच्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग। यथा—(जि) जयः; (क्षि) क्षयः; (श्रि) श्रयः; (ली) लयः; (नी) नयः; (भी) भयम् (क्लीवलिङ्ग)।

८४२। अप्‡—ऋवर्णान्त और उवर्णान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे और कर्त्तृभिन्न-कारकवाच्यमे 'अप्'-प्रत्यय होता है; 'प्' इत्, 'अ' रहता है। 'अप्'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग। यथा—(कॄ) करः; (शॄ) शरः; (गॄ) गरः; (स्तु) स्तवः; (रु) रवः; (भू) भवः।

[(चि+घञ्) कायः (देहः), (नि+चि+घञ्) निकायः

* ४५५ (५) (७) सूत्रानुसार 'इत्'-कार्य्य होगा।

† करणवाच्य और भाववाच्यमे 'रन्ज्'-धातुके नकारका लोप होता है।

‡ व्याकरणान्तरमे 'अच्' और 'अप्' इन दोनो प्रत्ययोंके स्थानमे एक 'अल्'-प्रत्ययका विधान परिदृष्ट होता है।

(गृहम्; राशिः; सङ्घश्च); (अन्यत्र) चयः (अच्)। (वि+स्तृ+घञ्) विस्तारः; (अप्) विस्तरः (वाक्यस्य), विष्टरः (आसनम्)। (प्र+मद्+अप्) प्रमदः (हर्षः); (घञ्) प्रमादः (अनवधानता)।]

८४३। क—जिन धातुओंकी उपधामे इ, उ अथवा ऋ रहता है, उन धातुओंके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क'-प्रत्यय होता है; 'क्' इत्, 'अ' रहता है; यथा—(वेत्ति इति) विदः; (बुध्यते इति) बुधः; (रोहति इति) रुहः; (नृत्) नृतः।

(क) कृ, गृ, ज्ञा और प्री धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क' होता है। 'ऋ' के स्थानमे 'इर्', और 'ई' के स्थानमे 'इय्' होता है। यथा—(किरति इति) किरः; (गिरति इति) गिरः; (जानाति इति) ज्ञः; (प्रीणाति इति) प्रियः।

(ख) उपसर्ग-पूर्वक आकारान्त धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क' होता है; यथा—(प्र+ज्ञा) प्रज्ञः; (वि+ज्ञा) विज्ञः; (अभि+ज्ञा) अभिज्ञः; (प्र+दा) प्रदः; (प्र+मा) प्रमः; (नि+मा) निभः; (वि+आ+घ्रा) व्याघ्रः।

(ग) कर्मवाचक शब्दके परवर्त्ती उपसर्गहीन आकारान्त धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क' होता है; और धातुके आकारका लोप होता है; यथा—(अन्नं ददाति इति) अन्नदः; (भूमिं ददाति) भूमिदः; (धनं ददाति) धनदः; (वारि ददाति) वारिदः; (ज्ञानं ददाति) ज्ञानदः; (शिरः त्रायते) शिरस्त्रम् *; (तनुं त्रायते) तनुत्रम्;

* त्रा (त्रै) धातुके अपादानके उत्तरभी होता है; यथा—(आत·

(धर्मं जानाति) धर्मज्ञः ; (रसं जानाति) रसज्ञः ; (नॄन् पाति) नृपः ; (भुवं पाति) भूपः ; (भूमिं पाति) भूमिपः ; (मधु पिबति) मधुपः ।

(घ) सुबन्त-पद और उपसर्गके परवर्त्ती 'स्था'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क' होता है ; और धातुके आकारका लोप होता है । यथा— (गृहे तिष्ठति इति) गृहस्थः ; (वने तिष्ठति) वनस्थः ; (मध्ये तिष्ठति) मध्यस्थः ; (प्रकृतौ तिष्ठति) प्रकृतिस्थः । सुस्थः ; दुःस्थः ; संस्थः ; (उत्+स्था) उत्थः ; (नि+स्था) निष्ठः ।

(ङ) सुबन्त-पदके परवर्त्ती दुह्-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क' होता है ; 'दुह्' के 'ह्' के स्थानमे 'घ्' होता है ; यथा—(कामं दोग्धि इति) कामदुघा [धेनुः] ।

गौर्गौः कामदुघा सम्यक्प्रयुक्ता स्मर्य्यते बुधैः ।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति ॥

८४४ । खच्—'प्रिय'-प्रभृति शब्दके परवर्त्ती 'वद्'-प्रभृति धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'खच्'-प्रत्यय होता है ; 'ख्' और 'च्' इत्, 'अ' रहता है ; 'खित्'-कार्य्य होता है (४९९ (४) सू०) । यथा— (प्रियं वदति इति) प्रियंवदः ; (वशं वदति) वशंवदः (आयत्तः) । (प्रियं करोति) प्रियङ्करः ; क्षेमङ्करः ; भयङ्करः । (वाचं यच्छति) वाचंयमः (मौनव्रती) । (सर्वं कषति) सर्वङ्कषः (सर्वहिंस्रः) ; कूलङ्कषः [नदः] । (परान्—शत्रून्—तापयति) परन्तपः * । (अरीन् दाम्यति दमयति वा) अरिन्दमः । (पुरं दारयति—दॄ+णिच्) पुरन्दरः ।

पात् त्रायते) आतपत्रम् ।

* 'खच्'-प्रत्यय परे रहनेसे, णिजन्त धातुकी उपधा ह्रस्व होती है ।

(धुरं धारयति) धुरन्धरः ; (वसूनि धारयति) वसुन्धरा । (पतिं वृणोति) पतिंवरा [कन्यका] । (विश्वं बिभर्त्ति) विश्वम्भरः (विष्णु:) ; विश्वम्भरा (पृथिवी) । (सर्वं सहते) सर्वंसहा (धरणी) । (धनं जयति) धनञ्जयः । (भुजेन—कौटिल्येन, भुजं—वक्रं वा गच्छति) भुजङ्गमः * ; (प्लवेन—लम्फेन—गच्छति) प्लवङ्गमः ; (तुरेण—वेगेन—गच्छति) तुरङ्गमः (विहायसा गच्छति) विहङ्गमः (विहायसो 'विह' इति वाच्यम्) ; (हृदयं गच्छति) हृदयङ्गमः ।

८४५ । खल्—सु, दुर् और ईषत् शब्दके परवर्त्ती धातुके उत्तर कर्मवाच्य और भाववाच्यमें 'खल्'-प्रत्यय होता है ; 'ख्' और 'ल्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(सुखेन क्रियते) सुकरः † ; (दुःखेन क्रियते) दुष्करः ; (सुखेन क्रियते) ईषत्करः । (गम्) सुगमः ; दुर्गमः । (वह्) सुवहः ; दुर्वहः । (त्यज्) सुत्यजः ; दुस्त्यजः ; (लभ्) सुलभः ; दुर्लभः ।

८४६ । खश्—'असूर्य्य'-प्रभृति कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'दृश्'-प्रभृति धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'खश्'-प्रत्यय होता है ; ‡ 'ख्' और 'श्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(सूर्य्यम् अपि न पश्यति इति) असूर्य्यम्पश्या [कुलवधूः] ; (जनम् एजयति) जनमेजयः ; (स्तनं धयति) स्तनन्धयः (शिशुः), स्तनन्धयी (कन्या) ; नाडीं—वंशनडीं—धमति

---

* ड—भुजगः ; खच्—भुजङ्गः । ऐसे—प्लवगः, प्लवङ्गः ; तुरगः, तुरङ्गः ; विहगः , विहङ्गः ।

† 'खित्'-प्रत्ययान्त परे रहनेसे, अव्यय उपपदके उत्तर 'म' नहीं होता ।

‡ 'खश्'-प्रत्यय परे, धातुका चतुर्लकारके तुल्य कार्य्य होता है ।

—ध्मा धातु) नाडिन्धमः * (स्वर्णकार इत्यर्थः); (अभ्रं लेढि) अभ्रंलिहः [प्रासादः]—'ख' परे, लिह्-धातुका गुण नहीं होता। (विधुं तुदति) विधुन्तुदः (राहुः); (अरुंषि तुदति) अरुन्तुदः (मर्म-पीडकः, दुःखद इत्यर्थः)—'अरुस्'-शब्दके सकारका लोप होता है। (आत्मानं पण्डितं मन्यते) पण्डितम्मन्यः; (आत्मानं धन्यं मन्यते) धन्यम्मन्यः; कृतार्थम्मन्यः; सुभगम्मन्यः †। (कुलम् उद्रुजति विभनक्ति—उत्+रुज् धातु) कूलमुद्रुजः [महोक्षः]; (कूलम् उद्वहति) कूलमुद्वहा [सरित्]।

८४७। ट—'दिवा'-प्रभृति कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'कृ'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'ट'-प्रत्यय होता है; 'ट्' इत्, 'अ' रहता है; यथा—(दिवा—दिनं—करोति इति) दिवाकरः; (विभां करोति) विभाकरः; प्रभाकरः; निशाकरः; (भासं करोति) भास्करः; अहस्करः; अन्त-करः; किङ्करः; लिपिकरः; चित्रकरः; (कर्म करोति मूल्येन) कर्मकरः (भृत्य इत्यर्थः‡—मजदूर)।

(क) 'हेतु' और 'अनुकूल' अर्थ समझानेसे, कर्मवाचक पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'ट' होता है। यथा—('हेतु'-अर्थमे) शोक-करः बन्धुनाशः (बन्धुनाश शोकका हेतु); अर्थकरः यशस्करः विद्या-लाभः (विद्यालाभ अर्थ और यशका हेतु)। ('अनुकूल'-अर्थमे) पितुः

---

* 'खित्'-प्रत्ययान्त परे रहनेसे, उपपदका अन्त्य स्वर ह्रस्व होता है।

† इसप्रकार अर्थमे 'णिन्' भी होता है; यथा—पण्डितमानी, धन्य-मानी, कृतार्थमानी, सुभगमानी।

‡ अन्यत्र 'अण्' होता है; यथा—कर्मकारः (लोहार)।

आज्ञाकरः वचनकरः पुत्रः (पुत्र पिताकी आज्ञा और वचनके अनुकूल)।

(ख) पुरः, अग्र, अग्रे, अग्रतः—इन शब्दोंके परवर्त्ती 'सृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट' होता है; यथा—पुरःसरः; अग्रसरः; अग्रेसरः; अग्रतःसरः।

(ग) अधिकरणवाचक पदके परवर्त्ती 'चर्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट' होता है; यथा—(जले चरति इति) जलचरः; (वारिणि चरति) वारिचरः; (स्थले चरति) स्थलचरः; (भुवि चरति) भूचरः; (वने चरति) वनचरः; (निशायां चरति) निशाचर; (पार्श्वे चरति) पार्श्वचरः; (खे चरति) खचरः।

'रात्रि'-शब्द विकल्पसे द्वितीयाके एकवचनान्तवत् होता है, यथा—(रात्रौ चरति) रात्रिचरः, रात्रिञ्चरः।*

८४८। टक्—कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'गा' (गै) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'टक्'-प्रत्यय होता है; 'ट्' और 'क्' इत, 'अ' रहता है; यथा—(साम गायति इति) सामगः।

(क) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'हन्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'टक्' होता है; और 'हन्' के स्थानमे 'घ्न्' होता है; यथा—(पापं हन्ति इति) पापघ्नः; (पित्तं हन्ति) पित्तघ्नः; (वातं हन्ति) वातघ्नः; (त्रिदोषं हन्ति) त्रिदोषघ्नः; (शत्रुं हन्ति) शत्रुघ्नः; (मित्रं हन्ति) मित्रघ्नः; (कृतं हन्ति) कृतघ्नः; (पशून् हन्ति) पशुघ्नः।

(ख) उपमानवाचक तद्, यद्, एतद्, किम्, भवद्, अस्मद्, युष्मद्, अदस्, इदम्, अन्य और समान शब्दके परवर्त्ती दृश्-धातुके

* कभी कभी अधिकरणवाचक पद विभक्तियुक्त रहता है; यथा—खेचरः; वनेचरः।

उत्तर कर्मवाच्यमे 'टक्' होता है।*

'टक्'-प्रत्ययान्त 'दृश्'-धातु परे रहनेसे, तद्, यद्, एतद्, अस्मद् और युष्मद् शब्दके 'द्' का लोप, और तत्पूर्ववर्त्ती 'अ' के स्थानमे 'आ' होता है; यथा—(स इव दृश्यते इति) तादृशः; यादृशः; एतादृशः; अस्मादृशः; युष्मादृशः। †

'टक्'-प्रत्ययान्त 'दृश्'-धातु परे रहनेसे, 'अदस्'-शब्दके स्थानमे—'अमू', 'इदम्'-शब्दके स्थानमे—'ई', 'किम्'-शब्दके स्थानमे—'की', 'भवत्'-शब्दके स्थानमे—'भवा', 'समान'-शब्दके स्थानमे—'स', और 'अन्य'-शब्दके स्थानमे—'अन्या' होता है; यथा—(असौ इव दृश्यते इति) अमूदृशः; (अयम् इव दृश्यते) ईदृशः; (क इव दृश्यते) कीदृशः; (भवान् इव दृश्यते) भवादृशः; (समान इव दृश्यते) सदृशः; (अन्य इव दृश्यते) अन्यादृशः। ‡

८४९। ड—सुबन्त-पदके परवर्त्ती 'गम्'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'ड'-प्रत्यय होता है; 'ड्' इत्, 'अ' रहता है; § यथा—(अन्तं गच्छति इति) अन्तगः; (अध्वानं गच्छति) अध्वगः; (दूरं गच्छति) दूरगः; (पारं गच्छति) पारगः; (सर्वं गच्छति) सर्वगः; (सर्वत्र

---

* पाणिनि-मते—कञ्।

† 'अस्मद्' और 'युष्मद्'-शब्दके स्थानमे एकवचनमे 'मद्' और 'त्वद्' होनेसेभी होता है; यथा—मादृशः, त्वादृशः।

‡ इन सब स्थलोंमे 'क्विप्' (क्विन्) और 'सक्' (क्स) प्रत्ययभी होते हैं; यथा—तादृक्, तादृक्षः; सदृक्, सदृक्षः इत्यादि।

§ 'डित्'-कार्य्य होता है (४५५(९) सू०)।

गच्छति) सर्वत्रगः ; (गृहं गच्छति) गृहगः ; (ग्रामं गच्छति) ग्रामगः ; (तल्पं गच्छति) तल्पगः ; (खे गच्छति) खगः ।

(क) क्लेश, शोक और तमस् शब्दके परवर्त्ती 'अप'-पूर्वक 'हन्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ड' होता है ; यथा—(क्लेशम् अपहन्ति इति) क्लेशापहः ; (शोकम् अपहन्ति) शोकापहः ; (तम अपहन्ति) तमोऽपहः ।

(ख) अधिकरणवाचक 'गिरि'-शब्दके परवर्त्ती 'शी'-धातुके उत्तर 'ड' होता है ; यथा—"गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी" कु० १. ६० ।

(ग) उपसर्ग वा सुबन्त-पदके परवर्त्ती 'जन्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ड' होता है । यथा—(सरसि जायते इति) सरोजम् ; (मनसि जायते) मनोजः ;* (अप्सु जायते) अब्जम् ; (जले जायते) जलजम् ; (अग्रे जायते) अग्रजः । (पङ्कात् जायते) पङ्कजम् ; (अङ्गात् जायते) अङ्गजः ; (आत्मनः जायते) आत्मजः ; (स्वेदात् जायते) स्वेदजः ; (अण्डात् जायते) अण्डजः ; (जरायोः जायते) जरायुजः । (अनु जायते) अनुजः ; (प्र जायते) प्रजा । †

८८० । अण्—कर्मवाचक पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अण्'-प्रत्यय होता है ; 'ण्' लुप्, 'अ' रहता है ; ‡ यथा—(कुम्भं करोति इति) कुम्भकारः ; (तन्तून् वयति) तन्तुवायः ; (तन्त्रं वयति)

---

* कभी कभी पूर्वपद विभक्त्यन्त रहता है ; यथा—सरसिजम् ; मनसिजः ।

† अन्यत्रभी 'ड' होता है । यथा—(द्विः जायते इति) द्विजः ; (सह जायते) सहजः । (आशु गच्छति) आशुगः । इत्यादि ।

‡ 'णित्'-कार्य्य होता है (४५५(१०) सू०) ।

तन्त्रवायः ; (शास्त्राणि करोति) शास्त्रकारः ; सूत्रकारः ; भाष्यकारः ; मालाकारः ; चाटुकारः ; कर्मकारः ; (सूत्रं धारयति) सूत्रधारः ; (वारि वहति) वारिवाहः ।

अक ।

८९१ । णक (ण्वुल्)—धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'णक'-प्रत्यय होता है ; 'ण्' इत्, 'अक' रहता है ; * यथा—(नी) नायकः ; (श्रु) श्रावकः ; (पू) पावकः ; (कृ) कारकः ; (स्मृ) स्मारकः ; (तृ) तारकः ; (नश्) नाशकः ; (पच्) पाचकः ; (पठ्) पाठकः ; (रिच्) रेचकः ; (सिच्) सेचकः ; (मुच्) मोचकः ; (रुध्) रोधकः ; (दा) दायकः† ; (गा—गै) गायकः ; (हन्) घातकः ('हन्' के स्थानमे 'घात्' होता है) ; (दृश्) दर्शकः ; (जनि) जनकः ; (पालि) पालकः ; (योजि) योजकः ; (स्थापि) स्थापकः ।

(क) 'निमित्त'-अर्थ समझानेसे, भविष्यत्कालमे धातुके उत्तर 'णक' होता है ; यथा—अन्नं भोजकः व्रजति (अन्न भोजन करनेके लिये जाता है) ; ओदनं पाचकः प्रयाति (पक्तुम् इत्यर्थः) ; देवं दर्शकः प्रतिष्ठते (देवं द्रष्टुम् इत्यर्थः) ।

८९२ । षक (ष्वुन्)—शिल्पी (क्रियाकौशलविशिष्ट) समझानेसे, नृत्, खन् और रन्ज् धातुके उत्तर 'षक' होता है ; 'ष्' इत्, 'अक' रहता है । 'षक' परे, उपधा लघुस्वरका गुण, और उपधा नकारका लोप होता है । यथा—(नृत्) नर्त्तकः ; (खन्) खनकः ; (रन्ज्) रजकः ।

---

* 'णित्'-कार्य्य होता है (४५५ (१०) सू०) ।

† णक और णिन् परे, आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है ।

तृच्।

८९३। धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'तृच्'-प्रत्यय होता है; * 'च्' इत्; 'तृ' रहता है। 'लुट्'-विभक्तिमे जिसप्रकार कार्य्य हुआ है, 'तृच्'-प्रत्ययमेभी उसीप्रकार कार्य्य होगा। † यथा—(दा) दाता; (धा) धाता; (पा) पाता; (जि) जेता; (नी) नेता; (श्रु) श्रोता; (कृ) कर्त्ता; (हृ) हर्त्ता; (क्षिप्) क्षेप्ता; (सिच्) सेक्ता (विद्) वेत्ता; (भुज्) भोक्ता; (बुध्) बोद्धा; (युध्) योद्धा) (रुध्) रोद्धा; (गम्) गन्ता; (हन्) हन्ता; (दृश्) द्रष्टा; (ग्रह्) ग्रहीता; (भू) भविता; (सू) सविता, सोता; (कारि) कारयिता।

अन।

८९४। अन (ल्यु)—'नन्दि'-प्रभृति ‡ धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अन' प्रत्यय होता है; यथा—(नन्दयति इति) नन्दनः; (मदयति इति) मदनः; (दूषयति इति) दूषणः; (साधयति इति) साधनः; (वर्द्धयति इति) वर्द्धनः; (शोभयति इति) शोभनः; (सूदयति

---

* शीलार्थमे 'तृन्' होता है (शील—स्वभाव); यथा—धर्म्मं वदिता साधुः; परान् उद्वेजयिता पिशुनः।

† 'तृच्'-प्रत्ययान्त शब्दके रूप पुलिङ्गमे 'दातृ'-शब्दके तुल्य, और स्त्रीलिङ्गमे 'नदी'-शब्दके तुल्य।

‡ नन्दि, मदि, दूषि, साधि, वर्द्धि, शोभि, सूदि, भीषि, नाशि, रमि, सह्, तप्, दम्, चक्ष्, अर्दि, रोचि, वासि, जल्प्, क्रन्द्, कृप्, हृष्, लू।

इति) सूदनः ; (भीषयते इति) भीषणः ; (नाशयति इति) नाशनः ; (रमयति इति) रमणः ; (सहते इति) सहनः ; (तपति इति) तपनः ; (दाम्यति इति) दमनः ; (विशेषेण चष्टे) विचक्षणः ।

(क) विद् (ज्ञानार्थ), वन्द्, आस् और णिजन्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अन' (युच्) होता है। एतत्प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग। * यथा—(विद्) वेदना ; (वन्द्) वन्दना ; (आस्) आसना। (णिजन्त धातु)—(अर्च्चि) अर्चना ; (कल्पि) कल्पना ; (गणि) गणना ; (घटि) घटना ; (तारि) प्रतारणा ; (धारि) धारणा ; (पारि) पारणा ; (पाठि) पाठना ; (मानि) विमानना ; (यन्त्रि) यन्त्रणा ; (याति) यातना ; (वासि) वासना ।

(ख) भूषार्थ, कोपार्थ, चलनार्थ और शब्दार्थ धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे शीलार्थमे 'अन' (युच्) होता है। यथा—(भूषि) भूषणः (भूषाशील इत्यर्थः) ; (मण्डि) मण्डनः ; (अलङ्कृ) अलङ्करणः । (कुप्) कोपनः ; (क्रुध्) क्रोधनः ; (रुष्) रोषणः ; (असूय्) असूयणः। (चल्) चलनः ; (कम्प्) कम्पनः । (शब्दि—शब्दयति) शब्दनः ; (रु) रवणः ।

(ग) सु, दुर् और ईषत् शब्दके परवर्त्ती दृश्, धृष्, मृष्, शास् और युध् धातुके उत्तर कर्मवाच्यमे विकल्पसे 'अन' (युच्) होता है ; पक्षे—खल् ; इसको 'खलर्थ अन' कहते हैं। यथा—(दृश्)—

---

* कहीं कहीं णिजन्त धातुके उत्तर 'अनट्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(प्रेरि) प्रेरणम् ; (प्रीणि) प्रीणनम् ; (तर्पि) तर्पणम् ; (शोधि) शोधनम् ; (साधि) साधनम् , (गोपि) गोपनम् इत्यादि ।

(सुखेन दृश्यते इति) सुदर्शनः, (पक्षे) सुदर्शः (खल्); दुर्दर्शनः, दुर्दर्शः। (धृष्) दुर्द्धर्षणः, दुर्द्धर्षः; (मृष्) दुर्मर्षणः, दुर्मर्षः; (शास्) दुःशासनः, दुःशासः। (युध्) सुयोधनः, सुयोधः; दुर्योधनः, दुर्योधः।

८६९। अनट् (ल्युट्)—भाववाच्यमे और कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमे धातुके उत्तर 'अनट्'-प्रत्यय होता है; 'ट्' इत, 'अन' रहता है। 'अनट्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग। यथा—(भाववाच्ये)—(गम्) गमनम्; (वम्) वमनम्; (आ+रुह्) आरोहणम्; (ईक्ष्) ईक्षणम्; (पत्) पतनम्; (अधि+इ) अध्ययनम्; (दा) दानम्; (गा—गै) गानम्; (चि) चयनम्; (श्रि) श्रयणम्; (श्रु) श्रवणम्; (कृ) करणम्; (स्मृ) स्मरणम्; (स्पृश्) स्पर्शनम्; (सिच्) सेचनम्; (नृत्) नर्त्तनम्; (रुद्) रोदनम्। (कर्मवाच्ये)—(भुज्यते इति) भोजनम् (भक्ष्यवस्तु)। (करणवाच्ये)—(दृश्यते अनेन इति) दर्शनम् (चक्षुः); (श्रूयते अनेन इति) श्रवणम् (श्रोत्रम्); (साध्यते अनेन इति) साधनम्; (क्रियते अनेन इति) करणम्। (भूष्यते अनेन इति) भूषणम्। (सम्प्रदानवाच्ये)—(सम्प्रदीयते अस्मै इति) सम्प्रदानम्। (अपादानवाच्ये)—(अपादीयते अस्मात् इति) अपादानम्। (अधिकरणवाच्ये)—(शय्यते अस्मिन् इति) शयनम्; (स्थीयते अत्र इति) स्थानम्।

(एकं वक्ति इति) एकवचनम्—यहाँ कर्त्तृवाच्यमे 'अनट्' हुआ।

(ष्ठिव्) ष्ठीवनम्, ष्ठेवनम्; (सिव्) सीवनम्, सेवनम्; (लिख्) लिखनम्, लेखनम्।

कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमे विहित 'अनट्'-प्रत्ययान्त शब्द कहीं कहीं

वाच्यलिङ्ग (विशेषण) होता है; यथा—(राजभिः भुज्यन्ते इति) राजभोजनाः [शालयः]; (छिद्यते अनेन इति) छेदनः [परशुः]।

संज्ञा समझानेसे, दशनः, चरणः इत्यादि पुंलिङ्ग; और बन्धनी, साधनी, दोहनी, उपक्रमणी, अवतरणी, विज्ञापनी, अधिरोहणी इत्यादि स्त्रीलिङ्ग होते हैं।

इ * ।

८९६ । कि—उपसर्ग और अन्तर्-शब्दके परवर्त्ती 'धा'-धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'कि'-प्रत्यय होता है; 'क्' इत्, 'इ' रहता है। 'कि' परे, 'धा'-धातुके आकारका लोप होता है। 'कि'-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग । यथा—विधिः; निधिः; सन्धिः; आधिः; उपाधिः; अन्तर्द्धिः।

(क) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'धा'-धातुके उत्तर अधिकरणवाच्यमे 'कि' होता है; यथा—(जलानि धीयन्ते अस्मिन् इति) जलधिः; वारिधिः; पयोधिः; जलनिधिः; वारिनिधिः; पयोनिधिः ।

८९७ । खि (इन्)—आत्मन्, उदर और कुक्षि शब्दके परवर्त्ती 'भृ'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'खि' होता है; 'ख्' इत, 'इ' रहता है; यथा—(आत्मानं बिभर्त्ति इति) आत्मम्भरिः (नान्त शब्दके नकार-का लोप होता है); उदरम्भरिः; कुक्षिम्भरिः ।

---

* 'धातु'-अर्थमे (धातुनिर्देशमे), 'इ' (इक्) प्रत्यय होता है; यथा—गमिः (गम् धातु); पचिः (पच् धातु) । 'ति' (श्तिप्) प्रत्ययभी होता है; यथा—गच्छतिः (गम् धातु); पचतिः (पच् धातु)—पुं० ।

इन्।

८२८। णिन् (णिनि)—धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'णिन्' प्रत्यय होता है; 'ण्' इत्, 'इन्' रहता है;* यथा—(मन्त्रयते इति—मन्त्र्) मन्त्री; (वद्) वादी, प्रतिवादी, परिवादी; (वस्) वासी, प्रवासी, अधिवासी; (राध्) अपराधी; (चर्) व्यभिचारी, सञ्चारी; (स्था) स्थायी; (सृ) संसारी; (द्विष्) द्वेषी, विद्वेषी; (रुध्) रोधी, विरोधी, प्रतिरोधी; (द्रुह्) द्रोही, विद्रोही; (दिव्) परिदेवी; (कृ) अधिकारी; (लष्) अभिलाषी।

(क) उपसर्ग और सुबन्त-पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर 'शील' और 'व्रत' अर्थमें 'णिन्' होता है। यथा—('शील'-अर्थमें)—(मांसं भोक्तुं शीलम् अस्य इति) मांसभोजी; (वने वस्तुं शीलमस्य) वनवासी; (साधु करोति) साधुकारी; (सत्यं वदति) सत्यवादी; (प्रियं वदति) प्रियवादी; (मनः हरति) मनोहारी; (हृदयं गृह्णाति) हृदयग्राही। (अनु याति) अनुयायी; (अनु जीवति) अनुजीवी; (अनु गच्छति) अनुगामी। ('व्रत'-अर्थमें)—(स्थण्डिले शेते) स्थण्डिलशायी; क्षीरपायी; शिरःस्नायी; अश्राद्धभोजी।

(ख) कर्तृवाचक उपमान-पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर 'णिन्' होता है; यथा—(सिंह इव विक्रमते) सिंहविक्रमी; (सुधा इव स्यन्दते) सुधास्यन्दी।

(ग) करणवाचक पदके परवर्त्ती 'यज्'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमें अतीतकालमें 'णिन्' होता है; यथा—(सोमेन इष्टवान्) सोमयाजी;

* 'णित्'-कार्य्य होता है।

अग्निष्टोमयाजी ।

(घ) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'हन्'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे अतीतकालमे 'णिन्' होता है । 'हन्'-धातुके 'ह' के स्थानमे 'घ', और 'न्' के स्थानमे 'त' होता है ; यथा—(पितरं जघान) पितृघाती ; (पितृव्यं जघान) पितृव्यघाती ; पुत्रघाती ; मित्रघाती ।

(ङ) भविष्यत्काल समझानेसे, भू, या, स्था, गम्, बुध्, युध् और रुध् धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'णिन्' होता है ; यथा—(भविष्यति इति) भावी ; (या) यायी ; (स्था) स्थायी, प्रस्थायी ; (गम्) गामी ; (बुध्) प्रतिबोधी ; (युध्) प्रतियोधी ; (रुध्) प्रतिरोधी ।

८५९ । घिनुण्—युज्, त्यज्, भज्, भुज्, रन्ज्, रुज्, 'सम्'-पूर्वक सृज्, 'वि'-पूर्वक विच् और 'सम्'-पूर्वक पृच् धातुके उत्तर 'शील'-अर्थमे कर्त्तृवाच्यमे 'घिनुण्'-प्रत्यय होता है ; 'घ', 'उ' और 'ण्' इत्, 'इन्' रहता है ; * यथा—(युज्) योगी, वियोगी, प्रतियोगी ; (त्यज्) त्यागी, परित्यागी ; (भज्) भागी, विभागी ; (भुज्) भोगी, सम्भोगी ; (रन्ज्) रागी, विरागी, अनुरागी ('रन्ज्'-धातुके नकारका लोप होता है) ; (रुज्) रोगी ; (सम् + सृज्) संसर्गी ; (वि + विच्) विवेकी ; (सम् + पृच्) सम्पर्की ।

उ ।

८६० । सनन्त धातु, भिक्ष् धातु और 'आ'-पूर्वक शन्स् धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'उ'-प्रत्यय होता है ; यथा—जिज्ञासुः ; पिपासुः ; बुभुक्षुः ; चिकीर्षुः ; विवक्षुः ; जिघृक्षुः ; जिघांसुः ; तितीर्षुः ; ईप्सुः ;

* 'घित्'-कार्य्य होता है (४५५(५) सू०) ।

दित्सुः ; लिप्सुः ; जिगीषुः ; जिगमिषुः । भिक्षुः ; आशंसुः ।

इष् (इच्छार्थ)—इच्छुः (निपातने) ।

ति ।

८६१ । क्ति (क्तिन्)—धातुके उत्तर भाववाच्यमें और कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमें 'क्ति'-प्रत्यय होता है ; 'क्' इत्, 'ति' रहता है । 'क्ति'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग । 'क्ति' परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता । यथा—(ख्या) ख्यातिः ; (चि) चितिः ; (नी) नीतिः ; (प्री) प्रीतिः ; (कृ) कृतिः ; (स्मृ) स्मृतिः ; (शक्) शक्तिः ; (मुच्) मुक्तिः ; (ब्रू,वच्) उक्तिः ; (भज्) भक्तिः ; (सृज्) सृष्टिः ; (भिद्) भित्तिः ; (बुध्) बुद्धिः ; (क्षण्) क्षतिः ; (तन्) ततिः ; (मन्) मतिः ; (प्र+आप्) प्राप्तिः ; (स्वप्) सुप्तिः ; (उप+लभ्) उपलब्धिः ; (क्रम्) क्रान्तिः ; (क्षम्) क्षान्तिः ; (गम्) गतिः* ; (नम्) नतिः ; (भ्रम्) भ्रान्तिः ; (रम्) रतिः ; (शम्) शान्तिः ; (दृश्) दृष्टिः ; (तुष्) तुष्टिः ; (शास्) शिष्टिः ; (वृष्) वृष्टिः ; (रुह्) रूढिः ।

मा और स्था धातुका आकार इकार होता है ; यथा—(मा) मितिः ; (स्था) स्थितिः । 'गै'—'गी' होता है ; यथा—गीतिः ।

(श्रूयते अनया इति) श्रुतिः ; (स्तूयते अनया) स्तुतिः ; (इज्यते अनया) इष्टिः ।

(क) दीर्घ ॠकारान्त धातु और 'लू'-प्रभृति धातुके उत्तर विहित

---

* कर्मवाच्ये—गम्यते इति गतिः (गम्यस्थानम् इत्यर्थः) । करण-वाच्ये—गम्यते प्राप्यते अनया इति गतिः (उपाय इत्यर्थः) ; यथा—"का गतिः ?" ।

'क्ति' के 'त' के स्थानमे 'न' होता है; यथा—(कॄ) कीर्णिः; (लू) लूनिः। (किन्तु पॄ—पूर्त्तिः)।

(ख) दा-दत्तिः; (धा) हितिः; (हा) हानिः; (ग्लै) ग्लानिः; (म्लै) म्लानिः; (अद्) जग्धिः; (अर्द्) अर्त्तिः; (आ+ऋ) आर्त्तिः।

(ग) 'क्ति' परे, ग्रह्'-प्रभृति धातुके उत्तर 'इट्' होता है; यथा—(ग्रह्) निगृहीतिः; (पठ्) पठितिः; (भण्) भणितिः इत्यादि।

वन्।

८६२। वनिप् (ङ्वनिप्)—अतीतकालमे 'छ' (स्वादि) और 'यज्' धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे वनिप्'-प्रत्यय होता है; 'ङ' और 'प्' इत्, 'वन्' रहता है; यथा—(छनोति स्म—अभिषवं यज्ञाङ्गस्नानं कृतवान् इति) छत्वा; * (विधिना इष्टवान्) यज्वा।

८६३। क्वनिप्—अतीतकालमे कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'दृश्'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क्वनिप्' होता है; 'क्', 'इ' और 'प्' इत्, 'वन्' रहता है; यथा—(पारं दृष्टवान्) पारदृश्वा।

(क) 'सह'-शब्दके परवर्त्ती 'कृ' और 'युध्' धातुके उत्तरभी 'क्वनिप्'-प्रत्यय होता है; यथा—(सह कृतवान्) सहकृत्वा (सहकारी इत्यर्थः); (सह युद्धवान्) सहयुध्वा। †

क्विप्।

८६४। सुबन्तपद वा उपसर्गके परवर्त्ती धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे

---

* 'पित्'-कार्य्य होता है (४५५ (११) सू)।

† 'वनिप्' और 'क्वनिप्-प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'आत्मन्'-शब्दके तुल्य।

'क्विप्'-प्रत्यय होता है; 'क्विप्'का सब 'इत्',कुछभी नहीं रहता; यथा—(सद्)—(सभायां सीदति इति) सभासद्; (सू)—(पुत्रं सूते) पुत्रसूः; वीरसूः; रत्नसूः; कामसूः; प्रसूः; (द्विष्)—(धर्मं द्वेष्टि) धर्मद्विट्, मित्रद्विट्, विद्विट्; (द्रुह्)—(यज्ञं द्रुह्यति) यज्ञध्रुक्, मित्रध्रुक्; (दुह्)—(कामं दोग्धि) कामधुक्, गोधुक्; (विद्)—(शास्त्रं वेत्ति) शास्त्रविद्, धर्मविद्, ब्रह्मविद्; (भिद्)—(गोत्रं—पर्वतं—भिनत्ति) गोत्रभिद्, मर्मभिद्; (छिद्)—(पक्षं छिनत्ति) पक्षच्छिद्, मर्मच्छिद्; (जि)—(शत्रुं जयति) शत्रुजित्, इन्द्रजित्, रणजित्; (नी)—(सेनां नयति) सेनानीः; अग्रणीः; ग्रामणीः; (राज्)—(स्वेन एव राजते) स्वराट्, देवराट्, (विशेषेण राजते) विराट्, (सम्यक् राजते) सम्राट्। (स्पृश्)—(जलं स्पृशति) जलस्पृक्, घृतस्पृक्, मर्मस्पृक् *।

(त्यज्) "तनुत्यजाम्" र० १. ८; (जुष्) "परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्" र० ८. ८५; (भृ) प्राणभृत्, शूलभृत्, भूभृत्, महीभृत्।

'क्विप्' परे, 'दिव्'—'द्यू' होता है; यथा-(अक्षैः दीव्यति) अक्षद्यूः। 'शास्'-धातुके स्थानमें 'शी' होता है; यथा—(मित्रं शास्ति) मित्रशीः।

भाववाच्य और कर्मादिकारकवाच्यमेंभी 'क्विप्' होता है; यथा—(भावे)—(आ+शास्) आशीः; (कर्मवाच्यमें)—(उच्यते इति) वाक्; (करणवाच्यमें)—(ध्यायति अनया इति) धीः;

* पाणिनि-मते—क्विन्। किन्तु 'उदक'-शब्दके परवर्त्ती 'स्पृश्' धातुके उत्तर 'क्विप्' नहीं होता।

(अधिकरणवाच्ये)—(संसीदन्ति अस्याम्) संसत्; (परितः सीदन्ति अस्याम्) परिषत्; (उपनिषण्णं परं श्रेयः अस्याम्) उपनिषत्।

(क) सु, कर्मन्, पाप, पुण्य और मन्त्र शब्दके परवर्त्ती 'कृ'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे अतीतकालमे 'क्विप्' होता है; यथा—(सु कृतवान्) सुकृत्; (कर्म कृतवान्) कर्मकृत्; पापकृत्; पुण्यकृत्; मन्त्रकृत्।

(ख) भ्रूण, ब्रह्म और वृत्र शब्दके परवर्त्ती 'हन्'-धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे अतीतकालमे 'क्विप्' होता है; यथा—(भ्रूणं जघान) भ्रूणहा; ब्रह्महा; वृत्रहा।

(ग) प्र+अन्च्—प्राङ्; (सम्+अन्च्) सम्यङ्; (सह+अन्च्) सध्र्यङ्; (तिरस्+अन्च्) तिर्य्यङ्।

क्विण् (ण्वि)।

८६५। सुबन्त-पदके परवर्त्ती 'भज्'-धातुकेउत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क्विण्'-प्रत्यय होता है; 'क्विण्' का समस्त 'इत्', कुछभी नहीं रहता; यथा—(अंशं भजते इति) अंशभाक्; (दुःखं भजते) दुःखभाक्।

य।

८६६। क्यप्—यज् और व्रज् धातुके उत्तर भाववाच्यमे, और संज्ञा समझानेसे नि+पत्, नि+सद्, शी, विद् और भृ धातुके उत्तर करणवाच्य और अधिकरणवाच्यमे 'क्यप्'-प्रत्यय होता है; 'क्' और 'प्' इत्, 'य' रहता है। 'क्यप्' करनेसे ये शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—(यज्) इज्या; (व्रज्) व्रज्या, परिव्रज्या, प्रव्रज्या। (अधिकरणवाच्ये)—(नि+पत्—निपतन्ति अस्याम् इति) निपत्या (पिच्छिला भूमिरित्यर्थः); (नि+सद्—निषीदन्ति अस्याम्) निषद्या (आपणः

इत्यर्थः) ; (शी—शेते अस्याम्) शय्या । (करणवाच्ये)—(विद्—विदन्ति अनया) विद्या ; (भृ—भ्रियन्ते कर्मकराः अनया) भृत्या (वेतनम् इत्यर्थः) ।

(क) 'कृ'-धातुके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे भाववाच्यमे 'क्यप्' और 'श' प्रत्यय * होते हैं ; 'श्' इत्, 'अ' रहता है ; यथा—(क्यप्) कृत्या ; (श) क्रिया ।

* * * *

८६७ । (क) अथु (अथुच्)—'टु'-संसृष्ट धातुके उत्तर भाववाच्यमे ; यथा—(टुवेप्) वेपथुः ; (टुवम्) वमथुः ; (टुश्वि) श्वयथुः ; (टुक्षु) क्षवथुः ; (टुदु) दवथुः ; (टुभ्राज्) भ्राजथुः ।

(ख) अनि—(सृ) सरणिः ; (ऋ) अरणिः ; (धृ) धरणिः ; (अव्) अवनिः ; (अश्) अशनिः इत्यादि ।

(ग) अस् (असुन्)—(सरति इति) सरः ; (चेतति इति—चित् संज्ञाने, भ्वादि) चेतः । (पीयते इति—पीङ्, दिवादि) पयः ;

* श—पा, घ्मा, दृश्, धेट् धातु, और उपसर्गविहीन लिम्प्, विन्द्, पारि धातु तथा 'उत्'-पूर्वक एजि (णिजन्त एज्) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'श' होता है ; 'श्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(पिबति इति) पिबः ; (धमति इति) धमः ; (पश्यति इति) पश्यः ; (धयति इति) धयः । (लिम्पति इति) लिम्पः ; (विन्दति इति) विन्दः ; (पारयति इति) पारयः ; (उदेजयति—उत्कम्पयति इति) उदेजयः ;—"आचाँद्‌द्विजातीन् परमार्थविन्दान्, उदेजयान् भूतगणान् न्यषेधीत्" भ० १. १५. । "घटानिवापश्यदलं तपस्यतः फलानि धूम्रस्य धयानधोमुखान्" नै० १; ८२. ।

(उच्यते इति) वचः । (मन्यते अनेन इति) मनः ; (रज्यते अनेन—रञ्ज्) रजः ('न'-लोप) ; (ताम्यति अनेन) तमः ; इत्यादि ।*

(घ) आलु (आलुच्)—शीलार्थे—(दय्) दयालुः (दयाशील इत्यर्थः) ; (नि+द्रा) निद्रालुः ; (तन्द्रा) तन्द्रालुः ; (श्रद्धा) (श्रद्धालुः) ; (शी) शयालुः † ; (गृहि) गृहयालुः ; (स्पृहि) स्पृहयालुः ; (पति) पतयालुः ।

(ङ) इत्नु (इत्नुच्)—(स्तनि—स्तनयति इति) स्तनयित्नुः (मेघ इत्यर्थः) इत्यादि ।

(च) इत्र—(करणवाच्ये)—(लूयते अनेन इति) लवित्रम् (दात्रम् इत्यर्थः—दाँती) ; (खन्यते अनेन) खनित्रम् ; (धूयते अनेन) धवित्रम् (मृगचर्मव्यजनम् इत्यर्थः) ; (पूयते अनेन) पवित्रम् (कुशम् इत्यर्थः) ; (चर्) चरित्रम् ; (ऋ) अरित्रम् ।

(छ) इष्णु (इष्णुच्)—शीलार्थे—(सह्) सहिष्णुः (सहनशील इत्यर्थः) ; (रुच्) रोचिष्णुः ; (वृध्) वर्द्धिष्णुः ; (अलङ्कृ)

---

* इस् (इसि)—(सर्पति इति) सर्पिः ; (छादयति इति , छाद्यते अनेन इति वा) छदिः (स्त्री० क्ली०) ; (हूयते इति) हविः ; (अर्च्यते इति) अर्चिः ; (रोचते अनेन) रोचिः ; (शुच्यति—पूतीभवति—अनेन) शोचिः (दीप्तिः) ।

उस् (उसि)—(चष्टे—पश्यति—अनेन) चक्षुः ; (धनति इति—धन् शब्दे) धनुः ; (उप्यन्ते देहान्तरभोगसाधनबीजीभूतानि कर्माणि अत्र) वपुः ।

† "हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्" माघ० २. ८०।

अलङ्करिष्णुः ; (निरा + कृ) निराकरिष्णु ; (प्र + जन्) प्रजनिष्णुः ; (उत् + पत्) उत्पतिष्णुः ; (उत् + मद्) उन्मदिष्णुः ; (अप + त्रप्) अपत्रपिष्णुः (लज्जाशील इत्यर्थः) ; (वृत्) वर्त्तिष्णुः ; (चर्) चरिष्णुः ; (प्र + भू) प्रभविष्णुः ।

(ज) उ(डु)—(प्रभवति इति) प्रभुः ; विभुः ; (शं सुखं भवति—भावयति—इति) शम्भुः ।

(झ) उक(उकञ्)—शीलार्थे—(कामयते इति) कामुकः ; (गम्) गामुकः (गमनशील इत्यर्थः) ; (पत्) पातुकः ; (स्था) स्थायुकः ; (भू) भावुकः ; (लष्) लाषुकः ; (वृष्) वर्षुकः ; (हन्) घातुकः ('हन्'—'घात्' होता है) ।

(ञ) उर(कुरच्)—शीलार्थे—(विद्) विदुरः (पण्डितः, ज्ञानीत्यर्थः) ; (भिद्) भिदुरः ; (छिद्) छिदुरः । (घुरच्)—(भास्) भासुरः ; (मिद् स्नेहने, स्निग्धीभावे—भ्वा० आ०) मेदुरः ; (मस्ज्) भङ्गुरः (कर्मकर्त्तरि) ।

(ट) ऊक—शीलार्थे—(जागृ) जागरूकः (जागरणशील इत्यर्थः) । यङन्त—(यज्) यायजूक (सर्वदा यज्ञकारक) ; (जप्)जञ्जपूकः (पुनः-पुनः जपकारी) ; (वद्) वावदूकः (वाचाल ; बहुवक्ता) ; (दन्श्) दन्दशूकः (सर्प इत्यर्थः) । (यङ्का लोप होता है) ।

(ठ) त्र (ष्ट्रन्)—(करणवाच्ये)—(दा छेदने—दाति अनेन इति) दात्रम् ; (नयति अनेन) नेत्रम् ; (शस् हिंसायाम्—शसति अनेन) शस्त्रम् ; (स्तौति अनेन) स्तोत्रम् ; (पतति गच्छति अनेन)पत्त्रम् (वाहनम् इत्यर्थः) ; (दशति अनया) दंष्ट्रा ।

(ड) त्रिम (त्रिक्मप्)—'ड्वि'-संयुक्त धातुके उत्तर 'तन्निर्वृत्त'-अर्थमें ;

यथा—(डुकृ—क्रियया निर्वृत्तम् निष्पन्नम्) कृत्रिमम् ; (डुपच्—पाकेन निर्वृत्तम्) पक्त्रिमम् ; (डुदा—दानेन निर्वृत्तम्) दत्त्रिमम् ('दा' के स्थानमे 'दत्' होता है) ।

(ढ) न (नङ्)—(भाववाच्ये)—(यज्) यज्ञः ; (यत्) यत्नः ; (स्वप्)स्वप्नः ; (प्रच्छ्) प्रश्नः ; (याच्) याच्ञा ।

(ण) नु (क्नु)—शीलार्थे—(त्रस्) त्रस्नुः (त्रासशील इत्यर्थः) ; (गृध्) गृध्नुः (लुब्धः) ; (धृष्) धृष्णुः ; (क्षिप्) क्षिप्नुः ।

(त) मर (क्मरच्)—शीलार्थे—(घस्) घस्मरः(बह्वाशी, भोजनप्रिय इत्यर्थः)—"दावानलो घस्मरः" भामिनी० १.३३ ; (अद्) अद्मरः ; (सृ) सृमरः ।

(थ) र—शीलार्थे—(नम्) नम्रः ; (हिंस्) हिंस्रः ; (स्मि) स्मेरः ; (कम्प्) कम्प्रः ; (दीप्) दीप्रः ।

(द) वर(वरच्)—शीलार्थे—(स्था) स्थावरः (स्थानशील इत्यर्थः) ; (ईश्) ईश्वरः ; (भास्) भास्वरः । (क्वरप्, क्वरप्)—शीलार्थे—(नश्) नश्वरः ; (इण्) इत्वरः ; (जि) जित्वरः ; (सृ) सृत्वरः ; (गम्) गत्वरः ('गम्'-धातुके 'म्' के स्थानमे 'त्' होता है) ।

(ध) स्नु (ग्स्नु, स्नुक्)—शीलार्थे—(जि) जिष्णुः ; (भू) भूष्णुः ; (स्था) स्थास्नुः ; (ग्ला—ग्लै) ग्लास्नुः ।

स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण ।

स्त्रीलिङ्गमे किसी किसी शब्दके उत्तर 'आप्', किसी किसी शब्दके उत्तर 'ईप्', और किसी किसी शब्दके उत्तर 'ऊप्' होता है ; उनको 'स्त्रीप्रत्यय' कहते हैं ।

आप् ।

८६८ । अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'आप्' (टाप्) होता है । 'प्' इत्, 'आ' रहता है ; यथा—(शुभ) शुभा ; (दीन) दीना ; (सरल) सरला ; (निपुण) निपुणा ; (दक्षिण) दक्षिणा ; (उत्तर) उत्तरा ; (पूर्व) पूर्वा ; (पश्चिम) पश्चिमा ; (सर्व) सर्वा ; (एक) एका ; (प्रथम) प्रथमा ; (द्वितीय) द्वितीया ; (तृतीय) तृतीया ; (कर्त्तव्य) कर्त्तव्या ; (पठित) पठिता ; (अनुकूल) अनुकूला ; (मनोहर) मनोहरा ।

८६९ । 'आप्' होनेसे, अष्टकादि-भिन्न* 'अक'भागान्त शब्दके प्रत्ययस्थ-ककारके पूर्ववर्त्ती अकारके स्थानमे इकार होता है ; यथा—(साधक) साधिका ; (पाठक) पाठिका ; (कारक) कारिका ; (नायक) नायिका ; (नाटक) नाटिका ; (बालक) बालिका ।

८७० । कई व्यञ्जनान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर विकल्पसे 'आप्' होता है ; यथा—(वाच्) वाचा, वाच् ; (गिर्) गिरा, गिर् ;

---

* अष्टकादि—अष्टका, इष्टका, कन्यका, करका, चटका, तारका, अधित्यका, उपत्यका ॥ बहुव्रीहि-समासमेभी नहीं होता ; यथा—बहुपरिव्राजका नगरी । किन्तु समासान्त 'क'-प्रत्ययके स्थलमे होता है ; यथा—तदात्मिका ।

(दिश्) दिशा, दिश् ; (आपद्) आपदा, आपद् ; (रुज्) रुजा, रुज् ; (क्षुध्) क्षुधा, क्षुध् ।

ईप् ।

८७१ । ऋकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (ङीप्) होता है ; 'प्' इत्, 'ई' रहता है ; यथा—(दातृ) दात्री ; (धातृ) धात्री ; (कर्तृ) कर्त्री ; (जनयितृ) जनयित्री ; (प्रसवितृ) प्रसवित्री ।*

८७२ । नकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (ङीप्) होता है ; यथा—(मानिन्) मानिनी ; (मायाविन्) मायाविनी ; (तपस्विन्) तपस्विनी ; (विलासिन्) विलासिनी ; (अनुरागिन्) अनुरागिणी ; (प्रियवादिन्) प्रियवादिनी ; (मनोहारिन्) मनोहारिणी । †

---

* ऋकारान्तके बीचमे, 'स्वसृ'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता ।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥

† नकारान्तके बीचमे,—सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता ; यथा—पञ्च, सप्त, अष्ट, नव, दश ।

(क) 'मन्'-भागान्त शब्दके उत्तर विकल्पसे 'डाप्' होता है, 'ईप्' नहीं होता ; 'ड्' और 'प्' इत्, 'आ' रहता है ; यथा—(सीमन्) सीमे, सीमानौ ; (पामन्) पामे, पामानौ ; (दामन्) दामे, दामानौ ।

(ख) बहुव्रीहि-समास होनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता ; यथा—(बहूनि पर्व्वाणि सन्ति यस्यां सा) बहुपर्व्वा [वेणुयष्टिः] ।

(ग) बहुव्रीहि-समास होनेसे, 'अन्'-भागान्त प्रातिपदिकके उत्तर

(क) 'ईप्' होनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके उपधा अकारका लोप होता है; यथा—(राजन्) राज्ञी । *

उपधा अकार 'म'-संयुक्त अथवा 'व'-संयुक्त वर्णमें मिलित रहनेसे नहीं होता ।

(ख) 'युवति'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध; यथा—(युवन्) युवतिः, युवती, यूनी ; (श्वन्) शुनी ; (मघवन्) मघोनी, मघवती ।

८७३ । उकार-इत् (उदित्) और ऋकार-इत् (ऋदित्) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' (ङीप्) होता है । यथा—उदित्—(मघत्—डवतु) मवती ; (वतुप्)—(इयत्) इयती, (कियत्) कियती ; (मतुप्)—(श्रीमत्) श्रीमती, (बुद्धिमत्) बुद्धिमती, (पुत्रवत्) पुत्रवती, (लज्जावत्) लज्जावती, (बलवत्) बलवती, (प्रभावत्) प्रभावती ; (क्तवतु)—(कृतवत्) कृतवती ; (ईयसु)—(प्रेयस्) प्रेयसी, (श्रेयस्) श्रेयसी, (गरीयस्) गरीयसी, (लघीयस्) लघीयसी, (कनीयस्) कनीयसी ; (क्वसु)—(विद्वस्) विदु-

---

विकल्पसे 'डाप्' होता है; यथा—बहुपर्व्वा, बहुपर्व्वे, बहुपर्व्वाः ; (पक्षे) बहुपर्व्वा, बहुपर्व्वाणौ, बहुपर्व्वाणः ।

* जिन 'अन्'-भागान्त शब्दके उपधा अकारका लोप हो सकता है, बहुव्रीहि-समास होनेसे, उनके उत्तर विकल्पसे 'डाप्' और 'ईप्' होते हैं ; यथा—(बहवः राजानः सन्ति अत्र) बहुराजा, बहुराजे, बहुराजाः ; बहुराज्ञी, बहुराज्ञ्यौ, बहुराज्ञ्यः ; (पक्षे) बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः ; (सुनामन्) सुनामा, सुनाम्नी ।

यी*। ऋदित्—(शतृ)—(सत्) सती, (रुदत्) रुदती, (छिपत्) छिपती, (शृण्वत्) शृण्वती, (कुर्वत्) कुर्वती, (बिभ्रत्) बिभ्रती, (गृह्णत्) गृह्णती, (जानत्) जानती।

(क) 'ईप्' होनेसे, भ्वादि और दिवादिगणीय धातुके उत्तर विहित 'शतृ'-प्रत्ययके स्थानमे 'नुम्' होता है; 'उ' और 'म्' इत्, 'न्' रहता है; 'न्' अन्त्यस्वरके परवर्त्ती होकर तकारमे मिलता है। यथा—(भ्वादिगणीय)—(भवत्) भवन्ती; (धावत्) धावन्ती; (गच्छत्) गच्छन्ती; (पतत्) पतन्ती; (तिष्ठत्) तिष्ठन्ती; (चलत्) चलन्ती; (पठयत्) पठयन्ती; (कारयत्) कारयन्ती; (स्मारयत्) स्मारयन्ती; (स्थापयत्) स्थापयन्ती; (पालयत्) पालयन्ती। (दिवादिगणीय)—(दीव्यत्) दीव्यन्ती; (नश्यत्) नश्यन्ती; (नृत्यत्) नृत्यन्ती; (जीर्य्यत्) जीर्य्यन्ती; (मुह्यत्) मुह्यन्ती।

(ख) तुदादिगणीयके उत्तर विकल्पसे; यथा—(तुदत्) तुदन्ती, तुदती; (इच्छत्) इच्छन्ती, इच्छती; (पृच्छत्) पृच्छन्ती, पृच्छती; (स्पृशत्) स्पृशन्ती, स्पृशती; (सिञ्चत्) सिञ्चन्ती, सिञ्चती।

(ग) अदादिगणीय आकारान्तके उत्तर विकल्पसे; यथा—(यात्) यान्ती, याती; (मात्) मान्ती, माती; (स्नात्) स्नान्ती, स्नाती।

(घ) 'ईप्' होनेसे, 'स्यतृ'-प्रत्ययके स्थानमे विकल्पसे 'नुम्' होता है; यथा—(भविष्यत्) भविष्यन्ती, भविष्यती; (करिष्यत्) करिष्यन्ती, करिष्यती; (दास्यत्) दास्यन्ती, दास्यती; (यास्यत्) यास्य-

---

* 'ईप्' होनेसे, क्वसु (वस्)-प्रत्ययान्त शब्दकी आकृति क्लीवलिङ्ग प्रथमाके द्विवचनान्तके तुल्य होती है।

न्ती, यास्यती ।*

८७४ । टकार-इत् (टित्) और पकार-इत् (पित्) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' † होता है । यथा—टित्-प्रत्यय—(ट)—(कर्मकर) कर्मकरी ‡, (अर्थंकर) अर्थंकरी, (यशस्कर) यशस्करी, (भयङ्कर) भयङ्करी, (निशाचर) निशाचरी ; (थट्)—(चतुर्थ) चतुर्थी, (षष्ठ) षष्ठी ; (मट्)—(पञ्चम) पञ्चमी, (सप्तम) सप्तमी, (अष्टम) अष्टमी, (नवम) नवमी, (दशम) दशमी ; (डट्)—(एकादश) एकादशी, (द्वादश) द्वादशी, (त्रयोदश) त्रयोदशी, (चतुर्दश) चतुर्दशी, (षोडश) षोडशी ; (अयट्)—(द्वय) द्वयी, (त्रय) त्रयी ; (तयट्)—(चतुष्टय) चतुष्टयी ; (मयट्)—(दयामय) दयामयी, (स्वर्णमय) स्वर्णमयी, (मृन्मय) मृन्मयी, (हिरण्मय) हिरण्मयी ; (टक्)—(ईदृश) ईदृशी, (तादृश) तादृशी, (यादृश) यादृशी, (कीदृश) कीदृशी, (सदृश) सदृशी, (एतादृश) एतादृशी, (अन्यादृश) अन्यादृशी । पित्-प्रत्यय—(एक)—(नर्त्तक) नर्त्तकी, (रजक) रजकी ; (ष्ण)—(मानव) मानवी, (वैष्णव) वैष्णवी, (द्रौपद) द्रौपदी, (पाञ्चाल) पाञ्चाली, (मागध) मागधी, (मैथिल) मैथिली, (पौत्र) पौत्री, (दौहित्र)

* इन चार सूत्रोंमे उक्त कार्य्य क्लीवलिङ्ग प्रथमाके द्विवचनमेभी होता है।

† पाणिनि मते—'टित्'-प्रत्ययान्तके उत्तर 'ङीप्', और 'पित्'-प्रत्ययान्तके उत्तर 'ङीष्' होता है ।

‡ 'ईप्' होनेसे, शब्दके अन्तस्थित अवर्णका लोप होता है ।

दौहित्री; (ष्णेय)—(भागिनेय) भागिनेयी; (क्वरप्)—(गत्वर) गत्वरी, (नश्वर) नश्वरी—"गत्वर्यो यौवनश्रियः" भा० ११. १२.।

८७५। 'प्राच्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है; यथा—(प्राच्) प्राची; (अवाच्) अवाची।

(क) 'प्रतीची'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध; यथा—(प्रत्यच्) प्रतीची; (उदच्) उदीची; (तिर्यच्) तिरश्ची।

८७६। 'क्वनिप्'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (ङीप्) होनेसे, शब्दके अन्तस्थित 'न्' के स्थानमे 'र्' होता है; यथा—(पारदृश्वन्) पारदृश्वरी; (सहकृत्वन्) सहकृत्वरी—नै० १-१२.।

८७७। बहुव्रीहि-समास होनेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्त्ती दामन् और हायन शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है। यथा—(द्वे दाम्नी यस्याः सा) द्विदाम्नी [रज्जुः]; (त्रीणि दामानि यस्याः सा) त्रिदाम्नी। (द्वौ हायनौ यस्याः सा) द्विहायनी [वत्सा]; त्रिहायणी, चतुर्हायणी [गौः]।

'हायन'-शब्द वयोवाचक न होनेसे 'ईप्' और णत्व नहीं होते; यथा—द्विहायना, त्रिहायना, चतुर्हायना [शाला]।

८७८। 'पाद्'-भागान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है; 'ईप्' होनेसे, 'पाद्' के स्थानमे 'पद्' होता है; यथा—चतुष्पाद्, चतुष्पदी।

८७९। 'पति'-शब्दके स्त्रीलिङ्गमे—पत्नी। 'सपत्नी'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध; यथा—(समानः पतिरस्याः) सपत्नी; (एकः पतिर-

स्याः) एकपत्नी (साध्वी); (वीरः पतिरस्याः) वीरपत्नी; (वृद्धः पतिरस्याः) वृद्धपत्नी; (पञ्च पतयः अस्याः) पञ्चपत्नी [द्रौपदी]; (पतिरस्ति यस्याः सा) पतिवत्नी (जीवद्भर्तृका इत्यर्थः); (अन्तः अस्ति अस्यां गर्भः) अन्तर्वत्नी (गर्भिणी इत्यर्थः)।

८८०। 'गौर'-प्रभृति * अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (ङीप्) होता है; यथा—(गौर) गौरी; (कुमार) कुमारी; (किशोर) किशोरी; (तरुण) तरुणी; (सुन्दर) सुन्दरी; (नद) नदी; (वृहत्) वृहती इत्यादि।

८८१। जातिवाचक अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (ङीप्) होता है; यथा—(सिंह) सिंही; (व्याघ्र) व्याघ्री; (भल्लुक) भल्लुकी; (मृग) मृगी; (हरिण) हरिणी; (कुरङ्ग) कुरङ्गी; (गर्दभ) गर्दभी; (शूकर) शूकरी; (कुकुर) कुकुरी; (जम्बुक) जम्बुकी; (शृगाल) शृगाली; (विडाल) विडाली; (घोटक) घोटकी; (महिष) महिषी; (हंस) हंसी; (सारस) सारसी; (चक्रवाक) चक्रवाकी; (मानुष) मानुषी; (ब्राह्मण) ब्राह्मणी; (गोप) गोपी; (चण्डाल) चण्डाली; (पिशाच) पिशाची; (राक्षस) राक्षसी। (गार्ग्य) गार्गी; (वात्स्य) वात्सी।

(क) नित्य-स्त्रीलिङ्ग होनेसे नहीं होता; यथा—मक्षिका, बलाका।

---

* गौर, कुमार, किशोर, तरुण, सुन्दर, पुत्र, पितामह, मातामह, देव, नद, तट, नट, पट, कदल, स्थल, नाग, मण्डल, काल, महत्, वृहत्, बदर, आमलक, तूण, सूच इत्यादि।

(ख) जातिवाचकके* बीचमे, 'अज'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता ; यथा—(अज) अजा ; (अश्व) अश्वा ; (बाल) बाला ; (चटक) चटका ; (कोकिल) कोकिला ; (मूषिक) मूषिका ; (शूद्र) शूद्रा (किन्तु 'महत्'-शब्द पूर्वमे रहनेसे होता है ; यथा—महाशूद्री) ।

(ग) जिन जातिवाचक शब्दोंकी उपधामे 'य' रहता है, उनके उत्तर 'ईप्' नहीं होता ; यथा—क्षत्रिया ; वैश्या ।

किन्तु हय, गवय, मत्स्य और मनुष्य शब्दके उत्तर होता है ;† यथा—हयी, गवयी इत्यादि ।

८८२ । 'पत्नी'-अर्थमे, जातिवाचक अकारान्त शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीष्) होता है ; यथा—(ब्राह्मणस्य पत्नी) ब्राह्मणी ; (क्षत्रियस्य पत्नी) क्षत्रियी ; (वैश्यस्य पत्नी) वैश्यी ; (शूद्रस्य पत्नी) शूद्री ; (गोपस्य पत्नी) गोपी ; (गणकस्य पत्नी) गणकी ; (नापितस्य पत्नी) नापिती ; (निषादस्य पत्नी) निषादी ।

किन्तु पालकान्त शब्दके उत्तर नहीं होता ; यथा—(गोपालकस्य पत्नी) गोपालिका ।

---

* समानैकाकृतियुता जातिमन्तस्तु कीर्त्तिताः ।
विप्रक्षत्रादिवर्णा ये, जातयस्तेऽपि सम्मताः ॥
पौत्राद्यपत्यवर्गश्च गोत्रं, तज्जातिरीरिता ।
जातिवाचिन आख्यातास्तद्विशिष्टस्य वाचकाः ॥

† 'ईप्' होनेसे, 'मत्स्य'-शब्दके यकारका लोप होता है ; यथा—मत्सी । और व्यञ्जनवर्णके परस्थित तद्धितप्रत्ययके यकारका लोप होता है ; यथा—मनुष्य + ईप्=मनुषी ।

(क) सूर्य्यस्य पत्नी—सूरी (मानुषी—कुन्ती), सूर्य्या (दैवी—संज्ञा और छाया)। (अग्नेः पत्नी) अग्नायी। (मनोः पत्नी) मनायी, मनावी।

८८३। बहुव्रीहि वा प्रादिसमासमे अन्य पदार्थको समझानेसे, स्वाङ्ग-वाचक अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है। यथा—सुकेशी, सुकेशा; चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा; ताम्रनखी, ताम्रनखा। (केशान् अतिक्रान्ता) अतिकेशा [माला]।

प्राणीके अङ्गकोही 'स्वाङ्ग' कहते हैं; इसलिये 'पूर्वमुखा'—यहाँ 'ईप्' नहीं होगा।

प्राणिस्थ होनेसेभी—द्रव-पदार्थ 'स्वाङ्ग' नहीं; यथा—बहुकफा [कन्या]। जिसकी मूर्त्ति नहीं, वह 'स्वाङ्ग' नहीं; यथा—सुज्ञाना [रमणी]। विकारजनित पदार्थ 'स्वाङ्ग' नहीं; यथा—(बहुशोथा) (जरती)। प्राणिस्थ न होनेपरभी जो पहले प्राणीमे दृष्ट होता है, वहभी 'स्वाङ्ग'; यथा—दीर्घकेशी दीर्घकेशा रथ्या। प्राणीका जो अङ्ग जिसप्रकार प्राणीमे रहता है, वह अङ्ग उसीप्रकार अप्राणीमे दृष्ट होनेसे, उसको भी 'स्वाङ्ग' कहा जाता है; यथा—सुमुखी सुमुखा प्रतिमा। *

(क) जिन अङ्ग (अवयव)-वाचक शब्दकी उपधामे संयुक्तवर्ण रहे, उनके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता; यथा—मृगनेत्रा, चन्द्रवक्त्रा, लोलजिह्वा।

---

* अद्रवं, मूर्त्तिमत् 'स्वाङ्गं,' प्राणिस्थमविकारजम्।
अप्राणिस्थं तत्र दृष्टं, तेन तुल्ये तथा स्थितम्॥

तेनेति। प्राणिनि यथा स्थितं स्वाङ्गम्, तथैव प्राणितुल्ये वस्तुनि यत् स्थितम्, तदपि स्वाङ्गमित्यर्थः।

किन्तु 'अङ्ग'-प्रभृति शब्दके उत्तर होता है ; यथा—कृशाङ्गी, कृशाङ्गा ; मृदुगात्री, मृदुगात्रा ; बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा ; कुन्ददन्ती, कुन्ददन्ता ; चारुकर्णी, चारुकर्णा ; दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा ; कोकिलकण्ठी, कोकिलकण्ठा ; सत्पुच्छी, सत्पुच्छा ; तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा ।

(ख) क्रोड, खुर, शफ, गल, कर, भुज, घोणा, शिखा प्रभृतिके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता ; यथा—सुक्रोडा ; तीक्ष्णखुरा ; दीर्घशफा ; आयतभुजा ; उन्नतघोणा ; चारुशिखा ।

(ग) दोसे अधिक स्वरविशिष्ट अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता ; यथा—सुलोचना ; चारुदशना ; पृथुजघना ।

किन्तु 'नासिका' और 'उदर' शब्दके उत्तर होता है ; यथा—तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका ; कृशोदरी, कृशोदरा ।

(घ) 'सह', 'नञ्' और 'विद्यमान' शब्द पूर्वमे रहनेसे, अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता ; यथा—सकेशा ; अकेशा ; विद्यमानकेशा ।

(ङ) संज्ञा समझानेसे, 'नख' और 'मुख' शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता ; यथा—शूर्पणखा ; गौरमुखा । (अन्यत्र—शूर्पनखा, शूर्पनखी ; गौरमुखा, गौरमुखी) ।

८८४। बहुव्रीहि-समास होनेसे, 'ऊधस्'-शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है, और 'टि' के स्थानमे 'न्' होता है ; यथा—(पीनम् ऊधः यस्याः सा) पीनोध्नी ; (घटवत् ऊधः यस्याः सा) घटोध्नी ; कुण्डोध्नी ।

८८५। इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है ; यथा—श्रेणिः, श्रेणी ; राजिः, राजी ; आलिः, आली ; कटिः, कटी ; रात्रिः, रात्री ; रजनिः, रजनी ; अवनिः,

अवनी; शारिः, शारी; यष्टिः, यष्टी; भूमिः, भूमीः।

'क्ति'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर नहीं होता; यथा—गतिः, स्थितिः, स्तुतिः, मतिः, भक्तिः, मुक्तिः, युक्तिः, बुद्धिः। किन्तु 'पद्धति'-शब्दके उत्तर होता है; यथा—पद्धतिः, पद्धती।

८८६। उकारान्त गुणवाचक* विशेषणके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है; यथा—साधुः, साध्वी; मृदुः, मृद्वी, पटुः, पट्वी; गुरुः, गुर्वी; लघुः, लघ्वी; अणुः, अण्वी; तनुः, तन्वी; स्वादुः, स्वाद्वी; बहुः, बह्वी। †

आनीप्।

८८७। ब्रह्मन्, इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र और मृड शब्दके उत्तर 'पत्नी'-अर्थमे 'आन्' (आनुक्) और 'ईप्' (ङीप्)—अर्थात् 'आनीप्'—होता है; यथा—(ब्रह्मणः पत्नी) ब्रह्माणी ‡; (इन्द्रस्य पत्नी) इन्द्राणी; वरुणानी; भवानी; शर्वाणी; रुद्राणी; मृडानी।

'मातुल'-शब्दके उत्तर विकल्पसे होता है; यथा—मातलानी, मातुली।

'उपाध्याय'-प्रभृति शब्दके उत्तर अर्थविशेषमे होता है। यथा—

---

* सिद्धरूपा वस्तुधर्मा जातिभिन्ना गुणा मताः।
गुणवाचिन आख्यातास्तद्विशिष्टस्य वाचकाः॥

† उपधामे युक्ताक्षरविशिष्ट शब्दके उत्तर नहीं होता; यथा—पाण्डुः।

‡ 'आनीप्' होनेसे, 'ब्रह्मन्'-शब्दके नकारका लोप होता है।

उपाध्याय—('पत्नी'-अर्थमे) उपाध्यायानी, उपाध्यायी ; (स्वयम् अध्यापिका) उपाध्यार्यी, उपाध्याया। आचार्य्य—('पत्नी'-अर्थमे) आचार्य्यानी* ; (स्वयं व्याख्यात्री) आचार्य्या। क्षत्रिय—('पत्नी'-अर्थमे) क्षत्रियी ; (स्वयम्) क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। अर्य्य (वैश्य)—('पत्नी'-अर्थमे) अर्य्यी ; (स्वयम्) अर्य्याणी, अर्य्या। हिम—हिमानी (हिमसंहति, महत् हिम)। अरण्य—अरण्यानी (महारण्य)। यव—यवानी (दुष्ट यव)। यवन—यवनानी (यवनोंका लिपिविशेष)।

ऊप्।

८८८। प्राणि-भिन्न उकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ऊप्' (ऊङ्) होता है ; 'प्' इत्, 'ऊ' रहता है ; यथा—(जम्बु) जम्बूः ; (अलाबु) अलाबूः ; (कर्कन्धु) कर्कन्धूः। †

८८९। 'तनु'-प्रभृति शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ऊप्' होता है ; यथा—तनुः, तनूः ; चञ्चुः, चञ्चूः।

८९०। उपमानपदके परवर्त्ती 'ऊरु'-शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ऊप्' (ऊङ्) होता है ; यथा—(रम्भे इव ऊरू यस्याः सा) रम्भोरूः ; (करभौ ‡ इव ऊरू यस्याः सा) करभोरूः ; (करभ उपमा ययोः तौ ऊरू यस्याः सा) करभोपमोरूः—र० ६. ८३ ; (करिकरौ इव ऊरू यस्याः सा) करिकरोरूः।

---

* 'आचार्य्यानी'-शब्दका 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता।

† मनुष्यजाति समझानेसेभी होता है ; यथा—कुरुः, ब्रह्मबन्धूः। 'रज्जु' और 'हनु' शब्दके उत्तर नहीं होता।

‡ "मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः" इत्यमरः।

(क) 'वाम'-शब्दके परवर्त्ती 'ऊरु'-शब्दके उत्तर 'ऊङ्' होता है, यथा—(वामौ—सुन्दरौ—ऊरू यस्याः सा) वामोरूः।

प्रश्न ।

स्त्रीलिङ्ग करो—देव, सखि, पति, धातृ, प्राच्, प्रत्यच्, तिर्य्यच्, उदच्, पापकृत्, सत्, धीमत्, महत्, बृहत्, त्यजत्, कुर्वत्, भजत्, ददत्, भवत्, करिष्यत्, महामहिमन्, महात्मन्, श्वन्, युवन्, धनिन्, तादृश्, पतिद्विष्, उन्मनस्, विद्वस्, महीयस, दीर्घायुस्, सर्व, पूर्व, अन्य, एक, प्रथम, सप्तम, पञ्चाशत्, पञ्चाश (डट्), शततम (तमट्), गौर, मृग, अश्व, सगाम, वरुण।

तद्धित-प्रकरण ।

८९१। शब्द वा प्रातिपदिकके उत्तर 'मतुप्'-प्रभृति कई प्रत्यय करनेसे शब्द उत्पन्न होता है; उनको 'तद्धित-प्रत्यय' कहते हैं।

तद्धित-कार्य्य ।

८९२। तद्धित प्रत्ययका मूर्द्धन्य 'ण' इत् होनेसे, शब्दके आदिस्वरकी वृद्धि होती है; यथा—तर्क + ष्णिक = तार्किकः।

कहीं कहीं 'णित्'-कार्य्य नहींभी होता।

(क) कई समस्तपदोंके उत्तरपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है। यथा—गुरुलघु + ष्ण = गुरुलाघवम्; पितृपितामह + ष्ण = पितृपैतामहम् (पितृपितामहानाम् इदम्); (वातपित्तस्य संयोगो निमित्तम्—वातपित्त +

ष्णिक) वातपैत्तिकम् ; वातश्लैष्मिकम् । (पूर्वं वर्षाणाम्—पूर्ववर्षम्, तस्मिन् भवम्—पूर्ववर्ष + ष्णिक) पूर्ववार्षिकम् । (द्वौ संवत्सरौ व्याप्य भूतं भावि वा) द्विसांवत्सरिकम् । सङ्ख्या-पूर्व 'वर्ष'-शब्दके उत्तर भविष्यत्-भिन्न कालमे प्रत्यय होनेसे—(द्वे वर्षे व्याप्य भूतं भवत् वा) द्विवार्षिकम् ।

(ख) कई समस्तपदोंके पूर्वपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है। यथा—(पूर्वासु वर्षासु भवम्) पौर्ववर्षिकम् । (द्वौ मासौ व्याप्य भूतं भवत् वा) द्वैमासिकम् ; त्रैमासिकम् । (द्वे वर्षे व्याप्य भावि) द्वैवर्षिकम् । (सुहृदः भावः) सौहृदम् (ष्ण), सौहृद्यम् (ष्ण्य) ; दौर्हृदम्, दौर्हृद्यम् । (मित्रावरुणयोः अपत्यम्) मैत्रावरुणिः (ष्णि) ।

(ग) कई समस्तपदोंके उभयपदकेही आदिस्वरकी वृद्धि होती है । यथा—(इहलोके भवः—इहलोक + ष्णिक) ऐहलौकिकः ; (परलोक) पारलौकिकः ; (सर्वलोके विदितः) सार्वलौकिकः ; (अधिदेव) आधिदैविकः ; (अधिभूत) आधिभौतिकः ; (सर्वभूमि) सार्वभौमः (ष्ण) (चतस्रः विद्याः—चतुर्विद्या + ष्ण) चातुर्वैद्यम् ; (परस्त्रियाः अपत्यम्—परस्त्री + ष्णेय) पारस्त्रैणेयः (जारज इत्यर्थः) । (सुहृदः सुहृदयस्य वा भावः—सुहृद्, सुहृदय + ष्ण) सौहार्दम्, सौहार्द्यम् (ष्ण्य) ; (सुभगस्य भावः) सौभाग्यम् (ष्ण्य) ; दौर्भाग्यम् ।

(घ) कई नञ्तत्पुरुषसमासनिष्पन्न पदोंके, उत्तरपद वा उभयपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है ; यथा—अशौचम्, आशौचम् ; अनैश्वर्य्यम्, आनैश्वर्य्यम् ; अकौशलम्, आकौशलम् ; अनैपुणम्, आनैपुणम् ; अयाथातथ्यम्, आयाथातथ्यम् ।

८९३ । 'णित्' तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, समस्तपदके आदिस्वरके स्थानमे जात 'य्' के स्थानमे 'ऐय्' और 'व्' के स्थानमे 'औव्' होता है; यथा—(वि + आस = व्यास + ष्णिक) वैयासिकः ; (वि + आकरण = व्याकरण + ष्ण) वैयाकरणः ; (सु + अश्व = स्वश्व + ष्णिक) सौवश्विकः ।

'व्यवहार', 'स्वागत' प्रभृति शब्दोंका नहीं होता ; यथा—(व्यवहारम् अर्हति—व्यवहार + ष्णिक) व्यावहारिकः, व्यवहारिकः इत्यादि ।

द्वार, स्वर, स्वस्ति, श्वस् प्रभृति शब्दोंकाभी होता है ; यथा—(द्वारे नियुक्तः—द्वार + ष्णिक) दौवारिकः ; (स्वर + ष्ण) सौवरः ; (स्वस्तिकरणे कुशलः—स्वस्ति + ष्णिक) सौवस्तिकः ; (श्वः परदिने भवः—श्वस् + ष्णिक) शौवस्तिकः ; इत्यादि ।

'श्वापद' और 'न्यङ्कु' शब्दका विकल्पसे होता है ; यथा—(श्वापद + ष्ण) शौवापदः—"कश्चित् कान्तारभाजां भवति परिभवः कोऽपि शौवापदो वा ?" अनर्घ० १.२९ ; (न्यङ्कु) नैयङ्कवः ।

८९४ । तद्धितप्रत्ययके 'य' और स्वरवर्ण परे रहनेसे, शब्दके अन्तस्थित अवर्ण और इवर्णका लोप होता है ; यथा—पर्वत + ष्ण्य = पार्वत्यः ; माया + ष्णिक = मायिकः ; विधि + ष्ण = वैधः ।

८९५ । तद्धितप्रत्ययके 'य' और स्वरवर्ण परे रहनेसे, शब्दके अन्तस्थित उवर्णका गुण होता है ; यथा—पाण्डु + ष्ण = पाण्डवः ; वाहु + ष्णि = वाहविः । *

* 'ष्णेय' परे, उवर्णका लोप होता है ; यथा—कमण्डलु + ष्णेय = कामण्डलेयः । किन्तु 'कद्रु' और 'पाण्डु' शब्दका नहीं होता ; यथा—काद्रवेयः ; पाण्डवेयः ।

८९६। ऋकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त शब्दके परस्थित तद्धितप्रत्ययका 'य' स्वरकार्य्य निर्वाह करता है, अर्थात् 'य' परे रहनेसे, 'ऋ' के स्थानमे 'र्', 'ओ' के स्थानमे 'अव्', और 'औ' के स्थानमे 'आव्' होता है ; यथा—पितृ + ष्ण्य = पित्र्यम्, पैत्र्यम् ; गो + य = गव्यम् ।

८९७। तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है ; यथा—(राज्ञां समूहः—राजन् + कण्—वुञ्) राजकम् ; (पन्थानं गच्छति—पथिन् + कण्—ष्कन्) पथिकः ।

८९८। तद्धितका 'य' परे रहनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नहीं होता ; यथा—(ब्रह्मणि साधुः—ब्रह्मन् + ष्ण्य) ब्रह्मण्यः ।

किन्तु भाव और कर्म अर्थमे नकारका लोप होता है ; यथा—(राज्ञः भावः कर्म वा—राजन् + ष्ण्य) राज्यम् ।

८९९। 'ष्ण'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नहीं होता ; यथा—(यूनः भावः) यौवनम् ; (पर्वणि भवः) पार्वणः ।

किन्तु विकारार्थमे 'ष्ण' होनेसे, 'हेमन्'-शब्दके नकारका लोप होता है ; यथा—(हेम्नः विकारः) हैमः ।

९००। 'ष्ण'-प्रत्यय परे, 'इन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नहीं होता ; यथा—(हस्तिन इदम्) हास्तिनम् ।

किन्तु 'अपत्य'-अर्थमे होता है ; यथा—(मेधाविन अपत्यम्) मैधावः । 'इन्' संयुक्तवर्णमे मिलित होनेसे नहीं होता ; यथा—(तपस्विनः अपत्यम्) तापस्विनः ।

९०१। जाति-भिन्न अर्थमे 'ब्रह्मन्'-शब्दके नकारका लोप होता है ; यथा—(ब्रह्मा देवता अस्य—ब्रह्मन् + ष्ण) ब्राह्मम् [अस्त्रम्] ; ब्राह्मं

हविः ; (ब्रह्म उपास्ते) ब्राह्मः ; (ब्रह्मण इयम्) ब्राह्मी [तनु.] । 'जाति'-अर्थमें नहीं होता ; यथा—(ब्रह्मणः अपत्यम्) ब्राह्मणः (जातिविशेषः) ।

९०२ । 'णीन'-प्रत्यय होनेसे, 'अध्वन्' और 'आत्मन्' शब्दके नकारका लोप नहीं होता ; यथा—(अध्वनि साधुः) अध्वनीनः ; (आत्मने हितम्) आत्मनीनम् ।

९०३ । तद्धितके 'य' और स्वरवर्ण परे रहनेसे, आरात् और शश्वत् भिन्न अव्ययशब्दके 'टि' का लोप होता है ; यथा—(बहिः भवम्—बहिस्+ष्यञ) बाह्यम् ; (अकस्मात् भवम्—अकस्मात्+ष्णिक) आकस्मिकम् । (आरात् भवः—आरात्+ईय—छ) आरातीयः ; (शश्वत् भवः) शाश्वतिकः ।

९०४ । 'तर'-प्रभृति* तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, भाषितपुंस्क (विशेषण) स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव होता है ; यथा—शुभ्रा+तरा=शुभ्रतरा ; (साध्व्याः भावः) साधुता ।

तद्धित-प्रत्यय—प्रथमान्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित-प्रत्यय प्रथमान्तसे होते हैं—

अस्त्यर्थ ।

९०५ । मतुप्—'तत् अस्य अस्ति', 'तत् अस्मिन् अस्ति'—इन दोनो अर्थोंमें शब्दके उत्तर 'मतुप्'-प्रत्यय होता है ; 'उ' और 'प्' इत्, 'मत्' रहता है । यथा—(मतिः अस्य अस्ति इति) मतिमान् ; (बुद्धिरस्यास्ति) बुद्धिमान् ; (धीः अस्यास्ति)

* तर, तम, इष्ठ, ईयसु, रूप, पाश, कल्प, देश्य, देशीय, जातीय, चरट्, त्व, तल्, इमन् इत्यादि ।

धीमान्; (श्रीः अस्यास्ति) श्रीमान्; (अंशवः अस्य सन्ति) अंशुमान्; (पिता अस्यास्ति) पितृमान्; (धनुः अस्यास्ति) धनुष्मान्; (वपुः अस्यास्ति) वपुष्मान्। (अग्निः अस्मिन् अस्ति) अग्निमान्; (वायुः अस्मिन् अस्ति) वायुमान्; (नद्यः अस्मिन् सन्ति) नदीमान् [देशः]; (गावः अस्यां सन्ति) गोमती [शाला]।

(क) अवर्णान्त शब्दके उत्तर विहित 'मतुप्' के 'म' के स्थानमे 'व' होता है। यथा—(ज्ञानम् अस्यास्ति) ज्ञानवान्; (धनम् अस्यास्ति) धनवान्; (बलम् अस्यास्ति) बलवान्। (विद्या अस्यास्ति) विद्यावान्; (दया अस्यास्ति) दयावान्; (क्षमा अस्यास्ति) क्षमावान्।

(ख) जिन शब्दोंके अन्तमे ङ, ञ, ण, न भिन्न स्पर्शवर्ण (अर्थात् वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्ण और म्) रहता है, उनके उत्तर विहित 'मतुप्' के स्थानमे 'व' होता है; यथा—(तडित् अस्मिन् अस्ति) तडित्वान् (तोयदः); (विद्युत् अस्मिन् अस्ति) विद्युत्वान् [मेघः]। (किम् अस्यास्ति) किंवान्।

(ग) जिन शब्दोंकी उपधामे अवर्ण रहता है, उनके उत्तर विहित 'मतुप्' के 'म' के स्थानमे 'व' होता है। यथा—(आत्मा अस्यास्ति) आत्मवान्; (स्रोतः अस्यास्ति) स्रोतस्वान्। (भासः अस्य सन्ति) भास्वान्।

(घ) जिन शब्दोंकी उपधामे 'म' रहता है, उनके उत्तर

विहित 'मतुप्' के स्थानमे 'व' होता है; यथा—(लक्ष्मीः अस्यास्ति) लक्ष्मीवान्; (शमी अस्मिन् अस्ति) शमीवान्।

(ङ) 'यव'-प्रभृति शब्दके उत्तर विहित 'मतुप्' के 'म' के स्थानमे 'व' नहीं होता; यथा—यवमान्, ऊर्मिमान्, भूमिमान्, कृमिमान्, द्राक्षामान्, गरुत्मान्, हरित्मान्, ककुद्मान्।

(च) निपातने—(उदकम् अस्मिन् अस्ति) उदन्वान् (समुद्र इत्यर्थः), (अन्यत्र) उदकवान्; (शोभनो राजा अस्मिन् अस्ति) राजन्वान् [देशः]—राजन्वती प्रजा, (अन्यत्र) राजवान्; (अतिशयितम् अस्थि अस्मिन् अस्ति) अष्ठीवान् (जानूरुसन्धिरित्यर्थः), (अन्यत्र) अस्थिमान्।

(छ) जहाँ बहुर्व्रीहिसमास-द्वारा अर्थबोध होता है, वहाँ कर्मधारय-समासनिष्पन्न शब्दके उत्तर अस्त्यर्थ-प्रत्यय नहीं होता; यथा—(शोभना बुद्धिः यस्य सः) सुबुद्धिः;—यहाँ (शोभना बुद्धिः) सुबुद्धिः, सा अस्यास्ति इति सुबुद्धिमान्—ऐसा नहीं होगा।

(ज) अस्त्यर्थ-प्रत्ययसे स्थलविशेषमे 'बाहुल्य'-प्रभृति* अर्थोंकाभी बोध होता है; यथा—(भूमा—बाहुल्य) धनवान्, गोमान्; (निन्दा) वाचालः (निःसारं बहुभाषी इत्यर्थः); (प्रशंसा) वाग्मी, रूपवान्; (नित्ययोग) क्षीरी वृक्षः (नित्यक्षीरयुत इत्यर्थः); (अतिशायन—आधिक्य) उदरिणी कन्या (बृहदुदरवती इत्यर्थः); (संसर्ग) दण्डी, छत्री।

---

* "भूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
संसर्गेऽस्तिविवक्षाया भवन्ति मतुबादयः॥
अस्तिविवक्षायां ये मतुबादयो विधीयन्ते, ते भूमादिषु विषयषु भवन्ति इत्यर्थः।

९०६। ड्वतुप् (ड्मतुप्)—कुमुद, नड और वेतस शब्दके उत्तर 'ड्वतुप्'-प्रत्यय होता है ; 'ड्', 'उ' और 'प्' इत्, 'वत्' रहता है, यथा—(कुमुदानि अस्मिन् सन्ति) कुमुद्वान्—"कुमुद्वत्सु च वारिषु" र० ४. १९ ; (नडाः अस्मिन् सन्ति) नड्वान् ; (वेतसाः अस्मिन् सन्ति) वेतस्वान् ।

९०७। विन् (विनि)—'अस्'-भागान्त शब्द, और माया, मेधा, स्रज् शब्दके उत्तर विकल्पसे 'विन्'-प्रत्यय होता है ; पत्ते—मतुप्। यथा—(यशः अस्यास्ति) यशस्वी, यशस्वान् ; (तेजः अस्यास्ति) तेजस्वी, तेजस्वान् ; (पयः अस्याः अस्ति) पयस्विनी, पयस्वती [धेनुः]। (माया अस्यास्ति) मायावी, मायावान् ; (मेधा अस्यास्ति) मेधावी, मेधावान् ; (स्रक् अस्यास्ति) स्रग्वी, स्रग्वान् ।

(क) 'तपस्'-शब्दके उत्तर नित्य 'विन्' होता है ; यथा—(तपः अस्यास्ति) तपस्वी ; तपस्विनी ।

९०८। इन् (इनि)—एकाधिकस्वरविशिष्ट अवर्णान्त शब्दके उत्तर विकल्पसे 'इन्'-प्रत्यय होता है ; पत्ते—यथा-सम्भव 'मतुप्' और 'विन्' ; यथा—(ज्ञानम् अस्यास्ति) ज्ञानी, ज्ञानवान् ; (वलम् अस्यास्ति) वली, वलवान् ; (धनम् अस्यास्ति) धनी, धनवान् ; (शिखा अस्यास्ति) शिखी, शिखावान् ; (माया अस्यास्ति) मायी, मायावी* ; साह-सम् अस्यास्ति) साहसी, साहसवान् ; (विवेकः अस्यास्ति) विवेकी, विवेकवान् ; (उत्साहः अस्यास्ति) उत्साही, उत्साहवान्

* इस अर्थमे 'ष्णिक' (ठन्) भी होता है ; यथा—मायिकः ।

(क) 'सुख'-प्रभृति शब्दके उत्तर नित्य 'इन्' होता है। यथा—(सुखम् अस्यास्ति) सुखी; (दु:खम् अस्यास्ति) दु:खी; (प्रणयः अस्यास्ति) प्रणयी। (सहस्रम् अस्यास्ति) सहस्री—"इच्छति शती सहस्रं, सहस्री लक्षमीहते। लक्षाधिपस्तथा राज्यं, राज्यस्थः स्वर्गमीहते॥" पञ्च० ५.७८.।

(ख) जाति समझानेसे, 'हस्त' और 'कर' शब्दके उत्तर नित्य 'इन्' होता है; यथा—(हस्तः अस्यास्ति) हस्ती (गज इत्यर्थः); (करः अस्यास्ति) करी (गज इत्यर्थः)*। अन्यत्र—(हस्तोऽस्यास्ति) हस्तवान् [पुरुषः]।

(ग) 'ब्रह्मचारी' समझानेसे, 'वर्ण'-शब्दके उत्तर नित्य 'इन्' होता है; यथा—(वर्णः†अस्यास्ति) वर्णी (ब्रह्मचारी इत्यर्थः)।

(घ) 'स्थान' समझानेसे, 'पुष्कर'-प्रभृति शब्दके उत्तर नित्य 'इन्' होता है; यथा—(पुष्कराणि—पद्मानि—अस्यां सन्ति) पुष्करिणी (जलाशय इत्यर्थः); (पद्मानि अस्यां सन्ति) पद्मिनी; उत्पलिनी; पङ्किनी; कमलिनी; कैरविणी; कुमुदिनी; बिसिनी; मृणालिनी; तरङ्गिणी; कल्लोलिनी; तटिनी; प्रवाहिणी।

(ङ) 'याचक' समझानेसे, 'अर्थ'-शब्दके उत्तर नित्य 'इन्' होता है; यथा—(अर्थः असन्निहितः अस्यास्ति) अर्थी (याचक इत्यर्थः)। (अन्यत्र) अर्थवान्।

(च) अर्थान्त शब्दके उत्तर नित्य 'इन्' होता है; यथा—(विद्यारूपः अर्थः—प्रयोजनम्—अस्यास्ति) विद्यार्थी; धनार्थी; धान्यार्थी;

---

* अत्र हस्त-कर-शब्दौ शुण्डादण्डवाचकौ।

† 'वर्णः प्रशस्तिः' इति क्षीरस्वामी।

हिरण्यार्थी ; गुरुदक्षिणार्थी ।

९०९ । ल (लच्)—'मांस'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ल'-प्रत्यय होता है ; यथा—(मांसम् अस्यास्ति) मांसलः ; (श्रीः अस्यास्ति) श्रीलः; पक्ष्म अस्यास्ति) पक्ष्मलः* ; (शीतं गुणः अस्यास्ति) शीतलः ; (श्यामः वर्णः अस्यास्ति) श्यामलः ; (पिङ्गः वर्णः अस्यास्ति) पिङ्गलः ; पित्तलः (पित्तयुक्तः, पित्तवर्द्धकश्चेत्यर्थः) ; श्लेष्मलः ; पृथुलः; मृदुलः ; ग्रन्थिलः; पांशुलः†; श्मश्रुलः ।

इनमेसे कई एकके उत्तर 'मतुप्' भी होता है ; यथा—श्रीमान्, ग्रन्थिमान् ।

(क) 'स्नेहवान्' और 'बलवान्' अर्थमे 'वत्स' और 'अंस'-शब्दके उत्तर 'ल' होता है ; यथा—वत्सलः (स्नेहवान् इत्यर्थः) ; अंसलः (बलवान् इत्यर्थः) ।

(ख) 'फेन'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ल' और 'इल' (इलच्) होते हैं ; यथा—(फेनः अस्मिन् अस्ति) फेनलः, फेनिलः ; (पक्षे) फेनवान् । "फेनिलमम्बुराशिम्" र०१३.२. ।

९१० । श—'लोमन्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'श'-प्रत्यय होता है ; यथा—(लोमानि अस्य सन्ति) लोमशः ; रोमशः ; (गिरिः आश्रयत्वेन

---

* "पक्ष्मलाक्ष्याः" शकु० ३.२२. (पक्ष्म—अक्षिलोम, पक्ष्मले मनोहर-पक्ष्मसमन्विते अक्षिणी यस्याः सा पक्ष्मलाक्षी) ; "मृदितपक्ष्मलरल्लकाङ्गः [वायुः] " माघ० ४.६१. (पक्ष्मल—लोमश) ।

† "परस्त्रीस्पर्शपांशुलः" शकु० ५.२९. (पांशुः—दोषः, पापञ्च, तद्युक्तः—पांशुलः) । 'पांसुलो'ऽपि ।

अस्यस्ति) गिरिशः ।

९११ । इल (इलच्)—'पिच्छा' और 'पङ्क' शब्दके उत्तर 'इल'-प्रत्यय होता है ; यथा —(पिच्छा—भक्तसम्भूतमण्डम्—अस्यास्ति) पिच्छिलः*; (पङ्कः अस्मिन् अस्ति) पङ्किल.† ।

(क) 'वृद्धि' समझानेसे , अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'इल' होता है ; यथा—(विवृद्धं तुन्दम्—उदरम्—अस्यास्ति) तुन्दिलः ‡ ; पिचण्डिलः ।

९१२ । उर (उरच्)—'दन्त'- शब्दके उत्तर 'उर'-प्रत्यय होता है—'उन्नत'-अर्थमे ; यथा— (उन्नताः दन्ताः सन्ति अस्य) दन्तुरः § ।

९१३ । र—'ऊष'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'र' प्रत्यय होता है ; यथा— (ऊषः—क्षारमृत्तिका—अस्मिन् अस्ति) ऊषरः ‖ (क्षारभूमिरित्यर्थः) ; (शुषि.—छिद्रम्—अस्यास्ति) शुषिरः ; (मधु—माधुर्य्यम्—अस्यास्ति) मधुरः । (निन्दितं मुखम् ¶ अस्यास्ति) मुखरः (वाचाल इत्यर्थः) ;

---

* "पिच्छिलानि च दधीनि" छन्दोमञ्जरी ; "पिच्छिलः पन्था." साहित्य-दर्पणम् १०. ।

† "मांसमज्जास्थिपङ्किला मही" महाभा० (पंङ्किल—व्याप्त) ।

‡ "मकरन्दतुन्दिलानामरविन्दानामयं महामान्य." भामिनी० १. ५. (तुन्दिल—पूर्ण) ।

§ "अखर्वगर्वस्मितदन्तुरेण" विक्रमाङ्कदेवचरितम् १.५०. (दन्तुर–व्याप्त) ॥ "शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः" ।

‖ "धर्मार्थौ यत्र न स्यातां, शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा ।
विद्या तत्र न वक्तव्या, शुभं बीजमिवोषरे ॥" मनु० २.११२. ।

¶ 'मुख'-शब्दोऽत्र लक्षणया 'वचन'-परः । "मुखरमधीरं त्यज मञ्जी-

(अतिशयितः कुञ्जः—हनुः—अस्यास्ति) कुञ्जरः ; (नगा इव प्रासादादयः अस्मिन् सन्ति) नगरम् ।

९१४। ड्वलप् (ड्वलच्)—'नड' और 'शाद' शब्दके उत्तर 'ड्वलप्'-प्रत्यय होता है ; 'ड्' और 'प्' इत्, 'वल' रहता है ; यथा—(नडाः अस्मिन् सन्ति) नड्वलः ; (शादाः—बालतृणानि—अस्मिन् सन्ति) शाद्वलः * (शष्पश्यामदेश इत्यर्थः) ।

९१५। वल (वलच्)—'कृषि'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'वल'-प्रत्यय होता है । 'वल'-प्रत्यय होनेसे अन्त्यस्वर दीर्घ होता है । यथा—(कृषिः अस्यास्ति) कृषीवलः ; रजस्वला ; ऊर्जस्वलः (बलवान् इत्यर्थः) । दन्तावलः (हस्ती इत्यर्थः) ; शिखावलः (मयूर इत्यर्थः) ।

९१६। आलु—'असहन'-अर्थमे, 'शीत' और 'उष्ण' शब्दके उत्तर 'आलु'-प्रत्यय होता है ; यथा—(शीतं न सहते) शीतालुः ; (उष्णं न सहते) उष्णालुः ।

(क) 'कृपा' और 'हृदय' शब्दके उत्तर 'आलु' होता है ; यथा—(कृपा अस्यास्ति) कृपालुः ; हृदयालुः ।

९१७। किन्—'रोग' समझानेसे, 'वात' और 'अतिसार' शब्दके उत्तर 'किन्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(वातः अस्यास्ति) वातकी ; (अतिसारः अस्यास्ति) अतिसारकी ।

९१८। आमिन्—'ऐश्वर्य्य' समझानेसे, 'स्व'-शब्दके उत्तर 'आमिन्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(स्वम्—ऐश्वर्य्यम्—अस्यास्ति) स्वामी ।

रम्" गीतगो०५.११. (मुखर—शब्दायमान) ।

* "शय्या शाद्वलम्" शान्तिशतकम् ।

९१९ । भ—'बलि'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'भ'-प्रत्यय होता है; यथा—(बलिः—त्वक्सङ्कोचः—अस्मिन् अस्ति) बलिभम् (उदरम्) ।

९२० । यु (युस्)—'अहम्', 'शुभम्' और 'शम्' शब्दके उत्तर 'यु'-प्रत्यय होता है ; यथा—(अहम्—अहङ्कारः—अस्यास्ति) अहंयुः (अहङ्कारवान् इत्यर्थः) ; (शुभम् अस्यास्ति) शुभंयुः , शंयुः (शुभान्वित इत्यर्थः) ।

९२१ । अच्—'अर्शस्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'अच्'-प्रत्यय होता है; यथा—(अर्शांसि अस्य सन्ति) अर्शसः ; (पलितम् अस्यास्ति) पलितः ; (लवणः रसः अस्यास्ति) लवणः ।

९२२ । 'ज्योत्स्ना'-प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध ; यथा—(ज्योतिः अस्यास्ति) ज्योत्स्ना ; (तमोऽस्या अस्ति) तमिस्रा ; (मलम् अस्यास्ति) मलिन', मलीमसः ; (अर्णांसि—जलानि—अस्मिन् सन्ति) अर्णवः (समुद्र इत्यर्थः) ; (आमयः अस्यास्ति) आमयावी (रोगी इत्यर्थः) । (प्रशस्ताः वाचः अस्य सन्ति) वाग्मी (मिन्—ग्मिनि) ; (यः कुत्सितं बहु भाषते सः) वाचालः (आल—आलच्), वाचाटः (आट—आटच्) ।

स्वार्थे ।

९२३ । ष्ण (अण्), ष्यय, ष्णिक (ठक्), कन्—शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'ष्ण', 'ष्यय', 'ष्णिक' और 'कन्' प्रत्यय होते हैं । 'ष्ण'-का 'ष्' और 'ण्' इत् , 'अ' रहता है ; 'ष्यय' का 'ष्' और 'ण्' इत् , 'य'-रहता है ; 'ष्णिक' का 'ष्' और 'ण्' इत् , 'इक' रहता है ; 'कन्' का 'न्' इत्, 'क' रहता है । प्रत्यय होनेसे शब्दके अर्थका वैलक्षण्य नहीं होता ;

पूर्व अर्थही अविकृत रहता है। यथा— (ष्ण)—(बन्धुः एव) बान्धवः ; (शत्रुरेव) शात्रवः ; (चोर एव) चौरः ; (चण्डाल एव) चाण्डालः ; (मन एव) मानसम् ; (देवता एव) दैवतम् ; (प्रज्ञ एव) प्राज्ञः ; (कुतुकम् एव) कौतुकम् ; (कुतूहलम् एव) कौतूहलम् ; (मरुत् एव) मारुतः ; (रक्ष एव) राक्षसः । (ष्णय) —(भेषजम् एव) भैषज्यम् (ञ्य) ; (इतिह* एव) ऐतिह्यम् (ञ्य) ; (त्रिलोकी एव) त्रैलोक्यम् † ; (करुणा एव) कारुण्यम् ; (द्विगुणौ एव) द्वैगुण्यम् ; (त्रिगुणा एव) त्रैगुण्यम् ; (षड्गुणा एव) षाड्गुण्यम् ; (चत्वारः वर्णा एव) चातुर्वर्ण्यम् ; (सेना एव) सैन्यम् ; (सन्निधिरेव) सान्निध्यम् ; (समीपम् एव) सामीप्यम् ; (उपमा एव) औपम्यम् ; (सुखम् एव) सौख्यम् ; (समानम् एव) सामान्यम् ; (सोदर एव) सोदर्य्यः (य) ; (मर्त्त एव) मर्त्यः (यत्) ; (नवम् एव) नव्यम्, नवीनम् (णीन—ख) । (ष्णिक)—वाक् एव) वाचिकम् (सन्देशवचनम् इत्यर्थः) । (कन्)—(याव एव) यावकः ; (बाल एव) बालकः ; (नौः एव) नौका ।

(क) ष्णीक (ईकक्)—'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'ष्णीक'-प्रत्यय होता है ; 'ष्' और 'ण्' इत्, 'ईक' रहता है ; यथा—(द्वितीय एव) द्वैतीयीकः—"द्वैतीयीकतया मितोऽयमगमत् सर्गः" नै० २.११० ; (तृतीय एव) तार्त्तीयीकः—"तार्त्तीयीकं पुरारेस्तदवतु मदनप्लोषणं लोचनं वः" मालती० ४. ।

---

* इतिह—उपदेशपरम्परा इत्यर्थः—अव्यय ।

† 'त्रैलोक्यम्' से 'सामान्यम्' तक पाणिनि-मते 'ष्यञ्' ।

(ख) तल्—'देव'-शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'तल्'-प्रत्यय होता है; 'ल्' इत्, 'त' रहता है। 'तल्' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग। यथा—(देव एव) देवता।

(ग) धेय—'भाग', 'रूप' और 'नामन्' शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'धेय'-प्रत्यय होता है; यथा—(भाग* एव) भागधेयम्† (भाग्यम् इत्यर्थः); (नाम एव) नामधेयम्।

(घ) तिकन्—'मृद्'-शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'तिकन्'-प्रत्यय होता है; 'न्' इत्, 'तिक' रहता है; यथा—(मृत् एव) मृत्तिका।

(ङ) स, स्न—'प्रशंसा' समझानेसे, 'मृद्'-शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'स' और 'स्न' प्रत्यय होते हैं; यथा—(प्रशस्ता मृत्) मृत्सा, मृत्स्ना।

(च) निपातने—(नवम् एव) नूत्नम्, नूतनम्; (उपाय एव) औपयिकम् (ठक्—ह्रस्वश्च)—"विवमौपयिकम्" मा० २.३६.।

१२४। कन्—ह्रस्व, अल्प, कुत्सित, अज्ञात, अनुकम्पा और संज्ञा (नाम) अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'कन्'-प्रत्यय होता है। यथा—(ह्रस्वः वृक्षः) वृक्षक. ‡। (अल्पं तैलम्) तैलकम्। (कुत्सितः अश्वः) अश्वक.। (कस्यायमिति अज्ञातः अश्वः) अश्वक.। (अनुकम्पितः पुत्रः) पुत्रकः। (संज्ञा) रोहितकः; शूद्रकः; आर्य्यकः।

१२६। स्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर 'कन्' होनेसे, अन्त्यस्वर ह्रस्व होता

* "भागैकदेशयोर्भाग." रुद्रः।

† "भागधेय मतं भाग्ये, भाग-प्रत्याययोः पुमान्" मेदिनी। (प्रत्यायः—कर इत्यर्थ.—Tax महसूल)।

‡ "अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्द्धयत्" कु० ५.१४.

है । यथा—(कन्या एव) कन्यका । (चण्डी) चण्डिका ; (कुमारी) कुमारिका ; (मृणाली) मृणालिका ; (यूथी) यूथिका ; (वदरी) वदरिका ; (दूती) दूतिका ; (काली) कालिका ; (शारी) शारिका ; (सूची) सूचिका ।

ह्रस्वार्थे ।

१२६ । र—'ह्रस्व'-अर्थमे, 'कुटी', 'शमी' और 'शुण्डा' शब्दके उत्तर 'र'-प्रत्यय होता है ; यथा—(ह्रस्वा कुटी) कुटीरः ; (ह्रस्वा शमी) शमीरः ; (ह्रस्वा शुण्डा *) शुण्डारः † ।

अल्पार्थे ।

१२७ । तरट् (ष्टरच्)—'अल्प'-अर्थमे, अश्व, वत्स, उक्षन् और ऋषभ शब्दके उत्तर 'तरट्'-प्रत्यय होता है ; 'ट्' इत्, 'तर' रहता है ; यथा—(अल्पः अश्वः ‡) अश्वतरः (गर्दभेन अश्वायाम् उत्पन्नः अश्वविशेष इत्यर्थः—खच्चर) ; (अल्पो वत्सः §) वत्सतरः (मुक्तबाल्यः प्राप्तयौवनो दमनयोग्यः वत्स इत्यर्थः) ; (अल्पः उक्षा ‖) उक्षतरः ¶

---

* "शुण्डा करिकरे मेघे" वैजयन्ती ।

† "शुण्डारः कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डकस्तस्मिन्नाहित एव" महावीर० 1. ५३. ।

‡ अश्वेन अश्वायाम् उत्पन्नः अश्वः ; तस्य अल्पत्वम् अन्यपितृकता ।

§ प्रथमवयाः वत्सः ; तस्य अल्पत्वं द्वितीयवयःप्राप्तिः ।

‖ तरुणः उक्षा ; तस्य अल्पत्वं तृतीयवयःप्राप्तिः ।

¶ "महोक्षः स्यादुक्षतरः" हेमचन्द्रः । "महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव" र० ३. ३२. ।

(त्यक्तयौवनः प्राप्ततृतीयवयाः वृष इत्यर्थः); (अल्पः ऋषभः*) ऋषभतरः (भारवहनाशक्तो वृषभ इत्यर्थः)।

ईषदूनार्थे।

९२८। कल्प (कल्पप्), देश्य, देशीय (देशीयर्)—'ईषत् न्यून (कम)' यह अर्थ समझानेसे, शब्द और तिङन्त पदके उत्तर 'कल्प', 'देश्य' और 'देशीय' प्रत्यय होते हैं। यथा—(ईषदूनः विद्वान्) विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः।†(ईषदूनं पठति पठतिकल्पम्, पठतिदेश्यम्, पठतिदेशीयम्।

प्रशंसार्थे।

९२९। रूप (रूपप्)—'प्रशंसा' समझानेसे, शब्द और तिङन्त पदके उत्तर 'रूप'-प्रत्यय होता है; यथा—(प्रशस्तो वैयाकरणः) वैयाकरणरूपः; नैयायिकरूपः; आलङ्कारिकरूपः; मीमांसकरूपः। (प्रशस्त पठति) पठतिरूपम्।

---

* भारस्य वोढा ऋषभः; तस्य अल्पत्वं भारोद्वहने मन्दशक्तिता।

† 'कल्प' means 'almost like', 'nearly equal to'—प्रायः समान (denoting similarity with a degree of inferiority)। "कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्" (कार्त्तिकेयतुल्यम् इत्यर्थः) र०५. ३६; "उपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि" शकु० २; "प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी" (ईषदसमाप्तप्रभाता,—प्रभातात् ईषदूना इत्यर्थः) र०; ऐसे—मृतकल्पः। "अष्टादशवर्षदेशीयां कन्यां ददर्श" काद० (girl about 18 years old—whose age bordered on 18.)।

निन्दार्थे।

९३०। पाश (पाशप्)—'कुत्सित'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'पाश'-प्रत्यय होता है; यथा—(कुत्सितो वैयाकरणः) वैयाकरणपाशः; मीमांसकपाशः; भिषक्पाशः; छात्रपाशः; लेखकपाशः; पाचकपाशः।

भूतपूर्वार्थे।

९३१। चरट्—'पूर्वं भूतः—भूतपूर्वः' (पहले था, अथवा हुआ था, अब नहीं) इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'चरट्'-प्रत्यय होता है; 'ट्' इत्, 'चर' रहता है; यथा—भूतपूर्वः आढ्यः (Who was formerly rich) आढ्यचरः—आढ्यचरी; (भूतपूर्वः अध्यापकः) अध्यापकचरः (Late teacher); (पूर्वं दृष्टः) दृष्टचरः; (पूर्वं श्रुतम्) श्रुतचरम्; (पूर्वम् अर्पितम्) अर्पितचरम्; (पूर्वम् अधीतः) अधीतचरः।

प्रकारार्थे।

९३२। जातीय (जातीयर्)—'सः प्रकारः अस्यास्ति' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'जातीय'-प्रत्यय होता है; यथा—(पटुः प्रकारः अस्यास्ति) पटुजातीयः; मृदुजातीयः; (सः प्रकारः अस्यास्ति) तज्जातीयः; (उत्कृष्टः प्रकारः अस्यास्ति) उत्कृष्टजातीयं [वस्त्रम्]।

असहायार्थे।

९३३। आकिन् (आकिनिच्)—'असहाय'-अर्थमे ('सहाय-शून्य' समझानेसे) 'एक'-शब्दके उत्तर 'आकिन्'-प्रत्यय होता है; *

---

* इस अर्थमे 'कन्'-प्रत्ययभी होता है; यथा—एककः (असहाय इत्यर्थः)।

यथा—एकाकी * (सहायरहित इत्यर्थः)।

अतिशयार्थे।

९३४। तर (तरप्), ईयसु (ईयसुन्)†—दोनोंके बीचमें एकका आतिशय्य (आधिक्य) समझानेसे, शब्दके उत्तर 'तर' और 'ईयसु' प्रत्यय होते हैं; 'ईयसु' का 'उ' इत्, 'ईयस्' रहता है; यथा—(इमौ पटू; अयम् अनयोः अतिशयेन पटुः) पटुतरः, पटीयान्; ‡ (इमौ लघू; अयमनयोरतिशयेन लघुः) लघुतरः, लघीयान्। विन्ध्यात् हिमालय उच्चतरः (विन्ध्यसे—विन्ध्यकी अपेक्षा—हिमालय उच्च); 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

९३५। तम (तमप्), इष्ठ (इष्ठन्) §—बहुतोंके बीचमें एकका आतिशय्य समझानेसे, शब्दके उत्तर 'तम' और 'इष्ठ' प्रत्यय होते हैं; यथा—(सर्वे इमे पटवः; अयम् एषाम् अतिशयेन पटुः) पटुतमः, पटिष्ठः; (सर्वे इमे लघवः; अयमेषामतिशयेन लघुः) लघुतमः; लघिष्ठः। भाषासु संस्कृतं मधुरतमम् (भाषाओंमें—भाषाओंके बीचमें—संस्कृत मधुर); भ्रातृ

---

* "एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः।
एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति॥" मनु० ४. २५८।

† Comparative.

‡ 'इष्ठ', 'ईयसु' और 'इमन्' प्रत्यय परे रहनेसे, एकाधिक-स्वरविशिष्ट शब्दके 'टि' का लोप होता है।

§ Superlative.

णाम् अयमेव कनिष्ठः (सब भाइयोंमे यही छोटा) ।

९३६ । 'इष्ठ' और 'ईयस्' परे, 'स्थूल'-प्रभृति शब्दके स्थानमे 'स्थव'-प्रभृति आदेश होता है ; यथा—

शब्द	आदेश	उदाहरण
स्थूल	स्थव	स्थविष्ठः , स्थवीयान्
स्थिर	स्थ	स्थेष्ठः , स्थेयान्
दूर	दव	दविष्ठः , दवीयान्
उरु	वर	वरिष्ठः , वरीयान्
पृथु	प्रथ	प्रथिष्ठः , प्रथीयान्
प्रिय	प्र	प्रेष्ठः , प्रेयान्
क्षिप्र	क्षेप	क्षेपिष्ठः , क्षेपीयान्
मृदु	म्रद	म्रदिष्ठः , म्रदीयान्
कृश	क्रश	क्रशिष्ठः , क्रशीयान्
बहु	भू	भूयिष्ठः , भूयान् (निपातने)
वाढ	साध	साधिष्ठः , साधीयान्
गुरु	गर	गरिष्ठः , गरीयान्
अन्तिक	नेद	नेदिष्ठः , नेदीयान्
दीर्घ	द्राघ	द्राघिष्ठः , द्राघीयान्
दृढ	द्रढ	द्रढिष्ठः , द्रढीयान्
भृश	भ्रश	भ्रशिष्ठः , भ्रशीयान्
युवन्	कन्	कनिष्ठः , कनीयान्
(पक्षे) ,,	यव	यविष्ठः , यवीयान्

शब्द	आदेश	उदाहरण
अल्प	कन्	कनिष्ठः, कनीयान्
(पक्षे) ,,	०	अल्पिष्ठः, अल्पीयान्
क्षुद्र	क्षोद	क्षोदिष्ठः, क्षोदीयान्
प्रशस्य	श्र	श्रेष्ठः, श्रेयान्
ह्रस्व	ह्रस	ह्रसिष्ठः, ह्रसीयान्
बहुल	बंह	बंहिष्ठः, बंहीयान्
वृद्ध	वर्ष *	वर्षिष्ठः, वर्षीयान् †

'णिच्' और 'इमन्' प्रत्ययमेंभी ये सब आदेश होते हैं।

अनुवाद करो—धनीसे (धनीकी अपेक्षा) विद्वान् मान्य...। कन्यासे पुत्र प्रिय...। वृक्षोंमें (वृक्षोंके बीचमें) अश्वत्थ वृहत्...। फलोंमें

* 'वृद्ध' और 'प्रशस्य'-शब्दके स्थानमें विकल्पसे 'ज्य' होता है। 'ज्य'-आदेशके परवर्त्ती 'ईयसु' के 'ई' के स्थानमें 'आ' होता है। यथा—ज्येष्ठः, ज्यायान्।

† स्थूलः स्यवः, स्थिरः स्थः स्याद्, दूरो दव, उरुर्वरः।
पृथुः प्रथः, प्रियः प्रः स्यात्, क्षिप्रः क्षेपो, मृदुर्म्रदः॥
कृशः क्रशो, बहुर्भूः स्याद्, बाढः साधो, गुरुर्गरः।
अन्तिकश्च भवेन्नेदो, दीर्घो द्राघो, दृढो द्रढः॥
भ्रशो भ्रशो, युवाऽल्पौ वा कन् स्यात्, पक्षे युवा यवः।
क्षुद्रः क्षोदः, प्रशस्यः श्रो, ह्रस्वो ह्रस इतीष्यते॥
बहुलश्च भवेद् बंहो, वृद्धो वर्षस्तथा भवेत्।
णिचीमनीष्ठे आदेशा ईयसौ च क्रमादिमे॥

आम्र मधुर...। छः ऋतुओंमे वसन्त सुन्दर...। दुग्धसे चीनी (शर्करा) मिष्ट...। व्याघ्रसे सिंह वलवान्...। पशुओंमे सिंह वलवान्...। नदीसे समुद्र गभीर...। वायुसेभी मन द्रुतगामि...(द्रुत)...। वह मुझसे स्थूल...।

९३७। 'इष्ठ,' 'ईयसु' और 'इमन्' प्रत्यय परे, 'मतुप्' और 'विन्' प्रत्ययका लोप होता है। यथा—(अयमेषामतिशयेन वलवान्) वलिष्ठः, वलीयान्। (अयमेषामतिशयेन मायावी) मायिष्ठः ; मायीयान्।

९३८। **चतराम्, चतमाम्**—अव्यय-शब्द और तिङन्तपदके उत्तर 'तर'-अर्थमे 'चतराम्', और 'तम'-अर्थमे 'चतमाम्' प्रत्यय होता है; 'च' इत्,* 'तराम्' और 'तमाम्' रहते हैं। यथा—सुतराम्; नितराम्; उच्चैस्तराम्, उच्चैस्तमाम्। द्रव्य समझानेसे नहीं होता; यथा—उच्चैस्तरः तरुः। (इमौ पचतः; अयमनयोरतिशयेन पचति) पचतितराम्; (इमे सर्वे पचन्ति; अयमेषामतिशयेन पचति) पचतितमाम्।

निर्द्धारणार्थे।

९३९। डतर—दोनोके बीचमे एकका निर्द्धारण † समझानेसे, 'किम्,' 'यद्' और 'तद्' शब्दके उत्तर 'डतर'-प्रत्यय होता है; 'ड्' इत्, 'अतर' रहता है; यथा—अनयोः कतरः वैष्णवः ?; अनयोः यतरः ब्राह्मणः, ततर आगच्छतु।

९४०। डतम—बहुतोंके बीचमे एकका निर्द्धारण सम-

---

* चकार-इत् (चित्) तद्धित-प्रत्ययान्त शब्द अव्यय। समासप्रत्ययभी तद्धितप्रत्ययमे गण्य।

† जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायात् एकदेशस्य पृथक्करणं 'निर्द्धारणम्'।

भ्यानेसे, 'डतम'-प्रत्यय होता है; 'ड्' इत्, 'अतम' रहता है; यथा—एषां कतमः शैवः ?; एषां यतमः क्षत्रियः, ततमः प्रयातु।

९४१। 'एक' और 'अन्य' शब्दके उत्तर 'डतर' और 'डतम' होते हैं। यथा—भवतोः एकतरः पठतु; भवताम् एकतमः शृणोतु। तयोः अन्यतरो यातः; तेषाम् अन्यतमो मृतः।

परिमाणार्थे।

९४२। दघ्नट् (दघ्नच्), द्वयसट् (द्वयसच्), मात्रट् (मात्रच्)—'परिमाण'-अर्थमें ('तत् प्रमाणम् अस्य' इस अर्थमें) शब्दके उत्तर 'दघ्नट्', 'द्वयसट्' और 'मात्रट्' प्रत्यय होते हैं;* 'ट्' इत्, 'दघ्न', 'द्वयस' और 'मात्र' रहते हैं।

---

* प्रथमश्चोर्द्धमाने स्याद्, द्वितीयश्च तदर्थके।
तृतीयो मानसामान्ये शास्त्रकारैरुदाहृतः॥

'दघ्नट्' और 'द्वयसट्'—केवल 'ऊर्द्धपरिमाण' अर्थमें होते हैं (उच्चता वा गाम्भीर्य्य—'Reaching to', 'as high or deep as'); और 'मात्रट्'—सामान्यतः सबप्रकार परिमाण अर्थमें होता है ('Measuring as much as,' 'as high or long or broad as')।

"ऊरुदघ्नेन पयसोत्तीर्य्य" काद०; "कीलालव्यतिकरगुल्फदघ्नपङ्कः [मार्गः]" मालती० ३. १७; "खर्जूरद्रुमदघ्नजङ्घ [पूतनचक्रम्]" मालती० ५. १४.। "गुल्फद्वयसे मदपयसि" काद०; "नारीनितम्बद्वयसं बभूव [अम्भः]" र० १६. ४६; "गजपतिद्वयसीः सरितः" माघ० ६. ५५.। "पञ्चदशयोजनमात्रमध्वानमतिचक्राम" काद०; "तिष्ठन्त पयसि पुमांसमंसमात्रे" माघ० ८. २१.।

यथा—(जानु प्रमाणम् अस्य) जानुदघ्नम्, जानुद्वयसम्, जानुमात्रं [जलम्]; (ऊरुः प्रमाणम् अस्य) ऊरुदघ्नम्, ऊरुद्वयसम्, ऊरुमात्रम्; (गजः प्रमाणमस्य) गजदघ्नम्, गजद्वयसम्, गजमात्रम्। (हस्तः प्रमाणम् अस्य) हस्तमात्रः [पटः]; (प्रादेशः प्रमाणमस्य) प्रादेशमात्रः [कुशः]; (द्रोणः प्रमाणमस्य) द्रोणमात्रं [धान्यम्]। ऊरुमात्री भित्तिः। *

९४३। वतुप्—'परिमाण'-अर्थमे, 'यद्,' 'तद्' और 'एतद्' शब्दके उत्तर 'वतुप्'-प्रत्यय होता है; 'उ' और 'प्' इत्, 'वत्' रहता है। 'वतुप्' परे, 'यद्'—'या', 'तद्'—'ता', और 'एतद्'—'एता' होता है। यथा—(यत् परिमाणम् अस्य) यावान्; (तत् परिमाणमस्य) तावान् † (As much as, as many as—'यावत्' standing for 'as', and 'तावत्' for 'as much' or 'as many')। (एतत् परिमाणमस्य) एतावान् ‡।

---

* स्वार्थमेभी 'मात्र'-प्रत्यय होता है; यथा—(तत् एव) तन्मात्रम्; (तावत् एव) तावन्मात्रम्।

† "पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्।
दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते॥"

कु० २. ३३. Also र० १७. १७.।

"ते तु यावन्त एवाजौ, तावांश्च ददृशे स तैः" र० १२. ४५. (यावन्तः—यावत्सङ्ख्याकाः, तावान्—तावत्सङ्ख्याक इत्यर्थः)।

‡ "एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे" र० २. ५१; "एतावान् मे विभवो

(क) 'किम्' और 'इदम्' शब्दके उत्तर 'वतुप्' होकर, 'कियत्', 'इयत्'—ये दो शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं ; यथा—(किं परिमाणमस्य) कियान् ; (इदं परिमाणमस्य) इयान् । *

(ख) डति—सङ्ख्या-परिमाण समझानेसे, 'किम्'-शब्दके उत्तर 'डति'-प्रत्यय होता है ; 'ड्' इत् , 'अति' रहता है ; यथा—(का सङ्ख्या परिमाणमषाम्) कति ।

अवयवार्थे ।

१४४ । तयट् (तयप्)—'अवयव'-अर्थमें, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तयट्'-प्रत्यय होता है ; 'ट्' इत्, 'तय' रहता है ; यथा—(चत्वारः अवयवाः—विधाः—अस्य) चतुष्टयम् (चतुर्विधम् इत्यर्थः) ; पञ्च अवयवा अस्य) पञ्चतयम्—पञ्चतयी † ; (शतम् अवयवा अस्य) शततयम् ;

भवन्तं सेवितुम्" मालविका० २. ।

* "कियान् कालस्तत्रैवं स्थितस्य सञ्जातः ?" पञ्च० ५ ; "अयं भूनावासो विमृश कियतीं याति न दशाम्" शान्तिशतकम् ; "कियदवशिष्ट रजन्याः ?" शकु० ४. । "मातः ! कियन्तोऽरयः ?" वेणी० ५. ९. (अकिञ्चित्करा इत्यर्थ.) । "निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ?" भर्तृ० २ ; "पतति पदानि कियन्ति चलन्ती" गीतगो० ६. ३. ।

"इयद् तवायुः" दशकु० ; "आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती" माघ० २. ३० ; "इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रम्-यस्यतीव व्रतमासिधारम्" र० १३. ६७ ; "इयतो दिवसानुत्सव आसीत्" उत्तर० १. ।

† "वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाः" पातञ्जलसूत्रम् १. ५ ; "चतुष्टयी प्रवृत्तिः शब्दानाम्" कु० २. १७. ।

(सहस्रम् अवयवा अस्य) सहस्रतयम् ।

९४९ । डयट् (अयच्)—'अवयव'-अर्थमे, 'द्वि' और 'त्रि' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'डयट्'-प्रत्यय होता है; 'ड्' और 'ट्' इत्, 'अय' रहता है; पक्षे—तयट्; यथा—(द्वौ अवयवौ अस्य) द्वयम्, द्वितयम् *; (त्रयः अवयवाः अस्य) त्रयम्, त्रितयम् । †

(क) 'अवयव'-अर्थमे, 'उभ'-शब्दके उत्तर नित्य 'डयट्' होता है; यथा—(उभौ अवयवौ अस्य) उभयम्—उभयी ।

---

* "द्वयी गतिः" मुद्रा० ३. (द्विविध उपाय इत्यर्थः) ।

"द्रुम-सानुमतां किमन्तरं, यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः" र० ८. ९०. (द्वितयेऽपि—द्विप्रकाराः अपि इत्यर्थः) । ('द्वय' और 'द्वितय'-शब्द बहुवचनमेभी प्रयुक्त होते हैं; See माघ० ३. ५७.) ।—"त्रयी वै विद्या—ऋचो यजूंषि सामानि" शतपथब्राह्मणम् । "त्रितयीमपि तां मुक्त्वा परस्परविरोधिनीम्" पञ्चदशी. १. ४६. ।

† सङ्ख्यामात्रमेभी 'तयट्' और 'डयट्' प्रत्यय होते हैं । यथा—

"यौवनं, धनसम्पत्तिः, प्रभुत्वम्, अविवेकिता ।

एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ?" हितो० ११; "मासचतुष्टयस्य भोजनम्" हितो० १. ।

"अधिकं शुशुभे शुभंयुना द्वितयेन द्वयमेव सङ्गतम्" र० ८. ६. । 'घटद्वितयम्' । "अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः, शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे" र० ३. १६; "लोकत्रयम्" ।

"दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान् ।

श्रद्धा, वित्तं, विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम् ॥" शकु० ७. २९. ।

तत् अस्मिन् अधिकम् इत्यर्थे।

९४६। ड—'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थमे, 'दशन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'ड'-प्रत्यय होता है; 'ड्' इत, 'अ' रहता है; यथा—(एकादश अधिकाः अस्मिन् शते) एकादशं शतम् (एकादशाधिकम् इत्यर्थः); द्वादशं शतम्; त्रयोदशं शतम्; चतुर्दशं शतम्।

(क) 'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थमे, 'शत्'-भागान्त शब्द और 'विंशति'-शब्दके उत्तर 'ड' होता है। यथा—(त्रिंशत् अधिका अस्मिन्) त्रिंशं शतम्; चत्वारिंशं शतम्; पञ्चाशं शतम्; एकत्रिंश शतम्; चतुश्चत्वारिंशं शतम्; पञ्चपञ्चाशं शतम्। (विंशतिः अधिका अस्मिन्) विंशं शतम्; एकविंशं शतम्; द्वाविंशं शतम्।

तत् कृतम् अनेन इत्यर्थे।

९४७। इनि—'तत् कृतम् अनेन' इस अर्थमे, 'इष्ट'-प्रभृति 'क्त'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'इनि'-प्रत्यय होता है; 'इ' इत, 'इन्' रहता है; यथा—(इष्टम् अनेन) इष्टी यज्ञे; (अधीतम् अनेन) अधीती शास्त्रे; (गृहीतम् अनेन) गृहीती उपदेशे; (श्रुतम् अनेन) श्रुती वेदे; (आसेवितम् अनेन) आसेविती गुरौ; (निराकृतम् अनेन) निराकृती शत्रौ; (उपकृतम् अनेन) उपकृती मित्रे; (अवकीर्णम्—उल्लङ्घितम्—अनेन) अवकीर्णी व्रते।

जातार्थे।

९४८। इत (इतच्)—'तत् अस्य सञ्जातम्', 'तत् अस्मिन् सञ्जातम्' इन दोनो अर्थोंमे 'तारका'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'इत'-प्रत्यय होता है; यथा—(तारकाः अस्मिन् सञ्जाताः) तारकितं

[नभः] । (पुष्पाणि अस्याः सञ्जातानि) पुष्पिता [लता] ; (कुसुम) कुसुमिता [चूतलतिका] ; (पल्लवाः अस्य सञ्जाताः) पल्लवितः [तरुः] ; (फलानि अस्य सञ्जातानि) फलितः [वृक्षः] ; (तरङ्गः अस्याः सञ्जातः) तरङ्गिता [नदी] ; (उत्कण्ठा अस्मिन् सञ्जाता) उत्कण्ठितं [मनः] ; (अन्धकारम् अस्मिन् सञ्जातम्) अन्धकारितं [जगत्] ; (कलङ्कः अस्य सञ्जातः) कलङ्कितः [चन्द्रः] ; (कर्दमः अस्मिन् सञ्जातः) कर्दमितः [पन्थाः] ; (पुलकानि अस्मिन् सञ्जातानि) पुलकितं [शरीरम्] ; (रोमाञ्च) रोमाञ्चितं [वपुः] ; (अङ्कुरः अस्य सञ्जातः) अङ्कुरितं [शस्यम्] ; (व्याधिः अस्य सञ्जातः) व्याधितः [पुरुषः] ; (रोग) रोगिता [नारी] ; (मञ्जरी) मञ्जरितः [सहकारः] ; (मुकुल) मुकुलितं [नयनसरोजम्] ; (कुड्मल) कुड्मलितम् [ईक्षणम्] ; (स्तवक) स्तवकितं [प्रसूनम्] ; (कोरक) कोरकितं [कुरवकम्] ; (किसलय) किसलयितः [पादपः] ; (कुवलय) कुवलयितः* ; (निद्रा) निद्रितः [शिशुः] ; (बुभुक्षा) बुभुक्षितः [शार्दूलः] ; (पिपासा) पिपासितः [पान्थः] ; (क्षुध् , क्षुधा) क्षुधितः [बालः] ; (सुख) सुखितं [चित्तम्] ; (दुःख) दुःखितं [चेतः] ; (व्रण) व्रणितं (पीडितम् इत्यर्थः—हृदयम्) ; (तिलक) तिलकितं [ललाटम्] ; (गर्व) गर्वितं [मानसम्] ; (हर्ष) हर्षितं [स्वान्तम्] ; (ज्वर) ज्वरितं [कलेवरम्] ; (तृष् , तृषा) तृषितः [चातकः] ; (कज्जल) कज्जलितं [भवनं, लोचनं वा] ; (कल्लोल)

* "पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शनीनां
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम् ॥" र० १२. ९३. ।

कल्लोलितः [सरित्पतिः]; (शैवल) शैवलितं [सोपानम्]; (कन्दल) कन्दलितः (विकसितः, प्रवृद्ध इत्यर्थः—आनन्दः); (बिम्ब) बिम्बितः [सूर्यः]; (प्रतिबिम्ब) प्रतिबिम्बितं [मुखम्]; (मूर्च्छा) मूर्च्छितः [रोगी]; (दीक्षा) दीक्षितः [यजमानः]; (पण्डा*) पण्डितः; (मुद्रा) मुद्रितं (सङ्कुचितम् इत्यर्थः—कुवलयम्) †।

तत् अस्य पण्यम् इत्यर्थे।

९४९। ष्णिक (ठक्)—'तत् अस्य पण्यम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक'-प्रत्यय होता है; यथा—(लवणम् अस्य पण्यम्) लावणिकः (ठग्—लवणव्यवहारी,लवणविक्रेता इत्यर्थः); (तैलम् अस्य पण्यम्) तैलिकः (तेली); (ताम्बूलम् अस्य पण्यम्) ताम्बूलिकः (तम्बोली)।

तत् अस्य शिल्पम् इत्यर्थे।

९५०। ष्णिक (ठक्)—'तत् अस्य शिल्पम् ‡' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है; यथा—(मृदङ्गः शिल्पम् अस्य) मार्दङ्गिकः (मृदङ्गवादक इत्यर्थः); (मुरजः शिल्पमस्य) मौरजिकः; (पणवः शिल्पमस्य) पाणविकः; (वीणा शिल्पमस्य) वैणिकः। अत्र मृदङ्गादिपदेन तत्तद्वादनं लक्ष्यते।

तत् अस्य प्रहरणम् इत्यर्थे।

९५१। ष्णिक (ठक्), कण्, ष्णीक—'तत् अस्य प्रहरणम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' और 'कण्' प्रत्यय होते हैं। 'कण्' का

---

* "पण्डा तत्वानुगा बुद्धि." हेमचन्द्रः।

† "काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य" गीतगो० १. (मुद्रित—चिह्नित)।

‡ रतिलाभोपयोगि द्रव्यं तदीयकौशलञ्च शिल्पम्।

'ण्' इत्, 'क' रहता है। यथा—(ष्णिक)—(असिः प्रहरणम् अस्य) आसिकः ; (प्रासः प्रहरणम् अस्य) प्रासिकः ; (परश्वधं प्रहरणमस्य) पारश्वधिकः ; (तरवारिः प्रहरणमस्य) तारवारिकः । (कण्)—(धनुः प्रहरणमस्य) धानुष्कः ।

किन्तु 'शक्ति' और 'यष्टि' शब्दके उत्तर 'ष्णीक' (ईकक्) होता है ; यथा—(शक्तिः प्रहरणमस्य) शाक्तीकः ; (यष्टिः प्रहरणमस्य) याष्टीकः ।

तत् अस्य प्रयोजनम् इत्यर्थे ।

९५२ । यत्—'तत् अस्य प्रयोजनम्*' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है ; 'त्' इत्, 'य' रहता है ; यथा—(स्वर्गः प्रयोजनम् अस्य) स्वर्ग्यम् ; (यशः प्रयोजनमस्य) यशस्यम् ; (आयुः प्रयोजनमस्य) आयुष्यम् ; (कामः प्रयोजनमस्य) काम्यम् ।

तत् अस्य शीलम् इत्यर्थे ।

९५३ । ष्ण (ण)—'तत् अस्य शीलम्' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है ; यथा—(गुरोर्दोषाणां छादनम् आवरणं छत्त्रम् ; छत्त्रं शीलम् अस्य) छात्त्रः ; (शिक्षा शीलमस्य) शैक्षः ; (तपः शीलमस्य) तापसः ; (चुर् + अ = चुरा—चौर्य्यम् इत्यर्थः ; चुरा शीलमस्य) चौरः ।

तत् अस्य प्राप्तम् इत्यर्थे ।

९५४ । ष्ण (अण्), ष्णिक (ठञ्)—'तत् अस्य प्राप्तम्' इस अर्थमे 'ऋतु'-शब्दके उत्तर 'ष्ण', और 'समय'-शब्दके उत्तर 'ष्णिक' प्रत्यय होता है । यथा—(ऋतुः अस्य प्राप्तः) आर्त्तवं [कुछ-

---

* प्रयोजनम्—फलं कारणेश्वरयर्थः ।

मम्]।* (समयः अस्य प्राप्तः) सामयिकं (प्राप्तकालम्, समयोचितम् इत्यर्थः—कार्य्यम्)।

निवासार्थे।

१९९। ष्ण (अण्)—'सः अस्य निवासः', 'सः अस्य अभिजनः'† इन दोनो अर्थोंमे शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है; यथा—(मथुरा निवासः अस्य) माथुरः; (मिथिला निवासः अस्य) मैथिलः; (उत्कलः निवासः अस्य) औत्कलः; (विदेहः निवासः अस्य) वैदेहः; (मद्रः निवासः अस्य) माद्रः; (वङ्गोऽस्य निवासः) वाङ्गः। 'अभिजन'-अर्थमेभी इसप्रकार; यथा—(गन्धारोऽस्याभिजनः) गान्धारः‡।§

सा अस्य देवता इत्यर्थे।

१९६। ष्ण (अण्), ष्णय, ष्णेय (ढक्), इय (घ)—

---

* "अथ यथासुखमार्त्तवमुत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः" र० ९. ४८.। "अभिभूय विभूतिमार्त्तवीम्" र० ८. ३६; "सखीभिर्याति सम्पर्क लताभिः श्रीरिवार्त्तवी" विक्रमो० १. १३.।

† सम्प्रति वासस्थानं निवासः; पूर्ववासस्थानम् अभिजनः (यत्र पूर्वैः उषितमित्यर्थः)।

‡ बहुवचनमे, 'निवास' और 'अभिजन' अर्थमे विहित प्रत्ययका लोप होता है; यथा—(वङ्ग एषां निवासः) वङ्गाः। स्त्रीलिङ्गमे लोप नहीं होता; यथा—(मगध आसां निवासः) मागध्यः।

§ 'तस्य राजा'—इस अर्थमेभी इसीप्रकार 'ष्ण'-प्रत्यय होता है; यथा—(विदेहस्य राजा) वैदेहः; (कश्मीरस्य राजा) काश्मीरः; (निषधस्य राजा) नैषधः। (बहुवचनमे प्रत्यय-लोप)—कश्मीराः, विदेहाः।

'सा अस्य देवता' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्ण' और 'ष्ण्य' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)—(शिवः देवता अस्य) शैवः ; (विष्णुः देवता अस्य) वैष्णवः ; (शक्तिः देवता अस्य) शाक्तः । (ष्ण्य)—(गणपतिः देवता अस्य) गाणपत्यः (ण्य) ; (प्रजापतिः देवताऽस्य) प्राजापत्यः (ण्य) ; (वायुः देवताऽस्य) वायव्यः (यत्) ; (सोमः देवताऽस्य) सौम्यः (ट्यण्) ।

'अग्नि'-शब्दके उत्तर 'ष्णेय' होता है ; 'ष्' और 'ण्' इत्, 'एय' रहता है ; यथा—(अग्निः देवताऽस्य) आग्नेयः [चरुः] ; आग्नेयी ऋक् ।

'महेन्द्र'-शब्दके उत्तर 'इय' और 'ष्ण' होते हैं ; यथा—(महेन्द्रः देवताऽस्य) महेन्द्रियम्, माहेन्द्रम् [हविः] ।

सा अस्मिन् पौर्णमासी इत्यर्थे ।

९९७ । ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्)—संज्ञा समझानेसे, 'सा पौर्णमासी अस्मिन् [मासे]' इस अर्थमे 'ष्ण' और 'ष्णिक' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)—(विशाखया नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी—वैशाखी ; वैशाखी पौर्णमासी अस्मिन्) वैशाखः [मासः] ; (ज्यैष्ठी पौर्णमासी अस्मिन्) ज्यैष्ठः ; (आषाढी पौर्णमासी अस्मिन्) आषाढः ; (भाद्री, भाद्रपदी च, पौर्णमासी अस्मिन्) भाद्रः, भाद्रपदः ; (आश्विनी पौर्णमासी अस्मिन्) आश्विनः ; (पौषी पौर्णमासी अस्मिन्) पौषः ; (माघी पौर्णमासी अस्मिन्) माघः ।

'आग्रहायणी'-शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है ; यथा—(आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्) आग्रहायणिकः । 'पक्षे ष्णः' इति केचित् ; यथा—आग्रहायणः ।

श्रावणी, कार्त्तिकी, फाल्गुनी और चैत्री शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ष्णिक' होता है; पक्षे—'ष्ण'; यथा—(श्रावणी पौर्णमासी अस्मिन्) श्रावणिकः, श्रावणः; (कार्त्तिकी पौर्णमासी अस्मिन्) कार्त्तिकिकः, कार्त्तिकः; (फाल्गुनी पौर्णमासी अस्मिन्) फाल्गुनिकः, फाल्गुनः; (चैत्री पौर्णमासी अस्मिन्) चैत्रिकः, चैत्रः।

तद्धित-प्रत्यय—द्वितीयान्तसे।

वक्ष्यमाण तद्धित-प्रत्यय द्वितीयान्तसे होते हैं—

तत् वेत्ति, तत् अधीते इत्यर्थे।

९९८। ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्), वुण् (वुन्)—'तत् वेत्ति', 'तत् अधीते' इन दोनो अर्थोंमे शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णिक' और 'वुण्' प्रत्यय होते हैं। यथा—(ष्ण)—(व्याकरणं वेत्ति, अधीते वा) वैयाकरणः; (उपनिषदं वेत्ति, अधीते वा) औपनिषदः। (ष्णिक)—(वेदं वेत्ति, अधीते वा) वैदिकः; (वेदान्तं वेत्ति, अधीते वा) वैदान्तिकः; (तर्कं वेत्ति, अधीते वा) तार्किकः; (न्यायं वेत्ति, अधीते वा) नैयायिकः; (पुराणं वेत्ति, अधीते वा) पौराणिकः; (अलङ्कारं वेत्ति, अधीते वा) आलङ्कारिकः; (ज्योतिषं वेत्ति, अधीते वा) ज्यौतिषिकः। (वुण्)*—(क्रमं वेत्ति, अधीते वा) क्रमकः; (पदं वेत्ति, अधीते वा) पदकः; (शिक्षां वेत्ति, अधीते वा) शिक्षकः; † (मीमांसां वेत्ति, अधीते वा) मीमांसकः।

---

* यहाँ 'णित्'-कार्य्य नहीं होता।

† 'शिक्षा' और 'मीमांसा'-शब्दका अन्त्यस्वर ह्रस्व होता है।

तत् अधिकृत्य कृतम् इत्यर्थे ।

९९९ । ष्ण (अण्), ष्णीय (छ), ष्णिक—ग्रन्थ समझानेसे, 'तत् अधिकृत्य * कृतम्' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णीय' और 'ष्णिक' प्रत्यय होते हैं; 'ष्णीय' के 'ष्' और 'ण्' इत्, 'ईय' रहता है । यथा—(ष्ण)—(रामस्य अयनं—चरितम्—अधिकृत्य कृतम्) रामायणम्; (भरतान्—भरतवंशीयान्—अधिकृत्य कृतम्) भारतम्; (भगवन्तम् अधिकृत्य कृतम्) भागवतम् । (ष्णीय)—(वाक्यं पदञ्च अधिकृत्य कृतम्) वाक्यपदीयम्; (किरातम् अर्जुनञ्च अधिकृत्य कृतम्) किरातार्जुनीयम्; (राघवान् पाण्डवांश्च अधिकृत्य कृतम्) राघवपाण्डवीयम् । (ष्णिक)—(अनुशासनम् अधिकृत्य कृतम्) आनुशासनिकम्; (अश्वमेधम् अधिकृत्य कृतम्) आश्वमेधिकम् । †

तत् अर्हति इत्यर्थे ।

९६० । यत्—'तत् अर्हति' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है; 'त्' इत्, 'य' रहता है; यथा—(दण्डम् अर्हति इति) दण्ड्यः; (छेदमर्हति) छेद्यः; (भेदमर्हति) भेद्यः; (वधमर्हति) वध्यः; (कशाम् अर्हति) कश्यः; (अर्घमर्हति) अर्घ्यः; (गुहामर्हति) गुह्यः; (इभम्—हस्तिनम्—अर्हति) इभ्यः (धनी इत्यर्थः); (शीर्षच्छेदम्

---

* अधिकृत्य—प्रस्तुत्य, अवलम्ब्य इत्यर्थः ।

† कहीं कहीं प्रत्ययका लोप होता है; यथा—(वासवदत्ताम् अधिकृत्य कृता आख्यायिका) वासवदत्ता; कादम्बरी; शकुन्तला—'तद्धितलुपि प्रकृतिलिङ्गता' इति स्त्रीत्वम्; रत्नावली; कुमारसम्भवम्; जानकीहरणम् ।

अर्हति) शीर्षच्छेद्यः [चौरः]।

(क) ईय (छ)—'दक्षिणा'-शब्दके उत्तर 'ईय' भी होता है; पक्षे—'यत्'; यथा—(दक्षिणाम् अर्हति) दक्षिणीयः, दक्षिण्यः*। "निष्क-शतसुवर्णपरिमाणां दक्षिणां देवी दक्षिणीयैः परिग्राहयति" मालविका० ५.।

(ख) इय (घ)—'यज्ञ'-शब्दके उत्तर 'इय' होता है; यथा—(यज्ञकर्म अर्हति) यज्ञियः [देशः]। †

तत् वहति इत्यर्थे।

९६१। यत्, ण्येय (ढक्), णीन (ख), ष्णिक (ठक्), ष्ण (अण्)—'तत् वहति' इस अर्थमें 'धुर्'-शब्दके उत्तर 'यत्', 'ण्येय' और 'णीन' प्रत्यय होते हैं; यथा—(धुरं वहति) धुर्य्यः (यत्), धौरेयः (ण्येय), धुरीणः‡ (णीन)।

'सर्वधुरा'-शब्दके उत्तर 'णीन' होता है; 'ण्' इत्, 'ईन' रहता है; यथा—(सर्वधुरां वहति) सर्वधुरीणः।

'हल' और 'सीर'-शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है; यथा—(हलं वहति) हालिकः; (सीरं—लाङ्गलं—वहति) सैरिकः।

'रथ' और 'युग'-शब्दके उत्तर 'यत्' होता है; यथा—(रथं वहति) रथ्यः—"धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः" शकु० १.८; (युगं वहति) युग्यः (रथाश्व इत्यर्थः)—"हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दरः" र० १२.८४.।

* 'ष्य (यत्)'-भी होता है; यथा—दाक्षिण्यः।

† 'अर्हत्यर्थे तु शालायाः खे शालीनः सलज्जकः'—(शालाम् अर्हति) शालीनः (णीन—ख; सलज्ज इत्यर्थः)।

‡ यहाँ 'णित्'-कार्य्य नहीं होता।

'शकट'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है ; यथा—(शकटं वहति) शाकटः।

तत् व्याप्नोति इत्यर्थे।

९६२ । ष्णिक (ठक्)—'तत् व्याप्नोति' इस अर्थमे कालवाचक-शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है ; यथा—(पक्षं व्याप्नोति) पाक्षिकं [पारायणम्] ; (मासं व्याप्नोति) मासिकं [चान्द्रायणम्, अशौचञ्च] ।

द्विगु-समास होनेसे, प्रत्ययका विकल्पसे लोप होता है ; यथा—दाशाहिकम्, दशाहम् ; द्वादशरात्रिकम्, द्वादशरात्रम् ; त्रैवार्षिकम्, त्रिवर्षम् ; षाड्वार्षिकम्, षड्वर्षम् ।

(क) णीन* (ख)—(सर्वपथं व्याप्नोति) सर्वपथीनः [रथः]—सर्वपथीना मतिः ; (सर्वाङ्गं व्याप्नोति) सर्वाङ्गीणः † [तापः] ; (सर्वकर्माणि व्याप्नोति) सर्वकर्मीणः (सकलकर्मक्षम इत्यर्थः—पुरुषः) ।

तद्धित-प्रत्यय—तृतीयान्तसे।

वक्ष्यमाण तद्धित-प्रत्यय तृतीयान्तसे होते हैं—

तेन कृतम् इत्यर्थे।

९६३ । ष्णिक (ठक्), ष्णेय (ढञ्), ष्ण (अण्)—'तेन कृतम्' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्णिक' और 'ष्ण' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्णिक)—(कायेन कृतम्) कायिकम् ; (शरीरेण कृतम्) शारीरिकम् ; (वाचा कृतम्) वाचिकम् ; (वचनेन कृतम्) वाचनिकम् ;

---

* यहाँ 'णित्'-कार्य्य नहीं होता ।

† 'सर्वाङ्गीनः' इत्यपि दृश्यते ।

(मनसा कृतम्) मानसिकम् । (ष्ण)—(मक्षिकाभिः कृतम्) माक्षिकम्; (क्षुद्राभिः कृतम्) क्षौद्रम्; (सरघाभिः कृतम्) सारघम्;—मधु इत्यर्थः।

'पुरुष' शब्दके उत्तर 'ष्णेय' होता है; यथा—(पुरुषेण कृतः) पौरुषेयः [ग्रन्थः]—"अपौरुषेयो वै वेदः" ।

तेन प्रोक्तम् इत्यर्थे।

९६४। ष्ण (अण्), ष्णीय (छ), ष्णय (राय)—'तेन प्रोक्तम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णीय' और 'ष्णय' होते हैं। यथा—(ष्ण)—(ऋषिभिः प्रोक्तम्) आर्षम्; (मनुना प्रोक्तम्) मानवम्, मानवीयम् (ष्णीय); (विष्णुना प्रोक्तम्) वैष्णवम्; (पतञ्जलिना प्रोक्तम्) पातञ्जलम्; (कणादेन प्रोक्तम्) काणादम्; (उशनसा प्रोक्तम्) औशनसम्; (अङ्गिरसा प्रोक्तम्) आङ्गिरसम्; (पराशरेण प्रोक्तम्) पाराशरम्, पाराशरीयम् (ष्णीय)। (ष्णीय)—(पाणिनिना प्रोक्तम्) पाणिनीयम्; (जैमिनिना प्रोक्तम्) जैमिनीयम्; (नारदेन प्रोक्तम्) नारदीयम्; (वाल्मीकिना प्रोक्तम्) वाल्मीकीयम्; (बौधायनेन प्रोक्तम्) बौधायनीयम्। (ष्णय)—(बृहस्पतिना प्रोक्तम्) बार्हस्पत्यम्।

तेन रक्तम् इत्यर्थे।

९६५। ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्), अन्, कन्—'तेन रक्तम्*' इस अर्थमें रञ्जकद्रव्यवाचक शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है। यथा—(कषायेण रक्तम्) काषायम्; (कुसुम्भेन रक्तम्) कौसुम्भम्;

---

* शुक्लस्य वर्णान्तरापादनम् इह रञ्जेः अर्थः।

(मञ्जिष्ठया रक्तम्) माञ्जिष्ठम् । (हरिद्रया रक्तम्) हारिद्रम् (अन्)।

'लाक्षा' और 'रोचना'-शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है ; यथा—(लाक्षया रक्तम्) लाक्षिकम् ; (रोचनया रक्तम्) रौचनिकम् ।

'नीली'-शब्दके उत्तर 'अन्' होता है ; 'न्' इत्, 'अ' रहता है ; यथा—(नील्या रक्तम्) नीलम् ।

'पीत'-शब्दके उत्तर 'कन्' होता है ; 'न्' इत्, 'क' रहता है ; यथा—(पीतेन रक्तम्) पीतकम् ।

तेन निर्वृत्तम् इत्यर्थे ।

९६६ । ष्णिक (ठञ्)—'तेन निर्वृत्तम् (निष्पन्नम्)' इस अर्थमे कालवाचक शब्दके उत्तर 'ष्णिक'-प्रत्यय होता है ; यथा—(दिनेन निर्वृत्तम्) दैनिकम् ; (मासेन निर्वृत्तम्) मासिकम् ; (वर्षेण निर्वृत्तम्) वार्षिकम् ; (संवत्सरेण निर्वृत्तम्) सांवत्सरिकम् ।

'अहन्'-शब्दके स्थानमे 'अह्न' होता है ; यथा—(अह्ना निर्वृत्तम्) आह्निकम् ।

तेन युक्तम् इत्यर्थे ।

९६७ । ष्ण (अण्)—काल समझानेसे, 'तेन युक्तम्' इस अर्थमे नक्षत्रवाचक शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है ; यथा—(ज्येष्ठया नक्षत्रेण युक्तम्) ज्यैष्ठम् [अहः]; (ज्येष्ठया युक्ता) ज्यैष्ठी [रात्रिः, पौर्णमासी वा] ; (आषाढया नक्षत्रेण युक्ता) आषाढी ; (श्रवणया नक्षत्रेण युक्ता) श्रावणी ; (भद्रया नक्षत्रेण युक्ता) भाद्री ; (भद्रपदया नक्षत्रेण युक्ता) भाद्रपदी ; (अश्विन्या नक्षत्रेण युक्ता) आश्विनी ; (कृत्तिकया नक्षत्रेण युक्ता) कार्त्तिकी ; (आग्रहायण्या—मृगशिरसा—नक्षत्रेण युक्ता)

आग्रहायणी ; (मघया नक्षत्रेण युक्ता) माघी ; (फाल्गुन्या नक्षत्रेण युक्ता) फाल्गुनी ; (चित्रया नक्षत्रेण युक्ता) चैत्री ।

'तिष्य' और 'पुष्य'-शब्दके यकारका लोप होता है ; यथा—(तिष्येण नक्षत्रेण युक्ता) तैषी ; (पुष्येण नक्षत्रेण युक्ता) पौषी ।

तेन जीवति इत्यर्थे।

९६८। ष्णिक (ठक्)—'तेन जीवति' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है ; यथा—(वेतनेन जीवति) वैतनिकः ; (वाहनेन जीवति) वाहनिकः ; (जालेन जीवति) जालिकः ; (उपदेशेन जीवति) औपदेशिकः ; (धनुषा जीवति) धानुष्कः ('ष्णिक'-के स्थानमें 'क'); (वागुरया जीवति) वागुरिकः ; (नावा जीवति) नाविकः (खेवट); (क्रयविक्रयाभ्यां जीवति) क्रयविक्रयिकः (ठन्)—'व्यापारी' इति भाषा।

'आयुध'-शब्दके उत्तर 'ष्णीय' (छ) भी होता है ; यथा—(आयुधेन जीवति) आयुधीयः, आयुधिकः (ठन्) ।

तेन वित्त इत्यर्थे ।

९६९ । चुञ्चु (चुञ्चुप्), चण (चणप्)—'तेन वित्तः (ख्यातः)' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'चुञ्चु' और 'चण' प्रत्यय होते हैं ; यथा—(विद्यया वित्तः) विद्याचुञ्चुः, विद्याचणः ; (ज्ञानेन वित्तः) ज्ञानचुञ्चुः, ज्ञानचणः ; (अर्थेन वित्तः) अर्थचुञ्चुः, अर्थचणः ; (मायया वित्तः) मायाचुञ्चुः, मायाचणः ; (अक्षेण वित्तः) अक्षचुञ्चुः, अक्षचणः ; (अक्षरेण वित्तः) अक्षरचुञ्चुः , अक्षरचणः (मुन्शी) । वेदान्तचुञ्चुः ।*

---

* स्थान, स्थानीय—'तेन तुल्यः' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'स्थान'

तद्धित-प्रत्यय—चतुर्थ्यन्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित-प्रत्यय चतुर्थ्यन्तसे होते हैं—

तस्मै हितम् इत्यर्थे ।

९७० । यत्, णीन (ख), इय (घ)—'तस्मै हितम्' इस अर्थमे शरीरावयव-वाचक शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है; यथा—(दन्ताय हितम्) दन्त्यम्; (नसे हितम्) नस्यम्* ।

(ब्रह्मणे हितम्) ब्रह्मण्यम् ।

(णीन)—(सर्वजनेभ्यो हितम्) सार्वजनीनम्, सर्वजनीनम्, सार्वजनिकम् (ष्णिक—ठञ्); (विश्वजनेभ्यो हितम्) विश्वजनीनम् ।

(इय)—(यज्ञाय हितम्) यज्ञियम् ।

तस्मै प्रभवति इत्यर्थे ।

९७१ । ष्णिक (ठक्)—'तस्मै प्रभवति' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है; यथा—(सङ्ग्रामाय प्रभवति) साङ्ग्रामिकः; (सन्नाहाय प्रभवति) सान्नाहिकः; (सन्तापाय प्रभवति) सान्तापिकः; (उत्पाताय प्रभवति) औत्पातिकः; (सङ्घाताय—विनाशाय—प्रभवति) साङ्घातिकः ।

(क) 'धनु'-अर्थमे, 'कार्मुक'-शब्द निपातन-सिद्ध; यथा—(कर्मणे प्रभवति) कार्मुकम् (उकञ्) ।

और 'स्थानीय' प्रत्यय होते हैं; यथा—(पित्रा तुल्यः) पितृस्थानः, पितृस्थानीयः; भ्रातृस्थानः, भ्रातृस्थानीयः; मातृस्थाना, मातृस्थानीया [मातृष्वसा] ।

* 'नासिका'-के स्थानमे 'नस्' होता है ।

तादर्थ्ये।

१७२। ष्यय—'तादर्थ्य' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'ष्यय' प्रत्यय होता है ; यथा—(पादाय इदम्) पाद्यम् (यत्); (अर्घाय इदम्) अर्घ्यम् (यत्); (अतिथये इदम्) आतिथ्यम् (ष्य); (अग्निदेवतायै इदम्) आग्निर्दैवत्यम्, अग्निदेवत्यम्; (पितृदेवतायै इदम्) पैतृदैवत्यम्, पितृदेवत्यम्।

तद्धित प्रत्यय—पञ्चम्यन्तसे।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय पञ्चम्यन्तसे होते हैं—

तत आगत इत्यर्थे।

१७३। ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्), कण्—'तत आगत.' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णिक' और 'कण्' प्रत्यय होते हैं। यथा—(ष्ण)—(मथुरायाः आगतः) माथुरः। (ष्णिक)—(तीर्थात् आगतः) तैर्थिकः; (नगरात् आगतः) नागरिकः; (आपणात् आगतः) आपणिकः। (कण्)—उपाध्यायात् आगतम्) औपाध्यायकम् (वुञ्); (पितामहात् आगतम्) पैतामहकम् (वुञ्); (मातुः आगतम्) मातृकम् (ठञ्); (भ्रातुः आगतम्) भ्रातृकम् (ठञ्); (पितुः आगतम्) पैतृकम् (ठञ्), पित्र्यम् (य)।

तस्मात् अनपेतम् इत्यर्थे।

१७४। यत्—'तस्मात् अनपेतम्*' इस अर्थमे धर्म, न्याय, अर्थ

---

* अवियुक्तम् इत्यर्थः।

और पथिन् शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है; यथा—(धर्मात् अनपेतम्) धर्म्यम् (धर्मयुक्तम् इत्यर्थः); (न्यायात् अनपेतम्) न्याय्यम्; (अर्थात् अनपेतम्) अर्थ्यम्—"स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती" र० ४. ६; (पथः अनपेतम्) पथ्यम् ।

तद्धित-प्रत्यय—षष्ठ्यन्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित-प्रत्यय षष्ठ्यन्तसे होते हैं—

अपत्यार्थे ।

'अपत्य'*-अर्थमे ('तस्य अपत्यम्' इस अर्थमे) शब्दके उत्तर ष्णि, ष्णायन, ष्ण्य, ष्ण, ष्णेय, ष्णीय प्रभृति प्रत्यय होते हैं । यथा—

९७९ । ष्णि (इञ्)—अकारान्त शब्दके उत्तर 'ष्णि'-प्रत्यय होता है; 'ष्' और 'ण्' इत्, 'इ' रहता है; यथा—(दशरथस्य अपत्यं पुमान्) दाशरथिः; (शूरस्य अपत्यम्) शौरिः; (द्रोणस्य अपत्यम्) द्रौणिः; (गवल्गणस्य अपत्यम्) गावल्गणिः (सञ्जयः); (युधिष्ठिर) यौधिष्ठिरिः; (अर्जुन) आर्जुनिः; (कृष्ण) कार्ष्णिः; (व्यास) वैयासकिः † ।

(क) 'बाहु'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णि' होता है; यथा—(बाहोः

---

* पुत्र-कन्या-प्रभृति सन्तानको 'अपत्य' कहते हैं । 'अपत्य'-शब्द नित्य क्लीवलिङ्ग । विशेष समझाना हो, तो 'अपत्यं पुमान्', 'अपत्यं स्त्री' कहना होता है ।

† 'ष्णि'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'व्यास'-प्रभृति शब्दके अन्त्य अवयवके स्थानमे 'अक' (अकङ्) होता है ।

अपत्यम्) वाह्वविः ; (सुमित्रायाः अपत्यम्) सौमित्रिः ; (बलाकायाः अपत्यम्) बालाकिः ।

१७६ । ष्णायन (फक्)—'नड'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णायन'-प्रत्यय होता है ; 'ष्' और 'ण्' इत्, 'आयन' रहता है ; यथा—(नडस्य अपत्यम्) नाडायनः ; (नरस्य अपत्यम्) नारायणः ; (अश्वलस्य अपत्यम्) आश्वलायनः ; (दक्ष) दाक्षायणः ; (द्रोण) द्रौणायनः ; (शकट) शाकटायनः ; (युगन्धर) यौगन्धरायणः । *

१७७ । ष्णय (यञ्)—'गर्ग'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णय'-प्रत्यय होता है ; यथा—(गर्गस्य अपत्यम्) गार्ग्यः ; (वत्सस्य अपत्यम्) वात्स्यः ; (पुलस्तेः अपत्यम्) पौलस्त्यः ; (मण्डु) माण्डव्यः ; (यज्ञवल्क) याज्ञवल्क्यः ; (शाण्डिल) शाण्डिल्यः ; (चणक) चाणक्यः ; (जमदग्नि) जामदग्न्यः ; (पराशर) पाराशर्यः ; (व्याघ्रपाद्—व्याघ्रपदः अपत्यम्) वैयाघ्रपद्यः ।

(दितेः अपत्यम्) दैत्यः ; (अदिति) आदित्यः ; (प्रजापति) प्राजापत्यः ;—(ण्य) ।

१७८ । ष्ण (अण्)—'शिव'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है ; यथा—(शिवस्य अपत्यम्) शैवः ; (ककुत्स्थस्य अपत्यम्) काकुत्स्थः ; (विश्रवणस्य अपत्यम्) वैश्रवणः ; (रवण) रावणः ; (यस्क) यास्कः ; (पृथाया अपत्यम्) पार्थः ; (इलायाः अपत्यम्) ऐलः ।

(क) 'भृगु'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्ण' (अण्) होता है ।

* (अमुष्य ख्यातस्य अपत्यम्) आमुष्यायणः (सद्वंशोद्भव इत्यर्थः—षष्ठ्या अलुक्) ।

यथा—(भृगोः अपत्यम्) भार्गवः; (मरीचेः अपत्यम्) मारीचः; (वसिष्ठस्य अपत्यम्) वासिष्ठः; (कुत्स) कौत्सः; (गोतम) गौतमः; (अङ्गिरस्) आङ्गिरसः; (विश्वामित्र) वैश्वामित्रः। (यदोः अपत्यम्) यादवः; (वसुदेव) वासुदेवः। (कुरोः अपत्यम्) कौरवः; (पाण्डु) पाण्डवः; (धृतराष्ट्र) धार्त्तराष्ट्रः। (पूरु) पौरवः; (रघु) राघवः; (मनु) मानवः; (द्रुपद) द्रौपदः। *

(ख) सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्त्ती 'मातृ'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है; और 'ष्ण' परे, 'मातृ'—'मातुर्' होता है; यथा—(द्वयोः मात्रोः अपत्यम्) द्वैमातुरः; (षण्णां मातृणामपत्यम्) षाण्मातुरः।

(ग) 'कन्या'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है; और 'ष्ण' परे, 'कन्या'—'कनीन' होता है; यथा—(कन्यायाः अपत्यम्) कानीनः (व्यासः, कर्णश्च)।

(घ) 'विद'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्ण' (अञ्) होता है; यथा—(विदस्य अपत्यम्) वैदः; (उर्वस्य अपत्यम्) और्वः; (कश्यपस्य अपत्यम्) काश्यपः; (कुशिक) कौशिकः; (भरद्वाज) भारद्वाजः; (उपमन्यु) औपमन्यवः; (शरद्वत्) शारद्वतः; (ऋष्टिषेण) आर्ष्टिषेणः; (शुनक) शौनकः। (पुनर्भ्वाः† अपत्यम्) पौनर्भवः; (पुत्रस्य अपत्यम्) पौत्रः; (दुहितुः अपत्यम्) दौहित्रः।

९७९। ष्णेय (ढक्)—स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'ष्णेय'-प्रत्यय

---

* अपत्य-प्रत्ययान्त ऐक्ष्वाक, कौरव, मनुष्य और मानुष शब्द निपातनसिद्ध; यथा—(इक्ष्वाकोः अपत्यम्) ऐक्ष्वाकः (अण्); (कुरोः अपत्यम्) कौरव्यः (ण्य); (मनोः अपत्यम्) मनुष्यः (यत्), मानुषः (अञ्)।

† पुनर्भूः—पुनर्विवाहिता स्त्री।

होता है ; यथा—(गङ्गायाः अपत्यम्) गाङ्गेयः ; (राधायाः अपत्यम्) राधेयः ; (विनतायाः अपत्यम्) वैनतेयः ; (सरमा) सारमेयः ; (कुन्ती) कौन्तेयः ; (रोहिणी) रौहिणेयः ; (रुक्मिणी) रौक्मिणेयः ; (अम्बिका) आम्बिकेयः ; (भगिन्या अपत्यम्) भागिनेयः ।

(क) 'शुभ्र'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णेय' होता है ; यथा—(शुभ्रस्य अपत्यम्) शौभ्रेयः ; (अग्नेः अपत्यम्) आग्नेयः ; (मृकण्डोः अपत्यम्) मार्कण्डेयः ; (अदितेः अपत्यम्) आदितेयः ; (विमातुः अपत्यम्) वैमात्रेयः।

९८० । ष्णीय (छ)—'स्वसृ' और 'भ्रातृ' शब्दके उत्तर 'ष्णीय'-प्रत्यय होता है ; यथा—(स्वसुः अपत्यम्) स्वस्रीयः ; (भ्रातुः अपत्यम्) भ्रात्रीयः*।

(क) 'पितृष्वसृ' और 'मातृष्वसृ' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ष्णेय' (ढक्) होता है ; 'ष्णेय' होनेसे, ऋकारका लोप होता है ; यथा— (पितृष्वसुः अपत्यम्) पैतृष्वसेयः, पक्षे—(ष्णीय—छण्) पैतृष्वस्रीयः ; (मातृष्वसुः अपत्यम्) मातृष्वसेयः, पक्षे—(ष्णीय—छण्) मातृष्वस्रीयः ।

९८१ । यत्—'राजन्' और 'श्वशुर' शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(राज्ञः अपत्यम्) राजन्यः ; (श्वशुरस्य अपत्यम्) श्वशुर्य्यः।

९८२ । इय (घ)— जाति समझानेसे, 'क्षत्र'-शब्दके उत्तर 'इय'-प्रत्यय होता है ; यथा—(क्षत्रस्य अपत्यम्) क्षत्रियः ।

९८३ । ईन (ख)—'कुल'-शब्दके उत्तर 'ईन' होता है ; यथा—(कुलस्य अपत्यम्) कुलीनः । †

---

* 'भ्रातृ'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'व्य' होता है ; यथा—भ्रातृव्यः ।

† सत्कुलात् खे सत्कुलीनः, सकुल्यः सकुलाद् यता ।
खया माहाकुलीनः स्याद्, दौष्कुलेयो ढका तथा ॥

९८४। बहुवचनमे—गर्गादि, यस्कादि* और विदादिके उत्तर विहित अपत्य-प्रत्ययका लोप होता है; किन्तु स्त्रीलिङ्गमे नहीं होता। यथा—(गर्गस्य अपत्यानि) गर्गाः; (यस्कस्य अपत्यानि) यस्काः; (अत्रेः अपत्यानि) अत्रयः; (विदस्य अपत्यानि) विदाः। (स्त्रीलिङ्गमे)—(यस्कस्य अपत्यानि स्त्रियः) यास्क्यः; (अत्रेः अपत्यानि स्त्रियः) आत्रेय्यः।

(क) बहु पुरुष अपत्य समझानेसे, देशनामसे राजनाम-बोधक शब्दके उत्तर अपत्य-प्रत्ययका लोप होता है; यथा—(अङ्गस्य राज्ञः अपत्यानि पुमांसः) अङ्गाः; ऐसे—वङ्गाः, कलिङ्गाः।

प्रसिद्ध क्षत्रिय-नामके उत्तर विकल्पसे लोप होता है; यथा—(रघोः अपत्यानि पुमांसः) रघवः, राघवाः; (कुरोः अपत्यानि) कुरवः, कौरवाः; यदवः, यादवाः; (इक्ष्वाकोः अपत्यानि) इक्ष्वाकवः, ऐक्ष्वाकाः; वृष्णयः, वार्ष्णेयाः; भरताः, भारताः।

तस्य समूह इत्यर्थे।

९८५। ष्ण (अण्), कण् (वुञ्), ष्णय (यञ्), ष्णिक (टक्)—'तस्य समूहः' इस अर्थमे शब्दके उत्तर ष्ण, कण्, ष्णय और ष्णिक होते हैं। यथा—(ष्ण)—(काकानां समूहः) काकम्; (उलूकानां समूहः) औलूकम्; (कपोतानां समूहः) कापोतम्; (मयूराणां समूहः) मायूरम्; (भिक्षाणां समूहः) भैक्षम्; (अङ्गाराणां समूहः) आङ्गारम्; (पदातीनां समूहः) पादातम्। (कण्)—(वृद्धानां समूहः) वार्द्धकम्; (उक्ष्णां—वृषाणां—समूहः) औक्षकम्; (उष्ट्राणां समूहः) औष्ट्रकम्; (राजन्यानां समूहः) राजन्यकम्; (राजपुत्राणां समूहः)

* यस्कादि—यस्क, अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, आङ्गिरस्।

राजपुत्रम् ; (मनुष्याणां समूहः) मानुष्यकम् ; (अजानां समूहः) आजकम् ; (धेनूनां समूहः) धैनुकम् (ठक्) । (ष्यय)—(गणिकानां समूहः) गाणिक्यम् ; (ब्राह्मणानां समूहः) ब्राह्मण्यम् (यत्) । (ष्णिक)—(अपूपानां समूहः) आपूपिकम् ; (हस्तिनां समूहः) हास्तिकम् ।

'केश'-शब्दके उत्तर 'ष्यय' और 'ष्णिक' होते हैं ; यथा—(केशानां समूहः) कैश्यम् , कैशिकम् ।*

'अश्व'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' और 'ष्णीय' (छ) होते हैं ; यथा— (अश्वानां समूहः) आश्वम् , आश्वीयम् ।

(क) तल्—'समूह'-अर्थमे, ग्राम, जन, गज, बन्धु और सहाय शब्द-के उत्तर 'तल्'-प्रत्यय होता है ; 'तल्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ; यथा—(ग्रामाणां समूहः) ग्रामता ; (जनानां समूहः) जनता ; (गजानां समूहः) गजता ; (बन्धूनां समूहः) बन्धुता ; (सहायानां समूहः) सहायता ।

(ख) य—'पाश' प्रभृति शब्दके उत्तर 'य'-प्रत्यय होता है ;'य'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ; यथा—(पाशानां समूहः) पाश्या ; (तृणानां समूहः) तृण्या ; (वातानां समूहः) वात्या ; (धूमानां समूहः) धूम्या ।

(ग) खण्ड, काण्ड—'समूह'-अर्थमे, यथासम्भव 'खण्ड'† और 'काण्ड' प्रत्यय होते हैं । यथा—(तरूणां समूहः) तरुखण्डः ; पादप-खण्डः ; (कमलानां समूहः) कमलखण्डम् ; (कुमुदानां समूहः) कुमुद-

---

* पाशः, पक्षश्च, हस्तश्च—स्युरेते केशतो गणे ।
केशपाशः, केशपक्षः, केशहस्तस्ततो भवेत् ॥

† 'खण्ड'-के स्थानमे 'षण्ड'-भी लिखते हैं । 'खण्ड' अथवा 'षण्ड' शब्द पुं-नपुंसक-लिङ्ग । 'काण्ड'-शब्दभी पुं-नपुसक-लिङ्ग ।

खण्डम् । (दूर्वाणां समूहः) दूर्वाकाण्डम् ; (तमसां समूहः) तमस्काण्डम् ; (कर्मणां समूहः) कर्मकाण्डम् ।

(घ) ग्राम (ग्रामच्)—'समूह'-अर्थमे, 'गुण'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ग्राम'-प्रत्यय होता है ; यथा—(गुणानां समूहः) गुणग्रामः ; (करणानां समूहः) करणग्रामः ; (इन्द्रियाणां समूहः) इन्द्रियग्रामः ; (शब्दानां समूहः) शब्दग्रामः ; (तत्त्वानां समूहः) तत्त्वग्रामः ।

तस्य इदम् इत्यर्थे ।

१८६ । ष्ण (अण्), ष्णय (यत्), ईय (छ)—'तस्य इदम्' इस अर्थमे 'ष्ण', 'ष्णय' और 'ईय' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)—(विष्णोः इदम्) वैष्णवम् ; (शिवस्य इदम्) शैवम् ; (जनपदस्येदम्) जानपदम् ; (देवस्येदम्) दैवम् ; (असुरस्येदम्) आसुरम् ; (इन्द्रस्येदम्) ऐन्द्रम् ; (महेन्द्रस्येदम्) माहेन्द्रम् ; (मनस इदम्) मानसम् ; (शरीरस्येदम्) शारीरम् ; (महिपस्येदम्) माहिपम् ; (वेणोरिदम्) वैणवम् ; (पलाशस्येदम्) पालाशम् ; (खदिरस्येदम्) खादिरम् ; (विल्वस्येदम्) वैल्वम् ; (मुञ्जानाम् इदम्) मौञ्जम् ; (गङ्गाया इदम्) गाङ्गम् ; (हिमवत इदम्) हैमवतम् ; (पशुपतेरिदम्) पाशुपतम् ; (शङ्करस्येदम्) शाङ्करम् ; (सूरस्येदम्) सौरम् ; (चन्द्रस्येदम्) चान्द्रम् ; (उपनिषदः इदम्) औपनिषदम् ; (पृथिव्या इदम्) पार्थिवम् ; (तेजस इदम्) तैजसम् ; (रुरोः इदम्) रौरवम् ; (न्यङ्कोः इदम्) नैयङ्कवम्, न्यङ्कवम् ; (श्वापदस्येदम्) शौवापदम्, श्वापदम् ; (स्त्रियाः इदम्) स्त्रैणम् ; (पुंस इदम्) पौंस्नम्* ।

---

* 'स्त्री' और 'पुमस्' शब्दके उत्तर 'नण' होता है ; 'ण्' इत्, 'न' रहता है।

(ष्ण्य)—(पितुः इदम्) पित्र्यम्; (गोः इदम्) गव्यम्। (ईय)—(जलस्येदम्) जलीयम्; (वायोः इदम्) वायवीयम्; (भारतवर्षस्येदम्) भारतवर्षीयम्; (तस्य इदम्) तदीयम्; (एतस्य इदम्) एतदीयम्; (युष्माकम् इदम्) युष्मदीयम्; (अस्माकम् इदम्) अस्मदीयम्; (अन्यस्य इदम्) अन्यदीयम्; (भवत इदम्) भवदीयम् *।

(क) एकवचनमें—'युष्मद्' के स्थानमें 'त्वद्', और 'अस्मद्' के स्थानमें 'मद्' होता है; यथा—(तव इदम्) त्वदीयम्; (मम इदम्) मदीयम्।

(ख) 'खीन' (खञ्) और 'ष्ण' प्रत्यय परे, 'युष्मद्' के स्थानमें 'युष्माक', और 'अस्मद्' के स्थानमें 'अस्माक' होता है; यथा—(युष्माकम् इदम्) यौष्माकीणम्, यौष्माकम्; (अस्माकम् इदम्) आस्माकीनम्, आस्माकम्।

एकवचनमें 'तवक' और 'ममक' होते हैं; यथा—(तव इदम्) तावकीनम्, तावकम्; (मम इदम्) मामकीनम्, मामकम्।

(ग) 'ईय'-प्रत्यय होनेसे, 'पर', 'स्व' और 'राजन्' शब्दके उत्तर 'कुक्' होता है; 'उ' और 'क्' इत्, 'क्' रहता है; यथा—(परस्य इदम्) परकीयम्; (राज्ञ इदम्) राजकीयम्; 'स्व'-शब्दके उत्तर विकल्पसे—(स्वस्य इदम्) स्वकीयम्, स्वीयम्।

तस्य विकार इत्यर्थे।

९८७। ष्ण (अण्)—'तस्य विकारः' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है; यथा—(सुवर्णस्य विकारः) सौवर्णः; (रजतस्य

* 'भवत्'-शब्दके उत्तर "कण्' (ठक्) भी होता है; यथा—(भवतः इदम्) भावत्कम्।

विकारः) राजतः ; (पित्तलस्य विकारः) पैत्तलः ; (सीसकस्य विकारः) सैसकः ; (गुडस्य विकारः) गौडः ; (मुद्गस्य विकारः) मौद्गः ; (दारोः विकारः) दारवः ; (देवदारोः विकारः) दैवदारवः ; (इक्षोः विकारः) ऐक्षवः ; (पयसः विकारः) पायसः ; (तिलस्य विकारः) तैलम् ।

मयट् ।

९८८ । 'विकार'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्'-प्रत्यय होता है ; (यथा— स्वर्णस्य विकारः) स्वर्णमयः [घटः] ; स्वर्णमयी प्रतिमा ; (मृदो विकारः) मृन्मयः [घटः] ; मृन्मयी प्रतिमा ।

(क) 'प्राचुर्य्य' (बाहुल्य) समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है ; यथा—(अन्नं प्रचुरम् अस्मिन्) अन्नमयः [यज्ञः] ; (अपूपाः प्रचुराः अस्मिन्) अपूपमयम् [श्राद्धम्] ; (रोगाः प्रचुराः अस्मिन्) रोगमयम् [शरीरम्] ; (आनन्दः प्रचुरः अस्मिन्) आनन्दमयः [आत्मा] ।

(ख) 'व्याप्ति'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है ; यथा—(जलेन व्याप्तम्) जलमयम् [जगत्] ; (धूमेन व्याप्तम्) धूममयम् [गृहम्] ।

(ग) 'संसर्ग' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है ; यथा—(घृतेन संसृष्टम्) घृतमयम् [व्यञ्जनम्] ; (तिलेन संसृष्टम्) तिलमयम् [तर्पणम्] ।

(घ) 'अपृथग्भाव' (अभेद, एकत्व) समझानेसे (अर्थात् 'स्वरूप'-अर्थमे) शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है ; यथा—

(विष्णोः अपृथग्भूतम्—विष्णुस्वरूपम्) विष्णुमयम् [जगत्]; (वाग्भ्यः अपृथग्भूतम्—वाक्स्वरूपम्) वाङ्मयम् [शास्त्रम्]; (चितः अपृथग्भूतः—चित्स्वरूपः) चिन्मयः [पुरुषः]।

(छ) 'पुरीष' समझानेसे, 'गो'-शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है; यथा—(गोः पुरीषम्) गोमयम्।

(च) 'हिरण्मय'-शब्द निपातन-सिद्ध; यथा—(हिरण्यस्य विकारः) हिरण्मयः।

तस्य भाव इत्यर्थे।

९८९। ष्ण (अण्), ष्णय (ष्यञ्), कण (वुञ्)—'तस्य भाव,' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्ण', ष्णय' और 'कण' प्रत्यय होते हैं। यथा—(ष्ण)—(कुमारस्य भावः) कौमारम्; (शिशोः भावः) शैशवम्; (वृद्धस्य भावः) वार्द्धकम्, वार्द्धक्यम् (ष्णय); (स्थविरस्य भावः) स्थाविरम्; (गुरोः भावः) गौरवम्; (लघोः भावः) लाघवम्; (सुष्टु भावः) सौष्टवम्; (ऋजोः भावः) आर्जवम्; (मृदोर्भावः) मार्द्दवम्; (पटोर्भावः) पाटवम्; (सुरभेर्भावः) सौरभम्, सौरभ्यम् (ष्णय)। (ष्णय)—(स्थिरस्य भावः) स्थैर्य्यम्; (धीरस्य भावः) धैर्य्यम्; (गम्भीरस्य भावः) गाम्भीर्य्यम्; (कृशस्य भावः) कार्श्यम्; (जडस्य भावः) जाड्यम्; (शीतस्य भावः) शैत्यम्; (उष्णस्य भावः) औष्ण्यम्; (दृढस्य भावः) दार्ढ्यम्; (मन्दस्य भावः) मान्द्यम्; (सुभगस्य भावः) सौभाग्यम्; (दुर्भगस्य भावः) दौर्भाग्यम्; (मधुरस्य भावः) माधुर्य्यम्, माधुरी (ष्ण); (मूर्खस्य भावः) मौर्ख्यम्; (विषमस्य भावः) वैषम्यम्; (समस्य

भावः) साम्यम्; (कातरस्य भावः) कातर्य्यम्; (कर्कशस्य भावः) कार्कश्यम्; (बालस्य भावः) बाल्यम्; (शुक्लस्य भावः) शौक्ल्यम्; (सुमनसो भावः) सौमनस्यम्; (दुर्मनसो भावः) दौर्मनस्यम्; (विमनसो भावः) वैमनस्यम्; (प्रवीणस्य भावः) प्रावीण्यम्; (उदासीनस्य भावः) औदासीन्यम्; (कृपणस्य भावः) कार्पण्यम्; (मध्यस्थस्य भावः) माध्यस्थ्यम्; (उदारस्य भावः) औदार्य्यम्; (विगुणस्य भावः) वैगुण्यम्; (सुजनस्य भावः) सौजन्यम्; (स्थूलस्य भावः) स्थौल्यम्; (अधिकस्य भावः) आधिक्यम्। (कण्)—(रमणीयस्य भावः) रामणीयकम्; (कमनीयस्य भावः) कामनीयकम्।

तस्य भावः, तस्य कर्म इत्यर्थे।

९९०। ष्यञ (ष्यञ्), ष्ण (अण्)—'तस्य भावः' 'तस्य कर्म' इन दोनो अर्थोंमे शब्दके उत्तर 'ष्यञ' और 'ष्ण' होते हैं। यथा—(ष्यञ)—(ब्राह्मणस्य भावः, कर्म वा) ब्राह्मण्यम्; (चोरस्य भावः, कर्म वा) चौर्य्यम्; (अलसस्य भावः, कर्म वा) आलस्यम्; (सख्युः भावः, कर्म वा) सख्यम् (य); (दूतस्य भावः, कर्म वा) दूत्यम् (य), दौत्यम्; (सेनापतेः भावः, कर्म वा) सैनापत्यम् (यक्); (पुरोहितस्य भावः, कर्म वा) पौरोहित्यम् (यक्); (अधिपतेः भावः, कर्म वा) आधिपत्यम् (यक्); (शूरस्य भावः, कर्म वा) शौर्य्यम्; (वीरस्य भावः, कर्म वा)वीर्य्यम्; (सुहितस्य—तृप्तस्य—भावः, कर्म वा) सौहित्यम्* (यक्); (सारथेर्भावः, कर्म वा) सारथ्यम्; (आस्तिकस्य भावः,

---

* "अहेरिव गणाद्भीतः, सौहित्यान्नरकादिव।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥" महाभा०।

कर्म वा) आस्तिक्यम् ; (नास्तिकस्य भावः, कर्म वा) नास्तिक्यम् ; (पण्डितस्य भावः, कर्म वा) पाण्डित्यम् ; (वणिजो भावः, कर्म वा) वाणिज्यम् ; (अनुकूलस्य भावः, कर्म वा) आनुकूल्यम् ; (प्रतिकूलस्य भावः, कर्म वा) प्रातिकूल्यम् ; (अनृशंसस्य भावः, कर्म वा) आनृशंस्यम् ; (कुशलस्य भावः, कर्म वा) कौशल्यम् , कौशलम् (ष्ण) ; (चपलस्य भावः, कर्म वा) चापल्यम् , चापलम् (ष्ण) ; (निपुणस्य भावः, कर्म वा) नैपुण्यम्, नैपुणम् (ष्ण) ; (पिशुनस्य भावः, कर्म वा) पैशुन्यम्, पैशुनम् (ष्ण) ; (चतुरस्य भावः, कर्म वा) चातुर्य्यम् , चातुरी (ष्ण) ; (सहायस्य भावः, कर्म वा) साहाय्यम् , साहायकम् (कञ्—वुञ्) । (ष्ण)—(शुचेः भावः, कर्म वा) शौचम् * ; (अशुचेर्भावः, कर्म वा) अशौचम् ; (मुनेर्भावः, कर्म वा) मौनम् ; (अकुशलस्य भावः, कर्म वा) आकौशलम् ; (पुरुषस्य भावः, कर्म वा) पौरुषम् ; (सुभ्रातुः भावः, कर्म वा) सौभ्रात्रम् ; (दुर्भ्रातुर्भावः, कर्म वा) दौर्भ्रात्रम् ; (सुहृदः भावः, कर्म वा) सौहृदम् ; (दुर्हृदः भावः, कर्म वा) दौर्हृदम् ।

भावार्थ।

९९१ । त्व, तल्—'तस्य भावः' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय होते हैं। 'त्व'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीव-लिङ्ग, 'तल्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग। यथा—(प्रभोः भावः) प्रभुत्वम् , प्रभुता ; (भीरोः भावः) भीरुत्वम् , भीरुता ; (मनुष्यस्य भावः) मनुष्यत्वम् , मनुष्यता ; (अमरस्य भावः) अमरत्वम् , अमरता ;

---

* "अभक्ष्यपरिहारस्तु, संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ।
स्वधर्मे च व्यवस्थानं, शौचमेतत् प्रकीर्त्तितम् ॥" बृहस्पतिः ।

(पशोर्भावः) पशुत्वम्, पशुता; (शूरस्य भावः) शूरत्वम्, शूरता; (कातरस्य भावः) कातरत्वम्, कातरता; (चपलस्य भावः) चपलत्वम्; चपलता; (नास्तिकस्य भावः) नास्तिकत्वम्, नास्तिकता; (अलसस्य भावः) अलसत्वम्, अलसता; (अन्धस्य भावः) अन्धत्वम्, अन्धता; (मूर्खस्य भावः) मूर्खत्वम्, मूर्खता; (मूकस्य भावः) मूकत्वम्, मूकता; (राज्ञो भावः) राजत्वम्, राजता; (यूनो भावः) युवत्वम्, युवता; (न्यूनस्य भावः) न्यूनत्वम्, न्यूनता।

९९२। इमन् (इमनिच्)—'तस्य भावः' इस अर्थमे 'नील'-प्रभृति शब्दके उत्तर विकल्पसे 'इमन्'-प्रत्यय होता है; पक्षे—'त्व' और 'तल्'। यथा—(नीलस्य भावः) नीलिमा, नीलत्वम्, नीलता; (पीतस्य भावः) पीतिमा, पीतत्वम्, पीतता; (रक्तस्य भावः) रक्तिमा, रक्तत्वम्, रक्तता; (शुक्लस्य भावः) शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता; (वक्रस्य भावः) वक्रिमा, वक्रत्वम्, वक्रता; (उष्णस्य भावः) उष्णिमा, उष्णत्वम्, उष्णता; (जडस्य भावः) जडिमा, जडत्वम्, जडता; (मधुरस्य भावः) मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता; (लघोर्भावः) लघिमा, लघुत्वम्, लघुता; (अणोर्भावः) अणिमा, अणुत्वम्, अणुता; (तनोर्भावः) तनिमा, तनुत्वम्, तनुता; (स्वादोर्भावः) स्वादिमा, स्वादुत्वम्, स्वादुता; (पटोर्भावः) पटिमा, पटुत्वम्, पटुता। (९३६ सूत्रानुसार)—(स्थिरस्य भावः) स्थेमा, स्थिरत्वम्, स्थिरता; (पृथोर्भावः) प्रथिमा, पृथुत्वम्, पृथुता; (प्रियस्य भावः) प्रेमा, प्रियत्वम्, प्रियता; (मृदोर्भावः) म्रदिमा, मृदुत्वम्, मृदुता; (कृशस्य भावः) क्रशिमा, कृशत्वम्, कृशता; (गुरोर्भावः) गरिमा, गुरुत्वम्,

गुरुता ; (दीर्घस्य भावः) द्राघिमा, दीर्घत्वम्, दीर्घता ; (दृढस्य भावः) द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता ; (क्षुद्रस्य भावः) क्षोदिमा, क्षुद्रत्वम्, क्षुद्रता ; (ह्रस्वस्य भावः) ह्रसिमा, ह्रस्वत्वम्, ह्रस्वता ; (महतो भावः) महिमा, महत्त्वम्, महत्ता ।

(क) 'बहु'-शब्दके उत्तर 'इमन्'-प्रत्यय होनेसे, 'भूमन्' निपातनसे सिद्ध होता है ; यथा—(बहोर्भावः) भूमा ।

तस्य मूलम् इत्यर्थे।

९९३ । जाह (जाहच्)—'तस्य मूलम्' इस अर्थमे, 'कर्ण'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'जाह'-प्रत्यय होता है ; यथा—(कर्णस्य मूलम्) कर्णजाहम्—"अपि कर्णजाहविनिवेशिताननः" मालती० ९. ८ ; (अक्ष्णोः मूलम्) अक्षिजाहम् ; भ्रूजाहम् ; नखजाहम् ; केशजाहम् ; पादजाहम् ; शृङ्गजाहम् ; दन्तजाहम् ; ओष्ठजाहम् ।

(क) ति—'मूल'-अर्थमे, 'पक्ष'-शब्दके उत्तर 'ति'-प्रत्यय होता है ; यथा—(पक्षस्य मूलम्) पक्षतिः ।

पूरणार्थे।

९९४ । डट्—'पूरण'-अर्थमे ('तस्य पूरणः' इस अर्थमे) सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'डट्'-प्रत्यय होता है ; 'ड्' और 'ट्' इत्, 'अ' रहता है ; यथा—(एकादशानां पूरण) एकादशः ; द्वादशः ; त्रयोदश ; चतुर्दशः ; पञ्चदशः ; षोडशः ; सप्तदशः ; अष्टादशः ।

९९५ । मट्—'पूरण'-अर्थमे, नकारन्त सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'मट्' होता है ; 'ट्' इत्, 'म' रहता है ; यथा—(पञ्चानां पूरणः) पञ्चमः ; (सप्तानां पूरणः) सप्तमः ; (अष्टानां पूरणः) अष्टमः ; (नवा-

नां पूरणः) नवमः ; (दशानां पूरणः) दशमः।

अन्य सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे नहीं होता ; यथा—(एकादशानां पूरणः) एकादशः ; द्वादशः ; त्रयोदशः।

९९६। थट्—'पूरण'-अर्थमे, 'चतुर्', 'षष्' और 'कति' शब्दके उत्तर 'थट्' होता है ; 'ट्' इत्, 'थ' रहता है ; यथा—(चतुर्णां पूरणः) चतुर्थः ; (षण्णां पूरणः) षष्ठः ; (कतीनां पूरणः) कतिथः।*

९९७। तीय—'पूरण'-अर्थमे 'द्वि'-शब्दके उत्तर 'तीय' होता है ; यथा—(द्वयोः पूरणः) द्वितीयः।

९९८। 'पूरण'-अर्थमे, तृतीय, तुरीय और तुर्य्य निपातन-सिद्ध ; यथा—(त्रयाणां पूरणः) तृतीयः ; (चतुर्णां पुरणः) तुरीयः, तुर्य्यः।

९९९। तमट्—'पूरण'-अर्थमे, 'विंशति'-प्रभृति संख्यावाचक शब्दके उत्तर विकल्पसे 'तमट्' होता है ; 'ट्' इत्, 'तम' रहता है ; पक्षे—'डट्' ; यथा—(विंशतेः पूरणः) विंशतितमः, विंशः ; एकविंशतितमः, एकविंशः ; द्वाविंशतितमः, द्वाविंशः ; त्रयोविंशतितमः, त्रयोविंशः ; त्रिंशत्तमः, त्रिंशः ; चत्वारिंशत्तमः, चत्वारिंशः ; पञ्चाशत्तमः, पञ्चाशः।

(क) 'शत'-प्रभृति शब्दके उत्तर नित्य 'तमट्' होता है ; यथा—(शतस्य पूरणः) शततमः ; (सहस्रस्य पूरणः) सहस्रतमः ; (अयुतस्य पूरणः) अयुततमः।†

---

* 'कतिपय'-शब्दके उत्तरभी होता है ; यथा—(कतिपयानां पूरणः) कतिपयथः।

† मास, अर्द्धमास और संवत्सर—इन तीनोके उत्तरभी होता है ; यथा—(मासस्य पूरणः) मासतमः ; (अर्द्धमासस्य पूरणः) अर्द्धमास-

(ख) 'षष्टि'-प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर नित्य 'तमट्' होता है; यथा—(षष्टेः पूरणः) षष्टितमः ; सप्ततितमः ; अशीतितमः ; नवतितमः।

अन्य सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमें रहनेसे नहीं होता ; तब ९९९ सूत्रानुसार कार्य्य होगा ; यथा—(एकषष्टेः पूरणः) एकषष्टितमः, एकषष्टः ; द्विषष्टितमः, द्वाषष्टः ।

१०००। तिथुक्—'डट्' परे रहनेसे, 'पूरण'-अर्थमें बहु, गण, पूग और सङ्घ शब्दके उत्तर 'तिथुक्' होता है; 'उ' और 'क्' इत्, 'तिथ्' रहता है; यथा—(बहूनां पूरणः) बहुतिथः—"काले गते बहुतिथे" शकु० ९. ३; (गणानां पूरणः) गणतिथः ; (पूगानां पूरणः) पूगतिथः ; (सङ्घानां पूरणः) सङ्घतिथः ।

१००१। इथुक्—'डट्' परे रहनेसे, 'पूरण'-अर्थमें, 'वतुप्'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'इथुक्' होता है ; 'उ' और 'क्' इत्, 'इथ्' रहता है; यथा—(यावतां पूरणः) यावतिथः ; तावतिथः ; एतावतिथः ; कियतिथः ; इयतिथः ।

१००२। 'पितृव्य'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध ; यथा—(पितुः भ्राता) पितृव्यः (व्य—व्यत्) ; (मातुः भ्राता) मातुलः (डुल—डुलच्) ; (पितुः पिता) पितामहः (डामह—डामहच्) ; (मातुः पिता) मातामहः ; (पितुः माता) पितामही ; (मातुर्माता) मातामही ।

तद्धित-प्रत्यय—सप्तम्यन्तमें ।

वक्ष्यमाण तद्धित-प्रत्यय सप्तम्यन्तसे होते हैं—

तमः ; (संवत्सरस्य पूरणः) संवत्सरतमः ।

तत्र भव इत्यर्थे ।

१००३ । ष्ण (अण्), ष्णिक (ठञ्), ष्णय (यत्), ष्णीय (छ), ष्णेय (ढक्), णीन (ख), कण् (ठञ्)— 'तत्र भवः'* इस अर्थमे, शब्दके उत्तर ये प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)— (मथुरायां भवः) माथुरः ; (कलिङ्गे भवः) कालिङ्गः ; (शरदि भवः) शारदः ; (हेमन्ते भवः) हैमन्तः, हैमन्तिकः (ष्णिक) ; (वसन्ते भवः) वासन्तः, वासन्तिकः (ष्णिक) ; (निशायां भवम्) नैशम्, नैशिकम् (ष्णिक) ; (प्रदोषे भवम्) प्रादोषम्, प्रादोषिकम् (ष्णिक) ; (मध्यन्दिने भवम्) माध्यन्दिनम् ; (मनसि भवम्) मानसम्, मानसिकम् (ष्णिक) ; (अन्तरे भवम्) आन्तरम्, आन्तरिकम् (ष्णिक) ; (शरीरे भवम्) शारीरम् ; शारीरिकम् (ष्णिक) ; (भूमौ भवः) भौमः ; (शर्वर्यां भवम्) शार्वरम्—"शार्वरान्धकारपूर०" दशकु० ; "शार्वरस्य तमसो निषिद्धये" कु०८.५८. । (ष्णिक)— (वर्षे वर्षासु वा भवः) वार्षिकः ; (मासे भवः) मासिकः ; † (संवत्सरे भवः) सांवत्सरिकः ; (अकाले भवः) आकालिकः—"आकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम्" कु० ३. ३४ ; (सर्वकाले भवम्) सार्वकालिकम् ; (इह भवम्) ऐहिकम् ; (अध्यात्मं भवम्) आध्यात्मिकम् ; (अधि-

---

* यहाँ 'भव'-शब्द—जात, स्थित, सङ्क्रान्त, आविर्भूत इत्यादि अनेक अर्थ समझाता है ।

† 'देय'-अर्थमे भी कालवाचक शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है ; यथा— (मासे देयम्) मासिकम् ; (वर्षे देयम्) वार्षिकम् ; (संवत्सरे देयम्) सांवत्सरिकम् ।

भूतं भवम्) आधिभौतिकम् ; (अधिदेवं भवम्) आधिदैविकम् ; (नगरे भवः) नागरिकः, नागरकः (कण्—वुञ्) । (ष्णय)—(दिवि भवम्) दिव्यम् ; (वर्गे भवः) वर्ग्यः, वर्गीयः (ष्णीय),—"उद्बाहुना जुहुविरे मुहुरात्मवर्ग्याः" माघ० ६. १९ ; (यूथे भवः) यूथ्यः, यथा—श्वयूथ्या ; (वंशे भवः) वंश्य.—"इतरेऽपि रघोर्वंश्याः" र० १९. ३९ ; (अग्रे भवः) अग्र्यः ; (रहसि भवम्) रहस्यम् ; (आदौ भवम्) आद्यम् ; (अन्ते भवम्) अन्त्यम् ; (दिवि भवः) दिव्यः ; (कण्ठे भवम्) कण्ठ्यम् ; (दन्ते भवम्) दन्त्यम् ; (तालौ भवम्) तालव्यम् ; (ओष्ठे भवम्) औष्ठ्यम् ; (प्राचि भवम्) प्राच्यम् ; (ग्रामे भवः) ग्राम्य, ग्रामीणः (ष्णीन) । (ष्णीय)—(जिह्वामूले भवम्) जिह्वामूलीयम् ; (अङ्गुलौ भवम्) अङ्गुलीयम् ; (कवर्गे भवः) कवर्गीयः [वर्ण.] ; पवर्गीयः ; (शारदि भवा) शारदीया (छण्) । (ष्णेय)—(कोशे भवम्) कौशेयम्* [वसनम्] ; (नद्यां भवम्) नादेयं [जलम्] ; (अहौ भवम्) आहेयम् (ढञ्) ; (ग्रीवायां भवम्) ग्रैवेयम् (ढञ्), ग्रैवम् (ष्ण)—कण्ठभूषणम् इत्यर्थः । (ष्णीन)—(कुले भवः) कुलीनः ; (दुष्कुले भवः) दुष्कुलीन', दौष्कुलेयः (ष्णेय) । (कण्)—(कदाचित् भवम्) कादाचित्कम् ; (सम्प्रति भवम्) साम्प्रतिकम् ; (अरण्ये भवः) आरण्यकः (मनुष्य', पन्थाः, ग्रन्थः—वेदैकदेश. ; हस्ती वा—वुञ्), आरण्यः [पशुः—ण] ।

(इय—घ)—(राष्ट्रे भवः) राष्ट्रियः ।

(क) 'हैमन'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध ; यथा—(हेमन्ते भवम्)

---

* रेशमी ।

हैमनम्; (पुनःपुनः भवम्) पौनःपुनिकम्; (प्रतीचि भवम्) प्रतीच्यम्; (उदीचि भवम्) उदीच्यम्; (तिरश्चि भवम्) तिरश्चीनम्।

१००४। तनट्—'भव' अर्थमे, कालवाचक अव्यय-शब्दके उत्तर 'तनट्'-प्रत्यय होता है; 'ट्' इत्, 'तन' रहता है; यथा—(अद्य भवम्) अद्यतनम्; (प्रातः भवम्) प्रातस्तनम्; प्रगेतनम्; (सायं भवम्) सायन्तनम्—सायन्तनी; (दोषा—रात्रौ—भवम्) दोषातनम्—दोषातनी; दिवातनम्; पुरातनम्; चिरन्तनम्; सदातनम्*; अधुनातनम्; इदानीन्तनम्; तदानीन्तनम्; श्वस्तनम्, ह्यस्तनम्।

(क) सप्तमी-विभक्तिमे, 'पूर्वाह्ण' और 'अपराह्ण' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'तनट्' होता है; यथा—(पूर्वाह्णे भवम्) पूर्वाह्णतनम्, पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम् (ष्णिक); (अपराह्णे भवम्) अपराह्णतनम्, अपराह्णेतनम्, आपराह्णिकम् (ष्णिक)।

(ख) 'ऊर्द्ध्व'-प्रभृति शब्दके उत्तर नित्य 'तनट्' होता है; यथा—(ऊर्द्ध्वं भवः) ऊर्द्ध्वतनः; (उपरि भवः) उपरितनः; (अधो भवः) अधस्तनः; (प्राक् भवः) प्राक्तनः; (पूर्वं भवः) पूर्वतनः।

१००५। त्यण् (त्यक्)—'दक्षिणा', 'पश्चात्' और 'पुरस्'शब्दके उत्तर 'त्यण्'-प्रत्यय होता है; 'ण्' इत्, 'त्य' रहता है; यथा—(दक्षिणा—दक्षिणस्यां दिशि—भवः) दाक्षिणात्यः; (पश्चात् भवः) पाश्चात्यः; (पुरः भवः) पौरस्त्यः।

१००६। त्य (त्यप्)—अमा, इह, क्व और तसिल् तथा त्रल्-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'त्य'-प्रत्यय होता है। यथा—(अमा—सह—

* निपातनात् 'दा'-स्थाने 'ना'ऽऽदेशे—सनातनम्।

भवः) अमात्यः ; इहत्यः ; क्त्यः । (तसिल्-प्रत्ययान्त) ततस्त्यः ; अतस्त्यः ; कुतस्त्यः । (त्रल्-प्रत्ययान्त) तत्रत्यः ; अत्रत्यः ; कुत्रत्यः ।

१००७। म—'आदि' और 'मध्य'-शब्दके उत्तर 'म'-प्रत्यय होता है ; यथा—(आदौ भवः) आदिमः ; (मध्ये भवः) मध्यमः ।

१००८। डिम (डिमच्)—'अग्र', 'अन्त' और 'पश्चात्' शब्दके उत्तर 'डिम'-प्रत्यय होता है ; 'ड्' इत , 'इम' रहता है ; यथा—(अग्रे भवः) अग्रिमः, अग्रियः (इय—घ), अग्रीयः (ईय—छ) ; (अन्ते भवः) अन्तिमः ; (पश्चात् भवः) पश्चिमः ।

तत्र साधुः इत्यर्थे ।

१००९। ष्ण्य (यत्), ष्णिक (ठक्), ष्णेय (ढञ्), णीन (खञ्)—'तत्र साधुः*' इस अर्थमें शब्दके उत्तर ष्ण्य, ष्णिक, ष्णेय और णीन प्रत्यय होते हैं। यथा—(ष्ण्य)—(कर्मणि साधुः) कर्मण्यः; (शरणे—रक्षणे—साधुः) शरण्यः ; (सभायां साधुः) सभ्यः (य) । (ष्णिक)—(वितण्डायां साधुः) वैतण्डिकः ; (सङ्कथायां साधुः) साङ्कथिकः ; (सङ्घे साधुः) साङ्घिकः ; (सङ्ग्रामे साधुः) साङ्ग्रामिकः (ठञ्) । (ष्णेय)—(पथि साधु) पाथेयम् ; (अतिथौ साधुः) आतिथेयः† । (णीन)—(संयुगे—रणे—साधुः) सांयुगीनः।

---

* साधुः—प्रवीणः, योग्यो वा इत्यर्थः ।

† "प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः" र० ५. २. (आतिथेयः—अतिथिसेवक इत्यर्थः) ; "तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती" कु० ५. ३१. । "आतिथेयं कर्त्तुं नाश्रमत्" माघ० १४. ३८. (आतिथेयम्—अतिथिसत्कारम् इत्यर्थः) ; "सज्जातिथेया वयम्" महावीर० २.४९. (सज्ज—सम्भृतम् आतिथेयं विष्टरपाद्यार्घ्यादिकं यैः ते तथोक्ताः इत्यर्थः) ।

१०१० । 'ष्णिक'-प्रभृति प्रत्यय जिन अर्थोंमे दिखलाये गये, उनके सिवा औरभी नाना अर्थोंमे देखे जाते हैं । कई स्थलोंमें उदाहरण प्रदर्शित किये जाते हैं । यथा—

(अस्ति परलोकः ईश्वरो वा इति मतिर्यस्य सः) आस्तिकः ; (नास्ति परलोक ईश्वरो वा इति मतिरस्य) नास्तिकः ; (दिष्टम्—भागधेयम् एव सर्वसाधनम्—इति यस्य मतिः सः) दैष्टिकः (दैवपर इत्यर्थः) ।

(समाजं रक्षति) सामाजिकः । (शकुनीन् हन्ति) शाकुनिकः । (अर्थं गृह्णाति) आर्थिकः । (धर्मं चरति) धार्मिकः । (सुस्नातं पृच्छति) सौस्नातिकः* ; (सुखशयनं पृच्छति) सौखशायनिकः† । (वशं गतः) वश्यः । (संशयम् आपन्नः) सांशयिकः (संशयं प्राप्तः—सन्देहविषयः—पदार्थ इति यावत्) । ‡ (परदारान् गच्छति) पारदारिकः । (अध्वानम् अलं—सुष्ठु—गच्छति) अध्वनीनः, अध्वन्यः§ ; (अभ्यमित्रम्—अमित्रस्य अभिमुखम्—अलं—सम्यक् गच्छति) अभ्यमित्रीणः, अभ्यमित्र्यः, अभ्यमित्रीयः । (पारं गच्छति) पारीणः ; (पारावारं गच्छति) पारावारीणः (पारगामी इत्यर्थः) । (आप्रपदं प्राप्नोति) आप्रपदीनः [पटः—पादाग्रपर्य्यन्तं लम्बमान इत्यर्थः] । (अनुपदं—पादायामप्रमाणा—

* "सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः" र० ६. ६१. ।

† "भृग्वादीननुगृह्णन्तं सौखशायनिकानृषीन्" र० १०. १४. ।

‡ 'वरं सांशयिकात् निष्कात् असांशयिकं कार्षापणम्' ।

§ गच्छत्यर्थे योजनात् ठक्, तेन **यौजनिकः** स्मृतः ।
पथष्ठक् स्यात् तदर्थे च, **पथिकः—पथिकी** स्त्रियाम् ।
नित्यं यातीति **पान्थः** स्यात् , पथो णेन निपात्यते ॥

बद्धा) अनुपदीना [उपानत्—बूट् जूता]। (सर्वान्नानि भक्षयति) सर्वान्नीनः [भिक्षुः] । (समां समां प्रसूते) समांसमीना [गौः—प्रतिवर्षं प्रसूता इत्यर्थः—निपातने]।

(चक्षुषा ग्राह्यम्) चाक्षुषं [रूपम्]; (श्रवणेन ग्राह्यः) श्रावणः [शब्दः]; (रसनया ग्राह्यः) रासनः [रसः]; (त्वचा ग्राह्यः) त्वाचः [स्पर्शः]। (चक्षुषा निर्वृत्तम्) चाक्षुषं [प्रत्यक्षम्]; (श्रवणेन निर्वृत्तम्) श्रावणम्; (रसनया निर्वृत्तम्) रासनम्; (त्वचा निर्वृत्तम्) त्वाचम्। (रथेन चरति) रथिकः; (अश्वेन चरति) आश्विकः। (सहसा—बलेन—प्रवर्त्तते) साहसिकः [चौरः] । (गृहपतिना संयुक्तः) गार्हपत्यः [अग्निः] । (सप्तभिः पदैः—उच्चारितैः—अवाप्यम्) साप्तपदीनं [सख्यम्] * । (नावा तार्य्या) नाव्या [नदी]। (तुलया सम्मितम्) तुल्यम् । (वयसा तुल्यः) वयस्यः । (कुशाग्रेण तुल्या) कुशाग्रीया [मतिः—अतिसूक्ष्मा इत्यर्थः] । (काकतालेन तुल्यम्)† काकतालीयम्; अजाकृपाणीयम्; अन्धकवर्त्तकीयम्।

---

* 'सख्यं जनाः साप्तपदीनमाहुः'।

† काकश्च तालश्च काकतालम्। तेन लक्षणया काकस्य निपतता तालेन अतर्कितोपनतः चिन्त्यमानः संयोग उच्यते। एवम् अजायाः कृपाणेन आकस्मिकः संयोगः—अजाकृपाणम्। अन्धकस्य वर्त्तका—पक्षिभेदः—च अन्धकवर्त्तकम् इति अन्धस्य वर्त्तकाया उपरि अतर्कितः पादन्यास उच्यते।

एवं घुणाक्षरीयं स्यादनुद्देश्यफलोदये।

"साधयति तत्प्रयोजनमन्यत्तत् तस्य काकतालीयम्।
दैवात् कथमप्यक्षरमुत्किरति घुणोऽपि काष्ठेषु ॥" सुभाषितावलिः ।

(हिमवतः प्रभवति) हैमवती [गङ्गा] ; (विदूरात्—पर्वतविशेषात्—प्रभवति) वैदूर्य्यः (मणिः) ।

(आमलक्याः फलम्) आमलकम् ; (वदर्य्याः फलम्) वदरम् ; (अश्वत्थस्य फलम्) आश्वत्थम् ; (न्यग्रोधस्य फलम्) नैयग्रोधम् । (हृदयस्य प्रियम्) हृद्यम् (मनोज्ञम् इत्यर्थः—'हृदय'-के स्थानमे 'हृद्'-आदेश) । (सर्वभूमेः ईश्वरः) सार्वभौमः ; (पृथिव्याः ईश्वरः) पार्थिवः । (इन्द्रस्य*—आत्मनः—लिङ्गम्—अनुमापकम्) इन्द्रियम् ।

(पयसि संस्कृतम्) पायसम् । (भाण्डागारे नियुक्तः) भाण्डागारिकः । (समाने तीर्थे—गुरौ—वसति) सतीर्थ्यः । (समाने उदरे शयितः) समानोदर्य्यः । (सर्वासु भूमिषु विदितः) सार्वभौमः ; (पृथिव्यां विदितः) पार्थिवः । (लोके विदितः) लौकिकः ; (सर्वलोकेषु विदितः) सार्वलौकिकः । (उदरे एव प्रसितः—सक्तः) औदरिकः (आद्यून इत्यर्थः—पेटू) ।

घटते कर्मणीत्यर्थे कर्मठस्तु निपात्यते ।

अव्यय-तद्धित ।

वारार्थे ।

१०११ । कृत्वसुच्—क्रियाकी "अभ्यावृत्तिगणन" अर्थात् कितनी वार वह क्रिया अनुष्ठित हुई, उसकी गणना समझानेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'कृत्वसुच्'-प्रत्यय होता है ; 'उ' और 'च्' इत्, 'कृत्वस्' रहता है ; यथा—(पञ्च वारान् भुङ्क्ते) पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते ; (सप्त वारान् स्वपिति) सप्तकृत्वः स्वपिति ; (शतं वारान् पठति) शतकृत्वः पठति । "त्रिःसप्तकृत्वो

---

* इन्दति परमैश्वर्य्यम् अनुभवति इति कदाचित् कर्मोदयवशात् ऐश्वर्य्यरहितोऽपि तच्छक्तियोगात् इन्द्र आत्मा ।

जगतीपतीनां हन्ता जामदग्न्य." भा० ३. १८.।

१०१२ । सुच्—उक्त अर्थमे, 'द्वि', 'त्रि' और 'चतुर्' शब्दके उत्तर 'सुच्'-प्रत्यय होता है; 'उ' और 'च्' इत्, 'स्' रहता है; यथा—(द्वौ वारौ भुङ्क्ते) द्विः भुङ्क्ते; (त्रीन् वारान् सन्ध्यामुपास्ते) त्रिः सन्ध्यामुपास्ते; (चतुरो वारान् ध्यायति) चतुः ध्यायति ('चतुर्'-शब्दके अन्त्यवर्णका लोप होता है)।

(क) 'एक'-शब्दके उत्तर 'सुच्' करनेसे, दोनो मिलके 'सकृत्' होता है; यथा—(एकं वारं भुङ्क्ते) सकृत् भुङ्क्ते।* यहाँ अभ्यावृत्ति सम्भव नहीं, गणनमात्र समझाता है।

१०१३ । धाच् (धा)—उक्त अर्थमे, 'बहु'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'धाच्'-प्रत्यय होता है; 'च्' इत्, 'धा' रहता है; पक्षे—'कृत्वसुच्'; यथा—बहुधा बहुकृत्व. वा भुङ्क्ते।

प्रकारार्थे।

१०१४ । धाच् (धा)—'विधा'-अर्थमे, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'धाच्' होता है। यथा—(एका विधा) एकधा; (द्वे विधे) द्विधा; (तिस्रो विधाः) त्रिधा; (चतस्रो विधाः) चतुर्धा; (पञ्च विधाः) पञ्चधा। अथवा—(एकेन प्रकारेण) एकधा; (द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्) द्विधा इत्यादि। चतुर्धा करोति (चतुर. प्रकारान्, चतुर्भिः प्रकारैर्वा इत्यर्थः)। †

---

* "सकृदंशो निपतति, सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति, त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥" मनु० ९. ४७.।

† ऐकध्यमेकधा वा स्याद्, द्वैध द्वेधा द्विधा तथा।

(क) 'डति'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तरभी होता है ; यथा—(कतिभिः प्रकारैः) कतिधा ।

वीप्सार्थे ।

१०१५ । चशस् (शस्)—'वीप्सा' समझानेसे, सङ्ख्यावाचक और एकदेशवाचक शब्दके उत्तर विकल्पसे 'चशस्'-प्रत्यय होता है ; 'च' इत्, 'शस्' रहता है । यथा—(सङ्ख्यावाचक)—द्वौ द्वौ, द्वाभ्यां द्वाभ्यां वा ददाति—द्विशः ददाति ; पञ्च पञ्च, पञ्चभिः पञ्चभिः वा ददाति—पञ्चशः ददाति । (एकदेशवाचक)—पादं पादं, पादेन पादेन वा ददाति—पादशः ददाति ; अर्द्धम् अर्द्धम् , अर्द्धेन अर्द्धेन वा ददाति—अर्द्धशः ददाति ।

'डति'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तरभी होता है ; यथा—कतिशः ।

(क) वह्वर्थ और अल्पार्थ शब्दके उत्तर विकल्पसे 'चशस्' होता है ; यथा—वहु ददाति—वहुशः ददाति ; भूरि ददाति—भूरिशः ददाति ; अल्पं ददाति—अल्पशः ददाति ; स्तोकं ददाति—स्तोकशः ददाति ।

कारकके उत्तर होता है, अन्यत्र नहीं होता ; यथा—'वहूनां स्वामी' यहाँ 'वहुशः स्वामी' नहीं होगा ।

तुल्यार्थे । औपम्यार्थे ।

१०१६ । वतिच् (वति)—'सादृश्य' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'वतिच्'-प्रत्यय होता है ; 'इ' और 'च्' इत्, 'वत्' रहता है । यथा—(चन्द्र इव मुखम्) चन्द्रवत् मुखम् ; (हिमम् इव शीतलम्) हिमवत् शीतलम् ; (समुद्र इव गम्भीरः) समुद्रवत् गम्भीरः ; (पर्वत इव उन्नतः) पर्वतवत् उन्नतः । (ब्राह्मण इव अधीते)

त्रैधं त्रेधा त्रिधा, षोढा षड्धेत्येते निपातिताः ॥

ब्राह्मणवत् अधीते ; (क्षत्रिय इव युध्यति) क्षत्रियवत् युध्यति ; (पितरम् इव पूजयति) पितृवत् पूजयति [उपाध्यायम्] ; (कर्णेन इव शृण्वन्ति) कर्णवत् शृण्वन्ति [चक्षुषा सर्पाः] ; (विप्राय इव देहि) विप्रवत् देहि [दरिद्राय अपि] ; (सर्पात् इव बिभेति) सर्पवत् बिभेति [खलात्] ; (देवदत्तस्य इव भवनम्) देवदत्तवत् भवनं [यज्ञदत्तस्य] ; (रामस्य इव पितृभक्तिः) रामवत् पितृभक्तिः [भरतस्य] ; (पुत्रे इव स्निह्यति) पुत्रवत् स्निह्यति [शिष्ये] ; (राजा इव) राजवत् ; (आत्मा इव) आत्मवत् । *

(विभक्तिस्थानी प्रत्यय)

१०१७ । तसिल्—शब्दके उत्तर विहित पञ्चमी और सप्तमी विभक्तिके स्थानमे विकल्पसे 'तसिल्'-प्रत्यय होता है† ; 'इ' और 'ल्' इत्, 'तस्' रहता है । यथा—(पञ्चमी) गृहात् गृहतः ; ग्रामात् ग्रामतः ; नगरात् नगरतः ; सर्वस्मात् सर्वतः ; विश्वस्मात् विश्वतः ; उभयस्मात् उभयतः ; भवतः भवत्तः ; एकस्मात् एकतः ; अन्यस्मात् अन्यतः ; पूर्वस्मात् पूर्वतः ; परस्मात् परतः ; दक्षिणस्मात् दक्षिणतः ; उत्तरस्मात् उत्तरतः ; हस्तात् हस्ततः ; वृक्षात् वृक्षतः ; मेघात् मेघतः ; जलात् जलतः । (सप्तमी) पूर्वस्मिन् पूर्वतः ; दक्षिणस्मिन् दक्षिणतः ; उत्तरस्मिन् उत्तरतः ; प्रथमे प्रथमतः ; परस्मिन् परतः ; अग्रे अग्रतः ; आदौ आदितः ; मध्ये मध्यतः ; अन्ते अन्ततः ; पृष्ठे पृष्ठतः ; पार्श्वयोः पार्श्वतः ; सर्वस्मिन् सर्वतः ।

---

* उपमेय-पदमे जो विभक्ति रहती है, उपमान-पदमेभी वही विभक्ति होती है ।

† वैयाकरणोंके मतमे, सब विभक्तियोंके स्थानमेही 'तसिल्' होता है ।

(क) 'परि' और 'अभि' उपसर्गके उत्तर नित्य 'तसिल्' होता है ; यथा—परितः ; अभितः ।

(ख) ओहाक् और रुह् धातुके प्रयोगमे 'तसिल्' नहीं होता ; यथा—ब्राह्मण्यात् हीयते ; पर्वतात् अवरोहति ।

१०१८ । त्रल्—द्वि, युष्मद्, अस्मद् भिन्न सर्वनाम-शब्द और 'बहु'-शब्दके उत्तर सप्तमीके स्थानमे विकल्पसे 'त्रल्'-प्रत्यय होता है ; 'ल्' इत्, 'त्र' रहता है ; यथा—सर्वस्मिन् सर्वत्र ; उभयस्मिन् उभयत्र ; एकस्मिन् एकत्र ; अन्यस्मिंन् अन्यत्र ; इतरस्मिन् इतरत्र ; पूर्वस्मिन् पूर्वत्र ; परस्मिन् परत्र ; अपरस्मिन् अपरत्र ; बहुषु बहुत्र ।

१०१९ । 'तसिल्' और 'त्रल्' प्रत्यय होनेसे, एतद्' के स्थानमे 'अ', 'यद्' के स्थानमे 'य', 'तद्' के स्थानमे 'त', और 'किम्' के स्थानमे 'कु' होता है ; यथा—एतस्मात् अतः, एतस्मिन् अत्र ; यस्मात् यतः, यस्मिन् यत्र ; तस्मात् ततः, तस्मिन् तत्र ; कस्मात् कुतः, कस्मिन् कुत्र ।

'क्व' और 'कुह' निपातन-सिद्ध ; यथा—कस्मिन्—क्व, कुह ।

(क) 'इदम्'-शब्दके स्थानमे 'इ' होता है ; * यथा—अस्मात् इतः । सप्तमीके स्थानमे 'ह' होता है ; यथा—अस्मिन् इह ।

१०२० । दा—'काल'-अर्थमे, 'एक' और 'सर्व' शब्दके उत्तर सप्तमीके स्थानमे 'दा'-प्रत्यय होता है ; 'दा' होनेसे, 'सर्व' के स्थानमे विकल्पसे 'स' होता है ; यथा—(एकस्मिन् काले) एकदा ; (सर्वस्मिन् काले) सदा, सर्वदा ।

(क) दा, र्हिल्—अन्य, किम् और यद्—इन तीन सर्वनाम

---

* 'दानीम्'-प्रत्यय होनेसेभी होता है ।

शब्दोंके सप्तमीके स्थानमे 'दा' और 'र्हिल्' प्रत्यय होते हैं ; 'ल्' इत, 'र्हि' रहता है ; यथा—(अन्यस्मिन् काले) अन्यदा, अन्यर्हि ।

(ख) 'दा' और 'र्हिल्' होनेसे, 'किम्' के स्थानमे 'क', और 'यद्' के स्थानमे 'य' होता है ; यथा—(कस्मिन् काले) कदा, कर्हि ; (यस्मिन् काले) यदा, यर्हि ।

(ग) दा, र्हिल्, दानीम्—'तद्' शब्दके सप्तमीके स्थानमे 'दा', 'र्हिल्' और 'दानीम्' प्रत्यय होते हैं ; 'दा', 'र्हिल्' और 'दानीम्' होनेसे, 'तद्'-शब्दके स्थानमे 'त' होता है ; यथा—(तस्मिन् काले) तदा, तर्हि, तदानीम् ।

(घ) दानीम्—'इदम्'-शब्दके सप्तमीके स्थानमे 'दानीम्' होता है ; यथा—(अस्मिन् काले) इदानीम् ।

(ङ) अधुना, एतर्हि—निपातन-सिद्ध ; यथा—(अस्मिन् काले) अधुना ; (अस्मिन् एतस्मिन् वा काले) एतर्हि ।

१०२१ । एद्युस् (एद्युसुच्)—'दिन' समझानेसे, 'पूर्व'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'एद्युस्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(पूर्वस्मिन् अहनि) पूर्वेद्युः ; (अन्यस्मिन् अहनि) अन्येद्युः ; (अपरस्मिन् अहनि) अपरेद्युः ; इतरेद्युः ; अन्यतरेद्युः ; अधरेद्युः ; उत्तरेद्युः ; उभयेद्युः । *

१०२२ । 'दिन' समझानेसे, विभक्तिसहित 'पूर्व'के स्थानमे 'ह्यस्', 'समान' के स्थानमे 'सद्यस्', 'इदम्' के स्थानमे 'अद्य', और 'पर'के स्थानमे 'श्वस्' और 'परेद्यवि' होते हैं ; यथा—(पूर्वस्मिन् अहनि) ह्यः ; (समाने अहनि)

---

* 'उभय'-शब्दके उत्तर 'द्युस्' भी होता है ; यथा—(उभयस्मिन् अहनि) उभयद्युः ।

सद्यः; (अस्मिन् अहनि) अद्य; (परस्मिन् अहनि) श्वः, परेद्यवि।

१०२३। 'वर्ष' समझानेसे, विभक्तिसहित 'इदम्'के स्थानमे 'ऐषमस्', 'पूर्व'-के स्थानमे 'परुत्', और 'पूर्वतर' के स्थानमे 'परारि' होता है; यथा—(अस्मिन् वर्षे) ऐषमः; (पूर्वस्मिन् वर्षे) परुत्; (पूर्वतरे वर्षे) परारि। *

१०२४। **थाच् (थाल्)**—'प्रकार'-अर्थमे, तृतीयाके स्थानमे 'थाच्'-प्रत्यय होता है; 'च्' इत, 'था' रहता है; यथा—(सर्वैः प्रकारैः) सर्वथा; (अन्येन प्रकारेण) अन्यथा; (इतरेण प्रकारेण) इतरथा; (उभयेन प्रकारेण) उभयथा; (अपरेण प्रकारेण) अपरथा।

(क) 'थाच्' होनेसे, 'यद्'-शब्दके स्थानमे 'य', और 'तद्'-शब्दके स्थानमे 'त' होता है; यथा—(येन प्रकारेण) यथा; (तेन प्रकारेण) तथा।

(ख) कथम्, इत्थम्—निपातन-सिद्ध; यथा—(केन प्रकारेण) कथम्; (अनेन एतेन वा प्रकारेण) इत्थम्।

१०२५। **अस्तात् (अस्ताति)**—'पर'-प्रभृति शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'अस्तात्'-प्रत्यय होता है; यथा—(परस्मिन् परस्मात् परो वा) परस्तात्।

(क) 'अस्तात्'-सहित 'अपर'-शब्दके स्थानमे, 'पश्चात्' निपातन-सिद्ध; यथा—(अपरस्मिन् अपरस्मात् अपरो वा) पश्चात्। †

(ख) 'अस्तात्'-सहित 'ऊर्द्ध्व'-'शब्दके स्थानमे, 'उपरि' और 'उपरिष्टा-

---

* अस्मिन् वर्षे **ऐषमः** स्यात्, पूर्ववर्षे **परुद्**भवेत्।
तथा पूर्वतरे वर्षे **परारि** स्यान्निपातितम्॥

† 'अर्द्ध'-शब्द परे रहनेसे, 'अपर'-शब्दके स्थानमे विकल्पसे 'पश्च' आदेश होता है; यथा—(अपरम् अर्द्धम्) पश्चार्द्धम्, अपरार्द्ध वा।

त्'—निपातन-सिद्ध ; यथा—(ऊर्द्ध्वे ऊर्द्ध्वात् ऊर्द्ध्वो वा) उपरि, उपरिष्टात्।

१०२६। अस्तात्, असि—'पूर्व', 'अधर' और 'अवर' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी तथा प्रथमाके स्थानमे, 'अस्तात्' और 'असि' प्रत्यय होते हैं ; 'इ' इत्, 'अस्' रहता है।

(क) 'अस्तात्' और 'असि' होनेसे, 'पूर्व' के स्थानमे 'पुर्', और 'अधर' के स्थानमे 'अध' होता है ; यथा—(पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्वो वा) पुरस्तात्, पुरः ; (अधरस्मिन् अधरस्मात् अधरो वा) अधस्तात्, अधः।

(ख) 'अस्तात्' और 'असि' होनेसे, 'अवर' के स्थानमे विकल्पसे 'अव' होता है ; यथा—(अवरस्मिन् अवरस्मात् अवरो वा) अवस्तात्, अवरस्तात्, अवः, अवरः।

१०२७। अतसु (अतसुच्)—दिग्वाचक और देशवाचक 'दक्षिण' और 'उत्तर' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'अतसु'-प्रत्यय होता है ; 'उ' इत्, 'अतस्' रहता है ; यथा—(दक्षिणस्मिन् दक्षिणस्मात् दक्षिणो वा) दक्षिणतः ; (उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा) उत्तरतः।

१०२८। आति—'उत्तर', 'अधर' और 'दक्षिण' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'आति'-प्रत्यय होता है ; 'इ' इत्, 'आत्' रहता है ; यथा—(उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा) उत्तरात् ; अधरात् ; दक्षिणात्।

(क) एनप्—'अदूर'-अर्थमे, 'एनप्' भी होता है ; यथा—(उत्तरस्मिन् उत्तरो वा) उत्तरेण ; अधरेण ; दक्षिणेन। पञ्चमीके स्थानमे नहीं होता।

१०२९। आच्, आहि—'दक्षिण' और 'उत्तर' शब्दकी सप्तमी और प्रथमाके स्थानमे 'आच्' और 'आहि' प्रत्यय होते हैं ; 'च्' इत्, 'आ' रहता है ; यथा—दक्षिणा, दक्षिणाहि ; उत्तरा, उत्तराहि।

('च्वि'-प्रभृति प्रत्यय)

अभूततद्भावार्थे ।

१०३० । च्वि—कृ, भू और अस् धातुके योगसे, 'अभूततद्भाव'*-अर्थमे, शब्दके उत्तर 'च्वि'-प्रत्यय होता है ; 'च्वि' का समस्त इत्, कुछ-भी नहीं रहता ।

(क) 'अभूततद्भाव'-अर्थमे प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है ; यथा—(अलघुं लघुं करोति) लघूकरोति ; (अलघुः लघुः भवति) लघूभवति ; (अलघुः लघुः स्यात्) लघूस्यात् ।

(ख) 'अभूततद्भाव'-अर्थमे प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित अवर्ण-के स्थानमे 'ई' होता है ; यथा—(अशुक्लं शुक्लं करोति) शुक्लीकरोति ; (अशुक्लः शुक्लः भवति) शुक्लीभवति ; शुक्लीस्यात् ।

(ग) 'अभूततद्भाव'-अर्थमे प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित ऋकारके स्थानमे 'री' होता है ; यथा—(अश्रोतारं श्रोतारं करोति) श्रोत्रीकरोति ; श्रोत्रीभवति ; श्रोत्रीस्यात् ।

(घ) 'अभूततद्भाव'-अर्थमे प्रत्यय होनेसे, अरुस्, मनस्, चक्षुस्, चेतस्, रहस्, रजस्—इनके अन्त्यवर्णका लोप होता है ; यथा—अरूकरोति, अरूभवति, अरूस्यात् ; विमनीकरोति, विमनीभवति ; उच्चक्षूकरोति, उच्चक्षूभवति ; सुचेतीकरोति, सुचेतीभवति ; विरहीकरोति, विरहीभवति ; विरजीकरोति, विरजीभवति ।

१०३१ । सातिच् (साति)—'कार्त्स्न्य' (साकल्य) समझानेसे,

---

* अभूतका तद्भाव, अर्थात् जो जैसा नहीं रहता, उसका वैसा होना ; जैसे जो वस्तु शुक्ल नहीं रहती, उसका शुक्ल होना ।

'अभूततद्भाव'-अर्थमें, कृ, भू, अस् धातुके योगसे, विकल्पसे 'सातिच्'-प्रत्यय होता है; 'इ' और 'च्' इत्, 'सात्' रहता है। यथा—(अजलं कृत्स्नं—सकलं—लवणं जलं करोति) जलसात् करोति ; (कृत्स्नं लवणं जलं भवति) जलसात् भवति ; (कृत्स्नं लवणं जलं स्यात्) जलसात् स्यात्। (अभस्म समस्तं भस्म करोति) भस्मसात् करोति ; भस्मसात् भवति ; भस्मसात् स्यात्। पक्षे—'च्वि' ; यथा—जलीकरोति, जलीभवति, जलीस्यात्; भस्मीकरोति, भस्मीभवति, भस्मीस्यात्। "अग्निसात् कृत्वा"।

(क) 'अधीनता'-अर्थमें, कृ, भू, अस् और 'सम्'-पूर्वक पद् धातुके योगसे, 'सातिच्' होता है ; यथा—(राज्ञः अधीनं करोति) राजसात् करोति ; (राज्ञः अधीनं भवति) राजसात् भवति ; (राज्ञोऽधीनं स्यात्) राजसात् स्यात् ; (राज्ञोऽधीनं सम्पद्यते) राजसात् सम्पद्यते। (आत्मनि अधीनं करोति) आत्मसात् करोति।

(ख) सातिच्, त्राच् (त्रा)—'देय' समझानेसे, कृ, भू, अस् और 'सम्'-पूर्वक पद् धातुके प्रयोगमें, 'सातिच्' और 'त्राच्' प्रत्यय होते हैं; 'च्' इत्, 'त्रा' रहता है ; यथा—(ब्राह्मणाय देयं करोति) ब्राह्मणसात् करोति, ब्राह्मणत्रा करोति ; ब्राह्मणसात् भवति, ब्राह्मणत्रा भवति ; ब्राह्मणसात् स्यात्, ब्राह्मणत्रा स्यात् ; ब्राह्मणसात् सम्पद्यते, ब्राह्मणत्रा सम्पद्यते।*

१०३२। डाच्—'कृ'-धातुके योगसे, द्वितीय, तृतीय, शम्ब और

---

* "भस्मसात् कृतवतः पितृद्विषः पात्रसाच्च वसुधांससागराम्" र० ११. ८६ ; "विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात् कृतः" नै० १. १६ ; "विप्रसादकृत भूयसीर्भुव" माघ० १४. ३६ ; "राजा स यज्वा विबुधव्रजत्रा कृत्वाऽध्वराज्योपमयेव राज्यम्" नै० ३. २४।

बीज शब्दके उत्तर, 'कर्षण'-अर्थमे 'डाच्'-प्रत्यय होता है ; 'ड्' और 'च्' इत्, 'आ' रहता है ; यथा—द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति (द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति इत्यर्थः) ; शम्बाकरोति (अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कर्षति इत्यर्थः) ; बीजाकरोति * (बीजेन सह कर्षति इत्यर्थः) ।

(क) 'गुण'-शब्द अन्तमे रहनेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर, 'कृ'-धातुके योगसे, 'कर्षण'-अर्थमे 'डाच्' होता है ; यथा—द्विगुणाकरोति त्रिगुणाकरोति क्षेत्रम् (द्विगुणं त्रिगुणं कर्षतीत्यर्थः) ।

(ख) 'व्यथन'-अर्थमे, 'सपत्र' और 'निष्पत्र' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—सपत्राकरोति मृगं व्याधः (सपत्रं शरम् अस्य शरीरे प्रवेशयन् व्यथयति इत्यर्थः) ; निष्पत्राकरोति (शरीरात् शरम् अपरपार्श्वे निष्क्रामयन् व्यथयतीत्यर्थः)। "एकश्च मृगः सपत्राकृतः, अन्यश्च निष्पत्राकृतः अपतत्" दशकु० ।

(ग) 'यापन' (क्षेपण, अतिवाहन) समझानेसे, 'समय'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है ; यथा—समयाकरोति (समयं यापयति इत्यर्थः) ।

(घ) 'निष्कोषण'-† अर्थमे, 'निष्कुल'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है ; यथा—निष्कुलाकरोति दाडिमम् (निष्कुष्णाति—दाडिमस्य अन्तरवयवान् बहिर्निःसारयति इत्यर्थः) ।

(ङ) 'आनुलोम्य' (आनुकूल्य) अर्थमे, 'सुख' और 'प्रिय' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है ; यथा—सुखाकरोति प्रियाकरोति मित्रम् (अनुकूलाचरणेन आनन्दयतीत्यर्थः) ।

---

* "व्योमनि बीजाकुरुते, चित्रं निर्माति सुन्दरं पवने ।
रचयति रेखाः सलिले, चरति खले यस्तु सत्कारम् ॥" भामिनी० १.९६.।

† कोषसे बहिष्करण ।

(च) 'प्रातिलोम्य' (प्रातिकूल्य) समझानेसे, 'दुःख'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—दुःखाकरोति भृत्यः स्वामिनम् (पीडयतीत्यर्थः)।

(छ) 'पाक'-अर्थमे, 'शूल'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—शूलाकरोति मांसम् (शूलेन पचतीत्यर्थः)।

(ज) 'शपथ'-भिन्न अर्थमे, 'सत्य' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—सत्याकरोति भाण्ड वणिक् (मयैतद्द्रव्यं क्रेयमिति प्रतिजानीते सत्यङ्कार-द्रव्यप्रदानादिनेत्यर्थ)। (भाण्डम्—पण्यद्रव्यम्। सत्यङ्कार—बयाना।)

(झ) 'मुण्डन' अर्थमे, 'भद्र' और 'मद्र' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—भद्राकरोति, मद्राकरोति (मुण्डति इत्यर्थः)।

अनिश्चयार्थे।

१०३३। चित्, चन—विभक्त्यन्त 'किम्'-शब्दके उत्तर 'अनिश्चय'-अर्थमे 'चित्' और 'चन' प्रत्यय होते हैं; यथा—कश्चित्, कश्चित्, केनचित्, कस्मैचित्, कस्माच्चित्, कस्यचित्, कस्मिंश्चित्; कुतश्चित्, कत्रचित्, कुत्रचित्; कश्चन, किञ्चन, कञ्चन, कुतश्चन, कत्रचन, कुत्रचन।

प्रश्न।

कौन प्रत्यय और कौनसा पद होगा, कहो—

कृष्णका पुत्र। जो व्याकरण पढ़ता है। जिसका ज्ञान है। जिसका स्रोत (स्रोतस्) है। अतिशय प्रिय। कोई मनुष्य। जो पण्डित नहीं था, वह पण्डित हुआ है। कुछ कम पांच वर्षका लड़का। जिस लताका पुष्प हुआ है। पांच पांच करके।

सम्पूर्ण।

"सरस्वती श्रुतमहती न हीयताम्"।

नीति-प्रबन्धः ।

('शेख़ सादी'-कृत-'पन्द्-नामा'('करीमा')-ख्य-
पारसी-निबन्धादेतद्ग्रन्थकर्त्राऽनूदितः)

विद्या-माहात्म्यम् ।

मानवोऽत्र समुत्कर्षं विद्यया प्रतिपद्यते ।
न पदेन पदव्या वा न धनेन न सम्पदा ॥ १ ॥

वर्त्तिवत् क्षपणीयोऽयमात्मा विद्याकृते सदा ।
विद्यामृते परिज्ञातुं नेश्वरः शक्यते यतः ॥ २ ॥

भवन्ति खलु धीमन्तो विद्योपादानतत्पराः ।
तीव्रोऽस्ति सततं यस्माद्विद्याया भव्य आपणः ॥ ३ ॥

अनन्तकालसन्तत्यां यो जातः किल पुण्यभाक् ।
अङ्गीकृता शुभोदर्का तेन विद्यार्थिताऽनिशम् ॥ ४ ॥

विद्यार्जनविधिर्नूनं त्वयि कर्त्तव्यतां गतः ।
पुनर्देशान्तरव्रज्या तदर्थमिह युज्यते ॥ ५ ॥

गच्छ, चेलाञ्चलं दिव्यं विद्याया धारय स्थिरम् ।
अनन्तं स्वर्गलोकं त्वां तव विद्योपनेष्यति ॥ ६ ॥

नान्यदभ्यस्यतां विद्यामृते, चेदसि बुद्धिमान् ।
स्यादालस्यहता नूनं विद्याहीना स्थितिर्यतः ॥ ७ ॥

विद्यैव तव पर्य्याप्ता लोकेऽत्र च परत्र च ।
विद्यया कर्मजातं ते यायादत्यन्तचारुताम् ॥ ८ ॥

विनय-प्रशंसा ।

यदि स्वीकुरुषे चित्त! विनयं नयसम्मतम् ।
भवेयुः सुहृदः सर्वे भुवि पञ्चजनास्तव ॥ ९ ॥
विनयो गौरवं पुंसां प्रवर्द्धयति सर्वतः ।
रुचिश्चन्द्रमसो दिव्या जायते किल भास्करात् ॥ १० ॥
विनयः स्यात् परिपणो मैत्र्यस्यापायवर्जितः ।
परमोत्कर्षमाप्नोति मित्रतागौरवं यतः ॥ ११ ॥
विनयोऽभ्युदितं कुर्य्यान्मानवं मञ्जुलाशयम् ।
विनयो महतामेकं प्रकृष्टं लक्षणं मतम् ॥ १२ ॥
मनुष्यो यः स नियतं यत्नाद्विनयमाश्रयेत् ।
मनुष्यत्वं विना क्वापि न मनुष्यो विरोचते ॥ १३ ॥
विनयं कुरुतेऽवश्यमादृतो मतिमान् नरः ।
शिरो धरण्यामाधत्ते शाखा फलभरानता ॥ १४ ॥
विनयस्तव जायेत नित्यं सम्मानवर्द्धकः ।
स्थानञ्च त्रिदिवे दद्यात् तुभ्यमभ्युन्नते सुखम् ॥ १५ ॥
विनयो भवति स्वर्गद्वारस्य किल कुञ्चिका ।
उन्नतेर्गौरवस्यास्ते तथा रम्यप्रसाधनम् ॥ १६ ॥
वर्त्तते पुरुषस्येह यस्य मानोच्छ्रितं शिरः ।
तस्माद्विनयसम्प्रातिर्हृदयग्राहिणी भवेत् ॥ १७ ॥
विनयो यस्य लोकस्य स्वभावत्वेन जायते ।
प्रतिपदशः महत्त्वेन चासौ भवति लाभवान् ॥ १८ ॥
विनयस्त्वां प्रियं कुर्य्याज्जगत्यामिह सर्वथा ।

पुरतो मनसां प्राण इव स्या महिमान्वितः ॥ १९ ॥
मर्त्येषु विनयान्नैव भव जातु पराङ्मुखः ।
यद्धारयेः स्वमूर्द्धानमस्मादसिमिवोन्नतम् ॥ २० ॥
उदग्रशिरसामत्र विनयः स्यान्मनोरमः ।
भिक्षुकश्चेद्‌विनीतः स्यात् संसिद्धिरियमस्य हि ॥ २१ ॥

दया-प्रशंसा ।

अयि चेतो दयारूपं पात्रं येन प्रसारितम् ।
दयाराज्येशिता नूनं बभूवासौ नरः कृती ॥ २२ ॥
दया प्रख्यातनामानं त्वां विदध्याद्धरातले ।
दया सम्पादयेच्छश्वत् तव क्षेममनोरथम् ॥ २३ ॥
दयां विहाय नैवान्यत् कृत्यं जगति विद्यते ।
अस्यास्तीव्रतरः कश्चिदापणश्च न दृश्यते ॥ २४ ॥
दया नीविः प्रमोदानामतया परिकीर्त्तिता ।
दया स्थिरा जीवितस्य फलमुक्तमनुत्तमम् ॥ २५ ॥
दयया जगतश्चित्तं कुरु हर्षविकस्वरम् ।
कीर्त्तिसम्भृतमाधत्स्व विश्वं त्यागप्रभावतः ॥ २६ ॥
दयायां सर्वकालेषु वासं कल्पय निश्चलम् ।
यतश्चित्तविनिर्माता कारुण्यभरितो भृशम् ॥ २७ ॥

दान-प्रशंसा ।

दानमाद्रियतेऽजस्रं दक्षिणः सुभगः पुमान् ।
यतो दानेन मनुजः सौभाग्यालङ्कृतो भवेत् ॥ २८ ॥
दानेन दयया चाधिक्रियतां क्षितिमण्डलम् ।

दयादानात्मके राज्ये प्राधान्यं समवाप्नुहि ॥ २९ ॥
दानं निसर्गतः सिद्धं कर्मोदात्तहृदां नृणाम् ।
दानं वृत्तिर्महाभाग्यवतां श्लाघ्यतमाऽनिशम् ॥ ३० ॥
दानं हि दोषताम्रस्य रससिद्धिर्विलक्षणा ।
दानं किलौषधं बाधासमुदायस्य निश्चितम् ॥ ३१ ॥
यावच्छक्यं त्वमात्मानं दानतो न वियोजय ।
श्रेयःकन्दुकमात्मीयं यतो दानेन नेष्यसि ॥ ३२ ॥

सन्तोष-प्रशंसा ।

यद्यङ्गीकुरुषे चित्त ! सन्तोषं वित्तमुत्तमम् ।
नियतं सुखसाम्राज्यप्रभुत्वमधिगच्छसि ॥ ३३ ॥
अकिञ्चनोऽसि चेत् हृच्छ्रान्मा कार्षीः परिदेवनम् ।
यतोऽकिञ्चित्करं रिक्थं धीमतामन्तिके मतम् ॥ ३४ ॥
प्रेक्षावन्तो न लज्जन्ते दारिद्र्याद्विषमादपि ।
दारिद्र्यादेव जायेत गौरवं हि महात्मनाम् ॥ ३५ ॥
अस्ति · मण्डनमाढ्यानां काञ्चनाद्रजतादपि ।
परमन्तः प्रमुदितः पुमान् निःस्वोऽवतिष्ठते ॥ ३६ ॥
धनी चेन्न विजायेथा मा वैकल्यं समाश्रय ।
न हि दुःस्थादपेक्षेत कदाचिन्नृपतिः करम् ॥ ३७ ॥
सन्तोषः खलु सर्वासु· दशास्वेव प्रशस्यते ।
सन्तोषं कुरुतेऽवश्यं पुरुषो भुवि भाग्यवान् ॥ ३८ ॥
प्रज्ञात् प्रद्योतय स्वान्तं सदा सन्तोषरोचिषा ।
यदि त्वं पुण्यवत्त्वेन \ प्रख्यापयितुमिच्छसि ॥ ३९ ॥

विद्वत्सम्मतिः ।

(१)

परमप्रेमास्पद-श्रील-रामस्वामि-महोदयेषु नमो नारायणायेति स्मरण-पूर्वकं निगाद्यमिदम्—

श्रीमन् ! निरैक्षि वीतरागेणापि परोपचिकीर्षामात्रवश्यतया परमोपयोगिशब्दशास्त्रार्थसङ्ग्रहकारिणा भवता निर्मितोऽभिनवपरिष्कारपरिष्कृत-वर्ष्मा 'व्याकरण-मञ्जरी'-नामधेयो ग्रन्थः । सर्वाङ्गीणसौष्ठवेयं 'व्याकरण-मञ्जरी' अद्यावधि प्रकाशमुपेयुषो हिन्दी-संस्कृतोभय-भारतीव्युत्पत्त्यौपयिकान् व्याकरण-ग्रन्थान् सर्वानेवातिशयाना वर्त्तते इत्युक्तौ नातिशयोक्तिलेशोऽपि । एकैवेयं 'मञ्जरी' हिन्दी-संस्कृतो-भयव्याकरणविषये व्युत्पित्सुभिः समभ्यस्यमाना पूर्णव्युत्पत्तये पर्याप्नो-तीति नात्र संशीतिरीषदपि । काठिन्यदुरूहत्वादिचणानामपि व्याकरण-नियमानां सरलसुबोधशैल्या निरूपणं भवतामेव नैकभाषावैदुष्यजुषां कृत्यम् । अनया कृत्या न केवलं छात्रवृन्दं बहूपाकारि, अपि त्वध्यापनो-पयोग्यभिनवानेकविषयाववोधनेनाध्यापकवृन्दमपि । उदाहरणान्यपि हृद-यङ्गमानि गौरवास्पदेभ्यः काव्य-नाटक-पुराण-दार्शनिकसूत्रभाष्यादिभ्यः समग्राहिषतेत्यादयो बहवो भव्यनव्यप्रकारा इतरव्याकरणेष्वदृष्टचरा न्य-धायिषतेत्ययं सुवर्णसौरभयोगः समजनि । इयं 'मञ्जरी' समेषां सहृदय-भ्रमराणां स्वीययोग्यतासौरभेण सौहित्यं सम्पादयितुमलमिति मे विश्व-सिति चेतः । अन्तर्वाणिगणैः प्रणोद्यमाना अपि गीर्वाणवाणीप्रणयिनो-ऽपि तदीयकाठिन्येन ये सुरभारत्यध्ययनपराङ्मुखा आसन्नाङ्ग्लभाषादि-

पाठिनोऽन्तेवासिनः, तेषां कृतेऽप्यधिसिन्धु निमज्जतां सकर्णधारा तरणिरिव जातेयं 'मञ्जरी' इति सम्मन्यते—

स्वामी भागवतानन्दो मण्डलीश्वरः शास्त्री
काव्य-साङ्ख्य-योग-न्याय-वेदान्तादि-तीर्थः ।
भारती-विद्यालयः—कनखलः (हरिद्वार) ।

(२)

कलियुगपावनावतारभक्तजीवजीवातुपरमपुमर्थप्रेमवितरण-
परायणभगवत्श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचरणोपदिष्टैकवीथी-
पथिक-श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य-दार्शनिक-
सार्वभौम-साहित्यदर्शनाद्याचार्य-
तर्करत्न-न्यायरत्न—
गोस्वामि-श्रीदामोदरशास्त्री—

आदरणीय बहुभाषाविज्ञ पण्डित श्रीयुक्त रामस्वामीजीकी रचित "व्याकरणमञ्जरी" को देखकर हमको अधिक हर्ष भया ; क्योंकि उक्त पुस्तक संस्कृत-व्याकरणकी गहनतासे भीरु जिज्ञासुजनोंकी जैसी योग्यता-सम्पत्तिमे उपयोगी होगा, तैसी अन्यद्वारा संभावित नहि है ; तथा इंग्लिशव्याकरण-परिभाषाओंकीभी साथ २ अर्थोपलब्धि इससे अधिकांशमें होवैगी । इस पुस्तकके दो भाग हैं । आशा की जाती है कि यदि दोनों भाग आयत्त हो जावैं तो व्यवहारोपयोगी संस्कृतज्ञान अवश्यही होवैगा । इसके देखनेसेही इसकी ज्ञानसंपादनक्षमता विदित हो सकती है । यह वस्तुस्थिति है ; प्रशंसांश इसमें अणुमात्रभी नहि है । इति शम् ।

(३)

श्रीमान् रामस्वामीजीकी बनाई हुई "व्याकरणमञ्जरी"-नामकी पुस्तकको मैंने देखा । यह पुस्तक व्याकरण पढ़नेवाले छात्रोंके, विशेपकर प्रथमश्रेणीके छात्रोंके तो बड़ेही कामकी चीज़ है । इस पुस्तकके द्वारा साधारणसे साधारण छात्र थोड़ेही परिश्रमसे व्याकरणकी व्युत्पत्ति पूर्णरूपसे प्राप्त कर सकते हैं । मैं स्वामीजीको पूर्णरीतिसे छात्रोंको व्युत्पन्न बनानेके लिये इस ग्रन्थकी रचनाके उपलक्ष्यमें हृदयसे धन्यवाद देता हूँ ; और आशा करता हूँ, परमात्माकी कृपासे स्वामीजीका यह उद्योग सफल होगा । शुभमस्तु ।

महामहोपाध्याय देवीप्रसाद शुक्ल
कविचक्रवर्त्ती, साहित्यवारिधि
अध्यापक, हिन्दुविश्वविद्यालय, काशी ।

(४)

श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ श्रीरामस्वामीजीसे रचित "संस्कृत-व्याकरण-मञ्जरी" को देखकर मुझे बहुतही प्रसन्नता हुई । इसका आद्यन्तभाग संस्कृत, हिन्दी एवं आंग्ल-भाषा-रसिक, विद्याव्रत-परायण मधुकरोंको सरलतासे भावज्ञान-रस प्रदान कर तृप्त करनेमे बहुतही उपयुक्त होगा, इसमे कोई संशय नहीं । इसके साथ वृद्ध पुरुषोंकोभी यह "मञ्जरी" रसायनसे कम लाभ न देगी । ज्यों २ "मञ्जरी"-का प्रचार बढ़ेगा, त्यों २ ही भारतमे संस्कृत-शिक्षा बढ़ती जायेगी ; विद्यार्थियोंको परीक्षाओंमे उत्तीर्ण होनेमे सहायता-द्वारा उत्साह बढ़ानेमेंभी एकमात्र साधन होगी । आशा है कि सरकारी

शिक्षा-समितियोंका ध्यानभी अवश्य इस ओर जायेगा, और वे इसके प्रचारमें साहाय्य प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे ।

साहित्याचार्य, आयुर्वेदोपाध्याय
रामचन्द्र शर्मा वाग्मी न्यायशास्त्री काव्यतीर्थ
अध्यक्ष श्रीपालीवालब्राह्मणसंस्कृतकॉलेज, हरिद्वार।

(5)

I have glanced at portions of "Vyâkaraṇa Mañjarî", an elementary Sanskrit Grammar (in Hindi), by Paṇḍit S'ri Râma Swāmī. From what I have seen of the work it seems to me that it will be *a useful handbook to Sanskrit-reading students in their primary and secondary stages.*

G. N. Kavirâj M. A.,
Principal,
Govt. Sanskrit College, Benares.

(6)

I have glanced through the "Vyākaraṇa Mañjarî" by Râma Swâmī. The book, I am strictly of opinion, will prove *highly useful to the High School & Intermediate students* for whom it is intended.

Nîlkamal Bhattâchârya M. A.,
Professor, Central Hindu College,
Benares Hindu University.